अद्वैतादर्श

प्रस्तुत अद्वैत सिद्धांत शैलीकी मीमांसा

(द्वैत-अद्वैत-तत्वसंशोधक—जिज्ञासु प्रज्ञाप्रबोधक.)

एक संन्यासि महात्मासे

संपादक

भानुशंकर रणछोडजी शुक्ल.

प्रकाशक

हरिराम भीमजीवर्मा—नेत्रा-कच्छ.

सं. १९९६

जुनागढ.

सद्धर्मसूर्योदय मुद्रायंत्र.

मूल्य रू. २

* * *

सुविज्ञानं चिकितुषे जनाय सच्चासच्च वचसी पस्पृधाते ।
तयोर्यत्सत्यं यतरदृजीयस्तदित्सोमोऽवति हन्त्यासत् ॥
अथर्व. कां. ८ अनु० ४ म० १

\+ + + + +

अनियतत्वेपिनायौक्तिकस्यसंग्रहोऽन्यथाबालोन्मत्तादिसमत्वम् ।
सांख्य द. अ. १ सू.

× × × × ×

उद्धरेदात्मनाऽऽत्मानं नात्मानमवसादयेत् ।
आत्मैव ह्यात्मनो बंधुरात्मैव रिपुरात्मनः ॥ भ. गी. अ. ६

\+ × × × ×

ज्ञप्तेस्तु कारणं राम शिष्यप्रज्ञैव केवलं ॥ यो. वा.

* * * * *

उतत्वःपश्यन्नददर्शवाचमुतत्वःशृण्वन्नशृणोत्येनाम् । उतोत्व
स्मै तन्वं विसस्रेजायेवपत्यउशतीसुवासाः ॥ ऋ. मं. १० सू.

* * * *

ये नाम केचिदिह नः प्रथयंत्यवज्ञां
जानन्ति ते किमपि तान्प्रति नैष यत्नः ।
उत्पत्स्यतेऽस्ति मम कोऽपि समानधर्मा
कालो ह्ययं निरवधिर्विपुला च पृथ्वी ॥ भव

* * * *

सन्तः परीक्ष्यान्यतरद् भजन्ते मूढः परप्रत्ययनेयबुद्धिः
कालिदास.

* * * *

Books do contain a progeny of life in them, as active as that soul was whose progeny they are.

A good book is a precious life-blood of master-spirit, embalmed and treasured up on purpose to a life beyond life. *Milton.*

* * * *

Now, just as the sun cannot shed its light but to the eye that sees it nor music sound but to the hearing ear, so the value of all masterly work in art and science is conditioned (produced or caused) by the kinship and capacity of the mind to which it speaks. It is only such a mind as this that possesses the magic word to stir and call forth the spirits that lie hidden in great work. To the ordinary mind a master-piece is a sealed cabinate of mystery,- and unfamiliar musical instrunment from which the player, however much he may flatter himself, can draw none but confused tones. * * * * *

Just in the same way the impression made by a master-piece varies with the capacity of the mind to understand it. * * * * *

Every man must necessarily take his chief pleasure......in the work of people like him; that is to say, a dull, shallow and perverse man,...will give his sincere and hearty applause only to that which is dull, shallow, perverse or merely verbose. On the other hand he will allow merit to the work of great minds only on the score of authority......for in reality they will give him no pleasure at all. They do not appeal to him; nay they repel him; and he will not confess this even to himself. The works of genius cannot be fully enjoyed axcept by those who are themselves of the privileged order.

The Art of Literature by A. Schopenhauer. p. 94

* * * * * *

× × × × ×

Avoid Extremes ; and shun the faults of such,
Who still are pleas'd too little or too much,
At ev'ry trifle scorn to take offence.
That always shows great pride, or little sense ;
Those heads as stomachs, are not sure the best,
Which nauseate all, and nothing can digest.
Yet let not each gay Turn thy rapture move ;
For fools admire, but men of sense approve ;
As things seem large which we thro' mists descry,
Dullness is is ever apt to magnify.

Some foreign writers, some our own despise
The Ancients only, or the Moderns prize.
Thus Wit, like faith, by each man is apply'd
To some small sect, and all are damn'd beside.
Meanly they seek the blessing to confine,
And force that sun but on a part to shine,
Which not alone the southern wit sublimes,
But ripens spirits in cold northern climes ;
Which from the first has shone on ages past,
Enlightens the present, and shall warm the last ;
Tho' each may feel increases and decays,
And see now clearer and now darker days.
Regard not than if Wit be old or new,
But blame the false, and value still the true.

Pope.

× × × × ×

न तत्र चक्षुर्गच्छति न वाग्गच्छति नो मनो न
विद्मो न विजानीमो यथैतदनुशिष्यात् ॥ केनोपनिषद्

नैव वाचा न मनसा प्राप्तुं शक्यो न चक्षुषा ।
अस्तीति ब्रुवतोऽन्यत्र कथं तदुपलभ्यते ॥ कठोपनिषद्

यस्यामतं तस्य मतं मतं यस्य न वेद सः ।
अविज्ञातं विजानतां विज्ञातमविजानताम् ॥ केनोपनिषद्

अनादिमत्परं ब्रह्म न सत्तन्नासदुच्यते ॥ भ. गी. १३–१२॥

आश्चर्यवत्पश्यति कश्चिदेनमाश्चर्यवद्वदति तथैवचान्यः ॥
आश्चर्यवच्चैनमन्यः शृणोति श्रुत्वाप्येनं वेद नचैव कश्चित्॥भ.गी

मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये ।
यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्त्वतः॥भ.गी.अ.७-३

* * * * * *

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः। भ.गी.अ.२-१६

प्रकृत्यैव च कर्माणि क्रियमाणानि सर्वशः ।
यः पश्यति तथात्मानमकर्तारं स पश्यति ॥ ,, १३–२९

मयाऽध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम् ।
हेतुनाऽनेन कौंतेय जगद्विपरिवर्तते ॥ ,, ,, ९–१० ॥

यावत्संजायते किंचित्सत्वं स्थावरजंगमम् ।
क्षेत्रक्षेत्रज्ञसंयोगात्तद्विद्धि भरतर्षभ ॥ ,, ,, १३–२६॥

क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोरेवमंतरं ज्ञानचक्षुषा ।
भूतप्रकृतिमोक्षं च ये विदुर्यांति ते परम् ॥ ,, ,, ,, ३४ ॥

यः सर्वविभवोऽस्माकं धियां न विषयस्ततः ।
तज्जगत्कथने शक्तिर्न ममास्ति महामते ॥ यो.वा.उ.प्र.स. ३०

ते द्वे अप्यवलम्ब्यविश्वमखिलं निर्वाणितं निर्वृतं ।
यावद्दृष्टिदृशो नसंन्तिकलिता नो शून्यता नो भ्रमः॥यो.नि.प्र.स.१८९

* * * * * *

नहि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते ।
तत्स्वयं योगसंसिद्धः कालेनात्मनि विंदति ॥ भ.गी.अ.४–३८

× + × + × +

अध्यात्मविद्या विद्यानां वादः प्रवदतामहम् ॥ ,, ,, १०–३२॥

× × × × × ×

नीतिज्ञा नियतिज्ञा वेदज्ञा अपि भवन्ति शास्त्रज्ञाः ।
ब्रह्मज्ञा अपि लभ्याः स्वाज्ञानज्ञानिनो विरलाः॥अप्पयदै.श.२६॥

नित्यानित्यविवेकः सर्वेषां घटघटत्वयोरस्ते ।
स विवेको यः शांतिकृदविवेकोऽन्यः समस्तोऽपि॥ ,, २०॥

× × × × × +

कुशलाब्रह्मवार्तायां वृत्तिहीनाः सुरागिणः ।
तेऽप्यज्ञानतमानूनं पुनरायान्ति यान्ति च ॥

Man's hour on earth is weakness, error, strife.
.........Even in his darkest hours
Still doth he war with darkness and the Powers
Of darkness; for the light he cannot see
Still round him feels; and if he be not free,
Struggles against this strange captivity.
(Goethe)

× × × + × ×

There is nothing worth thinking but it has been thought, we must only try to think it again.

(Goethe's Maxims and Reflections. p. 59)

× × × × + ×

The new is always liked, though the old is often better.

Every age confutes old errors and begets new

It is folly to fear what one cannot avoid.

A thousand probabilities do not make one truth.

(Dr. D. Jayne)

समर्पण.

मुक्ता निर्मल हो तोभी उसकी परीक्षा ओर मूल्य तथा प्रसिद्धिके लिये प्रभातके पवित्र प्रशांत सूर्यके प्रकाश–लाइट-की आवश्यकता हे, सुवर्ण शुद्ध हो तोभी उसकी परीक्षा ओर मूल्य तथा प्रसिद्धि मध्याह्नके तेजस्वी रविके प्रकाश विना नहीं होसकती, आदर्शका उपयोग ओर मूल्य सूर्यकी किरणों–रश्मी विना नहीं होता, विशुद्ध प्रकाशमान प्रज्ञासत्वमें प्रकाशित हुये विना विद्याकी निरीक्षा ओर माहिमा नहीं मालूम होती हे, यशकी परीक्षा ओर प्रतिष्ठा होने वास्ते यशवंतकी अपेक्षा हे, मणिमाला सौंदर्यसंपन्न प्रतापी तेजस्वी पुरुषके हृदयकंठमेंही शोभापाती हे, विद्याहार विबुधोंके वक्षस्थलमेंही विराजता हे, रत्न-जोहरकी कीमत ओर परीक्षा जोहरीके विना नहीं होती. ....

तद्वत् इस **अद्वैतादर्श**को सूर्यादिसमान

निर्मल-शांत–तेजस्वि–बुद्धिवंत–यशस्वि–विद्वान–स्वतंत्र–परीक्षकादि

गुणसंपत्तिसंपन्नके प्रकाशमें प्रकाश्य-स्पर्श्य-होनेकी आवश्यकताहे;

इसलिये पूर्वोक्त गुणविभूति प्रकाशक

अखंडप्रौढप्रतापी धीरवीर क्षत्रियकुलभूषण मान्यवर

लींबडीनरेश महाराजा श्री यशवंतसिंहजी बहादुर के. सी. आइ. इ.

के प्रकाशसे प्रकाशित ओर प्रसिद्ध होने अर्थ

यह ग्रंथ अर्पण करना उचित जानके साह्लाद समर्पण करता हुं.

भवदीय,

भानुशंकर.

☞ सूचना.

इस ग्रंथकी प्रस्तावनाके पेज ८ हितेच्छु प्रेस [अमदावाद]में, ग्रंथारंभ पेज १ से पृष्ट १४४ तक गुजरात गेझट प्रेस [अमदावाद] में ओर शेष जूनागढ स. सू. प्रेसमें छपे हैं.

☞ जहां अर्थमें कदाचित संशय वा अन्यथा प्रतीति हो वहां प्रथम कोश तथा शुद्धिपत्रोंपर ध्यान देना चाहिये. यथा हि. क. [२५], पृ. २९९ ओर सुत १.१.७. इ. प्र. क.

प्रवेशक.

[1] वेदांतविद्या कि जो, अध्यात्म ज्ञानके नामसे व्यवहारी जाती है;-जो, सांकेतिकवाणी-भाषाद्वारा याथातथ्य "वस्तुदर्शन" की एक सर्वमान्य सामग्री मानी जाती है;-जो, स्थूल-सूक्ष्म-दृश्य-गम्य-तत्वविवेक पुरःसर सृष्टिनियम-क्रम-व्यवस्था-व्यवहारके अमुक स्वरूपके 'निदान' भानपूर्वक चिकित्सापारंगत कोई अनिर्वाच्य-'अगम्य' रूप निष्कर्ष सिद्धिपर्यंतकी सत्तासूचक-पर्य्यवसित विज्ञान स्वीकारनेमें आती है;-और इतने सिद्धांतपद पर पहोंचाने पीछे वहांसे परिक्रमण करके जिस साधनद्वारा जो कुछ सिद्धकर बताने-दरसानेका कहतीथी उसी साधनको निरूपयोगी समान 'नेति नेति' 'मनवाणीसे अगोचर' इत्यादि कहके जो असंत अद्भुत आश्चर्यकारक कथन करती हैः-एसे कथन-एसे अनुभव-एसी अनुभवभाषा-एसी प्रतीति-एसे ज्ञानमें कितनी अतुल विस्मयता-कितना महत्व-गौरव-कितनी व्यापकता-विशालता-कितना गांभीर्य और कितना 'रहस्य' समाया हुवा होगा; और उसके समझने-अवधारण करनेके लिये किस रीतिका उच्च अधिकार, केसी प्रबल शक्ति, केसी शुद्ध सामग्री और किस प्रकारके सतत अभ्यासकी आवश्यकता होगी सो,-वास्तविक रीतिसे तो इस विषयमें यथार्थतः उतरे हुये सुसंस्कारी पुरुषकी अनुभव-तुलामेंही आया होगा, इतनाही नहीं, किंतु तदुपरांत प्रत्येक सामान्य पात्र

---

१ यथार्थ-अबाध्य ज्ञान-ज्ञानका सार-ज्ञानकी अवधि-मुख्य ज्ञान-ज्ञानका पर्यवसान; न कि रूपांतर हुवा जो प्रचलित है-जिस अशंका दोषदर्शक यह ग्रंथ है.

बुद्धिभी तत् संबंधी महत्त्वका अनुमान करसकेगा. अतएव इस विषय संबंधमें विशेष बोलने-विस्तार करनेकी आवश्य कता नहीं; इस सिवाय मेरा जैसा अल्पमति ऐसे अगाध समुद्रमें चूंच डबोने जितनीभी अपनेमें शक्ति-गति नहीं रखनेसे अभिप्राय देनेमें सर्वथा योग्य नहीं-असमर्थ है; तथापि उसमें रहा हुवा यही अल्पत्व दोष अभिव्यक्त होके-उक्त विषयके यथार्थ अनुभवी महात्माओंके वचनकाही आलंबन करके-कुछ कहनेके लिये साहस करता हे. वोह यह कि:-प्रस्तुत विषय संबंधी आजकल तो प्रायः परिवर्त्तन-विपरीतता-ओर व्यतिक्रमही प्रतीत होता हे. एक समय एसाभी था कि जब एक सूक्ष्म समयमें लेके 'अगम्य' पर्यंत के सिद्धि सूचक-ज्ञान ग्रंथ रसायन उत्पादक-बुद्धिराशि आर्य पुरुष हुये थे, ओर उत्तरोत्तर अब एसा समयभी आताजाता हे कि जिसमें उक्त ज्ञान रसायनिओंके अमृत तुल्य दिव्य-पुष्ट रसायनके गंधमात्रकी असरसेभी आर्य संतानको अरुचि करके भागते देखते हें. तथा अमुक 'विरले' को छोडके यदि कोई उक्त रसायनका शोकीन [जिज्ञासु-इच्छक] मिल आते हें तो वे बहुत करके (उक्त) रसायन भक्षण संबंधी यथार्थ निदान परीक्षापूर्वक विधिसूचक चिकित्सक सद्वैद्यके अभाव-असंपूर्णतासे तथा रसायनियोंके 'लेख' मात्रपरही मोहित होके अपनी योग्यता-अधिकारादिके दीर्घ विचार किये विदून स्वयमेव मुग्धवत् उपचार करने लगजानेके कारण, उसके यथार्थ फल-रोग निर्मूलनत्व तरुणता-पुष्टता-अमरताको प्राप्त हुये देखनेमें नहीं; प्रत्युत विपरीत परिणाम दशाप्राप्त-अर्थात् विलक्षण ग्रस्त हुये दृष्टिगोचर होते हें. निदान एसे हरकोई

जबकि आरंभमेंही अधिकार-साधन-समझ-उपयोग-संबंधी न्यूनता-अयोग्यता-दोष हों तो, तज्जनित वर्त्तन और फल प्राप्तिमें व्यतिक्रम होवे और आरंभक-प्रयोगकर्त्ता को अंतमें अनिष्ट परिणाम प्राप्त हो तो, उसमें कुछभी आश्चर्य माननेका है? नहीं. प्रसंगमें कहनेका तात्पर्य मात्र इतनाही है कि-हरकोई ग्रंथकारके लेखका हेतुगर्भित सांगोपांग रहस्य समझे और उसको युक्ति अनुभव-प्रमाणकी तुलामें तोलेविना केवल "शब्दार्थ" मात्रपरही निर्भरता रखने वा अंधपरंपरा संस्कार-अभ्यास बलपरही प्रवाहित रहने-तनानेसे यथार्थ " तत्व-निर्णय " नहीं होसकता; इतनाही नहीं किंतु सृष्टिनियम अनुसारही वस्तु पहिछानने पर साभिमान-स्वतंत्र स्वलक्ष्य हुयेभी, निज नियम भंग होने-अज्ञात-स्वदोष-व्यवधानसे, वस्तुस्थितिका निर्दोष-यथास्थित भान नहीं होसकता. जिसकालके आर्य लोकोंमें एसी स्वतंत्र पवित्र-सत्यसंशोधक बुद्धि और योग्यताथी उस समयके लोक उस उस कारणसे उस देशकालमें सृष्टिसिद्ध नियम समझके तिस अनुसार आचार-विचार-उपचार नियोजके [नियत करके] व्यवहार परमार्थमें परम उन्नति पाके, उभय (सार्वत्रिक) सुखाभ्युदयके उपभोक्ता हुयेथे. इतनाही नहीं किंतु अन्य लोकसमग्रके सुखप्राप्तिके पूरपूरे निमित्त होके अन्योंको अनुयायी करनेमें प्रेरक बनेथे. इसी कारणसे यह प्राचीन पवित्र आर्यावर्त्त, अखिल भूमंडलके इतिहासविषे प्रथम पदवीमें गिनाया-गाया गया. तथा 'स्वर्णदेश और स्वर्गसदन' की उपमाशिखरपर

† मध्यकालमें यथासमय न्यूनाधिक होना-करना तो, तदुनंत शेष है.

पहोंचा ओर वहकावही भरतखंड उत्तरोत्तर अभी [प्रसिद्ध] अधम-पराधीन स्थितिमें आपहोंचा ! इसका कारण क्या ? मुख्यतः अविद्या–स्वत्व–परत्व (में पना–तूं पना मनुष्यत्व) संबंधी अज्ञानता, मनुष्य ज्ञातव्य–कर्त्तव्य–प्राप्तव्य संबंधी अविवेक–अंधता हे. इसलिये व्यावहारिक–पारमार्थिक अर्थात् शारीरिक–मानसिक–आत्मिक शक्ति–सत्व–पुरुषार्थकी मूढता–शिथिलता–दीनता–अनिष्टता; ओर इन्हीं कारणों करके क्रमशः सिरपर आनपडी हुई सार्वत्रिक क्षीणतासे परोपकारी पूर्व पूज्य वडील–ऋषि मुनिओंकी ज्ञान-प्रसादीका सत्य आस्वादन मात्रकाभी असामर्थ्य, अथवा केवल आच्छादन, किंवा दुरुपयोग-विपरीतवर्त्तनही (हे). इसके प्रत्यक्ष प्रमाणमें वर्त्तमान भरतखंड बिचे प्रचलित नाना (विरोधी) धर्म-मत-पंथ-संप्रदाय-जाति-वर्णाश्रम-आचार-विचार ओर तज्जन्य कुसंप-क्लेश-अवनति-दुर्दशाही संक्षेपमें बस हे. ओर इस विषयका विशेष विवेचन यहां अप्रासंगिक हे, एसा जानके दिग्मात्र दर्शाते, इस प्रस्तुत कथनकी सिद्धिमें ओर वेदांत जेसी परमोत्कृष्ट ज्ञानसाध्य विद्या-कि जिस अद्भुत ज्ञानके आधारपर सृष्टिके समग्र स्थिति व्यवहारका स्वतः सिद्ध क्रम-नियम निर्भर हे ओर जिस संबंधी, मात्र आर्य ऋषि मुनिही अद्यापि पर्यंत पारंगतपनेका स्वतंत्र सर्वमान्य आदि अधिकार रखते हें,– उस ब्रह्मविद्या जेसे अति गहन-गूढ विषय संबंधमेंभी उपर कहे अनुसार उन प्राच्य पंडितोंके सत्य 'आशय विरुद्ध' आजकल कितनी विरुद्ध समझोती ओर अज्ञानता फेलाई हुई हे ओर उससे कैसा विपरीत वर्त्तन ओर फल निवडा हे तथा अभी ओरभी (सविशेष) आना संभव हे; सो जानने

लोक दृष्टिमें यत्किंचित् गोचर होनेकी आशासे यह-उपयुक्त उत्तेजक "अद्वैतादर्श" ग्रंथ जैसाका तैसा[१] "उदाहरण दाखिल" लोकसमाजकी सेवामें रखता हुं. ओर तत्संबंधी अभी तो आवश्यक इतनाही वृत्तांत जनानेकी आज्ञा लेता हूं कि, यह ग्रंथ मुझको एक साधु महात्मा पाससे मिला है. उनके साथ कोइ अभ्यासके कारण कितनेक काल समागम रहाथा. (प्रसंगवशात् कहने विना नहीं चलता कि-) होते होते उसकी तत्वज्ञान (फिलोसोफी) संबंधी असाधारण बुद्धिमत्ता, विद्वत्ता उपरांत वोह व्यक्ति ब्रह्मनिष्ठ, योगकुशल, व्यवहारनिपुण, साधुतायुक्त, निस्पृह, स्वतंत्र, निष्पक्षपात, समदर्शी, परोपकारी, शांत, दयालु, निरभिमानी, सरल स्वभाव, स्वदेशानुरागी, लोकोन्नतिकी महेच्छावान वगेरे उत्तम गुणोंसे सुशोभित मेरी दृष्टिमें प्रतीत होने लगे. उत्तरोत्तर समागमविशेष होते-रहते उनके पास कितनेक "लिखित ग्रंथ" मेरे देखनेमें आये. उनमें प्रत्येक ग्रंथ प्रायः "तत्वशास्त्र" संबंधी जान पडा ओर वे मेरी दृष्टिमें अत्यंत उपयुक्त मालूम हुये. उनमेंसे एक "अपूर्व लेख" अपूर्ण स्थितिमें था, परतुं तद्गत विषय ओर उसकी 'लेखन शैली'से इत-

१. न्यूनाधिक कियेविना. भाषामें बहुधा अपभ्रंश पद ओर अन्य भाषाके शब्दभी प्रचलित होते हें,-रुढी बलसे-ह्रस्व, दीर्घ ओर दीर्घ, ह्रस्व तथा जुडे अजुडे, अजुडे जुडे हुये बोले लिखे पढे जाते हें,-बकार वकारादिका बदलभी होजाता हे,-तदेतर व्याकरणादिके कितनेक दोष एसे होते हें कि जो दोषरूपमें नहीं गिने जाते; अतएव ग्रंथगत भाषाकी शैली नहीं जाननेसे जेसाका तेसा रखा हे. पाठकको भाषा मयार्दा ओर लेखककी परिपाटी ओर प्रेसदोषपर ध्यान रखके सार-वक्ताका भाव-लेना चाहिये.

ना उपयोगी जानपडा कि, जो वोह किसी प्रकारसे यथार्थ संपूर्ण स्थितिमें पहोंचकर प्रसिद्धिमें आवे तो, "वर्त्तमानके नवीन प्राचीन विचारवाले तत्वनिर्णयके जिज्ञासु और अध्यात्म विद्याके उपासकोंको फलप्रद हो; तथा विशेषतः पाश्चात्य 'जडवाद' वगेरे फिलोसोफीसे संमोहित इंग्रेजी संस्कारवाले सुधारेके भक्तोंको पाश्चात्यरीतिसेही उनके सिद्धांतमें यथार्थ दोष दरसाकर उनको स्वल्प श्रमसे फेर पीछे ठिकाणे (पश्चिममेंसे पूर्वमें) लानेमेंभी अत्युपयोगी हो पडे." (इस सूत्ररूप ग्रंथमें, आर्यावर्त्तके सर्व 'दर्शनों'के निष्कर्ष उपरांत आज पर्यंत दुनियामें प्रसिद्ध मुख्य मुख्य धर्माचार्यों और फिलोसोफरोंके जो "तात्विक, धार्मिक तथा आध्यात्मिक" सिद्धांत हैं, उनके उचित दिग्दर्शन साथ खंडन मंडन-आंदोलन पूर्वक " वस्तुयाथार्थ्य-सत्य क्या हे और केसे निर्णय होना चाहिये " तत्संबंधी सृष्टिसिद्ध नियमानुकूल प्रशस्त श्रम और सूक्ष्म संशोधन-अवलोकनपूर्वक-स्वयमेव निर्णय होजावे एसे, भगीरथ प्रयत्न-पूर्वक प्राचीन दर्शनोंकी 'सूत्रपद्धति-वत्' सविवरण योजना हे.)—

संक्षेपमें आज पर्यंत वेदांतादि संबंधी जो गूढ सिद्धांत सूचक प्रकृष्ट सूक्ष्म 'थियरी' शोधमें आई-जनाइ हे, उस प्राचीन मान्य 'थीयरी' (प्रक्रिया) के प्रायः विशेष स्पष्टीकरण पूर्वक-सरलतासे उपयोगी होने-जनानेके अर्थ मुख्यतया श्रम करना ज्ञात होता हे. और तिसके प्रथम आरंभक प्रयास तरीके-मूल सिद्धांतकी आच्छादक वर्त्तमान प्रचलित दूषित 'थीयरी' के आंदोलकरूपही-मानो " दूसरे ग्रंथ " न लिखाये हों ! एसा जान पडता हे. और इसी प्रकार यह " अद्वैतादर्श " ग्रंथभी एसेही हेतुसे लिखा गया

हो, एसा धारनमें आता हे. तथा "यह क्या[१]? हम कोन[२]? केसे[३] ओर क्यों हे[४]? तथा जिस[५] अगम्यको हम नहीं जानते-प्रतिबंधक अभाव सहित उसके जानने (-पाने-ज्ञान होने-समझने) तथा सर्वमान्य सद्धर्मद्वारा सदाचारी

---

१ दृश्य शरीर ओर जगत्. २ जड, चेतन वा. ३ जन्य अजन्य वा. ४ यह सृष्टि ओर हम किस प्रयोजन वास्ते हें. हमको ज्ञातव्य, कर्त्तव्य, प्राप्तव्य क्या हे. ५ सर्व-भाव वा अभावादि का विधायक कोई 'नेति'से शेष होने योग्य, यहभी जिसका प्रकाश्य-अगम्य.

इस प्रकारके गुह्याशयवाले प्रश्न-शंका-जिज्ञासाके उद्देशका रहस्य यह हे कि, "दृष्टश्रुतकीही इच्छा होती हे-(जिज्ञासाका विषय होता हे)" यह नियम हे; इष्ट-प्राप्तव्य वस्तु, जहांतक प्राप्त न हो-(सोमलता-वल्लीकी इच्छावाला जहांतक सोमरस नहीं पीवे) वहांतक, इच्छावानका विक्षेप नहीं जाता-उसे संतोष नहीं होता, यह स्पष्ट हे. अब यदि कोई-एक ग्रंथ वा उपदेशकका विश्वासु-इष्टके नाना लक्षण मतभेदसे नावाकिफ-विश्वासु-अज्ञ किंवा किसी धूर्त्तकेद्वारा, उस-(इष्टको निर्णित लक्षणयुक्त न जाने-नअनुभव करनेवाले-गिलोको न जाननेवाले) जिज्ञासुको इष्ट (सोमलता वा गुड) के बदले अन्य (गिलो वा निंबफल वगेरे) मिले-(देनेवाला जानके कहे कि यही सोमलता हे ओर जिज्ञासु, यही सोमलता हे, एसा जानके लेवे) तोभी, जिज्ञासु उसीको स्व इष्ट (सोमलता) मानके संतुष्ट-शांत होजायगा. क्योंकि उसने इष्टको पूर्वमें नहीं जाना-नहीं अनुभवा हे. पुनः अन्यसे परीक्षा करानेपर किंवा अन्य कारणसे, अन्य कोइ दूसरा, उसके पाये हुये इष्ट-मंतव्यमें अन्य ग्रंथगत वा पुरुषमत-लक्षण-भेद बताके-दोष देखाके स्वनिश्चय वा इच्छानुसार इष्ट (सोमलता-गलो-निंबफल) बदले अन्य

बनने, वा सद्धर्म सदाचार प्रवृत्तिकी जिज्ञासा उत्पन्न होने का गुह्याभिप्रायसे उत्तेजक (प्रयत्नशील)" अवस्थांतर प्राप्त, कर्त्ताके ग्रंथोंमेंसे अधुना सविशेष लोकोपयोगी [शो· धमार्ग प्रवर्तक] लोक हितकारी जानके; प्राधान्यतः वर्त्त

(लता वा मांसादि) देके कहे कि, यह तुम्हारा इष्ट हे; तोभी, जिज्ञासु पुरुष, उक्त कारणसे उसीको इष्ट जानेगा-उसे मानना पडेगा किंवा अनहुये इष्ट (जडमूर्त्तिफलप्रद-किमियादि)की इच्छा हुये तिसकी प्राप्ति अर्थ प्रयत्न किया जाय ओर कोई उसको आप धोका खाके वा धोका देके-छलकपट करके इष्ट बतावे-अन्यथा इष्ट रूपसे निश्चय करावे, तोभी वोह अज्ञ उसे इष्ट मान लेता हे. कदाचित् सत्य इष्ट (सोमवल्ली-परितापनिवारक) भी मिलजावे तोभी, दूसरे करके सच्चे झूठे दोष दरसानेसे, उसमें इष्ट बुद्धि नहीं रहती (यथा वैद्यकग्रंथगत ओषधियोंके लक्षण स्वरूपके मतभेद ओर उपयोग हे). प्रयोजन यह हे कि, लक्ष्य [इष्ट] के लक्षणमें मतभेद हे. अतएव सलक्षण इष्ट जानेवालेको जिस तिसकी वार्ता-कथन-मंतव्य-बुद्धि-युक्ति माननी पडती हे. मानो कि, उस झूठे इष्ट मिलनेभी भाव-विश्वास-अज्ञान-संस्कारवश करके [जेसे क्षुधातुरको बिभूति घोलके देवें ओर कहें कि यह क्षुधानिवारक अन्नका रस हे. उसके पीनेसे उसकी क्षुधा निवारण होके उस समय तृप्ति होजाती हे वेसे] मनकी शांति हो; तोभी, वस्तुतः उससे अनहुये इष्टेच्छा तत्प्राप्ति अर्थ व्यर्थ प्रयत्न समान वा उससे न्यूनाधिक इस [जिज्ञासु] की हानी संभव हे-वा होती हे. एतदृष्टि जिज्ञासा ओर इष्ट परीक्षाकी किसी [अन्य] एकपर छोडके **'यह क्या? इत्यादि'** **प्रश्न स्वभावतः** उठें-जिज्ञासा होती हे-एसा होनेपर, उस जिज्ञासाके पूर्णार्थ सृष्टि नैसर्गिक नियमादि सामग्री-साधनको लेके लक्षण, स्वरूपका निर्णय ओर परीक्षा कर्तव्य होते हें-कहे वा माने जासकते हे; परंतु किसी

मान व्यवस्थामें संप्रदायसिद्ध-मर्यादाबद्ध तत्वसिद्धांत संबंधी सूक्ष्म विवेचक-आंदोलक-हृदयोद्घाटक समझके, तथा उक्त महात्माकीभी स्वाभाविक एसीही प्रकारकी सत्प्रवर्तक पारमार्थिक बुद्धि पाके, उनसे इस ग्रंथको छपाके प्रसिद्धिमें डालनेकी आज्ञा मांगली. ततपश्चात् कितनीक प्रतिकूलताके कारण मेरी इच्छा तुर्तमें पार नहीं पड सकी. इतनमें अनायास मेरे मित्रद्वारा यह हकीकत जानके कितनेक महाशय सद्गृहस्थोंने आप अपने धर्म ओर शौकसेही छपानेका उदारतावाला उत्साह दरसानेपर, यह ग्रंथ (उस सद्गृहस्थद्वारा) आज प्रसिद्धिमें लाके मेरी प्रतिज्ञा सिद्ध हुइ देखके हर्षित होता भया खरेखर निमित्तरूप हुये उन

ग्रंथ वा मनुष्यके विश्वास वा कथनमात्रपर आधार नहीं रहता-नहीं रखा जासकता-रखना उचित नहीं.-यह कथन वा मंतव्य सामान्यतः सर्वमान्यदृष्टिसे हे [विशेष-स्वपर लाभ हानीको न जाने वाले-बालबुद्धि-अज्ञ-विश्वासु-एक देशी-एकके भक्त, जो हें उनके वास्ते नहीं-वे किसीके कुच्छ कहनेपर जिज्ञासा ओर इष्ट तथा प्राप्ति ओर परीक्षाका मूल बांधे वा अन्य प्रकार-वे जाने]. यद्यापि इस मूल प्रसंगमें आद्यमें [पहिले पाहिल] विश्वास, प्रवाह-सकंप-निष्कंप,-यथार्थ-अयथार्थ,-प्रवृत्ति निवृत्ति संबंधी अन्यभी (अनेक) शंका समाधान हें; तथापि प्रसंगोपयोगी न जानके नहीं लिखे, कुदरती-स्वभावतः सृष्टिदर्शनद्वारा उन प्रश्नोंकी उत्पत्ति निर्णयकी जिज्ञासा ओर परीक्षा होती हे-होसकती हे.-यह वात किंचित् विचारसे जाननेमें आसकती हे. इस लिये केवल ग्रंथकारके अभिप्रायपर दृष्टि जावे-इस इच्छामे, कर्ताके गुह्याभिप्रायकी सूचनार्थ इतना लिखा हे-जनाया हे.

धर्मात्मा सद्गृहस्थोंका आभारी होना अपना कर्त्तव्य मानताहूं.

अंतमें आशा है कि, यह‡ ग्रंथ उसके योग्यको‡ उपयोगमें आवे तथा विवेक [पदार्थके स्वरूप गुण कर्मका ज्ञान तथा परीक्षापूर्वक सत्यासत्यका शोधन], सद्धर्म, सदाचार, सद्विचारकी अवधारणा होवे तो, ग्रंथकर्त्ताका महदाशय सूचक श्रम सफल हुवा माना जासकता है. तद्वत् प्रसिद्धकर्त्ताका संकल्पभी जो उक्त प्रकार कोईभी रीतिसे सिद्ध हुवा जाननेमें आवेगा तो, अपना श्रम सार्थक हुवा, एसा समझेगा. अस्तु.

इस ग्रंथ संबंधी सूचना विशेष-जनाने वा जाननेकी आवश्यकता ग्रंथकारके 'पत्र' वगेरे बांचनेसे नहीं रहती है. ओर हरकोई स्वबुद्धि संस्कारानुसार, उसके लेखकी यथार्थता अयथार्थता-निर्णय-जानने-मानने-स्वीकार अस्वीकार करनेमें स्वतंत्र है; इसलिये मेरी ओर[तरफ]से अन्य कुछभी नहीं लिख सकता. हां इतना लिखना-जिताना अपना फर्ज वा आवश्यक समझता हूं कि, जिनसे यह ग्रंथ लिया गया उन्होंने एसा कहाथा कि जो, "इस ग्रंथके विरुद्ध उत्तरमें कोइ योग्य* पुस्तक बाहिर पडे-प्रसिद्ध होतो, उसकी एक प्रति मेरी ओर भेजदेना. उसका लाभ लूंगा. ओर प्रतिउत्तर योग्य हुवा तथा मुझसे प्रत्युत्तर बन सकेगा, ओर उसके साधन मिले तो उत्तरभी लखूंगा."

सं. १९५६ जुनागढ (काठियावाड)

भवदीय,
भानुशंकर वि. रणछोडजी शुक्ल.
ग्रंथ प्रसिद्धकर्त्ता.

---

‡ नवीन वेदांत सीखनेके पीछे अवलोकन करनेयोग्य. * जेसे पं. आत्माराम जैनीने स्वरचित "अज्ञानतिमिरभास्कर" ग्रंथमें वेदको अन्यथा भांडा-बदनाम किया है, वेसे इस ग्रंथको केवल द्वेष वा अविचार दृष्टिसे देखनेवाला वा वेसे अन्यथा अर्थ करनेवाला नहो.

॥ ॐ. ॥

हितोपदेश–कर्त्ताका पत्र.

"सत्यं परं धी महि.

पूज्य - इष्ट[1]–परीक्षक[2]–महाशय[3] (   ) की सेवामें प्रणाम पंक्तयः[4] ॥

विदित होकि, अल्प बुद्धिके रचे हुये कितनेक ग्रंथ हें, उनमेंसे–जिनके लिये इस पत्रकी आवश्यकता हुई उनके यह नाम हें:—

१–"न्यायनाटक"–इस पुस्तकमें कणाद, गौतम, रामानुज, आर्यसमाज, फीसागोरस (पीथागोरस–यवनाचार्य), अरस्तु (अरिस्टोटल) आदि,–जीवेश्वर प्रकृति अनादि अनंत माननेंवालोंके मत [तत्ववादसंबंधि मंतव्य] की चर्चा [दूषण भूषण–खंडन मंडन] हे.

१–जिसको यह ग्रंथ अनुकुल हे, एसा इष्ट मंडल. २–जिसको यह समग्र ग्रंथ वा उनका कोई भाग प्रतिकुल हे, एसा प्रतिपक्षी मंडल वा समालोचक–विवेचक–समीक्षक २–३ तटस्थ. ४-उभय मंडलके नाम पत्र लिखनेका यह कारण हे कि ग्रंथकार कोई प्रकारका पक्ष-दुराग्रह नहीं रखता ओर न रखना मांगता हे-न लोककी कुनिंदासे डरता हे–न अपनी भूल स्वीकारनेमें भूल करना चाहता हे; किंतु परीक्षा पूर्वक जो यथार्थ हो–उसकी प्राप्ति ओर प्रवृत्तिमें दृष्टि रखता हे. अबभी जो कदाचित् प्रतिपक्षी मंडल परीक्षा विना अन्यथा उतर पडे, तो इष्ट, परीक्षक किंवा तटस्थ महाशय उसको योग्य दवाई देके उसकी आंखें खोल देंगे.–शांत करेंगे; तो अयथार्थमें फंसे हुये लोकको फंदेमेंसे निकलनेका अवसर मिले ओर अन्य लोक अयथार्थ–असत्‌में न फंससकें.

२–" बुद्ध बुद्धि."–इसमें उसकी शाखासहित बौद्ध मतकी चर्चा हे.

३–" जिन जून. "–इसमें उसकी शाखासहित जैन मतकी चर्चा हे.

४–" पुराणपाट. "–इसमें वैष्णव, शैव, शाक्त, गाणपत्य, सौर, स्मार्त, ब्रह्मसमाज, प्रार्थनासमाज, इरानी–पारसी,–देवसमाजी, थियोसोफिकल सोसाइटी, अभावजन्य भाव वा अभाववादि मतोंकी चर्चा हे.

५–" सांख्यसाखी."–इसमें कपिल ओर योग (पतंजली) मतकी चर्चा हे.

६–" जैमिनि हवन. "–[जज्ञ–यज्ञ]–इसमें पूर्वमीमांसा ओर कर्मवादियोंके मतकी चर्चा हे.

७–' जडोजड."–(जडोच्छेद)-इसमें चारवाक-दहरिया–लोकायत-पंचतत्ववाद–आकर्षणवाद–सायन्स पक्ष–स्वभाववाद–इत्यादि जडवादि पक्ष–मतोंकी चर्चा हे.

८–"बाइबल बल."–इसमें याहूदी, ईसाई [ख्रिस्ति] मतकी चर्चा हे.

९– ' मोहम्मदमति "–इसमें उसकी शाखासहित मुसलमानी मतकी चर्चा हे.

१०–" दयानंदीदीया. "–इसमें दयानंद स्वामीके मत ओर आर्यसमाजकी चर्चा हे.

---

१० वर्त्तमानकाल विषे भूमंडलमें जितने छोटे बडे व्यवहारिक बाडे-मत-पंथ वा धर्म प्रचलित हें, उन सर्वसे (मेरी समझमें) **जीवनमत** उत्तम हे–लोकोपयोगी हे, एसाभी इस ग्रंथ विषे दरसाया गया हे. ओर धूम दीपक न्यायभी जनाया हे.

११–“ द्वैतदीपक. ”–इसमें सधूमदीपक समान जो भेदवाद-उसकी चर्चा है.

१२–“ अद्वैतादर्श. ”–(अद्वैत परीक्षा)–इसमें एकता वाद (जीव ब्रह्मकी एकता) ओर अद्वैत (अर्थात् एक वस्तुको मानके व्यवस्था करनेवाले पक्ष) मतकी चर्चा हे. तथा द्वैतवादकीभी चर्चा हे. ओर अर्थापत्तिकी रीतिसे वही, उसमें, वोह सर्वमें, उससे,–इन चार मतोंका दर्शन होजाता हे.

१३–“ पारदर्शक. ”–इस ग्रंथमें विवेकख्याति-योगादि साधनसहित घरजानी× विद्याका विषय हे. ईश्वर-प्रकृ-

---

१२ यद्यपि प्रचलित सर्व फिलोसोफियों (तत्व विद्या) से वेदांत कर्त्ताकी फिलोसोफी उत्कृष्ट-प्रबल हे, यह वात तो प्रसिद्ध हे; परंतु जिनको अनुभव नहीं हे–केवल शब्द वा विश्वासके उपरही आधार रखते हैं,- वे वेदांत विद्याको नहीं जानते, एसाभी इस ग्रंथसे स्पष्ट होजाता हे. द्वैत, अद्वैत, द्वैताद्वैत, ओर क्षणिक विज्ञान वाद तथा थियोसोफिस्ट मतकीभी इस ग्रंथमें चर्चा हे, हरेक मत-पक्षको तोल सकें, एसा प्रकारभी संक्षेपमें दिखाया हे.

× स्वाधिष्ठान–आधार (घर)-अपर (पर रहित, पार वा पर) को जनाने–सिद्ध करनेवाली; वा स्वगृह (स्वत्व-अहमत्व–ममत्व वासना) नाशनी, वा जिस घरमें रहते हों उस घर (शरीर–उसका उपादान प्रकृति वा ब्रह्मांडके रहनेका जो स्थान) को जनाने सिद्ध करने वाली जो विद्या (ब्रह्म विद्या–तत्व विद्या). १३ उक्त विद्याकी चर्चा वा सो विद्या इस ग्रंथका विषय हे. सर्व स्वतंत्र मतोंकी इस ग्रंथमें एकताभी दिखाई गइ हे. यह ग्रंथ एक महात्माके संसर्ग पीछे [यह प्रसंग आगे वांचोगे] उनकी कृपा–सहायता–से बनाया गया.

ति-जीव-पुनर्जन्म-बंध-मोक्षादिकीभी चर्चा की गई है.

☞ पूर्वोक्त ग्रंथ, मत-पंथोंके कारणवादमें हैं. अर्थात् मूल तत्वोंके स्वरुप ओर उनके परिणाम-फल-के संबंधी हैं. कार्यवादकी चर्चापर नहीं हैं. १-१३

---

१ से १३ तक. यद्यपि कितनेक आग्रही, स्वार्थी, हठी, विश्वासी, लोकेष्णाग्रसत, लोभी, अज्ञ, अविद्वान, असारज्ञ, वा अभिमानी भाई ग्रंथोंको वांचके कदाचित् निंदा पर उतरके निंदक ठेरावेंगे; तथापि निंदा स्तुतिका मूल मुख्यतः मान्य,-सचाई,-नीयत,-परअज्ञातता,-संबंध,-फर्ज,-ओर लाभ हानीके उपर निर्भर हे; अतः में उनकोभी त्वच्छ दृष्टिसे नहीं देखना चाहता.

चोरको चोर कहना, सर्प अग्नि वगेरेके दोष जनाना, शिष्य-मित्र-पुत्रादिकों के सामने दुष्टोंके दोष दरसाके उनको उनसे बचाना, बुरे कार्य करते हुयेको पकडना, पदार्थोंके गुण दोष कथन करना, राजा वगेरेके दोष गुणवाले इतिहास लिखना-इत्यादि यथार्थ निंदा स्तुति करने वाले दोषपात्र-निंदक-वा वोह कथन निंदा नहीं हे. यथा राम, कृष्ण, व्यास, शंकर, बुद्ध, महावीर, बाइबल-कुरान-पुराणकर्त्ता, देवता वगेरेने नामभी लेलेके परदोष कथन किये हैं, उनमें जो यथार्थ हे सो निंदा नहीं मानीजाती.

किंतु साहुकारको चोर कहना, वा सर्प समान निष्प्रयोजन किसी दूसरे निरपराधीकीभी हानी करना वा चोरकोभी साहुकार कहना पाप-निंदा-त्याज्य कर्म हे.

जो उक्त व्यवहार न मानाजाय, तो सच्ची निंदा स्तुतिके विना जीवोन्नति, राज्य व्यवहार, प्रवृत्तिनिवृत्ति मात्रका उच्छेद होके हानी ओर जीवन व्यवहारकी अव्यवस्था होजाती हे; अतः दंभी कपटियों समान मुझको इस प्रसंगमें कोइ मिथ्या दोष आरोपकका भय नहीं हे.

इन तमाम ग्रंथोंका यह आशय नहीं है कि कोइ अपने धर्म वा धर्म शाखाको छोडके परधर्म धारण करे [यथा हिंदु, मुसलमान वा मुसलमान हिंदु होजाय]; तथापि इतना आशय तो जरुर है कि, धर्म–मतके असल मूल तत्व ओर उसके परिणाम तथा रीफार्मरों (आचार्य–पेगंबर–इमाम–धर्मगुरु) की पॉलीसी ओर आशयको समझें. यद्यपि एसी समझ होनेका नतीजा–परिणाम–सत् धर्मका प्रकाश ओर सर्व धर्मकी ऐक्यता है; अतः पूर्वोक्त मनशाय कल्पना मात्र है; तथापि " जो सर्व वा विरोधी दो पक्षोंमें मिलना चाहता है, वोह व्यवहार कुशल पद्वीके योग्य हो, परंतु अंतमें सर्व वा दोनों पक्षकारोंके रुचीका विषय नहीं होता, उलटा उनकी अरुचीका विषय होपडता है उससे अच्छा तो मौन–तटस्थ है; क्योंकि विरोधियोंमें मिलनेवाला दंभी वा

में किसी एकके विश्वास वा लोक रंजनतासे लिप्त नहीं हूं. क्योंकि जो केवल परविश्वास वा लोकप्रियता परही आधार वा उद्देश रखता है, उससे मुझको ओर मुझसे उसको संतोष नहीं होता. ओर जब कि में केवल (अकेले) स्व बुद्धि विश्वास (वा अकेले प्रत्यक्षादि प्रमाण) परही नहीं रहता, तो किसीको अपना अनुयायी बनाना वा समझना वा अपना विश्वास दिलानाकेसे पसंद करुंगा? नहीं. ओरभी न मुझको अपनी यथार्थताका (में जो जानता वा मानता हूं सो यथार्थही है, एसा) घमंड है; किंतु अभीतक इस अपार सागरके शोधकोंकी सेवामें रहने योग्यभी अपनेको नहीं समझता हूं. एतद्दृष्टि जेसे धोबी मेले वस्त्रोंकोही पत्थरपर पछाडता है, निर्मल–उज्वलको नहीं, वेसे में अपने दोषसे अज्ञात अपने दोषकी शिक्षासे इनकारीभी नहीं हूंगा; मेरा एसा निश्चय सदा [जन्मान जन्म] रहो.

छली, कपटी पद्वीका पात्र होजाता है; अतः विरोधी पक्षों
के सर्वांशमें मिलना नहीं बनता. ओर जो उनमेंसे कोई को
अंशमें मिले, कोइ पक्षमें नहीं मिले तो, उन पक्षकारोंकी रु
ची संपादन नहीं करसकता. जो एक अंश स्वीकारे ओ
शेष अंशको मनमें धिक्कारे तोभी, गुप्त मौन निंदक होने
अरुचीका विषय रहता है. जो सर्व पक्षोंको छोडके अन
कहे तो, पूर्व वालों समान वोह भी एक पक्षकार ठेरता है."
इत्यादि दृष्टिसे यही ठीक मालूम होता है कि दूषण भूष
समक्षमें लाये जावें ओर यथा परीक्षा-बुद्धि, सृष्टिनिय
ओर निर्णायक नियम देखाये जावें-विद्याकी तरफ दोरा
जाय, तो आपही असत्का त्याग ओर यथार्थका ग्रहण ह
गा.-द्वेषका मूल उखडेगा.-संप-ऐक्यभाव-का उदय हों
एसा आशय है. पूर्वोक्त तमाम वा उनमेंसे कोइ लिखित
थ जब तब जिस तिस (उक्त) महाशयोंको मिले, एसा
प्रबंध किया गया है.

यद्यपि यह तमाम छोटे छोटे निबंध हैं, तथापि स
युक्ति ओर थोडेमें अधिक विषय लिखे जानेसे भाषा
वालोंको विषेश उपयोगी होपडेंगे; एसा समझता हूं; क्यों
(१) एसा कोइ मत वा पंथ नहीं होगा कि जिनका का
वाद इन ग्रंथोंसे बाहिर हो, वा उनके यथार्थायथार्थ
वाचककी बुद्धिमें दर्शन न हो. [२] में अपने निश्चयसे
कहसकता वा मानता हूं कि, उन ग्रंथोंमें [धर्म तत्व बो
सत्य प्रवर्त्तक ओर सुबोध वा तिन संबंधी विषयके सिव
मुझ मत विनाकी नीयतसे लिखे गये वा मेरे जाननेमें
एसे-किसीकी नीति विरुद्ध, मन भेदक, अरुचीकारक
वा धर्म द्वेष पक्षादि सूचक वाक्य [ग्रंथोंमें] नहीं हैं [३] य

खाद्यखंडन, षडदर्शन समुच्चय, सर्व दर्शन संग्रह, सत्यामृतप्रवाह, सत्यार्थ प्रवाह, सत्यार्थप्रकाश, जैन तत्वादर्श, तोहफ्तुल हिंद, पंचदशी, तत्वदर्शन-इत्यादि और उनसे इतरभी परस्पर विरुद्ध पक्षवालोंके ग्रंथोंमे परस्परके विरुद्ध मतोंका खंडन है, " जैसे कि मुसलमानी मतकी मनोरचित मान्यता ओर अयथार्थतादि दोषोंके दर्शन वासते पंडित लेखराज आर्य मुसाफर-आर्यसमाजीके बनाये हुये " १तकजीब बुराहीन अहमदिया" " खब्त अहमदिया " " जिहाद, " " सबूतेत-नासुख (पुनर्जन्म सिद्धि) " यह चार ग्रंथ ओर ख्रिस्ति मतके दोष दर्शन वास्ते उन्हीका बनाया हुवा " क्रिश्चियन मतदर्पन " तथा प्रसिद्ध ग्रंथ " इसू चरित्र " " इसाई मत खंडन " इत्यादि बस हैं. " अतः उक्त ग्रंथोंकी आवश्यकता नहींभी है; तथापि उनकी शैली-प्रकार ओर भाषा कठिन होनेसे हरकोई सामान्य मनुष्योंके उपयोगमें नहीं आसकते; उनमें कितनेक ग्रंथ तो, स्वपक्ष वा मंतव्यको मुख्य मानके, तदाधीन युक्तिका प्रवाह चलानेवाले हैं.-प्रथम सृष्टि नियमोंको मानके, स्वपक्ष सिद्धिपर नहीं आना चाहते. ओर उक्त ग्रंथोंमें सृष्टि-नैसर्गिक नियमोंको मुख्य रखके, जहां तक बनसका वहांतक सरल भाषा पूर्वक एसी शैली रखी है कि, उस भाषाके जानने वाले शोकीन-जिज्ञासु-विचारवान-बुद्धिमानको, एक ग्रंथकेही विचार पूर्वक अवलोकनसे, अनेक मतोंमें जो उनके मूल तत्वों विषे दोष होंगे-उन दोषोंमें से मुख्य मुख्य थोडे बहुत त्याज्य दोष ओर स्वीकारनीय भूषण सहज जाननेमें आसकें. इत्यादि कारण विशेषको लेके, यथामति एसा समझा है कि, यदि उक्त ग्रंथ प्रसिद्धिमें

१ तकजीबादि ग्रंथ यद्यापि उरदूमें हैं, तथापि कुछ काठिन उरदू हैं.

आवगे तो, मतवादि स्वदोष निवारण करनेमें तत्पर होंगे. इस नवीन सुधारे वा वर्त्तमान नवीन रोशनी [प्रकाश] से अंजाये हुये वा अंजानेवाले सामान्य पुरुषों वास्ते अत्युपयोगी होपडेंगे; नवीन परदेशी सुधारे वा परमतमें नहीं घुसके, प्राचीन प्रचलित दलदल-कीचडसे निकलेंगे, ओर नवीन मशालकी रोशनीमें नहीं चुंधाके, " प्राचीन निर्धूम शुद्ध-प्रकाशको" प्राप्त होंगे वा उसकी प्राप्ति अर्थ प्रयत्न ओर-हृदय चक्षु साफ करेंगे-एकभाव होनेका अवसर लेंगे. [४] यद्यपि न्याय पुराण, बौद्ध ओर वेदांत-इन चारोंके अंतर, सर्व मतोंका समावेश है, अन्य मतोंका खंडन मंडन-दूषण भूषण, इनके अंतर्गत आजाता है; अतएव अन्य ग्रंथोंके रचनेकी आवश्यकता नहीं थी; तथापि-जेसे, " वर्त्तमान प्रचलित युरोपियनकी फिलोसफीका पर्यवसान-अंत ओर आर्य मूल फिलोसोफीका आरंभ," इतना उभयमें अंतर है;-वेसे. वर्त्तमानके आ. युवा वृद्धभी, बाल वृद्ध अंतर समान, इस विषयमें बालक समान हैं; अतएव उनके वास्ते भिन्न २ रचना, उचित समझा गया.

निदान पूर्वोक्त कारणोंको आगे रखके आपसे आशा रखी जाती है कि, जब तब जो आप पास कोई प्रकारसे उक्त एक वा अनेक लिखित ग्रंथ आजावें-आपको मिलें. तब प्रथम उसको अवलोकन करें, पुनः लोक हानीकारक नहीं किंतु, लाभकारी हैं-एसा मानें वा ध्यानमें आजावे, तथा अनुचित नहीं समझें ओर आपसे बन सके तो, श्रमको स्वीकारके, प्रसिद्धिमें लावेंगे-छपवादेंगे.-अन्यथा नहीं. यद्यपि जिन महाशयों के नामपत्र हे उन (उभय मंडल) कोही नहीं किंतु, सर्वको प्रत्युत्तर देने, मेरे दोष वा लेखकी

अयथार्थता दरसाने, संपूर्ण वा कोई भाग त्याग ग्रहण करने न करने, वा उभय पक्षकारसे तटस्थ हुये मध्यस्थ समान अनुकूल प्रतिकूल संमति देने न देनेका कुदरती (स्वभावतः) अधिकार हे; तोभी, उसको सर्व वा किसी अंशमें निर्भयता पूर्वक उपयोग लेनेकी (याद कराता हुवा) प्रार्थना करता हूं. क्यों? स्वपरोपकार, तत्वनिर्णयार्थ.

मेरा कर्तव्यथा कि वे ग्रंथ स्वयं प्रसिद्ध करूं—अन्यको श्रम न दूं; परंतु जिनमें लोकेषणा, वित्तेषणा, वा बाडबंदीकी वासना हो, किंवा निर्पक्ष, सत्यशोधक दृष्टि न रखते हों, (वे मेरे अंग—मित्र—संबंधीभी क्यों नहों) उनसे तो एसे कार्योंमें आशा रखनी व्यर्थ हे. तद्वत् साभिमानी धनाढ्य ओर नवीन रोशनीके अंजाये [आच्छादित] मनुष्योंसे. ओर मेरे जेसे साधन रहितकी जिज्ञासाका उच्छेद तो स्पष्ट हे‡. तदुपरांत अन्य कारण विशेषसे स्वकर्तव्य पूरा नहीं कर सका. ओर "अवस्थांतर प्राप्त होनेवालेको अपनेसे जितना बने उतना योग्य उपाय [उपकार] कर्त्तव्य हे," इस मान्य नियमको आगे रख—वेसे दृष्टिवाले दीर्घदर्शी ओर इस विषयके इच्छावाले (उभय कोटी) महाशयोंपर छोडना पडा. कदाचित ग्रंथोंपर रुची न आवे, तोभी इस पत्र लिखनेका मुख्य कारण यहभी हे कि, इस पत्रमें किसी देश हितैषी महात्माके हितोपदेशका सार हे, सो लोकके समक्ष आवे,—उसपर ध्यान देंगे.

इन ग्रंथोंके रचनेका उद्देश ओर उद्देशकी उत्पत्ति

‡ इन चार वर्ग ओर पांचवे अज्ञ वर्गको निकालदें तो, शेष बहुतही थोडे आदमी रहेंगे.

क्या है? यह बात ध्यानमें लेने जेसी है, अन्यथा ग्रंथकारका रहस्य नहीं जाना जाता, अतएव संक्षेपमें जितानेकी आज्ञा लेता हुं:—

ग्रंथ रचनेके पूर्व प्रचलित नाना धर्म, मजहब, पंथ या बाडेका अनुयायी हुवा; सबमें पोल पाई; अनेक मतोंमें यथा बुद्धि प्रवेश किया; बुद्धिविलास ओर शब्दविहारके सिवाय कुच्छ हाथ न लगा; नास्तिकताका बलभी मनपर पूरी असर नहीं करताथा; निदान यथावत् अप्राप्तिसे विलक्षण रंगतमें रहताथा. विशेष काल शोधमें जाताथा. अंतमें किसी हितकारीकी सूचना होनेपर उत्तराखंड निवासी एक योगी पास गया; ओर उनकी योग्यताने दिलपर स्वाभाविक असर किया. उनकी कृपा कटाक्ष पाके जिज्ञासा बताई. ओर नीति रीति पूर्वक प्रसंग प्राप्त होनेपर यथा मर्यादा उनसे प्रश्न कियाः—"ज्ञाता ज्ञेय-उभय परस्पर भिन्न होते हें" इस अडिग्ग अटल नियमसे यह सिद्ध होता हे कि, अपनेको आप कोईभी नहीं जान सकता. जब यूं हे तो, जडमतसे इतर अन्य÷ सर्व मत पक्ष, असंगत—कल्पित सिद्ध होजाते

÷ 'जिसने जाना अपनेको उसने पहिछाना अपने रब्ब (ईश्वर) को,' यह मत अरस्तातालीस,-मुसलमीन ओर ईसाईयोंकाभी हे. 'अहंब्रह्मरूपसे अपना ज्ञान होना' वेदांत मत. 'अनुमान सिद्ध मन नाम साधन साथ संयुक्त हुये आत्माका ज्ञान गुणोत्पन्न होके आत्मा अपने, आपको जानता हे' न्याय वैशेषिक मत. जीव अपने स्वरुपको जानके केवली होता हे, तिर्थंकर सर्वज्ञ हें, जैनपक्ष. 'विज्ञानको क्षणिक विज्ञानका ज्ञान' बौद्धमत. 'आत्मा अपनेको प्रकृत्ति, बुद्धिसे भिन्न अपनेको शुद्ध जानके स्थित होता हे' सांख्य योग. सर्वज्ञ आदि अनेक मत. इत्यादि.

हैं और जबकि अपनेसे भेद रहित अपना जो स्वरुप सोही नहीं जाना जाता तो, अपनेसे भेदवाले जो (ईश्वर, जीव, द्रव्य, गुण, कर्म,-इ.) पदार्थ वे यथावत् केसे जाने जासकते -विषय होसकते हैं ? नहीं. जो सूर्य समान स्वयं प्रकाश मानें तोभी, स्वप्रकाश हो, परंतु इतना माननेसेभी "ज्ञातासे ज्ञेय द्दष्टासे द्दश्य, प्रकाशक वा प्रकाशसे प्रकाश्य भिन्नही होता हे," इस प्रसंगका बाध नहीं होता अपना आप ज्ञाता, प्रकाशक, द्दष्टा ओर आपही प्रकाश्य, ज्ञेय, तथा द्दश्य हो, एसा नहीं होसकता, यही सिद्ध होगा. कदाचित् एसा मान लेवें कि "अपनेको आप मत जानो, परंतु शब्द घटादिवत् अन्यको जान सकता-विषय करसकता हे-इस रीतिसे एक जीव अन्य जीवोंके स्वरुपको विषय करके उसके सजातीय [वा साद्दश्य] अपनेको मान लेता हे-अपने अनुमानका विषय होता हे" सो कल्पनाभी नहीं बनती; क्योंकि जो ज्ञाता, किसी साधन द्वारा जानता हो-विषय करता हो, तबतो उस साधनको विषय न कर सकनेसे उस साधनकोभी अनुमानका विषय मानना पडेगा. ओर पूर्ववत् सजातीय [वा साद्दश्य] मानलेना होगा; परंतु एसा माननेसे पक्षकारोंको दोष प्राप्त होता हे,-ईश्वर जीव, मनादि साधनके विषय होंगे. साधनके अनुमान करनेकी साधक जो व्याप्ति [कारण कार्यभाव, तादात्म्यत्व, अविनाभाव संबंध] उसकी सिद्धि न होसकेगी. जिस साधनको अनुमानका विषय माना हे, उस अनुमानको विषय करने वास्ते अन्य साधन कल्पने पडेंगें; इस कल्पना प्रकारसे अनवस्था अन्योऽन्याश्रय, चक्रिकादि दोष आवेंगे, ओर अव्यवस्था, प्राप्त होगी. जो "अपनेसे इतरको साधन विना स्वयं जानता-विषय क-

रता हो'' एसा मानें तो, आप अपनाभी विषय होना चाहिये, क्यों न हो ? परंतु एसा होना पूर्वोक्त नियमसे बाधित हे; इस लिये स्वयमेवभी विषय कर्त्ता नहीं. तथाहि कोई प्रकारसे एसा मानभी लेवें कि साधन द्वारा वा विना साधन विषय करलेता हे तोभी, परीक्षा करनेसे असिद्ध हे. अर्थात् ज्ञातृत्व-अपरोक्षत्व की असिद्धि हे.× जो किसी [ईश्वर, तिर्थंकर, योगी, पेगंबर के विश्वाससे मानें तोभी, संशय रहित निश्चय नहीं होता;× क्योंकि पूर्वोक्त नियमसे सर्वज्ञत्वका अभाव हे×–जबकि वोह अपनेकोही नहीं जान सकता तो, सर्वज्ञताका आपही बाध हे. असर्वज्ञका ज्ञान, सर्वथा यथार्थ हो, एसा सिद्ध नहीं होता. इसलिये विश्वास परभी आधार नहीं रहता. जो यह दोष न होता तो सर्व प्रसिद्ध सर्वज्ञोंके मत पंथोंमें अंतर–मतभेद नहीं होता.

इत्यादि प्रकारसे जीवादिकेस्वरुपका ज्ञान नहीं होसकनेसे उसका संतोषक निर्णय नहीं होसकता. जब यूं हे तो, उसके मानेहुये ईश्वर जीवादिके स्वरुप और उसके निर्णयके आधारपर तद् कल्पित बंध मोक्ष तथा उसके मोक्ष वगेरे होनेके साधन मान्य नहीं होसकते-सिद्ध नहीं होते. अतएव महात्मन् ? यदि ईश्वर जीव हैं, उनका जानना होसकता हे, तो मेरी शंकाका समाधान होना चाहिये? इस शंका करनेका मुख्य हेतु यह हे कि, "मैं कोन" [मेरा स्वरुप क्या और केसा हे]? और क्यों (मेरा उपयोग–कर्तव्य, प्राप्तव्य, ज्ञातव्य क्या हे)? इन दोनों प्रश्नोंके समाधानमें तमाम पारमार्थिक [परलोक–मोक्ष] और बहुतसाव्यवहारिक विषयका निवेडा होजाता हे. किंतु " मैं कोन "? इस एक प्रश्नहीके समाधान अर्थात्

× ग्रंथमें वांचोगे.

हितोपदेश.

(१) नैसर्गिक अनादि अनंत नियमानुसार तमाम कार्य होनेका प्रवाह हे. उसको कोइभी नहीं बदल सकता. यथा उन्नति अनवनतिका प्रवाहचक्र.–निर्बलको बलवान दाबता वा मारता हे.–पुरुषार्थसे उन्नति होती हे. रजकण, हीरा ओर हीरा, कोयला बनता हे.–आर्यावर्त्त उच्च हुवा अब नीचेको जा रहा हे. इ. अतः धैर्य–संतोष पूर्वक शारीरिक–आत्मिक ओर सामाजिक उन्नति करना मनुष्यका कर्तव्य हे.

(२) प्रचलित धर्म संस्कार मात्र हैं;* मनुष्य मात्रका जो एक धर्म हे सो तिरोभाव असा होगया हे. उसके सामान्य लक्षण यह हैं:–१ मनुष्यमात्र ओर कुदरतके प्रतिकूल न हो किंतु उभयानुकूल हो. २ जिसके विना जीवन न हो. ३ जिसका परिणाम तन मनका दुःख न हो किंतु सुख हो. ४ जो शब्दप्रमाणके विनाभी स्वयं सिद्ध होसकता हो. ५ मनुष्य जिसे धारण करसके, एसे धर्मका[१] प्रचार करो. क्योंकि प्रचलित धर्मोंका 'नानात्व'ही उनकी अयथार्थता सिद्ध करता है.

(३) उक्त धर्म ओर धर्मभावनाका अमेरीका यूरोपादि देशोंमेंभी प्रचार हो तो, धर्मद्वेष नाश होके एक धर्म

---

* इसु बाइबल न माननेसे ख्रिस्तिपना, कुरान नबीको न माननेसे मुसल्मानपना, पुराण न माननेसे–चोटी न रखनेसे हिंदुपना नहीं रहता!

१ धृति, क्षमा, दम, अस्तेय, शौच, इंद्रियनिग्रह, धीवृद्धि, विद्यावृद्धि, सत्य, अक्रोध वगेरे सर्वमान्य.

होसकता है, जोकि सर्वको सुखका हेतु है. इस भारी काम पूरा करनेके लायक यदि कोइ है तो आर्यधर्मकी "फीलोसोफी" है, जोकि धर्मको सायन्स-व्यवहार-कुदरत-युक्ति ओर प्रकृति के अनुकूलभी प्रतिपादन करती है. विश्वास मात्रको आधार नहीं बताती.

इसलिये आर्यावर्त्तके सर्व धर्मवालोंको योग्य है कि धर्म-मंडल प्रति चार चार पुरुष छांटके एक धर्म-सभा बनावें; ओर एकसंमत कुछ नियत करके व्यापक उच्च सुगम नियम घडें; उन नियमोंमें एसा उद्देश ओर गौरव होना चाहिये के जिनके चलनेपर 'एकधर्म' हो, शरीर-वीर्य-बुद्धि ओर संपकी हानी न हो, द्वेषका अभाव हो, परमार्थ प्राप्तिके साधन हों ओर नीति-सदाचारको सहजमें प्रवर्त्तासकें.

परंतु यह काम जब होसकता है के-उस धर्मसभाके एसे प्रतिनिधि हों:-विद्वान, बुद्धिमान, देशहितैषी, नाना धर्म पंथोंके ज्ञाता, दुराग्रह रहित, निस्पृहि, व्यवहार-नीति-राज्य-गृह ओर व्यापारादि कार्योंमें कुशळ, सदाचारी, प्रतिष्ठित, निरभिमानी, परोपकारी, वृद्ध, स्वपर दुःख सुख समान जाननेवाले.

[प्र.] एसे पुरुष मिलना कठिन है (उ.) एसे पुरुष पेदा-उत्पन्न न करें वहां तक, दुःखसागरमें गोते खाना कबूल करना पडेगा, किंवा नाना धर्म ओर तज्जन्य द्वेषका प्रबल शत्रु-फीलोसोफीका आरंभ है, उसका अंत पूर्ण प्रवृत्ति वा निवृत्ति परिणाम लाता है; अतः उसका प्रचार होना चाहिये.

(४) कुदरती वेद-सृष्टिनियमानुकूल वर्त्तन-लाभिष्ट ओर प्रतिकूल वर्त्तन अनिष्ट है; इसलिये केवल शब्दप्रमाण मात्रके पशु मत बनो; क्योंकि परीक्षा ओर अनुभवही उ-

पयोगी होता है. परंतु उसको सर्वथा त्यागनाभी नहीं चाहिये; क्योंकि सुगमतासे परीक्षा ओर अनुभव तथा व्यवहार होसके, एसा साधन है.

(५) इन लक्षणवाला "ईश्वरीपुस्तक" नहीं होसकता:- जिसका लेख कुदरती नियमके विरुद्ध हो १. अपनेसे पूर्ववाले प्रचलित ज्ञानका बाधक हो २. जिसके प्रथम कोइ पुस्तक वा धर्म हो ३. जिसका लेख बदलाता वा बदलाने योग्य हो ४. जिसका अर्थ न होसकता हो ५. जिसमें किसीका इतिहास वा किसीकी साक्षी हो ६.

तद्वत् एसे वक्ताको ईश्वर वा ईश्वरअवतार वा ईश्वरका दूत वा ईश्वरका पुत्र नहीं मानना चाहिये. अन्यथा हानी है.

(६) असत्य त्याग ओर सत्य ग्रहण करनेमें आग्रह रखना चाहिये. लोक विषे असत्य वास्ते विशेष शिक्षा नियत हो तो, शायद उत्तम परिणाम निकले.

(७) आत्मोन्नति करना मनुष्यका पहिला फर्ज है ओर वोह अयोग्य लोकेषणा-कुशास्त्रवासनाके त्यागपूर्वक सृष्टिनियमानुकूल वर्तन-ब्रह्मचर्यपालन-नीति-सदाचार-ओर सद्विचार तथा योगरीति सेवनसे होसकती है.

(८) लक्ष्य [व्यवहार] ओर लक्ष्यालक्ष्य [परमार्थ]का भिन्न मार्ग है. इसको उसमें जो जोडता है वोह उस विषयमें अपूर्ण है; अतः परमार्थविद्याका तो 'अधिकारी'कोही एकांतमें उपदेश करना उचित है-अन्यथा नहीं.

(९) विशेषतः जीव, ज्ञात अज्ञात संस्कार ओर कुदरतसे बद्ध है तथा अपूर्ण है; अतः कुदरतकी दृष्टिसे किसीको अच्छा वा बुरा नहीं कहाजासकता; इसलिये किसीको तिरस्कार वा द्वेषका निशाना बनाना अनुचित है.

मनुष्यबुद्धि ओर उसकी अनुकूलता प्रतिकूलताकी अपेक्षासे उत्तम, निकृष्टकी मान्यता हे.–यथा गोभक्षक मुसलमान ख्रि-स्ति, हिंदु कोमको अप्रिय ओर मुसलमान ईसाइओंको प्रिय हे; कुरान नबीपर वा बाइबल इसुपर विश्वास न रखनेवाले हिंदु, मुसलमान वा ईसाईओंको अप्रिय हें. इ. अतः सर्व सुखार्थ कोइ व्यापक मर्यादा होना चाहिये.

(१०) अपने धर्म–पंथ-चलानेवालोंने-शरीररक्षा, संप, स्वत्व, स्वाभिमान, संमति, आग्रह, दृढता, पॉलीसी, दुःख ओर उद्देशका–सेवन किया, जो चलाना था 'वेसे स्वयं हें' एसा लोकको निश्चय करादिया, साम-दाम-भेद दंडको काममें लिया, "अलद्‌बद्‌बएरब्बतुन" पर ध्यान पहोंचाया; इस वास्ते छोटी कोम बडी, ओर बडी छोटी को-म होगइ. [आर्य ओर पारसी कोमका इतिहास देखो.]

(११) शरीर ओर प्रकृतिका बंधारण–प्रबंध–उपयो-ग उनके अंगोंके संप हुये विना नहीं होता, तो मनुष्यमंड-लको संप किये विना केसे सुख होसकता हे? नहीं. यथा हिंदु कोमको परस्परके द्वेषसे कितना भारी दुःख हे.

(१२) 'कोइ पक्ष धारण किये विना काम नहीं ब-नता,' एसा मानें तो, यह धर्म–पक्ष उत्तम मालूम होताहेः– "जीव, ईश्वर, प्रकृति–तीनों अनादि अनंत हें; जीव कर्म करनेमें स्वतंत्र ओर फल भोगनेमें परतंत्र हे; न्यायी, अक्रिय, निरीह ईश्वरकी सत्तासे जीवके कर्मानुसार फल भोगनेकी सामग्री [सृष्टि] बनती हे–बिगडती हे, ओर जीवको योन्यं-तरमें फल भोगना पडता हे, एसा अनादि अनंत प्रवाह हे." इस प्रकारका मंतव्य, शंका ओर धर्मद्वेषको छोडके कोइ योग्य प्रकारसे प्रचारपाके दृढ होजाय, तो नीति-

सदाचार-व्यवहारकी उन्नति हो; बलके उभय लोकके सुख मिलनेकी संभावना है. देशका श्रेयकारी पक्ष है. इस विषयके आंतरीय रहस्यको व्यवहारनिपुण, राज्यविद्याकुशल-ब्रह्मविद् जानसकते हैं. परंतु इस पक्षमें 'धर्मभावना' उत्पन्न करनेकी अपेक्षा है, तब सत्य वस्तुको प्राप्त होसकते हैं.

(१३) कसरत, ब्रह्मचर्य, विद्या, उद्यम-हुनर-व्यापारादि और परोपकारका खूब प्रचार होना चाहिये; इसमें तन-धन-संप-बुद्धिबलकी अपेक्षा है.

(१४) भोजनव्यवहार और वर्णाश्रमकी मर्यादा यदि गुणकर्मपर होजाय [वीर्यपातपर न रहे] तो शीघ्र उन्नति होसकेगी; क्योंकि पूर्व संस्कार-रजवीर्य मातापिताके मानसिक विचार-सृष्टिदृष्टिकी अदृष्ट असर-दूसरोंका संग [संबंध] और शिक्षक यह पदार्थ, मनुष्यकी उन्नति अवनतिके हेतु हैं.

(१५) यथार्थ भावनापूर्वक जो दुःखनिवारक साधनोंका सभा करके विचार किया जाय तो यथेच्छा परिणाम प्राप्त कर सकते हैं. एकसे यह काम नहीं होता. १. पदार्थ-केमिस्ट्री-डाक्टरी-कला-यंत्र-व्यापार-गृह-राज्य-संपविद्या. और सदाचार-नीति-धर्मभावना-शौर्य-स्वत्व-स्वधर्माभिमान और स्वदेशाभिमान यथाशक्ति स्त्रि और संतानोंको अवश्य सिखाना चाहिये. संक्षेपमें जो कुछ करना चाहते हो सो कन्याओं [स्त्रियों] को सिखा देना चाहिये. २ कानूनकी वाकफिकी उपयोगी नहीं मानी जाती है, इसलिये अत्युपयोगी राज्यनीति [कानून] भी उनको सिखाना जरूरी है. ३ परभाषामें जितनी विद्या-हुनर-कला-है, वे स्वदेशभाषामें करके विद्यार्थिओंको सिखाये जावें तो बहुत लाभ

दी सीख सकते हैं. ४ परभाषाभी सीखना और सिखाना चाहिये; परंतु " जिसकी भाषा उसका धर्म" यह नियम याद रखके योग्य प्रकारसे उपयोग लेना चाहिये. तद्वत् जब विद्या-कला-सीखनेकेलिये परखंडोंमें जावें तब भी यह नियम ध्यानसे बाहिर न जाना चाहिये. ५ जिनके विना जीवन न होसके वेसे पदार्थों [अनाज वगेरे] पर कर न होना और विशेषतः अनुपयोगी-मोज शोकवाले-हानीकारक [शराब-कुव्यय-वगेरे] पर कर विशेष होना, प्रजाको लाभदायक हैं. ६ बुद्धिको जब तब क्षीण करनेवाले और प्रफुल्लित न होने देनेवाले कारणोंके अभाव करनेमें योग्य उपाय होने चाहिये. ७ राजा प्रजाके प्रतिकूल कभीभी नहीं वर्तना चाहिये, किंतु उभयको जो लाभप्रद उपाय हों वे सोचके प्रसिद्ध करने चाहिये. ८ एक दूसरेके लाभके विरुद्ध वर्तन अघटित है. ९ अपना और परका दुःखसुख समान समझके व्यवहार करना उत्तम है. १० वर्त्तमानमें विशेष संतान पेदा करना दुःखका हेतु है. ११ जब तब सेनामें अमुक वर्षतक नोकरी न करे, किंवा स्त्री संतानके पालन योग्य हुनर-धंधा वा विद्या संपादन न करे, वहांतक पुरुष का विवाह न हो; किंतु स्वयं कमाके विवाह करना उत्तम प्रकार है. बनसके तो यह बात कानुनमें पास कराना चाहिये. १२ वीर्यका सृष्टिनियमविरुद्ध वा कोइ प्रकारसेभी व्यर्थ व्यय न हो, एसे उपायोंपर ध्यान देना उचित है. १३ यदि आर्य राजा ओर राज्य (प्रजा) की मिलकीयतका प्रसिद्ध प्रकारसे विभाग रहे तो, प्रजाका धन अन्यथा (व्यर्थ-मोज शोकमें) बरबाद न होसके, राज्य करजदार न हो, और प्रजाको आपत्कालमेंभी दुःख न हो.

(१६) एक कोळी तकके छोकरी छोकरोंकोभी दिनको वा रातको विद्या पढाना चाहिये. बालकको उनके कुदरती तंतु ओर शौककी परीक्षा करके तदनुसार हुनर-विद्या वगेरे सिखाना उचित है, अन्यथा शिक्षण निरूपयोगी जेसा है. ओरभी एसी प्राइवेट स्कूलें खोली जांय वा नियत समयपर एसा शिक्षण हो के, जिससे ८ वर्षसे लेके २५ वर्षकी उमर तकके दरमियान, मगज स्वतंत्र बने-स्वयं विचार निकालने ओर वर्तनेकेलिये शक्तिमान हो. तद्वत् धर्म, एकता, शिक्षक पाठशाला ओर शक्ति-उत्साह-उद्यमवर्धक-आरोग्यता रक्षक कसरत शालाओंका विस्तार करना उचित है.

उपदेशक स्कूल खोलके उपदेशक तैयार किये जाके उपदेशार्थ देश देशांतरमें भेजे जांय तो उत्तम फल होसकता है.

(शंका) द्रव्यके विना कोइभी काम नहीं होता, अतः भूखे देशकेलिये तुम्हारा उपदेश व्यर्थ है. [स.] द्रव्य एकत्र करनेके, देशप्रति भिन्न भिन्न उपाय हैं.-यथा आर्यावर्त्तमें आर्य कोममें कुव्यय-निष्फल व्यय बहुत है*, सभा करके उसको बंद करे ओर कुरुढियोंको* निकाल दें तो, किसीको दुःख न होवे एसी प्रकारसे, बहुत कुछ द्रव्य एकत्र होसकता है. परंतु जहां द्रव्य विना जो कार्य होसकते हैं [बाललग्न बंद करना, जरुरत कम कर देना इ.] वेभी नहीं करते, उस देशकी दुर्गति क्यों न हो?

(१७) नीति-सदाचारके हेतु 'धर्म'को प्रजा, ओर 'विद्या'को राजा चलाना चाहता है, इन दोनों [धर्मादि]को दंडकी अपेक्षा है.

---

* प्रसिद्ध ग्रंथ 'व्यवहारदर्शन' ओर 'भिक्षुकनिबंध' देखो.

(१८) अपनी कोमकीही उन्नति वास्ते कोशिश करना–सिर तक देना, यह किसी एकदेशी वा द्वेषीका मत हे, परंतु एसा होनेसेभी सतपुरुषोंको संतोष नहीं होता; क्योंकि वे सत्यके घातको सहन नहीं करसकते; इस लिये जो सद्धर्म हे ओर जो रीति नीति सर्व मनुष्योंको देशकालप्रति सुखप्रद हें–वे, वा जिस कोममें वेसे विशेष हों उस कोमकी उन्नति करनेमें सबको कोशिश करना चाहिये. यथा प्राचीन आर्य कोमके धर्म-नीति-रीति*. यदि उसमें वर्त्तमानदृष्टिसे कोइ हानीकारक रीति हो तो उसको त्याग करनेमें ओर अन्य कोमोंमें कोइ उत्तम प्रकार होतो उसके ग्रहण करनेमें आग्रह रखना उचित हे; इस-

* परिशिष्ट पृष्ट ३४१ में शंका समाधान ओर इंग्रेजी नोट देखो. तथा—

* Soil of Ancient India, cradle of humanity, hail ! hail, venerable and efficient nurse whom centuries of brutal invasions have not yet buried under the dust of oblivion. Hail ! father-land of faith, of love, of poetry and of science ! May we hail a revival of thy Past in our Western future !

M. Louis Jagolliot.

(अर्थ) वृद्ध भरतखंडभूमि ! पुरुषत्वका पालणा ! तुझे वंदन [नमस्कार] हे. सेंकडों वर्षके निर्दय उपद्रवभी जिसको विस्मरणकी धूलमें नहीं गाड सके हें, वेसी पूज्य ओर समर्थ माता ! प्रणाम ! श्रद्धा वा सत्यकी, प्रेमकी, कविताकी, ओर शास्त्रकी पितृभूमि, तुझको नमता हूं, तेरे भूत कालकी खूबी, हमारे पाश्चिम (युरोप) के भविष्यमें सजीवन हो, एसा मांगते हें ! !

लिये आर्य वगेरे कोमोंको तन--धन-मनसे इस उत्तम पक्ष बजाने ओर बढानेमें उद्यत होना चाहिये.

(१९) जब सुखाभाव मात्रसे दुःख उठाना पडता है तब ठगी--यंत्र मंत्र-जफर-कीमिया-रमल-केरल-ज्योतिष-फलादेश-प्रारब्धमालिका आधार-छल-असत्य-कपट-मिथ्या ग्रंथोंकी प्रवृत्ति-इंद्रजाल-भूत-पीर-पेगंबर-अवतार-जडसेवन-भीख मांगना-अनुचित राग रंग-खेल तमाशे-नशे-दुर्व्यसन-कुव्यय-कुरुढी-कुश्रद्धा-स्वार्थदृष्टि-अविद्या-असंभूति सेवन--इत्यादि असदाचारादि करना पडता है.[जेसा के वर्त्तमानमें है.] इस प्रकार जब अत्यंत भूखे मरने लगते हें तब उन्नतिके चक्रमें आते हैं. क्योंकि फूल खिलता है नाश होने वास्ते, ओर दुःख हुये विना संप उन्नति के खयाल पेदा होना कठिन है, जरूरत आप सिखा लेती है.

(२०) जो किसीको जीवतेही गम्यागम्यरूप "यथार्थ सत्य" पर पहोंचने, वा राग, द्वेष, हर्ष शोक, रहित हुये 'निष्काम उत्तम प्रवृत्ति ओर परोपकार' [अपने अंग-मनुष्यमात्र का श्रेय] करनेकी इच्छा हो तो, वीर्य-बुद्धि-पदार्थविद्या-सदाचार-निष्कामता [कर्मफल त्याग] संपादन करके, विवेक का खड्ग ओर वैराग्य [अन्य इषणाका त्याग] का बकतर धारण कर, मन निरोधका अभ्यासी हुवा, निवृत्तिपूर्वक सद्गुरु [विद्वान-बुद्धिमान-सदाचारी-जितेंद्रिय-निस्पृहि-समदर्शी-वैराग्यवान-विवेकी-दयालु-परोपकारी-शिष्यकी इच्छा पूर्ण करनेयोग्य-ओर यथार्थ अनुभवी] को, कितनेक काल श्रद्धायुक्त सेवन करना चाहिये. तब पूर्णकाम हुवा सर्वको अपना अंग समझेगा, परकी उन्नतिही अपनी उन्नति है, एसा ध्यानमें आजायगा, ओर उत्तम प्रवृत्तिके खड्गद्वारा

परदुःखभंजनमें प्रवृत्त होगा.

(२१) किसी व्यक्तिका नाम लेके दोष कथन-खंडन-निंदा करना उच्च मार्ग नहीं है-किसीके मन-लागणीको दुःखाना-मूर्खाइ, पाप है. जिस सामग्रीसे दोष जाय उसका प्रतिपादन, और जिससे दोषोंकी वृद्धि हो उसका खंडन-निषेध करना नादुरस्त नहीं. जिसके त्याग ग्रहण करनेमें श्रोता स्वतंत्र हो उस विषयके [यथा बाललग्न-ब्रह्मचर्य-सत्य] दूषण भूषण स्पष्ट कहना ठीक है, सर्वमान्यका मंडन और सर्वअमान्यका खंडन करनेमें हानी नहीं है. जहां कहीं होमियोपथिकी तरह रोग बढाके शांति करनेकी आवश्यकता हो[1] वहां वेसा करें; परंतु सभ्यता-नीति-हित-प्रेम-और सत्य का त्याग नहीं करना चाहिये. इत्यादि प्रकारसे यथा देश काल योग्य प्रकारसे उपदेश होना चाहिये.

(२२) वस्तीकी वृद्धि होनेसे आर्यकोमकोभी देश बदलाना और परसंसर्ग होनेसे धर्म बदलना पडेगा, इसलिये आर्यधर्मफीलोसोफी सिखाना चाहिये, वा तो स्वत्व और स्वदेशाभिमान पेदा कराना योग्य है. इस प्रकार अन्य देशवासियोंको ध्यान देना चाहिये. इस प्रसंगपर यह वात याद रखने जेसी है के, धर्म-पंथ [मजहब-रीलीज्यन] और मतके लक्षणमें अंतर है. परंतु व्यवहार-नीति-धर्म समीप हैं.

(२३) सुवर्ण-चांदि वा प्रबंधमात्रकी अपेक्षा न रहे और प्रजा यथेच्छा जिंदगी भोगे, एसा मार्ग कोनसा है ? सर्वमें सद्धर्मकी भावना पेदा होजाना. वा परस्परके दुःख सुख समानताकी समझण हुये तदनुसार वर्तन.-किसीके तन-

१ यथा अद्वैतादर्श ग्रंथका पूर्वपक्षी भाग होमियोपेथिका आरंभ जेसा प्रयोग है. उत्तरपक्ष फलवत्.

मन-धनका न दुःखानेकी रूढी डालना-असत्य रहित सत्य पूर्वक संप होना-इ.

जो एसा होजावे तो एक पत्र [पालनपत्र-व्यवहारपत्र-कयार्ड] द्वारा सर्व व्यवहार उत्तम प्रकारसे चल सकता हे. परंतु वर्तमानविषे यह बात किसी देशकोभी नसीब नहीं हे, अतः एसे असंभव वा दुष्प्राप्त मनके लड्डुको शून्यसे आवृत्त करते हें.

(२४) जिसका उपादान बिगडा [रजवीर्य निर्बल-माता पिता विद्याहीन] हो, जो द्रव्यहीन-विषयी-रोगी-आलसी-कायर ओर भूखा हो वोह धर्मभावना, धर्माभिमान, स्वत्व वा मानका पात्र होसकता हे? धर्मात्मा तत्ववेत्ता बन सकता हे? निष्काम वा तत्वविद्याका अधिकारी होसकता हे? कभी नहीं. यथा वर्त्तमानमें आर्यावर्त्त देश हे! एसेको तो अभी शरीर-वीर्य-बुद्धि-विद्या-हुनर-धन ओर संप बलकी प्राप्तिके लिये कोशिश करना चाहिये.-ब्रह्मचर्य ओर गृहाश्रम सुधारनाही योग्य हे. अन्यथा अपने पूर्वजोंके उत्तम मार्ग ओर उन्नतिको नहीं पासकता.

(२५) वर्त्तमानकाल बीज रोपने-संस्कार डालनेका हे, सो पचास वर्षमें झाड होके फल फूल लगेंगे, उसको संतान खाके तृप्त होगी-सुख पावेगी; एसी लंबी-गंभीर दृष्टि रखी जाय तो कुछ कर सकते हो ओर करोगे तो कुछ हो सकेगा. व्यर्थ बकवाद करके कालक्षेप करना मिथ्यालाप हे. आप लायक हुयेविना परके सुख ओर कर्मको दोषरूप वा द्वेषदृष्टिसे देखना एक प्रकारकी भूल वा हलकाइ हे.

(२६) जिस बातकी इच्छा हो उसकी प्राप्तिके लायक प्रथम अपनेको बनाना चाहिये, तब मिलसकेगी. अन्यथा तृष्णा करना व्यर्थ हे

(२७) अत्यंत अज्ञ और तज्ञ उपदेशके योग्य नहीं; विचले वर्गके लिये यथादेशकाल स्थिति-अधिकार उपदेश कर्तव्य है. [यथा कहीं एक विषयका मंडन, कहीं उससे उपेक्षा वा खंडन करना पडता है] अन्यथा उत्तम फल नहीं आता. बुद्धिमानको स्वयं विचारणीय है.

(२८) उत्तम पायेवाला उत्तम मकान पुराना होनेसे छिद्रवाला होगया हो तो, उसकी मरमत करना चाहिये, पूर्ण सामग्री नहीं मिले वहां तक उसको नही ढाना चाहिये; नहीं तो हानी-दुःख होना संभव है.-इसके उदाहरणमें प्राचीन और नवीन आर्यधर्म-व्यवहार-नीति वगेरेको समक्षमें रखते हैं.

(२९) अनुचित-असंभव भावना-श्रद्धा-विश्वास उठानेसे अत्युपयोगी उचितकाभी अभाव होजाता है, और उचितकी अति अनुचितपर लाती है, अतः 'योग्य-संभव भावनादि' पेदा करनेके लिये विचार पूर्वक सयुक्त उपाय लेना चाहिये; क्यों कि अज्ञोंको अन्य आश्रय नहीं मिलता.

(३०) अनुद्यमी-अनुपदेशक जंगलमें रहने चाहिये; तो भूख उनको उद्यमी करे. भीख मंगोंको उपदेशक करना इस कालमें पाप है. भीख मांगे विना निष्काम उपदेश हो तो उत्तम फल होसकता है. अति फीलोसोफर उपदेशक बने योग्य नहीं रहता.

(३१) देशहित-देशोन्नति क्या? इस विषे अनेक पक्ष हैं. हमारी दृष्टिमें सर्वको उनकी योग्यता अनुसार "हृदयकी समानता" देशश्रेयका लक्षण है. इसका विस्तार*

* महात्माने बहुत प्रकारसे समझायाथा, परंतु कितनेक कारणसे नहीं लिखसका.

स्व स्वरुपके यथार्थ ज्ञान होनेपर " में क्यों " इसके समाधानका निवेडा तथा यह [ईश्वर-जगत] क्यों ओर केसा ? इस प्रश्नका समाधानभी होजाता हे.

मेरी शंकाको सुनके वे कहने लगे कि, ओरभी कुछ? मेंने कहा हां. निदान उन्होंने मेरा पंथ, श्रम ओर प्रश्नाशय तथा शुद्ध जिज्ञासा पहिछानके पूर्वकीहुई[1] अनुबंध सहित कितनेक ग्रंथों [अद्वैतादर्श, न्यायनाटक, जडोजड, बुद्धबुद्धि] की मूल नोट[1] (यादी) सुनके विलक्षण हास्य किया;[2] शनैः शनैः उनके गांभीर्य ओर गौरवयुक्त स्वतंत्र,

---

१ - शोधक-कालमें बनाता रहताथा. कितनेक ज्ञानवान कहाते हुये गृहस्थ, साधु, संन्यासी, फकीर, ब्राह्मण, विद्वानोंके सामने, शिष्य समान-जिज्ञासु भावसे-सुनाता रहा; परंतु मुझे यथार्थ संतोष हो, एसा उत्तर नहीं मिलताथा. कितनेक माहात्माओंने उत्तरमें उपरामता बताई. कितनोंकने " तुमअभी योग्य नहीं हो, " एसा उत्तर दिया. कितनोंक महापुरुषोंने कुछ उचित-योग्य संमतिदी. कितनेक विश्वासीभक्त-आंख बंध करके कोटडी (गुफा) में बेठनेवाले-कितनेक स्वार्थ, प्रतिष्ठाआकार हुये कथा वांचनेवाले-कितनेक शुष्क बाचाल मिले,-उनके मुखमेंसे नास्तिक, भ्रांत पदके सिवाय उत्तर नहीं मिलताथा; सो नोट.

२-कहने लगे कि अधुरा घडाही छिलकता हे, भरा हुवा नहीं. जो वहां-किनारे-पर नहीं पहोंचा, वही खंडन मंडन-बकबक करता हे. जो वहां-अगम्य धामपर पहोंच गया, उससे खंडन मंडन तो कहां किंतु वहांका गुप्त भेद-रहस्यभी नहीं कहा जाता-गम्य हे वा अगम्य हे, एसाभी नहीं कह सकता. जो बकबक करता हे वा विषयको न जानके किसीकी परीक्षामें उतरता हे, उसको समझो कि यह कुछभी नहीं जानता-असल रहस्यपर नहीं पहोंचा.

यथार्थ, नाना प्रकारके थोडेही वाक्यों [उपदेश] ने
उस यथार्थ अनुभवी मूर्त्तिकी ओरा (प्रभा—भव्यता—
शक्ति—प्राण—तेज—संकल्प) ने मेरे उपर भारी असर किय
उनके महत्व³ वा कृपासे⁴ जो कुच्छ मेरी आशाथी, सो
जिज्ञासा और अधिकारानुसार पूर्ण हुई. उत्तर न मिल
न होसकने जैसी पूर्वोक्त शंकाका अकथनीय समाध
उत्तर मिलेविना, होगया.—मेरे संशय—असंभावना

(जैसा कि तू है) और जो अधिकारीप्रति यथावत्—यथा अधि
योग्य कहता है और अपनेको समझता है कि में कुछ नहीं ज
ता, उसने कुछ समझा है. यथा वैद्य अपनेको पूरा वैद्य नहीं मानता

३—सहवास, परीक्षा पीछे ज्ञात हुवा कि, यह महा
संस्कृत इंग्रेजी, फारसी, अरबी, और बंगाली भाषामें कुशल,—
दार्थ, अर्थ, रसायनादि और शास्त्र तथा अध्यात्म विद्यामें पारंगत
ज्ञानमूर्त्ति, बुद्धिमान चतुर, प्रवीण, कर्त्ता, गंभीर, धीर, दया
दिव्य, निर्मल, संयमी, अरिहंत (राग द्वेषादिरहित, निर्मानिमो
जितेंद्रिय), प्रत्येक शंकाका यथायोग्य—सयुक्त समाधान करने
ले, वैराग्यवान, निर्जन देशवासी, शांत, ब्रह्मविदोत्तम, पूज्य, महा
यथे. (यह मेरी दृष्टिकी परीक्षा है, मुझे एसा भासतेथे.)

४—फकीरोंमें प्रसिद्ध है कि "उपदेशविना, गुरु अप
दृष्टिमात्रसे वा शिष्योंको छातीसे लगाके, मूर्छित करके [अनुवृ
वा विश्वदृष्टि करके] कुछ दिखाते वा बताते और अपनी
च्छानुकुल उसका निश्चय वा दृढता करादेते हैं,—सो विश्वासम
है, एसा करनेसे शिष्य—विधेय-की हानीभी होजाती है.—य
कोई देवाना बनजाता है, कोई शून्य होजाता है (जिनको अ
लोक ओलिया कहते हैं) इत्यादि कदाचित् वोह इष्ट—यथार्थ वि
षय—हो और तवज्जह—अनुवृत्ति-विनिमय—का असर निकृष्ट न

रीत भावनाका अभाव हुवा.५ मनुष्य ज्ञातव्य कर्तव्यका अवधिफल[५] मिला होय नहीं, एसा समझ बेटा[६]. [ओर आगे चलनेका पंथ सूझा]में आश्चर्यमग्न-बेवकूफ-हुवा. उन नोटोंको फेंकने लगा कि वे महात्मा हंसके मधुर वाक्यों, से समझाने लगे कि यह[७] (....) वोह[८] (....) भिन्न हे.[९] अतः

निवडे तो, शिष्यकी हानी नहीं होती; तथापि इष्ट विषय विश्वासरुपसे ग्रहण रहता हे–साक्षात् दृढता पूर्वक नहीं. " एसा प्रकार इस कृपाका अर्थ नहीं समझ्ज लेना चाहिये; किंतु उससे भिन्न प्रकार-सर्वमान्य रीति हे. ५–यह कथन वा मतव्य मुझ मोहितकी दृष्टिसे मान्ना चाहिये. ६–विश्वासी, अज्ञ, मूर्खका उदाहरण हे. ७–प्रचलित धर्म, कर्म, व्यवहार, संप्रदाय,–विषयरुप जगत् जो कि मन वाणीके गोचर हे–प्रकृतिमात्र. ८–प्रकृतिभिन्न अकथ,–अवाच्य,–त्रिगुटि (तम, प्रकाश, भाव, अभाव, संबंध, भेद, संशय, यथार्थायथार्थ बुद्धि, मन, " ज्ञातासे ज्ञेय भिन्न हे ओर सर्व ज्ञान सापेक्षक परिच्छिन्न हें " एसा जो जानता हे, प्रमाता, प्रमाण, प्रमेय, प्रत्यक्ष, अनुमान, दुःख, सुख, ज्ञातृत्व, कर्तृत्व, भोक्तृत्व, ज्ञान, शून्य, अपरोक्षत्वादि) जिसके प्रकाश्य–जिससे प्रकाशित हें,–नेतिसेभी पर,–निरपेक्ष ज्ञान-चित्-स्वरूप,–अगम्य,–एसा स्वप्रकाशस्वरूप. पर.

९.–यद्यपि प्रस्तुत विषय सायन्स, फिलोसोफी वगेरे किसी विद्याका क्या, किंतु बुद्धि मन-वाणिकाभी विषय नहीं हे; तथापि ब्रह्मविद्या–फिलोसोफी-के प्रतिकूलभी नहीं हे. प्रत्युत् ब्रह्मविद्याही उसके समीप पहोंचाने योग्य हे, एसा व्यवहारमात्र कह सकते हें. थियोसोफीस्ट किंवा अन्य कोई पक्षकार–जो एसा कहते हें कि "उस विषय (पारमार्थिक विषय–सूक्ष्म सृष्टिके विषय–अदृष्ट विषय–लॉगॉस–ब्रह्म वगेरे) को फिलोसोफर-योगयुक्त परीक्षक डाहे मित्र–नहीं जानसकते,–फिलोसोफी वा तत्वविद्याकी यहां गम नहीं

श्रमको क्यों गुमाता-निष्फल करता हे ! तुम्हारी शंका
कथन, यथार्थ-वास्तविक तत्वज्ञोंके विपरीत वा मुख्य रहस
के बाधक[१०] किंवा खंडन मंडनकारों समान शब्दमात्र अर्थ
कारक तो नहीं हें; इत्यादि उपदेश सुनके इस विषयको वि
चारपर छोडके प्रत्युपकारमें साष्टांग प्रणाम सिवाय कुच्छ
पाके लज्जायुक्त दंडवत् प्रणाम करके आज्ञा मांगी. उस स
मय परोपकारार्थ-[संस्कार विस्तारार्थ] मुझे कुच्छ उपदे
किया, उस गंभीर उपदेशका सारमात्र यह हे:—

इत्यादि; " यह बात सर्वांशमें मान्य नहीं होसकती. अन्यथा
सकी गम्यता वा अगम्यता तथा उसके स्वरुपकीही सिद्धि नहीं हो
सकती. ओर वस्तुतः तो यूं हे कि नित्यप्राप्त-उपयोगमें आने वा
शब्द-तम-रंग-किरण-आकर्षण-रस-गंध-अभाव-ज्ञान-इत्यादि पदा
र्थोंकाभी यथावत् स्वरुप नहीं कह सकते, तब उसके संबंधमें तो क
कहा जासकता हे; एसा लक्ष्यालक्ष्य हे.

१०-वेदोपनिषद्, गीतासार, योगादि वा योग्य ग्रंथ ओ
र अनुभवी योगी विद्वान महात्माओंके सिद्धांत-विशेषतः हम
दृष्टिसे सर्व मनुष्योंको मान्ने योग्य सुबोधक उपनिषद्गत उस
अंतिम रहस्यके (कि " जो वाद विवाद-कथन श्रवण-लिखने
ढने-में नहीं आता ओर न लौकिक धर्म व्यवहारका विरोधी
ओर न उनका विषय हे; किंतु अधिकारी पुरुषोंको महात्माओं
रीतिविशेषसे योग्य गुरुद्वारा हृदयमें मिलता हे.-किंवा विवेक-
राग्य-योगयुक्त अधिकारी पुरुषही स्वयं पासकता हे, एसी परंपरा
प्राप्त होने योग्य हे.-जाति, मत, वर्णाश्रमादि भेद पर उसका
धिकार निर्णित-नियत-नहीं हे "-तिस उक्त सिद्धांत-रहस्यके)
विरुद्ध नहीं हे.

न लिखके इतनाही जनाना बस हे के, यथाशक्ति-यथाक्रम इस दरजेपर पहोंचना योग्य हे. यथा आर्यप्रजाको अभी बडी बडी वातें-मनोरथ छोडके केवल इतनी वातोंपरही ध्यान देना बस हे:—स्त्रिशिक्षा, ब्रह्मचर्य, कसरत, सत्, उत्तम शिक्षण, विद्या, हुनर, कुरुढीअभाव, भिक्षावृत्ति निषेध, हिम्मत, उद्यम.-एसा होनेसे संप वगेरे उपयोगी-सुखकारक विषय सीखजावेंगे. अयोग्य उदारता-अनुचित शर्म ओर कुदयाका त्याग करना चाहिये.

(३२) संसार सुधारा-देशहित-श्रेयकेलिये उपदेश बहुत करने लग गये हें; परंतु केसे करना, एसा अभ्यास वा प्रचार कोइ नहीं करता. श्रोताजन जानते ओर समझते हों तोभी कुछ नहीं करते. जो किसीकी सहायता विना स्वयं करसकें सो वातभी नहीं करते हें.-यथा निषिद्ध भिक्षादान न देना, बाललग्न न करना, २० वर्षके पहिले पुत्रको न विवाहने देना, जडपूजाका नकामा खर्च न करना, अनुचित मोज शोकमें काल द्रव्य न गुमाना, इत्यादि. एसे कायर देशभक्त नहीं होसकते.

इसलिये अशक्त-आर्यावर्त्तवासियोंको चाहिये कि वर्त्तमानमें जितनी ओर जितने प्रकारकी सभा हें, उनमेंसे योग्य प्रतिनिधि चूंटके एक सभा बनावें इस सभामें हरेक जाति-धर्म-व्यापार वगेरे सभावाले प्रतिनिधि होसकेंगे. इस नूतन सभाका अन्य कुछ काम न होना चाहिये; केवल सर्वमान्य विचार करके आर्यावर्त्तमें प्रकट करें. ओर उनके चलानेका प्रकारभी प्रदर्शित करें. यथा स्त्रिओंका शिक्षण ओर उसका प्रकार, स्त्रियोंका साधु ओर मंदिरोंमें न जाना, कितनेक मिलके स्कूलके विद्यार्थियोंको एक घंटे

तक व्यवहारनीतिका शिक्षण किया करें, उनको स्व
विचार करनेकी शैली पर लावें, फिलोसोफीके स्कूल सिख
प्राइवेट स्कूल ओर कसरतशाला खोलना. इत्यादि प्रका
विचार ओर प्रचारसे भविष्यमें अच्छा लाभ होगा.

(३३) एसा मत समझों के—कोइ देवता, दूत, यो
पेगंबर, ईश्वरका लडका वा अवतार आके तुम्हारे दुःख
ट देगा, वा मंत्र जंत्रसे कुछ होजायगा, अगर ईश्वर अप
क्षमा करके सुख देगा. किंतु जो प्रजा, पुरुषार्थ करके क्र
शः उत्तम संस्कारी होजाती है तो, कोइ एक चमत्कारी-
वीर-विद्वान्-बुद्धिमान् सहायभूत होपडता है, एसा ज्ञातव्य

(३४) हरेक विषयको श्वेत ओर श्याम दो बाजु होती
यथा नाना कोमका एक देशमें आके आबाद होना अनिष्ट
इष्टभी परिणाम निकालताहे, वा सत्ता हुये द्रव्य मिलनेपर
शोंक ओर आलस्य; पराधीनता-उभय परिणाम निकल
अतः देश, काल, वस्तु, स्थिति विचारके त्याग ग्रहण कर्त्तव्य

(३५) राज्यकी रक्षाके विना उन्नति होना कष्टसाध
कालसाध्य हे; अतः प्रजाको चाहिये के राजाके कानून [
उन्नीति-आज्ञा] के प्रतिकूल नहो किंतु अनुकूल रहना
हिये. यथा आर्यावर्त्तवासी अपने सत्ताधारी केसरेहिं
सेवा-ताबेदारी वफादारीके साथ करते हें, तबही उ
छायामें सुख शांतिसे रहते हें; अपने दोष ओर अपू
जानने लगे हें-अपने पूर्वजोंके गुप्त धनका खजाना
अपनी उन्नति करनेका अवसर पायाहे.

३२, ३३ जब तक उत्तम उपदेशक पेदा न होसकें वहांतक
ति-मेले-त्योहार-मंडली वगेरे प्रसंगपर व्याख्यान देना. उक्त उप
विषयोंके छोटे छोटे ग्रंथ बनाके ग्राम २ ओर घर २ में मुफत देना

शुद्धिपत्र.

पृष्ठ	लींटी	अशुद्ध	शुद्ध
१	१३	भूणष	भूषण
२	२४	यह मत	जीवन मत
६	१७	युक्ति	युक्ति सहित
८	१	आवगें	आवेंगे
११	२५	होगी	होगी अनुमिति उसका विषय होजानेसे वोह अनुमानसे परही रहा
१३	३	हें	हे''
१४	७	विना	विना४
	२९	इत्यादि	इत्यादि.
१५	१३	मन;	मन, अनुमिति
२०	२३	(वीर्य	वीर्य
	२४	)सत्य	सत्य
२५	१३	हे,	हैं,
२७	१६	माग	मार्ग
,,	१७	बीज	,उत्तम रुढी ओर प्राचीन सर्वमान्य सामान्य धर्मके बीज
	२२	परके	परके धर्म—
३६	( )	३६, ३७, ३८, ३९, ४०	३०, ३१, ३२, ३३, ३४

अनुक्रमणिका.

६२ लक्षणा, जीववाद, अपरोक्षत्व. दर्शन

९४ प्रकारांतरसे एकता दर्शन ३.

१०९ ईश्वर-जीव दर्शन ४.

१५३ दृश्य कल्पित दर्शन ८

१५६ ज्ञातृत्व दर्शन ९

१६२ ज्ञानाभाव दर्शन १०

१८३ अज्ञान स्वरूप दर्शन १५

अध्यारोप दर्शन १६

२३२ सत्ता दर्शन १९

२३४ विवर्त्त दर्शन २०

२७१ अजात दर्शन २३

ॐ

तज्ञको खेल. शोधकको रेल.

अद्वैत परीक्षा.

अद्वैतानंदो.

अद्वैत दरपन.

मूरखको बेल. अज्ञको मेल.

सं. १९५६.

ओ३म्.

अद्वैतादर्श.

प्रस्तावना.

उपगीति.

येषामरिहंतृणां, वेदादि परावरं चेष्टं ।
प्रणमे तानेक मतिः, मम मुखरत्वं क्षमंतां ते ॥१॥

कवित.

इष्ट[1] हे[2] परापर[3] वेदादि[4] अरिहंतनको[5] नमूं रीतसारी[6] क्षमें[7] भनत अजान[8] हे;
अद्वैतादर्शसेती[9] होत हे निदान[10] ताको, तेसो यह दर्पन[9] हित दर्शन सुजान हे;
जो सबको खंडन हो खंडनको खंडनना, जा मंडन खंडन ना मंडनेकमान हे,
अज्ञान परिपाटीसे कब हू आरोप होय, ताको हो लोप पहिले गोप एसो तान हे.
॥ २ ॥

१॥ येषां अरिहंतृणां परावरं च वेदादि इष्टं
तान् एक मतिः प्रणमे, ते मम मुखरत्वं क्षमंतां ॥१॥

कवितके पृथम पादमें जो मंगलाचरण हे उसका सार यह हे कि, में अजान जो कुछ (यह अद्वैतादर्श ग्रंथ) लिखना चाहता हूं (लिखा हे) उस लेखमें यदि कोई दोष होवे तो, अरिहंत–महात्मा क्षमा करेंगे–उन परापर और यथार्थ ज्ञान किंवा वेदादि–हरकोई मत पंथके यथार्थ बोधक ग्रंथ वा उनके वेसे भाग तथा तिन–परापरादिके अनुभवी (ज्ञाता) अरिहंत–महात्माओंके कटाक्षका पात्र नहीं ठेरूं. यही रहस्य संस्कृत छंदका हे.

१ पर (अगम्य–ब्रह्म–चेतन–पुरुष–शिव–विष्णु–गणेश–ईश्वर–ज्ञानस्वरुप–कूटस्थ–जिसके परकोई नहीं–पर बिनाका अपर–अपरिछिन्न–असीम–पूर्ण–आत्मा–अल्लाह–गॉड–रुह–अजद–ईल–जात–स्परिट–हुरमजद.

संक्षेपमें अर्थ यह है:—*गमागम्य सिद्धांत (वा गम्य—अगम्य) और यथार्थ ज्ञानादि (वा वेदादि हरएक सत् ग्रंथ) जिनको(का) इष्ट है, और अजान पुरुष कुछ बोलता—कहता—लिखता है उसपर दोष दृष्टि नहीं रखके क्षमा दृष्टि रखते हैं, एसे अरिहंतन (निर्दोष महात्मा पुरुषों)को भली प्रकार नमस्कार करता हूं. किंवा वैसोंको नमना उत्तमाचार (शिष्टाचार) है. किंवा

---

२ अपर (गम्य—माया—जड—प्रकृति—अजा—योनी—शक्ति—सक्रिय—परिणामी-परिछिन्न कुदरत-नेचर-अचेतन-अजीव-द्रव्यगुण-तत्वसमूह-त्रिगुणात्मक).

३ कुदरती-सृष्टिनियमज्ञान. अबाध्य-यथार्थ ज्ञान.

४ उपयोग- फल—मोक्ष--परमपद सदाचार--नीति—प्रेम-दया—निष्कामता वगेरे.

५ संशय, विपरीत भावना, असंभावना रहित यथावत उक्त परादिको जाने-अनभवनेवाला, दुर्गुण रहित-जितेंद्रिय-निर्दोष-अरिवर्ग, मल, विक्षेप और अज्ञानादि दोष रहित--महात्मा पुरुष.

६ नमस्कार-सत्कार-आदर-मान्यकरना-स्वीकारना.

७ परापर, यथार्थ ज्ञान-इनका स्वरुप-इनकी महिमा, अकथ (अवर्णीय) है उसके वर्णन करनेमें अशक्य हूं; अतः उनके स्वरुप जाने वाले-अनुभवने वाले महात्माओंको ही नमस्कार करने योग्य होऊं, तो भी अहो भाग्य-यही अच्छा समझता हूं.

८ जीव मात्र, सर्वज्ञ वा सर्वथा अज्ञ नहीं. अतःविषय मात्रके संपूर्ण यथावत, यथार्थ ज्ञान अप्राप्तिसे अजान है.--अज्ञ है.

* हरकोई विषय (द्रव्य-गुण-शब्द-स्पर्श-रंग-रस-गंध-आकर्षणादि) सर्वथा गम्य नहीं है-संपूर्ण प्रकारसे विषय नहीं होता. तद्वत् सर्वथा अगम्य नहीं है. एसेही परापर (मूल प्रकृति और पुरुष) हैं. जो सर्वथा अगम्य हैं तो, अगम्य पदका प्रयोगही नहीं बनता. जो सर्वथा गम्य हों तो, मतभेद नहीं होते.

उक्त इष्ट वाले क्षमावान ओर सदाचारी महात्माओंको नमता हूं. किंवा जो उक्त इष्ट वाले ओर अजानोंपर क्षमा रखना, यह उत्तम रीति धारण करने वाले हैं, तिन अरि हंतनको नमता हूं. इ. जोकि परापरादि उनका इष्ट हे, अतः अरिहंतनको नमस्कार करनेसे परापरादि—तीनोंको भी *नमस्कार हो गया, यह स्पष्ट हे. इस लिये उनको ही प्रणाम किया. निदान शिष्टाचार हे ओर उनकी *क्षमा दृष्टि रहे, एसा जानके उनको नमता हूं.

किंवा—"यद्यपि में ईरानी, किरानी, कुरानी, पुराणी †स्वीडनबोर्ग, नवीन †पुराणी वगेरे जेसा वा उनके रहबरों जैसा वहमी वा चलता पुरजा नहीं हूं, तथापि मेंने धर्म पंथों वा मतोंसे क्या सीखा ओर बोध कितने अंशपर हे—तम रुप हे वा उजालेको बताता हे—वा क्या, उसकी परीक्षा मुझे हो इस लिये, किंवा जो में दूसरोंका रहस्य नहीं समझा सो लिखता हूं, इसलिये" अज्ञ हूं ओर क्षमापात्र; अतः उनको नमस्कार करता हूं.

अद्वैतका जो आदर्श हे उससे तिसका (प्रचलित अद्वैत पक्षोंका) निदान हो जाता हे. १० तेसा (अद्वैतकी झांकी करानेवाला) यह दरपन

---

*ग्रंथ, मनुष्यकृत जड पदार्थ वा संकेत समूह हैं. तद्वत् यथार्थ ज्ञान ओर प्रकृतिके संबंधमें ज्ञातव्य हे. अतः उनको नमस्कार करना, उनसे क्षमा मांगना व्यर्थ, अघटित, हे; एतद्दृष्टि उनके प्रति सत्कारादि योग्य पद ग्रहण करने योग्य हे. ओर क्षमा पदका यहां यह प्रयोजन हे कि, इस ग्रंथ में यथार्थ ज्ञान, सत्य बोधक ग्रंथ वा उनके वेसे भाग, महात्माओंके रहस्य तथा गम्यागम्य के विरुद्ध लेख नहीं धारता, अतःग्रंथ कर्त्ता उनके कटाक्षका पात्र नहीं. शिष्टाचार प्रकारसे क्षमें वगेरे पद हैं. (शंका) न्यायकारी-सत्यवक्ताको नमस्कार वा उसको प्रार्थना करना किंवा उससे क्षमा मांगना वा उसकी स्तुति करना व्यर्थ हे. (समाधान) शिष्टाचार-लोक व्यवहार-योग्यों प्रति आदर उपचार इत्यादि कारण हैं. नकि खुशामद वा मिथ्याचार.

* शैव शाक्त वैष्णव †थियोसेफिस्ट.

९-१० प्रचलित नवीन अद्वैत सिद्धांत नवीन वेदांति-अहं ब्रह्मवादि-जीव

(अद्वैतादर्शअद्वैत दरपन-ग्रंथ) हे. सुजानों (शोधकों)को अद्वैत सिद्धांत-पक्षका दर्शन हो, इसलिये यह रचा गया हे. वा शोधकोंको अद्वैत पक्षका उसके दूषण भूषण सहित दर्शन हो ओर उनके हितका दर्शन हो.

ग्रंथ वांचके कोई शंका करे कि "एसा पक्ष कोनसा हे कि जिसका खंडन न हो-सर्वपक्ष-मंतव्यका खंडन हो सकता हे; जेसा कि ग्रंथ विषे अद्वैत ओर द्वैत संबंधमें हे. परंतु द्वैतका प्रतिपादन करना स्पष्ट-सिद्ध हे, अपूर्वता तो अद्वैत सिद्धि मेंही हे, अतः सर्व खंडन पक्ष मान्य नहीं" इस शंकाके समाधानमें तीसरापाद हे:-

कितनोंकका एसा मंतव्य हे कि "जो कुछ मन बुद्धि, वाणिका विषय हो, उसके स्वरुप निर्णय वास्ते जो कुछ कहाजाय वा जो जो कल्पना की जाय, वे तमाम, खंडन हो जांयगे—होजाने योग्य हे". जो यूंही हो तो, खंडन नामक विषयका खंडन नहीं होता (खंडन, अनवच्छिन्न प्रवाह रुप धारा हे), यह सिद्ध होता हे. परिणाममें कोई पक्ष-मत धर्म-सिद्धांत

ब्रह्मकी एकता मान्ने वाले-अभिन्न निमित्तोपादान वादि-अभाव (नेसती)से भाव (हस्ती) मान्नेवाले (किरानी कुरानी वगेरे)-सूफी--केवल-अकेवल-शुद्ध -अशुद्ध अद्वैतवादि भाइयोंके मंतव्यका अप्रशंसनीय परिणाम-फल देखके वा उनके माने हुये सिद्धांतको अयुक्त-असंगत-असमीचीन सदोष जानके -सयुक्त नहीं पाके उसके निदानकी आवश्यकता हे. जेसे दुसरेकी अपेक्षा विना अपने दोष, आपको प्रतीत नहीं होवे, वेसे अपना मुख अपनी चक्षुसे नहीं देखा जाता; किंतु उसकी निरिक्षामें अन्यकी अपेक्षा हे. फलितार्थ यह के, यथार्थ योग्य आदर्श विना, अपने मुखका ज्यूंका त्यूं प्रतिबिंबभी नहीं देखा जाता (मूल बिंब तो कहां). अतः अद्वैत नामक सिद्धांत रुप जो मुख हे वा जेसा उसका मुख (शिरोमणीसार-रहस्य) हे उसका वा वेसा प्रतिबिंब-यथावत फोटो देखना वा देखाना-देख पडना आवश्यक हे. तब उस मुखका वा उसको अपने मुखका निदान-गुण दोषका ज्ञान होजाता हे.

जिन्होंने किसीका मुख नहीं देखा हो, सो भी दरपनद्वारा उसका तादृश्य-

स्वीकारणीय नहीं है*

दूसरा पक्षकार यह कहता है कि "जिस विषय (मंडन)का खंडन नहीं होता-खंडन भी जिसका विषय हो जाता हो, वही सिद्ध-मंडन है सो तमाम मंडन कारोंको एकही रुपमें विषय होने योग्य है. अर्थात जो सत्य है सो एक प्रकारी है ·है जेसा है अन्यथा नहीं होता; अतएव तमाम विद्वान्, बुद्धिमान, तत्व वेताओंका एकही मत-रहस्य-आशय होना चाहिये; अन्यथा (मनुष्योंको दुःखका हेतु होनेसे) खंडनीय वा खंडन होने योग्य है. सार यह है कि, जहांतक जिस विषय स्वरुप-परिणाम संबंधमें नाना मत-पक्ष हैं वहांतक, उन पक्षोंके संबंधमें निश्चित यथार्थताकी दृष्टि नही हो सकती, वा उस पदवीके योग्य वे नहीं हैं. जो यथार्थ है, उसका खंडन नहीं हो सकता. जिसका खंडन हो जाता हो वोह निर्दोष-यथार्थ नहीं है. क्योंकि "ब्रह्मांडमें जो अनादि, मूल तत्व-स्वरुप पदार्थ हें-(वा है) वे जेसे हें-वेसे हें-अन्यथा नहीं होते ओर न होंगे-वा नहीं हो सकते." यह वात थोडे ही विचारसे जान पडती हे-स्पष्ट है" तब उनके स्वरुपमें मत भेद क्यों? नहीं होना चाहिये. परंतु जीवोंकी अपूर्णता (अज्ञान)के सिवाय अन्य कुछ

यथावत फोटोजान लेता हे; वेसेही अद्वैत पक्षकारसे इतर अद्वैत न जाने वाले शोधकको भी यह ग्रंथ उपयोगी हे. अद्वैत पक्षोंमें कोई एक अद्वैत मतके निदानसे अन्य अद्वैत पक्षोंका भी निदान हो जाता है; इस लिये इस ग्रंथमें मुख्यतः जीवब्रह्मएकतावादी वा तिसके सिद्धांतकी छवी-फोटो ओर उसकी परीक्षा हे; तदंतर गौण पक्षसे अन्योंकी है. अतः "अद्वैता-दर्श" नाम योग्य ही हे.

*विचारना चाहिये कि जो "मन बुद्धि वाणीका विषय सो विषयी सहित खंडन हो जाता हे;" एसा मानें तो, तमाम मत पंथ धर्म वा फिलोसोफीके ग्रंथ ओर मूलस्वरुपों (जीव-ईश्वर प्रकृति स्वभाव-मोक्ष-जड-चेतन वगेरे) के बोधक निर्णायकोंका उपदेश-मंतव्य त्याज्य हे. ओर इधर कार्य-स्वरुप-द्रव्य गुणोंको देखते हें-शोधते हें तो, उनका रुपांतर होता रहनेसे

209

नहीं कहा जाता.*

प्रथम पक्षमें वादि-पक्षकारके पक्षकी हानी स्पष्ट हे. उत्तर पक्षमें अखंड-निर्दोष होने तक मान्य नहीं हो सकता. इसलिये प्रथम शंकाका खंडन तीसरे चरणसे हो गया.

दूसरी शंकाका समाधान भी इसी चरणमें अर्थापत्तिसें होता हे.—जो अद्वैत वा द्वैत पक्षका खंडन न होता हो तो, माननीय हे. अन्यथा नहीं. तद्वत् सर्व पक्ष वास्ते जान्ना चाहिये. अन्यथा "सत्यका मंडन हरकोई करता हे वा हो सकता हे वा स्वत सिद्ध हे, अतःउसके मंडनमें अपूर्वता नहिं; किंतु असत्यका मंडन किया जाय तो अपूर्वता हे" यह सत्प्रतिपक्ष मान लेना पडेगा; जोके त्याज्य हे. अतःजिसका खंडन हो वोह अयथार्थ पक्ष हे, एसा माना उचित हे.

चोथापाद, इस ग्रंथके रचनेके मुख्य हेतुको जनाता हेः— पूर्व ओर पश्चात फिलोसोफीके सेलभेल-मिश्रण होनेसे जेसे कि मात्र परिपाटीके न जान्नेसे ही कितनीक फिलसुफी (तत्व विद्या)में दोष आरोपा जाता हे, वेसें वेदांत (यथार्थ ज्ञान-ज्ञानका सार-रहस्य-वेद सार) जैसी सर्वमान्य सर्वोत्तम फिलोसोफीपर भी भविष्यमें आक्षेप होवे, तिसके पहिलेही प्रबंधार्थ उद्देशसें एक उदहारण स्वरुपमें यह लेख—अद्वैतादर्श ग्रंथ प्रसिद्ध करके निर्दोष

उनका रुप ओर उपयोग भी निश्चियात्मक नहीं कहा जाता. अतःनिर्णय करनेसे हाथ खेंचके अपने अपने प्रमाण-इंद्रिय-बुद्धि-मन अनुकुल वर्तन होना चाहिये. पक्ष तानना वा अन्योंको बहकाना किंवा अज्ञानांध प्रवाहमें आप पडना वा दूसरेको डालना नहीं चाहिये—अनुचित हे. परंतु दूसरा पक्ष इस आलस्य होनेकी 'ना' करता हे; क्योंकि, मन मुखी वर्तन वा अनिर्णित का उपदेश होनेसे मनुष्योंको हानी हे. नाना दुःख-क्लेशको प्राप्त होने योग्य होंगे. जेसाके वर्तमानमें हे. अतएव योग्य मनुष्योंकी योग्य मंडली होकर निर्णय हो, अर्थात चक्रवर्ति मंडली बनाई जाकर चक्रवर्ती निर्णय होके उपदेश हो.

निर्णय ही जाने उपर; मेरी दृष्टि (तान)का वेग हे. अर्थात आक्षेपका पृथमहीलोप हो जावे, यथार्थ दरसाया जावे, यह मेरा गोप गुप्त आशय हे. कुछे किसीकि खंडने मंडनमें आग्रह नहीं हे, एसा जान्ना योग्य हे.

दोहा.

संबंधी वेदांतका, सर्व पक्षमें जाय;
शैली या प्रकारकी, ले विचार मनराय. ॥३॥

जो कि यह (जो कुछ लिखा गया हे—अद्वैतादर्श) ग्रंथ, अद्वैत-वेदांत पक्षका ही जांचक संबंधी हे, तोभी हरकोई-(धर्म-मत-दीन-पक्ष-मजहब-पक्ष—द्वैत ओर अद्वत संप्रदायका पक्षकार) जो शोधक-न्याय दृष्टिसे इस तमाम ग्रंथको सविचारपढे-उसको, अपने मंतव्य-निश्चयके आद्य अंतवाले तत्व वा सिद्धांतगत जितना अयुक्त मंतव्य हे, उसका दर्शन हो, ओर उस शोधक विचारवान पुरुषकी बुद्धिको सदासद्के निर्णय पूर्वक, उक्त अयुक्त अंशके त्याग तथा सयुक्त-यथार्थ रहस्य-सिद्धांत शोधन करने ओर जान्नेका फर्ज पडे, एसी प्रकारकी गुह्य-गंभीर-शैलीवाला, इस ग्रंथका लेख हे. क्योंकि इस ग्रंथके हरकोई शोधक पाठक मनराय. (बुद्धिवान-स्वतंत्र-मन जीत)को विचार लेनाही पडता हे; अतः सामान्यतः सर्व मतवालोंको उपयोगी हो सकता हे.

दर्शनके प्रवेशसे, एक वाक्य इतिजान;
जल्प वितंडा वाद तज, अनुभव सार पिछान.॥४॥

ग्रंथ गत दर्शनों (प्रक्रियाकी झांकियों) में प्रवेश वत् जो ग्रथारंभमें प्रवेश हे, उसके आद्य अक्षरसे लेके ग्रंथकी समाप्ति--इति पद पर्यंत, ग्रंथ कर्त्ताका "एक वाक्य होय नहीं" एसा जानके जल्प वितंडा वादकी दृष्टि छोडके अनुभव ओर सारको लेना चाहिये; क्योंकि तमाम ग्रंथको सविचार पढे बिना, वक्ता वा ग्रंथकारका रहस्य, ध्यानमें नहीं आसकता. ॐ.

कोश-लक्षण.

इस अद्वैतादर्श ग्रंथमें कितनेक एसे पद हैं कि जो न्यून देशवर्ति ओर अन्य भाषाके पारिभाषिक हैं, ओर कितनेक एसे पदार्थ हैं कि, जिनके लक्षण वेदांतानुयायीसे इतर नहीं भी जानते हों; अतः उन पद पदार्थोंमेंसे जिनके अर्थ वा लक्षण यथा प्रसंग-कहीं न कहीं ग्रंथमें आचुके हैं,-उनको छोडके शेष उन पदोंका अर्थ वा पदार्थोंका लक्षण कि जिनका किसी[1] वाचककी सुगमतार्थ जनादेना उचित है-सो-संक्षेपमें लिख देते हैं:—

पद	अर्थ
अनुमिति	अटकल
अविवेकी	अशोधक, सत्यासत्य न जाननेवाला.
अविद्या	अन्यथा ज्ञान, विपर्यय ज्ञान, ज्ञान निवृत्तनीय, ज्ञानाभाव, ईश्वरी ज्ञान* (अ-ईश्वर-वि

---

1. प्रस्तुत पद ओर लक्षणोंका प्रसंगपर स्पष्टिकरण होभी जाता है, अतः यहां लिखना विशेष उपयोगी नहींभी है; तथापि किसी अनजानको उपयोगी होना संभव है; इसलिये कर्त्ताने संक्षेपमें लिखे हैं, ओरभी इन अर्थ तथा लक्षणोंका योग्य संबंध प्रवेशक पत्रसे लेके ग्रंथके अंत पर्यंत ज्ञातव्य है. प्र. क.

ई-इंग्रेजी. गु-गुजराती. फ-फारसी. उ-उरदू. मे-मेवाड. अ-अरेबी.-के चिन्ह हैं. शेष पद हिंदी ओर संस्कृत हैं, एसा जानना चाहिये. प्र. क.

* इस प्रकारके अर्थोंसे चोंकना नहीं चाहिये, क्योंकि शब्दजाल महाजाल है. ओर संस्कृत शब्द सागरकी मर्यादासे व्युत्पत्तिद्वारा अनेक अर्थ होजाते हैं. यथा. निम्न लिखित शब्दभी ईश्वर-तिर्थंकर-गुरु-उपदेशक-आचार्यादिके वाचक सिद्ध होसकते हैं:—

पद	अर्थ
	वा-ज्ञान) मायाका अंश.

अर्क मंतल. इ.-सूक्ष्म अदृष्ट प्रतिकृति.

अनार्य-आर्य कोमसे अन्य कोमवाले, वा जो उत्तम नहीं सो.

आटा उ.-चून, लोट.

आकर्षण-गुरुत्व, गुण विशेष, पदार्थ विशेष.

आलात चक्र } लकडीके कि
आलात वेग } नारोंपर अग्नि लगाके व्यवधान रहित घुमावें तो, देशांतराय

उल्लुक: गर्दभ: विडाल: कुक्कर: यम: वृश्चिक: विट् : मंद: गरलं. खल: पाषंडी: बल्द: भगंदर: महिष: श्वा: अहि: अज्ञ: अमंगल: चंडाल: चौर: दु:खं. दुर्जन. यथा चंडयति दुष्टान् इति चंडाल: अत: दुष्टोंपर कोप करनेवाला होनेसे ईश्वरका नाम चंडाल हे. इत्यादि. ईश्वरादिको नहीं माननेवाले एसे एसे अर्थ करते हें. इसलिये शब्द पदकी व्युत्पत्तिमात्रपर नहीं जाना चाहिये. शब्द विद्वानोंका खिलोना होता हे. निदान आकांक्षादिकी संगतिसे अर्थ किया जाता हे.

पद	अर्थ
	रहित अग्निका गोल चक्र प्रतीत होता हे.

उक्त-उपर कहा हुवा-मजकूर.

औक्सिजन. इ.-जीवन रक्षक एक वायु. जलके उपादानका अंश.

कर-करनेवाला, करके, द्वारा हासिल, लागा, टिक्स.

कम दरजे. फ.-न्यून, हलका, ओछा, उतरता.

कर्म-क्रिया, गति, जिसपर क्रिया कीजाय.

कोम. फा.-जाति, मंडली, समान धर्मी मंडली. देशी मंडली.

केळवणी. गु.-शिक्षण, तरतीब, तरबीयत, तालीम.

कानशेंस. इ.-संस्कारी विवेक बुद्धि, दिल, जमीर.

क्रियावर-मरने पीछे कीर्त्ति भोजनादि कराना, बडाकाम, उपकार.

गपोडे } -अर्थशून्य विकल्प.
गप्प } सुनीसुनाई बात, दंतकथा, अयथार्थ.

पद	अर्थ
चेले-	शिक्षकके अनुयायी. शिष्य.
चलतापुरजा-	निपुण, होशियार, चालाक, समयसूचक.
चूंटनी. गु.-	वीणन, छांटन, चुनना.
जोडे. गु-	साथ, समीप, संयुक्त
जरुरयात. फ.-	आवश्यक, भोग्य, साधन, जिसके विना जीवन व्यवहार न चले वैसी वस्तु, हाजत.
जाती. फ.-	अपनी, कोम, ज्ञाति.
जात. फ.-	स्वत्व, स्वरूप.
जारी. फ.-	बहता, चलता.
तपास. गु.-	शोध, शोधन. परीक्षा. तहकीकात.
तदन. गु.-	सर्वथा, अत्यंत, बिलकुल.
दरमियान. फ.	मध्य. बीच.
देशाेन्नति / देशोन्नति	देशवासियोंका भेय-कल्याण. इ.
धारो. गु.-	कलेलो. मानेलो. रसम, रीत, कायदा.
धारा. गु.-	कानून, जल प्रवाह. स्थापन
धोरन. गु.-	रीति, चाल, रसम. प्रकार.
धी-	बुद्धि, लडकी.
नलिये. गु.-	केलु, माटीके खुले हुये लघु नल.
नावाकिफ. फ.-	अज्ञ, न जाने वाला.
डाह्या. गु.-	बुद्धिमान. डाहे.
ढकोसले-	कल्पनामात्र. मंतव्यमात्र.
पुरावा. गु.-	सबूत, प्रमाण सिद्धि. वा इनकी सामग्री.
पर-	दूसरा, भक्ष, अगम्य, पांख, उपर, किनारा, परंतु
परोक्ष-	गुप्त, अदृश्य.
प्रतिपात्ति-	प्रबोध, उपयोग, योग, योजना, निर्णय, निर्धारण, कबूल, आशय, खात्री. अनुमोदन.
फिलोसोफी. इं.-	ज्ञानकास्नेह. ज्ञानका इश्क. तत्वविद्या.
फिलोसोफर. इ.-	तत्वज्ञ. ज्ञानका स्नेही.
बाजु. फ.-	दशा, भुजदंड, साइड.
बकवाद. उ.-	व्यर्थ भाषण, बडबड, कहना, वादावाद विवाद.
बेतरनी-	दोभांत, बेतन, रचना,

पद	अर्थ

बुद्धि

बेवकूफ. फ. अज्ञ, मूर्ख.

मिथ्या-यथायोग्य देशकालमें जो उत्पन्न न हो. (यथा स्वप्नदृष्टि) झूठ. इ.

मजकूर. फ.-पूर्वमें कहा गया सो. पूर्वोक्त.

मिलकीयत. फ.-स्थावर जंगम जायदाद.

मनशाय. इ.-मताशय-भाव-रहस्य. प्रयोजन.

मत्ताक-मतमान्य.

या-वा, अथवा, के.

रहबर. फ.-शिक्षक, पेगंबर, आचार्य, अगवा.

लागु. गु.-संबंध, संबंधक, संबंधी, प्रति, लगती, आरोप.

वधारा. गु.-ज्यादे करना. बढाना.

वगेरे. फ. इत्यादि.

वाद-निर्णयार्थ परस्पर भाषण

विवाद-भांडण, बकवाद, तंटा, वादका हेतु

वाकिफकार. फ.-जाननेवाला.

वादानुवाद-परस्पर प्रश्नोत्तर.

पद	अर्थ

विल. इ.-पत्राविशेष, परिणामपत्र-नोट विशेष.

वेदांत-वेद ग्रंथोंका सार-रहस्य, यथार्थ ज्ञानका रहस्य, तत्त्वज्ञान, नवीन पक्ष विशेष.

वांचना. गु.-पढना. पाठ करना.

वाचो. गु.-पढो.

व्याघातदोष-आघात. कहे हुये के विरुद्ध कहनेसे जो पक्षघात-पात असत दोष सो.

विगत. मे.-तफसील, विवेचन विस्तार.

वाजबी. फ.-योग्य. नीति पूर्वक, घटित.

शेषा-प्रकृतिका वोह सूक्ष्मांश जो व्यापक ओर इथःकाभी मूल है.

श्रीजी-महाराजा-शोभायमान राजोंमें मोटा राजा.

सरेरास. गु.-एकंदर, सरासरी ओसत.

संप. गु.- ऐक्यता, इत्तफाक

संकला-संकलना, परंपरा संबं

पद	अर्थ
संतोषक	संतोष करने वा देने वाला.
सख्त. फ.	कठिन, कठोर, तुरा
सुधारा. गु	संवारा. शोधा. संवारन, शोधन.
हक़. अ.	अधिकार, वाजिब. सत् ईश्वर. यथायोग्यता.
हाल. फा.	वर्त्तमान. अवस्था.
हिंदु. फ.	माशूक, गुलाम, चोर, काफिर, सिंधुवासी [सिंधके किनारेके रहवासी].
,	विराम–विभाग–कर्त्ता–सूचक चिन्ह.
.	पूर्णविराम, वाक्य वा विषयका समाप्ति सूचक चिन्ह.
-	पूर्व प्रसंग, संगति सूचक. अर्थात् वाचक. पर्यायका बोधक.
;	अर्धविराम. पूर्वोक्त उभय चिन्हका अर्थ बोधक. उत्तर संबंध सूचक.
,–	पूर्वोक्त उभय चिन्हवाले अथका बाधक.
“ ”	अवतरण चिन्ह.
.–	पूर्वोक्त उभय चिन्हवाले अथका बाधक.

लक्षण.‡

अद्वैत–सजातीय, विजातीय और स्वगत भेद रहित. १ सजातीय भेद रहित. २ एकही ३.

सजातीय–तिसकी जातिवाला, समान, [मनुष्यका सजातीय मनुष्य है. खिजूरका खिजूर है].

विजातीय–तिस जेसा नहीं; किंतु अन्य प्रकारका.–असमान (बंदर, देव, छुहारा, मनुष्य–खिजूरसे विजातीय हैं.)

स्वगत–अंश–सांश (शरीरके हस्तादि अंश हैं).

विशेषण–अपने विशेष्यके स्वरूपमें प्रवेश करता हुवा विशे-

, इत्यादिका शेषार्थ प्रचलित रूढीवत्,

‡ इन लक्षणोंमें कोइ भाग वेदांत पक्षसे इतर प्रकारकाभी है, यथोचित यथा प्रसंग उपयोग कर्तव्य है.

ष्यका अन्यसे व्यावर्त्तक ओर (अपनी सीमा तक) अपने विशेष्यको अपने सहित जनानेवाला विशेषण कहाता हे. यथा काला जल, खारा पानी, नील वस्त्र (यहां काला रंग और खार तथा नील विशेषण हें ओर पानी, वस्त्र विशेष्य हें.)

विशिष्ट–विशेषण ओर विशेष्य दोनों मिले हुये विशिष्ट कहाते हें. यथा वेदांतियोंका अंतःकरण [विशेषण] ओर कूटस्थात्मा (विशेष्य) मिलके विशिष्ट अर्थात् जीव कहाता हे.

उपाधि–अपने उपहितके स्वरूपमें प्रवेश न करती हुई, अपने को उपहितसे पृथक जनाती हुई, अपने उपहितकी अन्यसे व्यावर्त्तक हो (जुदा जनावे) ओर [अपनी सीमा तक] अपने उपहितको अपने सहित जनावे–उस वस्तुको उपाधि कहते हें. यथा घटाकाश. यहां आकाश की उपाधि घट हे. आकाश उपहित हे. घट आप पृथक हुवा घटआकाशको महाकाशसे भिन्न ओर अपने सहित जनाता हे. तद्वत् वेदांतियोंका अंतःकरण, चेतनकी उपाधि हे. अंतःकरण अवच्छिन्न चेतन (कूटस्थात्मा) को ब्रह्म चेतनसे भिन्न अपने सहित जनाता हे. १. जाति, गुण, क्रियासे भिन्न धर्म. २. कार्यमें असंबंधि वर्त्तमानमें व्यावर्त्तक. ३. उत्तरके २ लक्षण यथा प्रसंग घटाये जाते हें.

उपहित–उपाधि वालेको उपहित कहते हें.

अंतःकरण–जिस करण-साधन-प्रमाणसे शरीरके अंतरके दुःख सुखादि पदार्थोंका जीवको ज्ञान होता हे. उसे अंतकरण कहते हें. यह सूक्ष्म प्रकृतिके सूक्ष्म सत्वांशसे

बना है. और प्रकृतिके रज तम भागभी उसमें शामिल हैं. विद्युतसेभी अधिक शक्तिवाला मध्यम परिणामी है. तमाम शरीरमें व्यापक और लचकदार (स्थिति-स्थापकरूप) पदार्थ है. उसके रागादि परिणाम-अवस्था होते हैं. चित (स्मरण परिणाम), बुद्धि, मन, और अहंकार किंवा सुर्त, वृत्त, नृत्त, कृत, यहभी उसी के परिणाम-अवस्था-हैं. यह और इसके धर्म, बाह्यइंद्रियोंके विषय नहीं होते. यह पदार्थ किसी ज्ञान प्रकाश करके प्रकाश्य हुवा योगियोंको विषय होता है. और चेतनकी सत्ता करके लोह चंबुक समान उसका और उसके धर्म रागादिका उपयोग-प्रकाश-होता है. इ.

विज्ञान-प्रकाश समान स्वप्रकाश एक अनादि पदार्थ है. उसमें पूर्व वासना-अभ्यास-करके नाना परिणाम होतेहैं. त्रिपुटि मात्र जगत् उसीका रुपांतर होता है. आति शीघ्र क्षणिक परिणामी है; ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेय, कर्त्ता, कर्म, क्रिया, भोक्ता भोग भोग्य,--इत्यादि उसीका क्षणिक परिणाम है. [बौधमत कृत लक्षण] (वेदांती इसे बुद्धि-अंतःकरणका परिणाम कहते हैं.)

आलयविज्ञान-मजकूर विज्ञानका अहंप्रत्ययवाली धाराका नाम है. पक्षमें अहं जिसका स्थान है सो विज्ञान.

प्रवृत्ति विज्ञान-मजकूर विज्ञानका नीलादि [इदमादि] प्रत्यय वाली धाराका नाम है. पक्षमें नीलादि[इदमादि]का उल्लेख करानेवाला जो विज्ञान सो.

प्रमा-ज्ञान. चेतन-प्रमाणजन्य ज्ञान.

अप्रमा-प्रमासे भिन्न प्रकारका ज्ञान. यथार्थ और अयथार्थ भेदसे दो प्रकारका है.

अयथार्थ-अप्रमा-दोषजन्य ज्ञान. इसको भ्रमज्ञान कहते हैं

भ्रम-स्व अभाव अधिकरणमें जो अवभास, सो भ्रम कहाता हे १. दोषजन्यत्व २. निष्फल प्रवृत्ति जनकत्व ३ अधिष्ठानसे विषम सत्तावालेका अध्यास ४. विशेषणके अभाववालेमें विशेषण भासे ५. अयथार्थ ज्ञान ओर उसका विषय ६. इ. यथा रज्जुमें सर्प ओर उसका ज्ञान भ्रमरूप हे. क्योंकि अन्यथा प्रतीति ओर एसी प्रतीतिका विषय अन्यथा हे. इ.

भ्रमके दो प्रकार होते हैं. एक संशयरूप भ्रम होता हे. (यथा स्थाणुको देखके यह स्थाणु वा नहीं १. यह स्थाणु वा प्रेत २. यह स्थाणु वा मनुष्य ३. यह मनुष्य वा प्रेत ४. इ.) १ यह स्थाणु नहीं किंतु मनुष्य हे. यह निश्चयरूप भ्रम हे. २

अध्यास-स्मृतिरूप पर विषय पूर्वदृष्ट सजातीय परका जो अवभास सो १. वस्तुमें जो अवस्तुका आरोप सो २, स्वाभावाधिकरणमें जो अवभास सो ३. अपने अधिष्ठानसे जो विषम सत्तावाला सो ४. इ. यथा रज्जुमें सर्पका अध्यास हे. सर्प ओर उसके ज्ञानका अध्यास हे. अध्यास (भासता हे ओर भान).

इसके दो प्रकार हैं. अर्थ ओर ज्ञान.

ज्ञानाध्यास-दूसरे विषयमें पूर्व देखी वस्तुके समान जातिवान दूसरी वस्तुका जो स्मृति ज्ञानके सदृश ज्ञान होता हे, उस ज्ञानको ज्ञानाध्यास कहते हैं. जिस ज्ञानका विषय अध्यासरुप विषय हे,-सो ज्ञान. वा अध्यासकी जो प्रतीति सो. [कोइ पक्षकार ज्ञानाध्यासको नहीं स्वीकारता उसकी रीतिसे " न तिसमें तिसकी बुद्धि " एसा

लक्षण अध्यासका है.)

अर्थाध्यास–स्मृतिमें स्मार्य वस्तुके सदृश पूर्व देखे समान जातिवान दूसरी वस्तु दूसरे विषे जो भासती है. सो अर्थाध्यास कहा जाता है. वा अयथार्थ ज्ञानका विषय. यथा रज्जुमें सर्प अध्यास अर्थाध्यास है.

संसर्गअध्यास–जिसका स्वरूप तो प्रथमही सिद्ध हो, परंतु उसका अन्य वस्तुमें अन्यथा (विलक्षण–अनिर्णीय) संबंध उपजे. उसे संसर्गाध्यास कहते हैं. यथा लालवस्त्रपर श्वेत काच हो, तहां 'लाल काच' एसी प्रतीति संसर्गसेहै.

असंसर्गाध्यास–असंबंधीमें स्वरूपासिद्ध संबंधीका अवभास.*

स्वरूपाध्यास–स्वरूपासिद्धका अन्यथा–अनिर्वचनीय स्वरूपावभास. सत्से विलक्षण स्वरूपका अवभास.

अधिष्ठान–जिसके ज्ञान होनेपर अध्यास (भ्रम–अध्यास)की निवृत्ति होती हो. यथा रज्जु, सर्पका अधिष्ठान. ओर सर्प अध्यस्त है.

प्राकसिद्ध–जो प्रतीति ओर उपयोगसे प्रथम सिद्ध हो.

आधार–जिसकेविना वस्तुकी सिद्धि, स्थिति ओर उपयोग न होसके–एसा स्वरूपाधिकरण.

प्रातिभासिक–अज्ञानसे अतिरिक्त दोषजन्य हो, सो. अधिष्ठानके ज्ञानविनाभी जिसका बाध-निवृत्ति होसके सो. भ्रम

---

*इस विवादित_साध्य अध्यासके कितनेक प्रकार हैं. तहां अर्थाध्यास–ज्ञानाध्यासके संसर्ग ओर असंसर्ग यह दो भेद हैं. इन दोनोंमें एक एकके तीन तीन (धर्म-धर्मी-संबधाध्यास)भेद हैं. इस प्रकार ६ भेद हैं. वेदांत पक्षमें इस प्रकारसे भेद नहीं, किंतु अन्यथा हैं ओर इस ग्रंथमेंभी इस प्रकारसे चर्चा नहीं है; इसलिये विशेष विस्तार नहीं किया. प्रसंगोपयोगी लक्षण लिखे गये.

तितीकालमें नहों—प्रतीतिकालमें ही हो. अर्थात् प्रतीति मात्रय-था स्वप्नसृष्टि. मृगजल.रज्जु सर्प. शुक्तिरजत. बालकके अन्यथा वे खेल जिनको अन्यथा नहीं जानता हो.

सत्ता—अस्तित्व प्रकार. शक्ति. योग्यता.धर्मसत्ता.राज्यसत्ता.इ.

परमार्थसत्ता—जिस सत्ताका बाध नहो—स्वतंत्र सत्ता. व्यवहारिकादि सत्ताका आश्रय. यथा स्वप्नदृष्टिकी दृष्टिमें जीव-दृष्टाकी परमार्थसत्ता है.तद्वत् माया—प्रकृतिकी दृष्टिसे ब्रह्मकी परमार्थसत्ता है.

व्यवहारिकसत्ता—अधिष्ठान ज्ञानविना जिस अस्तित्व प्रकारका बाध नहो, सो. यथा प्रकृतिके कार्यकी यह सत्ता है.

प्रातिभासिकसत्ता—जिस अस्तित्व प्रकारका अधिष्ठान ज्ञानके विनाभी बाध होता हो सो.यथा स्वप्न ओर रज्जु सर्पादि तथा उनके ज्ञानकी प्रातिभासिकसत्ता है.

दृष्टिसृष्टिवाद—दृष्टिमात्रही सृष्टि है, इस मंतव्यको सिद्ध करनेका प्रकार. इस पक्षमें पदार्थोंकी अज्ञात सत्ता नहीं होती. यथा स्वप्नमें कोइ अज्ञात पदार्थ विद्यमान नहीं. किंतु दृष्टिमात्रही सृष्टि है.

स्वरूप संबंध—उपाधिका ओर अभावका जो अपने आश्रयके साथ संबंध है, उसे स्वरूप संबंध कहते हैं किंवा स्वरूपके साथ स्वरूपत्वका जो संबंध माना जाय तो उसको भी स्वरूप संबंध कहते हैं.

अविद्या—आवरण शक्ति विशिष्ट मूल प्रकृतिका अंश विशेष १ ईश्वरी ज्ञानकोभी अविद्या कहते हैं. २ विद्यासे जिसका बाध होजाय सो ३. विपरीत बुद्धि—ज्ञान ४.

अतिव्याप्ति दोष—अलक्ष्यमेंभी लक्षण जावे.

अव्याप्ति दोष-संपूर्ण लक्ष्यमें न वर्ते.—लक्ष्यके कोइ भागमें वर्ते

असंभव दोष-लक्ष्य अवर्त्ति-प्रमाण असिद्ध लक्षण.

अविद्या लेश-अविद्याके संस्कार-सूक्ष्मावस्था.

अनुमिति-लिंग ज्ञानजन्य जो ज्ञान-सो. यथा धूमको देखके यह स्थल अग्नि वालाहै, एसा जो ज्ञान-सो. किंवा परोक्षाग्निका काचमें फांटो पडते देखके अग्निहै,एसा ज्ञान होता है, उसे अनुमिति कहते हैं. १ वा अटकल. २

अनुमानप्रमाण-अनुमितिप्रमाका जो करण-प्रमाण-साधन यथा व्याप्ति अनुभव वा व्याप्ति ज्ञानजन्य संस्कार वा इन संस्कारजन्य स्मृत्ति वा लिंग ज्ञान वा लिंग. इ.

व्याप्ति-अविनाभावरूप संबंध, कारण कार्यभाव संबंध. तादात्म्य संबंध. यथा अग्निका धूम साथ अविनाभाव संबंध है. रजवीर्य और शरीरका वा जनक जन्यका कारण कार्यभाव संबंध है. अतः अग्नि वगेरेकी धूममें व्याप्ति है. अग्नि व्यापक और धूम व्याप्य है. व्याप्तिके सम-परस्पर-व्याप्य व्यापकादि भेद हैं.

व्यापक. साध्य लिंगी संज्ञी	व्याप्ति निरूपकको व्यापक कहते हैं. अनुमिति ज्ञानका विषय सो साध्य. जिसके लिंग वा संज्ञासे जिसका ज्ञान होता है सो लिंगी. यथा धूम द्वारा अग्निका जहां परोक्ष ज्ञान हो वहां अग्निको व्यापकादि नाम दियेजाते हैं.
व्याप्य साधन हेतु लिंग संज्ञा	साध्यका व्याप्य साध्यकी सिद्धिका साधन. यथा परोक्षाग्निकी सिद्धिमें उसके परोक्ष ज्ञान होनेमें धूमको व्याप्यादि नाम दिये जाते हैं.

युक्ति-सृष्टिनियमानुकूल बुद्धिका उपयोग [कथन-मनन]

प्रजासत्ताक राज्य-जिस राज्यमें प्रजाकी संमत्ति लीजाय सो राज्य.

ज्ञाहित } इसके लक्षणमें मतभेद हैं. यथाः—देशवासियों
देशोन्नति { का एक धर्म होना १. एक कोम होना २. एक मत-हमखयाल होजाना ३. एक संप होना ४. हुनर, कला, विद्या, सदाचार, और उद्यमकी उन्नति-वृद्धि ५. जरुरियात पूरी पडना६. अपने दुःख सुख समान दूसरेके दुःख सुख समझके वर्तन अर्थात् परस्परकी रक्षा ७. किसीकेभी योग्य हकका भंग न होना ८.स्वत्वके साथ अपने हक संभाल सकनेकी शक्ति होजाना ९. तन-धन-मन-संप-धर्म-बुद्धि-विद्या ओर सत्ता-बल-[सत्ता] की प्राप्ति वा उनमेंसे एक किंवा अनेककी उपलब्धि १०. न पराधिनता ११. स्वातंत्रीय १२. एक राजासत्ताक राज्य होजाना १३. एक धर्मी राज्य होजाना १४. एक कोमी राज्य होना १५. प्रजासत्ताक राज्य होजाना १६. राजा प्रजासत्ताक राज्य होजाना १७. पर स्वाधिन होजाना १८. दुःख सुखकी समानता १९. येथच्छा वर्त्तनकी योग्यता २०. सर्वको दुःख रहित सर्व सुख होना २१. हककी समानता २२. इत्यादि.

वेदः-ज्ञान १. ज्ञान पुस्तक २. जिससें धर्म, अधर्म और ईश्वरका स्वरूप समझ सकाय सो [विदत्यनेन धर्मादिकमिति]३. धर्मब्रह्मप्रतिपादकमपौरूषेयं वाक्यं वेदः अर्थात् धर्म और ब्रह्म प्रतिपादक, जीव अकल्पित प्रमाण (यथार्थ बोधक) जो वाणी-वाक्य-सो वेद. मी. ४. तद्वचनादाम्नायस्य प्रमाण्यम्. वेद ईश्वरकाही कहा हुवा है, अतः प्रमाण है.

वै. (इत्यादि. वेदके मंतव्य ओर लक्षणमें शास्त्रकारोंका पक्ष हे. एक मत नहीं) ५. मंडली विशेषका बनाया हुवा पुस्तक ६. नाना मनुष्योंके रचे हुये मंत्र (विचार) का समूह पुस्तक ७. निशाचर धूर्त्तोंका बनाया हुवा पुस्तक (चार्वाक) ८. सर्वसे आद्य पुस्तक सत् विद्या-ज्ञानका भंडार, जिसमें किसीका इतिहास नहीं, उसके पूर्व वोह.ज्ञान नहीं था जो उसमें हे, सृष्टि नियमानुकूल बोधक, सर्व जगत्के वास्ते समानुपदेशक-इत्यादि ९.इस प्रकार यथा बुद्धि यथा पक्ष अनेक लक्षण करते हें. उसके कितने वाक्य-मंत्र हें. इसमेंभी तकरार हे.-कोइ ४ ब्राह्मण, उपनिषद् १७ ओर ४ संहिता-इन तमामको वेद पुस्तक मानता हे. कोइ केवल ४ संहिताको, ओर कोई केवल ऋग्. यजुः दो संहिता, कोइ साम अर्थात् तीनोंको वेद मानता हे. इत्यादि. इस ग्रंथके अनुयायी ओर विरोधियोंके लेख-खंडन मंडन देखो तो, स्वयं यथार्थ निर्णय होजाय. ओर "चारों वेदकी एक उत्तम-लाभप्रद-माननीय ओर आद्य पुस्तक हे," यह बात उसको अंग उपांग सहित पढनेसे जानसकते हो. क.

(सूचना) शुद्धिपत्रमें जिस पद वा पंक्ति पास ▪ एसा चिह्न हो उसे अवश्य सुधारके वांचना चाहिये.

परिशिष्ट पृष्ठ ३४९ लीटि १७ नोट

ग-जो अनेकांतरूप पक्षकी अनवस्था स्वीकारी जाय तो, निष्कंप प्रवृत्तिका अभाव होनेसे जीवन व्यवहार नहीं होना चाहिये. (परंतु होता तो हे),-जैनियोंको जैन पक्षमें संशय रहना चाहिये. (परंतु वे अपना पक्ष निश्चित मानते हैं),-अंधकी दृष्टिसे घट ओर ईश्वर असत् तथा सूझकी दृष्टिसे उनकी अस्ति यथार्थ माननी पडेगी. [परंतु जैन ई-श्वरका निषेध करता हे],-जैनमत ओर उसके अनुयायीका कथन-मंतव्य-खंडन-मंडन-त्याज्य होगा. तथा सर्वज्ञत्वका अभाव होगा, जोकि उनके मंतव्यके विरूद्ध हे.

७ a जो तत्वविद्याके विरोधि प्रकृतिसे भिन्न मानसिक-आंतरीय सृष्टि मानके लोकोंको लुभानेवाले (स्वीडनबोर्ग व-गेरे) उपासक विश्वासी हैं, उनको विपरीत भावनाका आवेश होना चाहिये. जब योग साधित चक्रविद्या, शेषास्वरूप ओर संस्कारविद्याका अनुभव लेंगे, आंतरीय स्नेह, सत्य ओर ज्ञानद्वारा उनको भली प्रकार जानलेंगे, तब उनके मानसिक (नाटकालंकार-मनपरिणाम, स्वप्न, संस्कार, गुप्त फोटो-मेस्मेरिझमकी विश्वदृष्टि-इ.) स्वर्ग नरकादि इष्ट दर्शन एक प्रकारके स्वप्नसृष्टि समान जान पडेंगे. ओर जो " नो धाईसेल्फ " पर आये तो उनके माने हुये स्नेह-हित-ज्ञान-इच्छा-ओर श्वेत लाल मनुष्याकृतिवाले स्वामी वगेरेका पता भी नहीं लगेगा. यदि वहांसे भी आगे चले तब तो ओरभी आश्चर्यमें निमग्न होजायंगे.

परंतु वेसे भाइ दूसरोंको विश्वासमें डुलाते हैं, आर्य योगविद्या ओर फिलोसोफीकी तरफ नहीं लाते वा नहीं आनेदेते; इसलिये एसोंको कहना चाहिये कि-इस हमारी "लेखिनी"का सूक्ष्मस्वरूप, 'तमाम-जीव-ईश्वर-स्वर्ग-नरकादिका

कर्त्ता–धर्त्ता–हर्त्ता है,–इसकी गुप्त महिमा विश्वासियोंका अंतरीय स्वामीभी नहीं जानसकता, जो कुछ है सो यही है. इसीका स्नेह–सत्य–हित सबमें है, इसी कल्पका सब चमत्कार है,–इसीका विश्वास रखो' यथेच्छा फल मिलेगा.' (शं.) इसमें क्या प्रमाण ? (उ.) अन्य प्रमाणोंसे रहित जो विश्वासियोंका विश्वास है सो. अर्थात् जैसा यह तैसा वोह और जैसा वोह वैसा यह–[विरोध हुवे [illegible]]

[शंका] तुम्हारी [आर्य] धर्म फिलोसोफी–तत्वविद्या उत्तम माननेमें क्या प्रमाण है ! [उ.] हमारे प्रमाण और कुदरती पुरावोंको हाल एक तरफ रखके यूरोपके शोपनहेयर, मान्यरविलियम, एम लुइस जेकोलियट, सरविलियमजोन्स, प्रो. हीकबनसेलेज, विकटरकोझीन, मेक्समूलर और थियोसोफीकल सोसाइटी वगेरेके लेख बांचो. उनमेंसे दो विद्वानोंका लेख यहांभी लिखदेते हैं.–उसके बांचनेसे आर्यावर्तके विज्ञान विद्याकी उत्तम असाधारणता और यूरोप तथा बाइबल वगेरेके विज्ञान–विद्याकी न्यूनता और साधारणता स्वयं जान सकोगे.

In India our religion (Bible) will now and never strike root; the primitive wisdom of the human race will never be pushed aside by the events of Galilee. On the contrary, Indian wisdom will flow back upon Europe, and produce a thorough change in our knowing and thinking. *A. Schopenhauer.*

* * * * *

We are in our Eastern Empire not brought into contact with tribes who melt away before the superior force and untelligence of Europeans. Rather are we placed in the midst of great and ancient peoples who attained a high degree of civilsation, when our forefathers were barbarians, and had a polished language, a cultivated literature and abstruse system of philosophy, centuries before English existed even in name. Manior Williams. 7.

ओ३म्
अद्वैतादर्श.
(प्रवेश)
"ब्रह्मसत्यं जगन्मिथ्या जीवोब्रह्मैव नापरः"
(वेदांत सिद्धांत)
* पूर्वपक्षी—(समीक्षक—शोधक—जांचक) *

जो स्व वा पर मंतव्य—सिद्धांत—लक्ष्य—अनुभव—निश्चय,—परीक्षा वा बोध प्रसंग समय प्रतिपक्षीकी परीक्षा वा जिज्ञासुके ध्यानमें, परीक्षा विषे पार उतारने वा दरसानेवाली कोइ योग्य रीति-प्रकारसे योग्य परीक्षाका विषय न हो वा न होसके अर्थात यथार्थ—अबाधित ज्ञानका विषय न हो—न होसके—सो मंतव्य, (उक्त दोषाभाव होने तक) अर्थ शून्य जैसा है—मानो कल्पित—वा भ्रम रूप अथवा "अकेली कहानी गुडसेभी मीठी" इस कहावत समान होय नहीं. अतएव किसीके विश्वासवाले वा कथन मात्र सिद्धांतके ऊपर आधार नहीं रखा जाता; यह नियम, सर्व धर्म (पंथ-संप्रदाय-दीन-मजहब-वाडा), आचार्य (गुरु, पादरी, इमाम, मुरशद, बिसपादि) वा ग्रंथ वा उपदेश प्रति, नियत होसकता है. वे (धर्माचार्यादि) जबतक, परधर्मी विद्वान, बुद्धिमानों कीसंमति सहित अपना मुख (सिद्धांत—धर्म-) विचार पूर्वक नहीं देखें ओर स्व दोषोंको नहीं सुधार सकें तब तक, दूसरोंको कैसे आकर्षसकेंगे; वा विश्वास दिलासकेंगे ? नहीं. किंतु अज्ञान, छळ, अधर्म, दंभ, दंड, अन्याय वा धूर्तताके सिवाय, सत्य यथार्थ ओर नीति मार्ग पूर्वक उनका मनोरथ सिद्ध नहीं होसकता.

---

* यह ग्रंथ वेदांत पक्ष जांचका संबंधी हुये भी हरकोई मतके अनुयायी शोधक जिज्ञासुको उपयोगी है, देखो प्रस्तावनागत दोहा नं. ३ की टीका.

एतद्दृष्टि जो, भारतगत, मत–पंथो (न्याय, वैशेषिक, योग, धर्म मीमांसा, सांख्य, बृहस्पति, बौद्ध, जैन चार्वाक, याहूदी, नसारा–ख्रिस्ति, पारसी, मुसलमान, आर्यसमाजी, ब्रह्मसमाजी, पौराणी–वैष्णव, शैव शाक्त, स्मार्त, नारायण स्वामी वगेरे-नानक, कबीर, दादुपंथी, रामस्नेही, थियो सो-फिस्ट, सायन्सी, आकर्षणी. इत्यादि) मेंसे लोक विषे सर्व शिरोमणि, प्रसिद्ध प्रचलित वेदांत सिद्धांत माना जाता है; जो कि संक्षेपसे यह हे:—

वेदांत सिद्धांत.*

१–"जीव ब्रह्मकी एकताके ज्ञानसे (जोके, ऋग्, यजु, साम, अथर्व यह अपरा विद्यारूप कर्मोपासना, व्यवहार प्रतिपादक भाग–स्वतः प्रमाण चार संहिता श्रुति ग्रंथ इतर तन् संबंधी तदेतर स्वतः प्रमाण-ज्ञानभाग–परा–ब्रह्मज्ञानकी साक्षात्से बोधक–विद्या रूप उपनिषद्की श्रुति-ईश्वरोपदेश-तत्त्वमस्यादि महावाक्य शोधन विना, अन्यप्रमाण वा प्रकारसे नहीं होता, अर्थात ब्रह्मज्ञान वा जीव ब्रह्मकी एकताका ज्ञान, कर्मोपासना किये हुये अधिकारी-विवेक, वैराग्य, समादि और मुमुक्षुता साधन संपन्न पुरुपको उपनिषद् ग्रंथके एकता बोधक महावाक्य विना कदाचित् भी, नहीं होता) जीवका मोक्ष-"अज्ञान -अज्ञान-ओर उसके कार्य अध्यासरूपबंधकी अत्यंत निवृत्ति ओर नित्य परमानंद स्वरूपकी प्राप्ति" होता हे. उसके विना, अन्यप्रकार–धर्म, पंथ, मतमतांतर मानने वा उनपर चलने से नहीं होसक्ता. ज्ञान पश्चात् विदेह मोक्ष हुये पीछे, पुनरावृत्ति नहीं होती.

---

* मंतव्यके हेतु, उदाहरण साहित–समग्र विस्तार, इस लिये नहीं लिखते के, इस ग्रंथका उपयोग विशेषतः वेदांतीको किंवा संशयात्मक पुरुषको होनेवाला हे; जो के वेदांत पक्ष ओर तद्गतप्रक्रिया, शैली ओर उसकी परिभाषाका ज्ञाता होगा. इतनाही नहीं किंतु उक्त दृष्टि ओर विस्तार भयके कारण वक्ष्यमाण खंडन मंडन–प्रसंगमेंभी संक्षेपसे उपयोगी विषयकाही कथन हुवाहे, एसा जान लेना.

२--ब्रह्म (सत्* चित्-चेतन ज्ञान प्रकाश स्वरूप-आनंद अर्थात् अस्ति भाति प्रियस्वरूप-अखिल ब्रह्मांडके वाह्यांतर व्यापक चेतन, सबका अधिष्ठान-आधार) अबाध्य-अनादि अनंत-सत्य है, तदंतर भावरूप त्रिगुणात्मक माया-अज्ञान-ओर उसके नाम रूपात्मक जगत--ब्रह्मांड-कार्य मात्र-सदासद् विलक्षण--अनिर्वचनीय अध्यासरूप-बाध्य, अनादि सांत हे.

३--ब्रह्म (१) माया (अविद्या-मूलाज्ञान-आवरण विक्षेप शक्तिवाली वस्तु विचित्र रूप-प्रकृति) (२) जीव (साधिष्ठान साभास अविद्या वा व्यष्टि अज्ञान वा अंतःकरण अवच्छिन्न-विशिष्ट चेतन) (३) ईश्वर (साधिष्ठान साभास माया वा समष्टि अज्ञान अवच्छिन्न विशिष्ट चेतन--जगतका अभिन्ननिमित्तोपादान कारण) (४) जीवेश्वरका भेद (५) ओर जड चेतनका संबंध (६) यह षट अनादि पदार्थ हैं. परंतु ब्रह्मेतर अन्य, सर्व सांत तथा मायिक--मायाकी अपक्षासे हैं ओर व्यवहारिक दृष्टिसे सत्य, ओर पारमार्थिक दृष्टिसे प्रातिभासिक (सत्तावाले) मिथ्या हैं; ब्रह्म परमार्थ(सत्तावाला) सत्य हे.

४--मिथ्या माया ओर उसके कार्य नामरूप मात्र, रज्जु सर्पमें जैसे रज्जुका सर्प, विवर्त हे वैसे--ब्रह्म चेतनके विवर्त हैं--ओर इस परंतम अध्यस्तकी--जेसे रज्जुज्ञानसे सर्पकी निवृत्ति होती हे वेसे-अधिष्ठान ब्रह्मके ज्ञानसे निवृत्ति होती हे.

५--भावरूप मिथ्या-अध्यासरूप--प्रातिभासिक, दृष्टमात्र होनेसे ब्रह्म वस्तु विषे इस अवस्तु (जगत--माया) का अध्यारोप किया वा कहा जाता हे. क्योंकि उस कल्पित-की निवृत्ति अधिष्ठान स्वरूप होती हे. तद्भिन्न अन्य नहीं.

---

* श्रीमद्भगवद्गीतामें सत् वा असत् नहीं कहा जाता एसा, विलक्षणभी मानाहे. "अनादिमत्परं ब्रह्म नसत्तन्नासदुच्यते." १३-१२

६–पूर्वोक्त समग्र कथनका सार यहहे ' के जीव ब्रह्मका, उपाधी त्यागके अभेदहे (सोपाधी जीवका व्यवहारमें भेदहे) ओर केवल (सजातीय, विजातीय, स्वगत भेद रहित, अद्वितीय, निर्धर्म, अक्रिय, अपरिणामी, अच्छेद्य, अभेद्य, शुद्ध, चिन्मात्र व्यक्ति) ब्रह्म सत्यहे. तदेतर सर्व–माया० (अज्ञान, ओर उसके कार्य जीव, ईश्वर, भेद, संबंध, भाव, अभाव, नभादितत्व, उत्पत्ति स्थिति प्रलय, कर्मोपासना, साधन, साध्य, वेद, ज्ञान, उपदेश, वक्ता, श्रोता, बंधमोक्ष, ओर त्रिपुटी मात्र,–ब्रह्मांड मात्र) स्वप्नवत् मिथ्याहे''

उस सिद्धांतके अभिमानी–अनुयायी वा उपदेष्टा भाइओंके सन्मुख, नित्य प्रति उनके मुखरूप मंतव्य परखने–दर्शन करने–वास्ते प्रश्न समूहात्मक यह, अद्वैतादर्श (अद्वैत दर्पन) अर्पण करतेहें. कृपा पूर्वक सेवाको स्वीकारके ओर "वादी भद्रं न पश्यति" इस वाक्य समान कथनवाला, दोषपात्र नहीं ठरता, एसा ध्यानमें लेके ओर विचार–निर्णय–सर्वदा उत्तमहीहे, स्वपरको लाभिष्ट होवडताहे इत्यादि शील दृष्टि रखके, मेरेसे कदाच अरुची आवे तो, मुझे क्षमा करके उभयके हित सुधारनेमें प्रवृत्त रहनेकी आशा रखताहुं.

* * * * * * *

(सूचना)—''इस छोटेसे ग्रंथमें प्रसंगों विषे, कोइ विषयका विस्तार इस दृष्टिसे कियाहेकि जिसकी प्रसिद्धि नहीं वा न्यूनहे. यथा–उपनिषदकी स्वतः प्रमाणताका विस्तार कियाहे. ओर कोइ विषयका विस्तार इस दृष्टिसे नहीं लिखा के वेदांतके ग्रंथोमें अति प्रसिद्धहे, इतनाहीं नहीं किंतु उसके अनुयायीके कंठस्थहे. यथा विवर्तवाद, वा पारिभाषिक पदोंका अर्थ (ब्रह्मको कहींज्ञाता, कहींज्ञान स्वरूप, कहीं केवल

प्रकाश स्वरुप कहीं साक्षी–वृत्ति उपहित वा अंतःकरण उपहित चेतन–इत्यादि),–वेदांत संप्रदायीको सम्यक् ज्ञात होनेसे विस्तार नहीं कियाहे.

कोइ विषयका रूपांतर वा उसी रूपसे पुनरुक्ति रखनेका हेतु, वाचकके श्रमका बचाव, लाभ विशेष ओर प्रसंग वश हे. जेसा के अपरोक्षत्व ओर ज्ञातृत्व प्रसंगमें हे; अतःवे पूर्वोक्त न्यूनता दोष नहीं हे.

इस ग्रंथमें जोकुछ वेदांतमत विषे लिखा हे वोह, हिंदी भाषावाले साधारण वाचक जिज्ञासुओंको, झट समझमें आ जावे ओर उपयोग योग्यहो; इस दृष्टिसे सरल प्रकार ओर सुगम रीतिसे संक्षेपमें लिखा हे; अन्यथा वेदांतकीफीलोसोफी. न्याय, जैन, बौद्धादि सर्वकी खंडनकर, सूक्ष्म विचारवालोंके योग्य हे. अतःवाचक महाशयको ध्यान रखनाचाहीए के वर्तमानरूढी अनुसार इस ग्रंथ मात्रके वांचनसे वेदांत पक्षके खंडन वा मंडन करनेको उद्यत न हों. वा उस योग्य, अपनेमें योग्यता नहीं समझलेवें. परंतु हां, जो वेदांत संप्रदायके ग्रंथ,[१] जोके विशेषतः संस्कृत ओर कुछ हिंदीमेंभी हें, उनका ठीक श्रवण मनन ओर कुछभी निदिध्यासन कियाहो तो, उद्यत हों; ओर सृष्टि नियम जान लियेहों तो, खंडन वा मंडनकी

---

१ जेसेकि वेदांत सूत्र, उपनिषद, श्रीमद्भगद्गीता ओर इन तीनोंका भाष्य तथा टीका, चित् सुखी, संक्षेप शारीरक, पंचदशी, ख्यातिवाद, विचार सागर, विचार माला, वृत्ति प्रभाकर, वेदांतादर्श, पदार्थमंजूषा, एकादशस्कंध, उपदेश सहस्री, अद्वैतकौस्तुभ–तत्त्वानुसंधान, योगवाशिष्ट, अष्टावक्र, आत्मपुराण, अनुभूति प्रकाश, अद्वैतसिद्धि, नैष्कर्म्यसिद्धि; वेदांतसार, वेदांत मुक्तावली, स्वाराज्यसिद्धि, विवेकचूडामणी, अपरोक्षानुभूति वगेरे—

अपनेमें योग्यता समझलेवें, अन्यथा व्यर्थ विलाप मात्र है.

मेरे इस ग्रंथ गत लेखके खंडन होनेसे मैं, मेरा अपमान वा निंदा नहीं समझता, क्योंकि[१] जैसेकि पराधीन रहना, स्वतंत्र होनेका उपाय नहीं लेना, स्वदेश वा स्वआर्य स्वाभिमानाभाव, हिंदु भाइयोंका स्वभाव पडगयाहै तद्वत् परस्परके खंडन मंडनकाभी है. एसे स्वदोषको न जाननेवालेका निंदा, दोष नहीं. [२]वर्त्तमान विषे अपने (सत्यहो वा नहीं परंतु) संस्कार (खयाल) बाहिर डालने वा पढनेकी धारा-प्रवाह होरहाहै उसके विना, कुविरोधियोंका निवारण होना अशक्य होगा, एसा माना जाताहै, सारांश एसी व्यवस्थामें सुनीयतवान प्रयोजककी निंदा, अपमान, निंदा अपमान नहीं [३]मेरा उद्देश किसीकी निंदा वा खंडनमें नहींहै; किंतु जो किसीके दरसाये हुये दोष, अपने वा स्वमतमें होंतो, मनवादी उनको निवारण करके पक्षपात रहित सन्मार्गपर आवें वा दरसावें ओर यदि निर्दोष होंतो, अन्य सदोषियोंका पराजय करें वा तदार्थ उचित्त उपाय लें; अर्थात उनके दोष सिद्ध करके प्रसिद्धिमें जनावें ओर उनको समझाके लोक हितार्थ एकमत-धर्मस्थापनका उपायलें. एसे सुउद्देशमें खंडनखंडन, निंदानिंदा, अपमान अपमान नहीं. ए तदपि* अपनेमें अयथार्थ दोषभी सुनके मुझको प्रसन्न होना चाहिये परंतु कब ! जबके उद्देश सफल हो.

क्या अच्छाहो कि जो, इस ग्रंथका लेख अयथार्थ मानतेहों वे भाई, क्लिष्ट शब्द ओर लक्षण रहित, सरल शब्द ओर लक्षण तथा लेख पूर्वक, साधारण लोकोंकी बुद्धिमें भी

१. २. ३. * जेसी जाकी बुद्धिहै वेसा कहे सुनाय, उसका बुरा न मानिये लेन कहांसे जाय.

आनावे ऐसे प्रकारसे, ग्रंथ गत शंकाओंका निवारण (ग्रंथके लेखका खंडन) जोकि शब्दोंकी मारामारी मात्र वा अयथार्थ नहो किंतु यथार्थ हो, ग्रंथ लिखित सरल भाषामें लोकोपकारार्थ प्रसिद्ध करें. और जो यथार्थ समझें वे, इसको स्वीकारने पर, जैसा योग्य–उचित जाने वैसा करें.

दर्शन पहिला–१

(जीव ब्रह्मकी एकताका प्रमाण प्रसंग.)

"जीव ब्रह्मकी एकता है" इसमें क्या प्रमाण है? इस प्रश्नके उत्तरमें जो विचार किया जाय तो, यह विषय किसी प्रमाणसेभी सिद्ध नहीं होता है क्योंकि ज्ञानके साधन–करण-को प्रमाण कहते हैं. सो वे प्रत्यक्षादि हैं उनमेंसे

(प्रत्यक्षाभाव)

वेदांत रीतिसे "विषय चैतन्याभिन्नं प्रमाण चैतन्यं-प्रत्यक्षम्" यह प्रत्यक्ष ज्ञानका लक्षण है अब यदि, जीव ब्रह्मैकताके ज्ञानका साधन–करण श्रोत्रादि इंद्रिय, मन वा बुद्धि वृत्ति*को मानें तो, ब्रह्म, इंद्रियादिकका विषय होगा. परंतु "[1]यतो वाचो निवर्तंते अप्राप्य मनसा सह" (जहां वाणी और मन नहीं जासके, ऐसा ब्रह्म है) तथा "[2]यद्वाचानभ्युदितं येन वागभ्युद्यते तदेव ब्रह्म इत्यादि" (जिसको श्रोत्रादि इंद्रिय और मन नहीं विषय कर सके–नहीं जानसके, किंतु श्रोत्रादि जिस करके प्रेरित होते हैं और श्रोत्रादिको जो जानता है वा जिसके विषय हैं सो, ब्रह्म है) इत्यादि वेदांति

---

* यह वेदांत रीतिके साधन हैं. वेदांतेतर शास्त्रकारोंके विकल्प (इंद्रिय संनिकर्ष, संयोगादि, विषय संबंधादि) का इन्हींमें समावेश होना, जान लेना चाहिये. १ तैत्तिरीयोपनिषद्. २ केनोपनिषद्.

योंकी श्रुति हैं सो, अप्रमाण होंगी. जो यह कहें के वेदांति-योंकी श्रुतिमें "मनसै वेद माप्तव्यं" (यह ब्रह्म मन करकेही जाना जाता है) मन करके जाननाभी लिखा है. तो, उभय श्रु-तिमें विरोध दोष होगा. जो यह मानें के "एक श्रुतिमें सं-स्कारित-साधन संपन्न-वृत्तिका विधान है और एकमें असं-स्कारित का निषेध है अतः विरोध नहीं, एसा अर्थ अध्या-हार है" सोभी समीचीन नहीं क्योंके उनके सिद्धांतमें मनतो जड है-मायाका कार्य है, जडमें ज्ञातृत्वका अभाव है अतः म-नमें ज्ञातृत्वके* अभावको लेके उक्त अध्याहार अर्थकी कल्प-ना अनुचित है; किंतु विरोधका परिहार नहीं होता. इससे यह सिद्ध हुवाके जीव-ब्रह्म है. सो इंद्रिय और मनका (प्र-त्यक्ष प्रमाणका) विषय नहीं. और जो पूर्वोक्त लक्षण पर दृ-ष्टि डालके विचारें तब तो, अद्वैत पक्षमें प्रासंगिक विषय (जी-व ब्रह्म चेतन वा उनकी एकता) गत चेतनसे इतर किसो अन्य विषय चेतन वा प्रमाण चेतनके अस्वीकारसे उक्त ल-क्षणके लक्ष्य-प्रत्यक्ष ज्ञानका, प्रसंगमें अवसर वा उपयोग नहीं होसकता† निदान पूर्वोक्त उभय रीति करके सहज विचार बलसे यह परिणाम निकल आता है के उनकी एकतामेंभी प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं. और न प्रत्यक्ष प्रमाका विषय.

(अनुमानाभाव.)

जब यूंहै तो, अनुमान प्रमाणकाभी विषय नहीं होस-कता. क्योंके उसका विषय जोलिंगी, उसका ज्ञान स्वप्रत्यक्ष लिंगके आधीन है. जेसेके जब कहीं धूम प्रत्यक्ष देखें तब, प्र-

---

* इसका विवेचन आगे वांचोगे. वेदांत पक्षमें ब्रह्म,मनादि प्र-माणका विषय नहींहै. एसा मानतेहैं अतः यहां विस्तार नहीं किया.

† विशेष आगे वांचोगे.

र्वे कालमें धूम अग्निके सहचारका प्रत्यक्ष ज्ञान जन्यजो अनुभवहे उसकरके व्यभिचार रहित व्याप्ति सहचारकी स्मृति होके "यहां अग्निहे" एसा परोक्ष ज्ञान अनुमानसे होताहे. परंतु जिसने अग्नि ओर धूमके व्यभिचाररहित सहचारके दर्शन नहीं कियेहें उसको धूम देखनेसे अग्निकी अनुमिति नहीं होती. दार्ष्टांतमें विचारनेका यहहेकिः–ब्रह्म किसीका लिंग नहीं ओर न ब्रह्मका कोइ लिंगहे; एसा अद्वैत मतका मुख्य सिद्धांतहे. (जो एसा नहीं मानें किंतु लिंग लिंगी भाव मानें तो, द्वैतापत्ति होतीहे.) ब्रह्म किसीने प्रत्यक्ष[१] देखा नहीं, यह वातभी, अद्वैत मतसे सिद्धहे. क्योंकि वे ब्रह्मसे इतर कोइभी ज्ञान स्वरूप वा साक्षी–ज्ञाता नहीं मानते. ओर मिथ्या माया–अविद्या–अंतः करण उस सत् चिद्का साक्षात्, करभी नहीं सकते. अतः ब्रह्म प्रत्यक्षका विषय नहीं. जो कदाचित किसीने उस (ब्रह्म)को देखाहे वा अनुभव कियाहे, एसा मानभी लेवें तो, स्वसिद्धांतका त्याग होगा; क्योंकि "ज्ञाता ज्ञेय भिन्न २ होतेहें" यह नियमहे, इस प्रकार द्वैतापत्ति होगी. ओर अबभी जो अद्वैतवादी उसके अनुभव होने वा अपरोक्ष होजानेकी कहेगा तो, स्वपक्ष त्याग परिणाम निकलेगा. अर्थात् द्वैत सिद्धांत मानलेना पडेगा. तथा वेदांतियोंकी पूर्वोक्त श्रुति अप्रमाण होजायगी.

---

१ योग वा अन्य ग्रंथोंमें जो ब्रह्मको साक्षात् मानाहे सो तो, द्वैतवादकी रीतिसे मानाहे (वा सिद्ध होताहे) अतः उनकी साक्षीकी आवश्यकता नहीं. तथाही यहां प्रसंगमें वेद रुप वा स्वतः प्रमाण रूप जो ग्रंथ नहींहें उन ग्रंथ वा शास्त्रोंका प्रसंग नहीं, इसलिये उनका वा उनकी साक्षीका यहां उपयोग नहीं.

जो, यह कहो के एकतामें अनुमान प्रकार होसकता है; जेसे के, जीव ब्रह्म एकहे, चेतन होनेसे; जहां जहां चेतनत्व, वहां वहां ब्रह्म अभेद. जेसे ब्रह्ममें. इस अनुमानको साक्षी यहहे कि श्रुति "अद्वितीय–एकहो चेतन, बतातीहे." यह अनुमान प्रकार समीचीन नहीं किंतु हास्य जनकहे. कहां अनुमान मर्यादा ओर कहां उसमें श्रुति प्रमाण घुसादेना. ओर वोह भी साध्य× ॥ तथा इसका विरोधी अनुमान भीहे. जेसे के, जीव ब्रह्म भिन्नहे. स्वरूप भेद (ब्रह्म चेतन व्यापक, जीव चेतन व्याप्य, परिच्छिन, जीव कर्त्ता भोक्ता अल्पज्ञ, ओर ब्रह्मअकर्ता अभोक्ता सर्वज्ञ इत्यादि) होनेसे. जहां जहां स्वरूप भेदत्व वहां वहां ब्रह्मका भेद, जेसे ब्रह्म नभ ओर परमाणुमें (हम अनुमान प्रमाणमें शब्द प्रमाण नहीं देते; क्योंके सो, अनुमान प्रकारसे विपरीतहे.) उपरांत जो, आग्रह करके वेदांती भाइ, जेसे आद्य ज्ञाता अनुपदेश, विषयसाधनके भिन्न व्यापारकी व्याप्ति अनुभव करके स्वभिन्न अदृष्ट नाना इंद्रियों (रूपादि विषयके चक्षुवादि भिन्न करण) का अनुमान करताहे वेसेही, अदृष्ट ब्रह्म ओर जीव ब्रह्मकी एकतामें कोई रीतिसे भी, अनुमानका उपयोग लेगातो, व्यभिचार रहित सहचार व्याप्तिके स्वीकारनेसे स्वसिद्धांत विरुद्ध द्वैतापत्ति माननी पडेगी. ओर तिसपरभी व्याप्ति, तद्दर्शन तथा तद्द्रष्टाके विवादका निवारण शेष रहेगा.

निदान पूर्वोक्त प्रकारसे अनुमानका वहां उपयोग नहीं, ओर वेदांती लोकभी इसको ब्रह्म वा ब्रह्म जीवकी एकतामें स्वतंत्र प्रमाण नहीं स्वीकारते; इसवास्ते विस्तार नहीं लिखा. अतः ब्रह्म (जीव) प्रत्यक्षका विषय नहीं होनेसे अनुमानका

× आगे वांचोगे

विषय नहीं. इस रीतिसे ब्रह्म स्वरूप जीव, जीव स्वरूप ब्रह्म, अनुमानका विषय नहीं. इससे यह स्वयं सिद्ध होगया के जीव ब्रह्मकी एकता अनुमानकाभी विषय नहीं.

(शब्द प्रमाणाभाव.)

वेदांत संप्रदाय मान्य षट् प्रमाणोंमेंसे तीसरा शब्द प्रमाणहे; उसका विचार करतेहैं:—तहां, शब्द प्रमाणमें मुख्य वेद (४ संहिता भाग) को मानें तो, उस वेदमें वेदांतियोंके मान्य, जीव ब्रह्मकी एकताके प्रतिपादक 'तत्त्वमसि'' ''अहंब्रह्म'' यह महा वाक्य नहींहैं. वैसेही 'अयमात्मा ब्रह्म' 'प्रज्ञानमानंद ब्रह्म' वाक्यभी नहींहैं; अतः इसमें शब्दप्रमाणभी नहींहै. क्योंके यह वाक्य उपनिषद् ग्रंथोंकेहैं. यदि जीव ब्रह्मकी एकतामें उपनिषद् ग्रंथ प्रमाण मानें तो, वेदरूप न होनेसे उनके साथी आर्यजनको प्रमाण नहींहै.

(उपनिषद्, वेद और स्वतः प्रमाण नहीं.)

जो कहोके उपनिषद्भी वेद ग्रंथहैं अर्थात् वेदका एक भागहै (ब्राह्मण ग्रंथ गत वेदका ज्ञान कांडहै) सो, यह बात समीचीन नहींहै. अर्थात उपनिषद् ग्रंथ उसके वाक्य नहींहैं के जिसके (सर्वज्ञ ईश्वर वा अन्य कोइ पुरुषके वा स्वभावतः स्वयं अनादि) वेद ग्रंथमें वाक्यहैं; अतः वेद अनुयायीकोभी वे स्वतः प्रमाण नहीं. उसका पुरावा नीचे लिखतेहैं.—यदि हमारा शोधन अयथार्थ होतो, युक्ति, सृष्टि नियम, और प्रत्यक्ष प्रमाणसे* खंडन करना चाहिये.

छांदोग्य, बृहदारण्यादि उपनिषदोंमें (जिसमें तत्त्व मसि, अहं ब्रह्म, महा वाक्यहैं) गार्गी, जनक, उद्दालक, श्वेत-

* तिन अनुकूल वा तिन अविरूद्ध अनुमानकाभी अर्थापत्तिसे यहां ग्रहण हो सकताहै.

केतु, मैत्रेयी, नारद, सनतकुमारादि और देवकी नंदन (कृष्ण) और अनेक ऋषि तथा राजाओंके संवादरूप इतिहास तथा नामहैं तथा ब्रह्म वेत्ताओंकी वंसावळियें लिखीहें; यथा ब्रह्मासे मांडुक्य ऋषितक१२पेढी, नाम लेलेकर जनाइहें. मांडुक्य पुत्र सांजीवसे लेके पौतमाशी ऋषितक ३७ नाम लिखेहें. निदान ब्रह्मासे लेके बृहदारण्य बननेके काळ जो विद्यमान पौतमाशी, वहां तक, पचास पेढी बताइहें और दूसरे वंशमें हिरण्य गर्भादिसे पौतमाशीतक ६६ छहासठ नाम *जनायेहें. तथा उपनिषदोंमें भूत वा भविष्य प्रत्ययसे कोइभी वाक्य नहींहे. जेसे "तत्त्वमसि" वाक्य प्रसंगमें उद्दालक ऋषि अपने पुत्र श्वेतकेतुको वर्त्तमान प्रत्ययसे उपदेश करताहै; एसा नहीं लिखाहेके उद्दालक और श्वेतकेतु हुये वा होंगे, उनका उपदेशहे. वेसेही वंसावळीमें यह नहीं लिखाहे के अमुकको अमुकसे ब्रह्मविद्या प्राप्त होगी.

पूर्वोक्त वृत्तांतसे सिद्ध होताहे के उपनिषद ग्रंथ सृष्टिके आरंभ पीछे बहोत काळ पश्चात् बनाये गयेहें. क्योंकि गार्ग्यादि सृष्टि उत्पत्तिके बहुत काल पीछे हुयेहें. कुछ नहीं तोभी, सृष्टि आरंभके ६६ छहासठ पेढी पीछे उपनिषद ग्रंथ बनाये गयेहें;यह उपनिषद ग्रंथोंसेहीं स्पष्टहे और वेदांती तथा आर्योंको मानना पडेगा. और वेदतो, सृष्टि उत्पत्ति काळमेंही हुयेहें, एसा पौराणिक,वेदांती और आर्यलोक मानतेहें; अतःउपनिषद् ग्रंथ वेदसे भिन्न, मनुष्यकृत होनेसे वेदवत् स्वतः प्रमाण नहीं.

---

* रामायण और भागवतमें ब्रह्मासे लेके रामचंद्र तक ६५ पेढी जनाइहें; इससे ज्ञात होताहेके बृहदारण्य, छांदोग्य, रामचंद्रजी महाराजके आसपास के समयमें बनेहें. वामदेव जनकादि उसी काळमें हुये हें; यह वात रामायण आदि ग्रंथोंसे स्पष्टहे.

यदि उपनिषदोंको ईश्वरकृत मानें सोभी, नहीं बनता; क्योंके ईश्वरको किसीके इतिहास वा साक्षी लेके इतिहास वा संवाद वा बंसावली लिखनेकी अपेक्षा नहींहे. कारण के ईश्वरको स्वतः सर्वज्ञ मानतेहें.

जो कदाचित् स्वसर्वज्ञताके अभावमें इतिहासरूपभी कहतातो "उद्दालकादि हुयेथे" 'उन्होंने एसा उपदेश किया वा उनमें एसा संवाद हुवाथा' एसे भूत प्रत्ययसे कथन होता. ओरमानलोकि कदाचित् इसी प्रकारसे लेखहोता तोभी, ईश्वरकी सर्वज्ञता ओर जीवोंकी साक्षी लेनेसे ईश्वरकी स्वयं प्रमाणतामें बाध आजाता. परंतु एसा लेख नहीं पानेसे उक्त आरोप नहीं करसक्ते. किंतु वर्तमान प्रत्ययके दर्शनसे "भूत कल्पोमें गार्गी आदि नहीं हुये किंतु वर्तमान कल्पमेंही हुये हें–सृष्टि आरंभ के पीछे हुयेहें." यह सिद्ध हुवा. जोके मनुष्योंके इतिहास, संवाद ओर साक्षीरूप लेख उपनिषदोंमें हें तथा सृष्टि आरंभके बहोत काल पीछे बनेहें अतः मनुष्यकृत होनेसे ईश्वर वाक्यवत् स्वतः प्रमाण नहीं.

जो, यह मानेंके गार्गीआदि भविष्य कल्पमें होंगे उनका संवाद लिखाहे. सोभी; सिद्ध नहीं होता, क्योंके "उद्दालकादि होंगे" एसा कहीं नहीं लिखाहे. अतः वर्तमानकल्पकेही उद्दालकादि हें ओर सृष्टिके आरंभ पीछे हुये हें. यही समीचीन हे.

जो, यह कहोके "उपनिषद वेदवत् अनादि कालसेचले आतेहें, इसलिये गार्गी उद्दालकादिकोंके कल्पकी कल्पना व्यर्थ हे." यह बातभी नहीं बनती; क्योंके जो, एसा मानेंके "उद्दालकादिक कभीभी नहीं हुये ओर उनके नामसे संवादरूप कथन हे." तो, ईश्वर मिथ्यावादी होगा. ओर मिथ्यावादी-

के वाक्य अप्रमाण होते हैं. जो, एसे कहोकि "कभी किसी कल्पमें हुये होंगे." तो, उस कल्पके पूर्व उपनिषद नहींथे, यह सिद्ध होगा. अथवा वही दोष (मिथ्यावाद) आवेगा; क्योंके वेद ग्रंथतो, कभीभी नहीं बदलता, कल्पांतमेंभी पूर्ववत् रचाजाताहे (यथा पूर्वमकल्पयत्. इति श्रुतिः), एसा पौराणिक, वेदांती ओर आर्योंका मंतव्य हे इसरीतिसे उपनिषद्, वेदसे भिन्न मान्नें पडेंगे.

जो, यह मानेंकि "भावी कल्पोंमें उद्दालकादि कभी होंगे" तो, उनके संवादसे ईश्वरको साक्षी लेना व्यर्थ हे, उलटा उसको सर्वज्ञतामें बाध आता हे. तथा दुराग्रहसे एसा मानभी लेवें तो, भविष्य प्रत्ययसे संवादका कथन होता. जो "भविष्यको वर्त्तमान प्रत्ययसे लिखें हें" एसा कहोगे, तो ईश्वर मिथ्यावादी वा छलीवा भूलवाला ठेरेगा. अनहुयेको साक्षीसे ज्ञान कथन वेदरूप नहींकहाजासक्ता, किंतु पूर्व श्रुत मानना पडेगा. बंसावलीमें नाम लिखे हें उनको भविष्य वक्ता ईश्वरके रखे हुये मान्नेसे, जीवकी स्वतंत्रता ओर नाम कथन–संज्ञामात्र का निषेध होजायगा. (इसका वृतांत आगे वांचोगे.)

जो, यह कहोकि उपनिषद् अनादिसे (संहितावत्) एसेही चले आतेहें, पूर्व उत्तरकी कल्पना नहींकीजासक्ती तो, "यथा पूर्वमकल्पयत्" (पूर्ववत् सृष्टि रचीजातीहे) श्रुति के अनुसार जिनजिन बंध मुक्त पुरुषोंका इतिहास उपनिषदमेंहे उनउनका जन्म, कल्पप्रति नित्य होनाचाहीए. जब यूं हेतो "[१]ब्रह्मज्ञानसे मोक्ष होतीहे, पुनरावृत्ति नहीं होती" यह नवीन वेदांतियोंका सिद्धांत व्यर्थ होजायगा. क्योंके उद्दालक ओर श्वेतकेतु तथा याज्ञवल्क्यादिको जब तब

१ "ज्ञाना देवतु कैवल्यं." "नस पुनरावर्त्तते" इत्यादि श्रुति.

(किसी कल्पमें) यथार्थ ज्ञान प्राप्त हुवा, एसा उपनिषदोंमें सिद्धहे. फेर उनका जन्म क्योंहो. जो, यह कहोके अधिकारी पुरुषोंका कितनेक कल्पतक जन्म होताहे तोभी, उक्त दोष-का परिहार नहीं हुवा; अर्थात् गत श्रुतिसे तो, अनंत कल्पों तक नित्य जन्म होना कहना पडेगा. जब यूं हे तो, उद्दाल-कादिका जन्म मरण अनादि अनंत रहना चाहिये. क्योंकि जबतब किसी कल्पमें ज्ञान होनेकर मोक्षको सादी मानके अनंत मानना ओर उद्दालकादिककी बंधको अनादि मानके सांत कहना, यह सृष्टि नियमके प्रतिकूलहे. अतः उद्दालका-दिकको ब्रह्मज्ञान नहीं हुवा, एसा मानना पडेगा. वा ब्रह्म-ज्ञानसे कुछभी फल नहीं हुवा, एसा स्वीकार करना पडेगा. क्योंके गर्भवास ओर शरीर पास, यही मुख्य बंधहे सो, उ-नको प्राप्त होतारहताहे. जो, यह कहोके वे अज्ञानरहित ज्ञान स्वरूप, स्वेच्छासे जन्म लेतेहें. वस्तुतः मोक्षहें; तो, वे सदा मोक्ष स्वरुप हुये, एसा मानना पडेगा. जब यूंहे तो, उ-नको कभीभी बंध न प्राप्त होनेसे श्वेतकेतुको उपदेश निष्फल हुवा, एसा सिद्ध होगा. ओर उपनिषदोंमें तो, अनेक प्रकारसे उसको उपदेशहे. अतः वे नित्य मुक्त नहीं कहेजासक्के. जो, यह कहोकि लीलारूप संवादहे तौ, नित्य मुक्त ब्रह्म स्वरूपका जन्म होना मानना पडेगा, क्योंके वे अपनेको तो, सदा "अहंब्रह्म" जानतेथे तब "सो तूं हे" एसा वारवार कथनरूप लीला, बने नहीं, कारण यहके, वेदांतकी रीतिमें उनकी दृष्टिमें "सर्व ब्रह्मस्वरूपहे, ब्रह्म नित्य मुक्त ओर शुद्धहे. उसको उपदेश असंभवहे ओर तद्भिन्नको मुक्ती नहीं किंतु मिथ्याहे इत्यादि" समाया हुवा होना चाहिये अतः लीलारूप कथन व्यर्थ वा बकवाद होगा. इस रीतिसे उप-

निषदोंका अनादित्व सिद्ध नहीं होता.

जो, उद्दालकादिकका संवाद वर्तमान कल्पकाही मानें तो, सृष्टिके बहोत काल पीछे उनको उत्पत्ति होनेसे उनके इतिहास वा संवादके वक्ता उपनिषद्, वेदरुप नहीं हुये. तथा हि "मनुका वचन औषधीका औषधी हे." इत्यादि ब्राह्मण ग्रंथोंके वाक्योंसे, वेद ग्रंथको साक्षी मद मनुस्मृतिके कर्त्ता मनुमहाराजके पीछे, ब्राह्मण ग्रंथ बनेहें यह स्पष्ट हे.*

ओर उपनिषद् बननेके पूर्व लाखों वर्षोंमें जो ज्ञानवान हुये उनको ज्ञान नहीं हुवा, एसा "तंत्वौपनिषद पुरुषं पृच्छामि" इत्यादि वाक्यों करके सिद्ध होजानेसे उपनिषद गत ब्रह्मज्ञान-पराविद्या प्राप्त करनेवाले ज्ञानियोंकी जो बंसावली लिखीहे सो, झूठ हे; क्योंके वेदांती लोक उपनिषद् गत तत्वमस्यादि महावाक्योंसे इतर के, ब्रह्मज्ञनका अन्य साधन नहीं मानतेहें-ओर पूर्वकालमें तो, उपनिषद नहीं थे. अतः क्यातो, तत्त्वमस्यादि वाक्यवक्ता उपनिषद्के विनाभी, ब्रह्मज्ञानका अन्य साधनहे, एसा मानना पडेगा. अथवा तो, उक्त बंसावली कल्पितहे, एसा स्वीकारना पडेगा; उभय प्रकारसे उपनिपद् ग्रंथोंकी वेदरूपताका बाधहे.

जो, एसा मानेंके "ईश्वरका ज्ञान अनित्य हे, जीवोंके कर्मों अनुसार सृष्टिके आरंभकालमें उत्पन्न होता हे, ओर एक कल्प पीछे उसका अभाव होता हे. इस रीतिसे वेद उपनिषद इस कल्पके वास्ते हें ओर इस कल्पमें रचे गये हें. अनादि अनंत नहीं हें" तोभी, ईश्वरोक्त सिद्ध नहीं होते, क्योंके जिनका बनमें इतिहास वा संवाद हे, वे सृष्टिके आरंभ पीछे

* विशेष पूरावे देखने हों तो, स्वामी दयानंदकृत वेदभाष्य भूमिका ओर सत्यार्थ प्रकाश ग्रंथ बांचो.

बहुतकाल पश्चात हुये हैं. औरभी पूर्वोक्त (साक्षी लेनेसे ईश्वरकी अप्रमाणता, अनहुयेका संवाद इत्यादि) दोष आवेंगे.

जो, ईश्वरका ज्ञान नित्य मानें तो, पूर्वोक्त सर्व दोष (मुक्तका जन्म, पूर्ववत न रचना इत्यादि) प्राप्त होजावेंगे.

जो, उपनिषदकर्ता-ईश्वरको असर्वज्ञ मानें तो, उसके वाक्य स्वतः प्रमाण नहीं होसक्ते. औरभी विचारो के नारद-ऋषि, सनत्कुमारसे कहता हे कि मेंने ऋग्, यजु, साम और अथर्व यह चारुं वेद और सिक्षा कल्पादि पढे, परंतु मेरी शांति नहींहुइ (देखो, छांदोग्य). मुंडक उपनिषध गत "तत्रापरा" इत्यादि वाक्योंमें ऋगादि चारुं वेदोंको अपरा विद्या लिखा हे. (पराविद्या—ब्रह्म विद्या नहीं कहा हे)

केनोपनिषदमें "इति सुश्रुम पूर्वेषां" (इस प्रकार पूर्वपूर्वके महात्माओंसे सुनते हैं) वाक्यसे स्पष्ट जानाजाता हे कि उपनिषद् ग्रंथ बननेसे पहिलेभी ब्रह्मविद्याके ज्ञाता थे. केनमें ही "उपनिषदंभो ब्रूहो" अर्थात् शिष्य प्रश्न करताहे के उपनिषद कहो; तब गुरुने उत्तर दिया कि, जो एक कहीहे दूसरी कहता हूं. यदि उपनिषदका अर्थ ब्रह्मविद्या करें तो, वहांही ब्राह्मी उपनिषद कहनेका लिखा हे. निदान उक्त प्रसंगसे तो, इस केननामक ग्रंथसेभी, उपनिषद कोइ भिन्न ग्रंथ होना सिद्ध होता हे.

कठवल्लीमें मृत्यु नचिकेताको उपदेश करता हे "मृत्यु धावति पंचम" मृत्यु आपही यदि उपदेष्टा होतो "मैं" पदही कहेता. इससे यह जाना जाता हे कि यह आख्यायिका अन्य कोइकी बनाइ हुई इसग्रंथमें डाली गई. वा बनानेवाला मृत्युसे अन्य हे.

प्रश्नोपनिषदके प्रारंभमें भाष्यकार कहतेहैं कि "अथ-

र्वेण वेदके मंत्रोंमें जो कहाहे उनका विस्तारसे अनुवाद करने वास्ते इस ब्राह्मण ग्रंथका आरंभहे."–महात्मा शंकराचार्य भी वेद मंत्रोंसे ब्राह्मण भाग भिन्न होना स्वीकारतेहे; फेर क्या ?

मुंडक उपनिषद् विषे अपराविद्यामें चार वेद गिनेहें, ओर प्रश्नोपनिदमें तथा अन्य स्थलोंमें तीन वेद गिनेहें, इससे सिद्ध होताहे केः–सब उपनिषदभी एक कालमें नहीं बनेहें, उन्होंके बननेमेंभी बहोत वर्षोंका अंतर होना चाहिये. ओर पहिले तीन वेद प्रसिद्धथे, काल पाके चार वेदकी प्रसिद्धि हुइ मानें तो, जिस ग्रंथमें तीन वेद लिखेगयेहें उससे बहुत काल पीछे 'चार वेद बतानेवाले ग्रंथ' बनेहें, एसा सिद्ध होताहे. ओर जिसमें वेदकी गिनती बताइहे व्हो ग्रंथ वेदसे भिन्नहे, एसा तो मूर्ख जनभी समझ सकतेहें. शिक्षा आदि छ अंग वेदके पीछे होनेका सबको मान्यहे; तो, जिसमें शिक्षा आदिकी विद्यमानता बताइहे सो ग्रंथ, उनके पीछे बनाहे, एसा सहेज समझमें आजाताहे.

तैत्तिरीयोपनिषदमें "शिक्षां व्याख्यास्यामः" ऐसे बहुत मनुष्य मिलके शिक्षा देतेहें. ओर कहीं तो, हम दोनोंको यशादि प्राप्तहों, वेसी स्तुति कीहे. फेर कहाहेके "संहिताया उपनिषदं व्याख्यास्यामः (हम संहिताका उपनिषद कहतेहें) इससे, सो लेख एकसे ज्यादे मनुष्योंने मिलके तैयार कियाहो ओर संहितासे उपनिषद भिन्नहों, एसा स्पष्ट सिद्ध होताहे.

तैत्तिरीय, आपही ऋषीकृत होना कहताहे–"एतददि विधाय ऋषिरवोचत" (ऋषि–महात्मा–यह उपदेश करतेहे)–एसा ग्रंथकार आपही कहताहे. ओर इस उपनिषदमें–तो राथीतर, पौरुशिष्टि, मोद्‌गल्य आदि ऋषि आचार्योंका

मत बताके–साक्षी लेके–धर्मोपदेश कियाहै. और ऋषि साथ मिलके उपदेश करतेहैं के:–"नो इतराणियेके चास्म च्छ्रेयांसो ब्राह्मणाः तेषांत्वया आसनेन प्रश्वसितव्यम्" इत्यादि.–हमसे इतर जो हमसे उत्तम ब्राह्मण होवे उसका आसनसे आश्वासन करना. इत्यादि वाक्योंसे, उपनिषद् ऋषिकृत हैं, एसा ध्यानमें आजाताहै. मात्र दुराग्रह छोडके निष्पक्षपात सहज विचार करनेकी आवश्यकताहै. ऊसग्रंथके बनानेवाले ऋषि, अभिमानरहित हुये समझ रहेहैं के हमसे श्रेष्ठ ब्राह्मणभी होंगे वाहैं. अर्थात् वोह ग्रंथ ईश्वरकृत मानना, सर्वथा ईश्वरपर अन्यायारोप करना वा हठ मात्रसे दुराग्रहहै.

ऐतरेयोपनिषद्में "तदुक्तं ऋषीणां" (सो ऋषीने कहा है) एसा स्पष्ट लिखा है.

भृगु वरुणका संवाद, मृत्युनचिकेताका संवाद, वामदेवका अनुभव, सनत्कुमार नारदका संवाद, जनक याज्ञवल्क्यका संवाद, इत्यादि बहुत साक्षीसे यही सिद्ध होताहै कि जिसमें जिसका संवाद वा नाम आता है, सोग्रंथ, उससे पीछे वा उस कालमें बना है. अतः "सृष्टि उत्पत्तिके लाखों वर्ष व्यतीत हुये पश्चात् उक्त ग्रंथ तैयार हुये हैं." एसा सिद्ध होगया.

ओरभी अनेक पुरावेसे स्पष्ट सिद्ध होता है के जिन ग्रंथोंमें वेदको इतर कहाहै, वा वेद ग्रंथको जिनमें चर्चाहै वे ग्रंथ, वेदसे भिन्नहैं. अब क्योंकर मानेंके उपनिषद वेद हैं वा वेदका भाग है.

जो, कहोके जेसे ईशोपनिषद यजुर्वेदका चालीसमा अध्याय है–(इसीको वाजसनेयसंहितोपनिषद् कहते हैं,) वेसे अन्य उपनिषदभी समझो, यह बातभी नहीं बनती. क्योंके

जैसे वेद ग्रंथोंके अध्याय, वर्ग, सूक्त इत्यादि विभाग हैं उनमें ईशोपनिषदवत् अन्योंकी गणना नहींहे. ओर वेदके तो, पद पदकी गणनाहे उस गणनामें ईशावास्यादि मंत्रोंके सिवाय अन्यकी गणना नहीं हे. अतःअन्य उपनिषद वेदरूप नहीं.

जो कहोके कितनेक मंत्र जो, वेद संहितामेंहैं वेही उपनिषदोंमें हें अतः वेदरूप हें. इसका उत्तर यहहे के वे, संहिताके मंत्र लियेहों. यदि यह वास्तवमें उपनिषदके होते तो, जेसे उपनिषदोंमें वेदोंके नाम ओर साक्षी हें; वेसे, संहिताके मंत्रोमें उपनिषदोंके नाम लेकर लेख होता; सो नहीं हे. किंतु "तंत्वौपनिषदं पुरुषंपृच्छामि" इत्यादि उपनिषद वाक्योंसे उलटा यह सिद्ध होताहे के उक्त वाक्य सूचक ग्रंथसे भिन्न, उपनिषद ग्रंथ हैं ओर व्यवहारमें तो, इस वाक्य सूचक ग्रंथकोभी उपनिषद कहतेहैं. यदि उपनिषद कोइ ग्रंथ नहीं किंतु ब्रह्म विद्याका नाम वा अन्य अर्थ मानें, तोभी, जिस ग्रंथमें यह वाक्य हैं उससे भिन्न, सोहोने योग्य हे. यहां उपनिषद नामसे प्रसिद्ध 'ग्रंथ'–शब्द प्रमाणको चर्चाहे.

जो, यह कहोके जिननामोंसे इतिहास सिद्ध करतेहो उनका अर्थ अन्य अलंकार रूपसे होगा. जेसेके "यक्षका रूपालंकारसे उपनिषदमें वर्णन हे." तो, मुझको यह कहनेका हे कि, जब तक शुद्धार्थका निर्णय करके प्रसिद्ध नहीं करो वहांतक तत्त्वमस्यादि महावाक्योंका अन्यही अर्थ हो, एसा क्यों न माना जाय ?

जो यह कहोके उपनिषिद, वर्तमान कल्प विषे कभीभी बने हों. परंतु उसमें जो कुछ ऋषियों करके कथन हे सो, स्वेच्छासे नहीं; किंतु ईश्वर प्रेरित हे. अतः उनके वाक्य स्वतः

प्रमाण हैं. सो वारताभी नहीं बनती. क्योंके परस्परके संवादोंसे यह निर्णय नहीं कर सकोगे के ईश्वर प्रेरितकोनसेहैं ओर अप्रेरित कोनसे हैं. जेसेके नारद सनत्कुमारके संवादमें "वेद पराविद्या नहीं" यह वाक्य ईश्वर प्रेरित मानते ही अनेक दोष आवेंगे. किंवा सर्वके कथन, इतिहास ईश्वर प्रेरितही मान लियेजावें तो, अरेबियन नाइट, पंचतंत्र, बायबल, कुरानभी ईश्वर प्रेरित समझके चुप रहना पडेगा. किंवा जिसकाल ईश्वरने प्रेरा, उस क्षणमें उस ऋषि (जिसके हृदयमें प्रेरा) को सुधथी वा नहीं? जो कहो के अपनी ओर वाक्योंकी सुध (ज्ञान) थी तब तो, उसीके प्रेरित सिद्ध होजायंगे. ओर न्यूनाधिकता आनेसे प्रमाण रूप नहींहोंगे. उत्तर पक्ष मानो तो, उन वाक्योंके अर्थ यहीहैं, वा ईश्वर अचिंत्य कलाका रहस्य अन्य है, यह निर्णय करना कठिण होजायगा. जो कोइ रीतिसे ईश्वर प्रेरित मानभी लेवेंतो, यह ग्रंथ वा मेरे रचे हूये ग्रंथमात्र ईश्वर प्रेरित नहीं माननेमें क्या हेतु दोगे? अर्थात् जो जो हेतु दोगे, वे सर्व, उन ग्रंथों वास्तेभी लगसकेंगे. ओर जब यथार्थता वा युक्ति प्रमाण पर आवोगे तो, आपका मंतव्य कपूर (उडता है वेसे) होजायगा.

जो, यह कहो के "जेसे मनुस्मृति ग्रंथ बहूत प्राचीन कालका होनेसे उसमें घालमेल (क्षेपक श्लोक)-"नमांस भक्षणे दोषो न मद्येनच मैथुने" इत्यादि हैं, वेसे उपनिषदोंमेंभी होगा; अतः क्षेपक भाग त्यागके अन्यके ग्रहण करनेसे उक्त दोष नहीं आवेंगे." तो, स्वपक्षका त्याग होगा; क्योंके वामदेव उद्दालक, श्वेतकेतुका संवाद निकालनेसे तत्वमस्यादि महा वाक्य क्षेपक जानके निकाल देने होंगे. जोइसको क्षेपक नहीं जानके रखोगे तो, जितने इतिहास गत उपर दोष लि-

खे हैं वेसर्व, प्राप्त होंगे तथाहि जैसे एक मण आटेमें अ-धसेर सोमल मिलजावे तो, उसको त्याग करना पडताहै. वैसेही उपनिषद्का त्याग करना पडेगा. नहीं तो, महाहानी होजायगी —सत्यासत्यका त्याग ग्रहण यथायोग्य नहीं होगा. एतद्दृष्टि (पूर्वोक्त कारणोंके विवेकसे) तत्त्वमस्यादि वाक्य बोधक उपनिषद् ग्रंथ, वेदरूप (ईश्वर कृत वा प्रेरित वाक्य) नहीं. स्वतः प्रमाण नहीं. किंतु सृष्टि आरंभ मानें तो. केनादि उपनिषद् ग्रंथ सृष्टि आरंभके बहुत (हजारो वा लाखों) वर्ष पीछे मनुष्योंने बनाये हैं, यह स्पष्ट सिद्ध होताहै. यद्यपि वेदांतियोंको मान्य ईशादि दस उपनिषदोंके बननेका एक काल नहीं होगा तथापि "तत्त्वमसि" बोधक छांदोग्य और "अहंब्रह्म" बोधक बृहदारण्य तो, सृष्टि आरंभके दद पेहीं पहिले नहीं बने किंतु पीछें बने हैं. यह बात निर्भ्रांत सिद्ध होजाती है.

(सू.) अनेक नाना ऋषिओंके कालांतरसे बनाये हुये उपनिषद ११२७ ग्रंथहैं उनमेंसे १०८ ग्रंथ ज्ञान भागमें हैं,* इनमेंसे ५२ उपनिषद् प्रसिद्धिमेंहैं, उनमेंसे ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुंडक, मांडुक्य, तैत्तिरीय, एतरेय, छांदोग्य, बृहदारण्य, यह दस उपनिषद, वेदांती प्रमाण गिनतेहैं, उनमेंसे ईशोपनिषद्तो यजुर्वेदकी चालीसवीं ४० अध्यायहै. शेष ऋषिकृत ब्राह्मण ग्रंथोंके भाग गतहैं. और ५२ बावनमेंसे इन दस उपनिषदोंसें जो इतर, वे इन दसोंके पीछे बने हैं; इसलिये पूर्वोक्त शंका—दोष जिनजिन उपनिषदोंमें प्राप्त होसके, उनउनमें यथोचित लगालेना चाहिये. सर्वदोष सर्व उपनिषद् वास्ते नहीं समझना चाहिये.

---

* एसा ग्रंथोमें लेख पातेहैं.

जो उपनिषद पदमात्रके शक्य-अर्थ-वाच्यमें विवाद लोगे तो, कुरानी-मुहम्मद मत सिद्धकर, अल्लोपनिषदभी (जिसमें "महंमदं रसूलं अकबरं" आदि मंत्ररूप लिखे हैं) प्रमाण माननेसे, कुरानी मतभी मानलेना पडेगा अतः यहां पद मात्रको चर्चा नहीं समझ लेना.

(उपनिषद् ग्रंथ, परतःप्रमाण प्रसंग)

यदि कहोकि "उपनिषद वेदरूप मतहो और स्वतः प्रमाणरूपभी मतहो, परंतु परतः प्रमाणरूपतो हो; क्योंकि ऋगादि ४ संहितारूप वेदग्रंथ ईश्वर प्रेरित स्वतः प्रमाण हैं, एसा आर्य लोकोंने सिद्ध कियाहे. यद्यपि वेदांती ओर पुराणियोंकी रीति वा अर्थ अनुसारतो, पूर्वोक्त दोष ऋगादिमेंभी प्राप्त होते हैं. जेसेकेः-ऋग्वेदमें वृत्रासुर और इंद्रकी लडाइ हे, "त्र्यायुषं जमदग्ने" इत्यादि मंत्रोंमें जमदग्नि नामा ऋषिकी चर्चा हे, कश्यपादि ऋषियोंकी चर्चा हे, सुरासुर के संग्रामका इतिहास हे. इत्यादि अनेकोंके इतिहास वेदोंमें हैं; अतः पूर्वोक्त दोषसे ग्रस्त हैं. तथापि इन मंत्र ओर प्रसंगों के अर्थ अन्य हैं (देखो दयानंद कृत भाष्य ओर कुमारिल भट्टके किये हुये अर्थ)-प्रसंगमें वृत्रासुर, मेघका ओर इंद्र, सूर्यका नाम हे, बादल बनने ओर वर्षा होनेका प्रकार जनाया हे. वोह प्रसंग, वृत्रासुर नामा असुर ओर इंद्र नामा सुरपतिका इतिहास नहीं हे. किंतु पदार्थ विद्यामें रूपालंकारहे. जमदग्नि ईश्वरका नाम हे. कश्यप प्राणके अर्थमें हैं. उत्तम पुरुषोंको सुर ओर दुष्ट, नीच, दस्यूको असुर कहतेहैं, उभयकी रूपालंकारसे चर्चा हे. किसीका इतिहास नहीं हे.

इत्यादि प्रकारसे अन्य स्थल*मेंभी जान लेना. विस्तार भयसे ओर निरुपयोगी जानके नहीं लिखते, जिसको देखनाहो वोह दयानंद स्वामी कृत ऋगादि वेद भाष्य भूमिका और उसका बनाया हुवा ऋग् यजुर्वेदका भाष्य देख लेवे. उसमें वेदके ईश्वर प्रेरित होने ओर स्वतः प्रमाण होनेमें अन्यभी अनेक शंका समाधान लिखेंहैं. महीधर, सायन, मोक्ष मुलरादिने वेदके षडांग यथार्थ नहीं जानके प्राचीन महर्षियोंके अर्थको नहीं समझके वेदोंके अर्थ बिगाडदियें हैं, परंतु स्वामी दयानंदजीने उनके अर्थके दोष और अन्यवादियोंकी शंकाका समाधान सविस्तृत लिखके वेदकोस्वतः प्रमाण सिद्धकर बताया है; अतः वेद सर्वमें आद्य ग्रंथ, इतिहास ओर पर साक्षी विनाका, पक्षपात रहित, सर्व सृष्टिके उपयोगी, सर्व सत्य विद्याओंका भंडार ईश्वरी ज्ञानका निर्दोष पुस्तक हे. उस स्वतः प्रमाणरूप पुस्तक गत यजुर्वेदके अध्याय ४० मं–१६. (ईशोपनिषद) में लिखा है के "योऽसावसौ पुरुषः सोऽहमस्मि" (जीव कहता हे के जो यह आदित्य मंडल विषे पुरुष हे सो यह मे हुं); वेदके इस आशयको लेके जीव ब्रह्मकी एकताके प्रतिपादक "तत्त्वमसि" "अहंब्रह्म" इत्यादि महा वाक्य कहे हैं, अतः परतः प्रमाणरूप उपनिषदके वाक्य, प्रमाण होनेसे वेदानुयायी को मान्य हैं" इति पूर्वपक्ष.

सो वार्ताभी समीचीन नहीं होसकती—यद्यपि वेदांति·

---

* जेसे वेदमें अग्नि, सूर्य, चंद्र, इंद्र, अश्व, वरुणादिकी जहां स्तुति प्रार्थना हे सो, जड वा जीव विशेषकी नहीं हे किंतु निराकार व्यापक ईश्वर चेतनकी हे अर्थात अग्नि आदि ईश्वरके नामभी हैं, एसा जानना.

यों प्रति संहिताकी स्वतः प्रमाणताका प्रसंग नहीं है; क्योंके वे उसको अपराविद्या मानतेहैं तथा यहां केवल उपनिषदोंका प्रसंग हे. तथापि वे लोक यजुर्वेदकी अध्याय ४० को उपनिषद मानते हें ओर कोइभी अन्यपक्षकारों (आर्यसमाजी) के सिद्धांतको लेके स्वपक्षको सिद्ध करना चाहें, एतदृष्टि वेद विषयमें प्रवृत्ति होनेसे संक्षेपमें लिखते हें:—

वेद प्रमाण प्रसंग.

"इति शुश्रुम धीराणां (यजु. अ. ४०)—(एसा हमने धीर पुरुषोंसे सुना हे). इति ब्रह्मविदो वदंति (अथर्व)—(एसा ब्रह्मवादी पुरुष कहते हें). तस्माद्यज्ञात्सर्व हुत ऋचः (पुरुष सूक्त)—उस परमेश्वरसे ऋग् यजु साम ओर अथर्व—चारुं वेद उत्पन्न हुये." इत्यादि अनेक वाक्य ओर युक्तियोंसे स्पष्ट होताहे के वेदोंमें किसीकी साक्षी हे. जो एसा नहीं मानें तो ईश्वर मिथ्यावादी होताहे; क्योंके हमने बुद्धिमानोंसे सुनाहे, एसा कहना ईश्वर प्रति अघटित हे. अतएव अन्यका कथनही सिद्ध हुवा. अर्थात् किसी वा कोइभी बुद्धिमान मनुष्यसे सुनाहे, एसा बलात्कारसे मानना पडेगा. यदि यह मानेंके ईश्वर जीवोंको उपदेश करताहे के, तुम एसा कहो कि "सो हमने धीर पुरुषोंसे* सुना हे," तो ईश्वर मिथ्यावादी हुवा. क्योंके वेद, आद्य उपदेश कहतेहो ओर मनुष्य तो पीछे उत्पन्न हुये हें. जो धीर पुरुषोंसे सुने पीछे ईश्वरका लेख मानो तो, पूर्वोक्त (उपनिषिद प्रसंगमें जो लिखे हें वे) दोष

* बहुवचन होने ओर धीर पद आनेसे [धीर पुरुषों] ईश्वर वाचक नहीं किंतु, ईश्वर भिन्न अनेक मनुष्य—जीव विशेषका वाचक वाक्य हे.

आनेसे स्वतः प्रमाणताका बाध होगा. जो वेद और मनुष्य—उभय साथके साथ मानो तोभी, उक्त दोष निवारण नहीं होता, यह स्पष्टही हे.

जिस ग्रंथमें यह लिखा हे के, उस ईश्वरसे ऋगादि उत्पन्न हुये; सो ग्रंथ, ऋगादिसे भिन्न होना चाहिये. अतः प्रचलित वेद ग्रंथ, ईश्वर प्रेरित नहीं. जो कहो के जीवोंको ईश्वर उपदेश करता हे तो "यथेमां वाचं कल्याणि" (यजुः) वत "यह ऋगादि मुझसे उत्पन्न हुये" एसा लेख होता. परंतु ऐसा नहीं होनेसे कोइ भिन्न ग्रंथ होना चाहिये. अथवा तो किसी नयोग्य विद्वानका रचा हुवा होना चाहिये. अथवा संहिता वा तदंतर सूक्तादि विभाग भिन्न भिन्न मनुष्योंके रचे हुये थे; उनको किसीने एकत्र किया.—इस समूहसे भिन्न वेद है वा इस समूहमें आपके ईश्वरका प्रेरित भागभी हो, इसकी तकरार यहां नहीं हे; परंतु उक्त वाक्य ईश्वर प्रेरित नहीं है यह स्पष्ट हे.

जो वेदको अनादि अपौरुषय मानोगे, तो मीमांसा और सांख्य मतका स्वीकार होगा. स्वपक्ष त्याग होगा. सत्य और अनंत होनेसे द्वैतापत्ति होगी. तथाही उसका उपदेश वा ज्ञान मनुष्योंको अनादि परंपरासे केसे हुवा, यह निर्णय होना कठिन होगा.

जो वेदको पौरुषेय (नित्यज्ञानवाले ईश्वर कृत वा प्रेरित वा आकाशवाणी द्वारा उपदेशक) मानोगे, तो न्याय मत स्वीकार होगा. और नित्य ज्ञानवाला ईश्वर अनादि अनंत सत्य होनेसे तथा उसके गुणका उपयोग नित्य मानना पडनेसे प्रकृत्यादिको नित्य मानना पडेगा. उससे द्वैतापत्ति होगी. तथा किस प्रकार उपदेश किया, इसका निर्णय नहीं बता सकोगे. जो मूर्तिमान होके उपदेश किया मानोगे तो, व्यापकको

मूर्त्ति न होसकनेसे पक्ष असमीचीन रहेगा. जो आर्य समाजियोंके समान–वाजिंत्रवत् हृदयमें प्रेरा मानोगे वा सीखे सिखाये मनुष्य उत्पन्न किये, एसा मानोगे तो, ईश्वरने प्रेरे, एसा सिद्ध नहीं होसकेगा; किंतु मंत्र वक्ताकी चालाकी वा मूर्ख जंगलियोंके सामने स्व रचनाको प्रमाण मनाने वास्ते रचना रचो, यह सिद्ध होगा. वेद मंत्रके अनिच्छित उच्चारण कालमें उसके पद पदार्थका ज्ञान केसे हुवा, यह नहीं बता सकोगे. जो योग ध्यान होकर ऋषियोंको अर्थ ज्ञात हुये, एसा मानोगे तो, पुनः चालाकी सिद्ध होगी. इसी प्रकार आकाशवाणी द्वारा माननेसेभी दोषापत्ति होगी.

जो ईश्वरको ओर उसके ज्ञानको अनित्य मानके सृष्टिके आरंभमें उपदेश होना मानोगे, तो परोक्ष उपदेश करनेमें तो उक्त दोष आवेंगे. ओर मूर्तिमान होके उपदेश करनेमें ईश्वरकी परिच्छिनता सिद्ध होनेसे ईश्वरत्वका बाध होजायगा.

उक्त सर्व विकल्पोंमें शब्द, पदोंको रचना ओर पद पदार्थोंके संबंधका ज्ञान, किस प्रकार हुवा सो, संशय रहित यथार्थ सिद्ध नहीं करसकोगे. अंतमें, गडबडी कुरान बायबल समान वेदको मनुष्य वडत मानना पडेगा. हां, यथार्थ है वा अयथार्थ है, इतने अंशमें कुरानादिके साथ तोलना वा समान करना हमारा दुराग्रह वा अज्ञान मान लेंगे.[1]

जो कदाचित हठसे मानभी लेवेंके, वेद ईश्वर प्रेरित वा उपदेशित है, तो उसको एसे करनेका कारण क्या? उसका उत्तर यही दोगे के "जीवोंमें सर्वज्ञ उपदेष्टा विना यथार्थ विशेष ज्ञानकी प्राप्ति नहीं होसकती, उनमें सामान्य ज्ञानसे

---

१ वेद ओर कुरानादि वांचके स्वयं निर्णय करलोगे. कहां वेद ओर कहां कुरान; सोना, रती गिनें नादान.

इतर, विशेष ज्ञान स्वयंपानेकी योग्यता नहीं हे. अतः उनके उपकार उन्नत्ति अर्थ उपदेश हे." जब एसा मान लेवें तो, जेसें के आद्य उपदेशक विना, पहेले पहिले सद्विद्या—सद्विशेष ज्ञान मनुष्य नहीं पासकते तो, झूट छल कपटादि महान* विशेष ज्ञान केसे पासके होंगे ? अर्थात् वोहभी किसी आद्य गुरुसे मिला होगा इसके उत्तरमें क्या तो एक फिरके (पंथ) समान दोखुदा (भलाइका एक, बुराइका दूसरा) माननें पडेंगे. अथवा वेदोपदेशकही असदादिकाभी शिक्षक मानना पडेगा. जो यह कहोकि सद्विशेष ज्ञान होने पीछे स्वतंत्र जीवने स्वेच्छासे असदादिकी रचना कीहे. तो में यह कहूंगा के जो उनको विशेष ज्ञान न मिलता तो, असद् कर्म गणमें प्रवृत्त नहीं होते; अतः सदुपदेष्टा उनके अपराध करानेमें सहायक हे. जो यह कहोगे के आद्य उपदेशकने सत्य असत्यका स्वरूप ओर विवेक बताके विधिको कर्तव्य कहा ओर असदादिको निषिद्ध कहके वर्ज दिया; फेर जो जीव स्वेच्छासे असद्कर्म करे, उसमें माता, पिता, गुरु वा ईश्वरका क्या दोष हे. इसके उत्तरमें मेरा यह प्रश्न होगा कि, यदि वोह असदादिका विवेक नहीं करता तो, जीवोंको असदादिके संस्कार न पडनेसे अनिष्टमें प्रवृत्ति नहीं होती; अतः सदुपदेष्टा, अपराधमें सहायी हुवा. क्योंके ईश्वरको तो यह ज्ञान था के इनमें रागादि स्वभावसे हें. अतः असद् संस्कार पडनेसे अनिष्टमें-

* सद्धर्म तो कोई एकहोगा, क्योंकि सत्य एकही होता हे.— नाना नहीं, किंतु झूटही नाना होसकती हें. निदान झूट छलरूपी नाना पंथ और मतमें, किरोडान किरोड मनुष्य फंसाये फंसे हुये हें जिस विशेष ज्ञानसे, वोह क्या सामान्य ज्ञान किंवा छोटासा विशेष ज्ञान होगा ? नहीं. यह आप विचार सकते हो.

भी प्रवृत्त होवेंगे. जो यह कहोकि जीव पूर्व पूर्व संस्कारोंके बलसे इष्ट अनिष्टमें प्रवृत्त होता है; अतः ईश्वरको दोष नहीं; तो में यह कहूंगा कि पूर्व पूर्व संस्कार जीवके राग इच्छादि गुण और कुदरतो (यह सृष्टि और विषयोंका संबंध) वेद, पनेंद्रिय वालोंको सदासद् विशेष ज्ञानका हेतु हे. (आद्य सृष्टि में वा अनादि परंपरासे मनुष्य समूह होने पीछे स्वयमेवके से विशेष ज्ञान होता है? अब क्यों नही होता? इत्यादिका प्रकार यहां, ग्रंथ विस्तार भय तथा विशेष उपयोगी न होने और प्रसंग अप्राप्तसे नहीं लिखते). जब अधिक संकेत और ज्ञान फेल गया तब, मंत्रादि कंठस्थ किये, पश्चात् लिपि होके अधिक ज्ञानका समूह किसीने वा मंडलोने वेदनामा चार पुस्तक लिख दिये. सो यथार्थ और अयथार्थात्मकभी कह सकते हैं; क्योंकि जीव आप उत्पन्न किया हुवा ज्ञान भूल जाता हे. किंवा अयथार्थको यथार्थ और यथार्थको अयथार्थ माननेमें आजाना संभव हे. तो अन्यों (ईश्वर वा मनुष्य वा अन्य) के बताये हुयेमें उक्त दोष हों, इसमें क्या आश्चर्य हे. अतः हठ करके ईश्वर प्रेरित मनुष्य लिखित वा मनुष्यद्वारा उपदेश मानें तोभी, दोष होना संभव हे. निदान कुदरती वेदको आगेवान करना पडेगा.

(यहां सब वेद प्रसंग वास्ते अनुपयोगी जानके विशेष (उसके मंत्रोंके उदाहरण देदेके वा अन्य प्रकार) नहीं लिखा हे. केवल प्रचलित वेदांत संबंधमें जो उपयोगी वार्ता हें सोही संक्षेपसे लिखी हें.)

विशेष कहां तक लिखें—वेदानुयायी शास्त्रकार ऋषि मुनियोंकोभी इस विषे संशय रहाहे.—तो मुझ अल्प बुद्धिपर आरोप करना भूल हे.—जैमिनि महाराज अनीश्वरवाद स्वीकारके वेदको

अपौरुषेय अनादि अनंत ग्रंथ मानते हैं. सांख्य कर्ता कपिलजी अनीश्वरवाद मानके सिद्धजीके श्वाससे अनायास होना मानते हैं. पतंजलि मुनी और न्याय वैशेषिक कर्ता, नित्य ज्ञानत्वसे ईश्वरोपदेशित मानते हैं. वेदांती, अनादि सांत मिथ्या ईश्वर कृत मानते हैं. इत्यादि. उनके मूल ग्रंथ और भाष्य, वृत्ति देखो. तथापि उक्त तमाम महाशय वेदोंको प्रमाण मानते आये हैं.

"वेद, ईश्वर प्रेरित स्वतः प्रमाण है" इस विषे क्या प्रमाण हे? सो तद्भिन्न प्रमाण कहा चाहिये! अर्थात् आप (तुम), वेद, और ईश्वर—तीनों तो इस विषे प्रमाण नहीं होसकते, और जो मानोगे तो अन्यकाभी वचन प्रमाण मानना पड़ेगा; क्योंके उनउनके अनुयायी, महावीर, बुद्धादिको सर्वज्ञ मानते हैं और इंजील—बायबल, तथा कुरानका कर्त्ता कोइ खुदा भी सर्वज्ञ माना जाता है. उनकी सर्वज्ञता और उनके वास्ते वेही प्रमाण हैं. जब एसा मानें तो, उनके और वेद ईश्वरके परस्पर विरोधी सिद्धांत होनेसे आपको स्व सिद्धांतमें वेद प्रमाण कहना निरुपयोगी और निष्फल होजायगा. अथवा तो वेद अप्रमाण होजायगा. और ईश्वर वेदमें इतर प्रत्यक्षादिको तो आप लोक स्वतः प्रमाण नहीं मानते; अतः वेदकी सिद्धिमें कोई प्रमाण नहीं होनेसे वेदानुसार सिद्धांत सिद्ध करो तोभी, मान्य नहीं होसक्ता. तथाहो वेद सत्य वा मिथ्या? यदि सत्य हे तो द्वैतापत्ति होगी; क्योंके आपके सिद्धांतमें ब्रह्म इतर, सर्व मिथ्या हैं. जो, दूसरा पक्ष मानें तो मिथ्या वेद, सत्य ब्रह्मका, प्रतिपादक नहीं होसक्ता. जब ब्रह्ममें अप्रमाण, तो उसकी एकता केसे बता सकेगा. और मिथ्याको प्रमाणरूप सत्य मानना मिथ्या हे. जो यह कहोके "जे-

से स्वप्नमें स्वप्नादिकी इंद्रिय स्वप्न पदार्थोंके वास्ते प्रमाण हैं, वैसे व्यावहारिक सत्तारूपसे वेद प्रमाण है, पारमार्थिक सत्ताकी दृष्टिमें मिथ्या है; अतः कोइ दोष नहीं" यह वार्त्ताभी नहीं बनती, क्योंके जैसे स्वप्नके प्रमाण जाग्रतमें प्रमाण नहीं किंतु सर्वथा अनुपयोगी हैं. वे जाग्रत पदार्थोंके प्रतिपादन वा विषय करने योग्य नहीं; वैसेही मिथ्या वा व्यावहारिक सत्तावाला वेद, पारमार्थिक सत्तावाले ब्रह्ममें प्रमाण नहीं होसकता. और न उसका कथन उस वास्ते उपयोगी है. जोके स्वप्नका दृष्टा जो है, वोह उभय (जाग्रत स्वप्न)का साक्षी है, परंतु उन (प्रमाणों)का विषय वा उन करके प्रतिपादन करने या ग्रहण करने योग्य नहीं है, यह बात आपकी रीतिसे सिद्ध है. इत्यादि औरभी अनेक रीतिसे प्राप्त प्रसंग प्रति वेदकी स्वतः प्रमाणतामें बाध है.

तथा वेद ग्रंथको आपभी प्रमाण नहीं मानते हो; क्योंके उसमें तो यज्ञ विषे पशुवध, अतिथीको मांस भोजन, नियोग, गुणकर्म उपर वर्णाश्रम, स्त्रीकोभी वेदाध्ययन–इत्यादि उपदेश हैं. परंतु वर्तमानमें जो कोइ, जैमिनीवत् यज्ञमें पशुवध, करे; भारद्वाजने जैसे भरतादिकोंको मांसका भोजन दिया वैसे, अतिथी सत्कार करे; भीष्म पिताके भाइ क्षत्रीय राजाकी तीन स्त्रीसे पांडु धृतराष्ट्र और विदुर जैसे उत्पन्न हुये वैसे, तीन पुत्रोत्पन्न करने वास्ते कभी नियोग करे; वा भील पुत्र वाल्मिक, चांडाल पुत्र मातंग, झीमर (ढीमर)नी पुत्र व्यासजैसे किसीके गुणकर्म देखके ब्राह्मण बनावे, वा गार्गी मैत्रेयी (जिनशूद्रा (वेदांती भाइ स्त्रीको शूद्र समान गिनते हैं) के वाक्य वा उपदेशको, ब्राह्मण वा उपनिषदोंको वेद मानने वाले वेदांती, श्रुति मानते हैं) समान स्त्री, वेदोच्चारण करे;

सो आप मान्य नहीं रखते ओर उसको भ्रष्ट नीच मानके द्विजातित्वसे गिरा देते हो; अतः वेदको अप्रमाण माननेवाले किंवा उसके विरोधी हुये वा क्या ?

जो कहो के रूढी वलवान हे, रूढो विरुद्ध करनेसे व्यवहार–स्वार्थ–अटकता हे, तो यह अर्थ हुवा कि वेद ग्रंथ प्रमाण[1] नहीं किंतु वर्तमान प्रचलित अहंब्रह्म प्रमाण हे. जो यह रूढो नहीं मानें तो, नास्तिक कहाते हैं, मानप्रतिष्ठा नहीं पाते. विषयोंसे विरक्त होना पडता हे, कोइ हमारी कथा नहीं सुनता, वर्णिग्वृत्ति नहीं चलती, कोइ गुरु नहीं मानता, वा श्रद्धा नहीं करता, मुफतके टके पैसे नहीं मिलते, खलडोंमें कोइ पाइभी नहीं चढादेता, मकान मेडी नहीं बनते; अतः रूढी वलसे जीव ब्रह्मकी एकता मानते हैं अहो क्या स्वार्थ परायणता ? ? ?

यदि यह कहो के कलियुगमें "अग्निहोत्रं गवालंभं मन्यासं पल पैत्रिकं । देवराच्च सुतोत्पत्ति कलौपंच विवर्जयेत॥"

---

१ इसी प्रकार अन्यधर्म शास्त्र [मनवादि] वा अन्य ग्रंथोमें हिंदु भाइओंकी मनमानी प्रमाणता अप्रमाणता वा विश्वास अविश्वास हे. जेसे कि भागवतके एकादश स्कंधगत अध्याय १७ में लिखा हे कि–ब्राह्मण तीन वर्णकी, क्षत्री दोकी, वैश्य दोकी ओर शूद्र एकमात्र शूद्र वर्णकी कन्यासे विवाह करे. परंतु वर्त्तमानमें यदि कोइ उस अनुसार वर्त्ते किंवा एक जातिका ब्राह्मणही दूसरे प्रकारके ब्राह्मण जातिकी लडकी विवाहे तो, उसे पदभ्रष्ट मानके जाति बाहिर कर देते हैं. अर्थात् मनमानी प्रमाणता अप्रमाणता हे. सत्य असत्य ओर योग्य विश्वास हे वा अयोग्य हे, इस निर्णयको छोडदो तो, जेसा दृढ विश्वास–ईमान–वा स्वधर्माभिमान मुसलमानोंमें हे वेसा हिंदुओंमें नहीं हे ! !

इस वाक्यसे पशुवध, नियोग, मांस श्राद्धादि वर्जित हैं; तो यह प्रश्न उठताहै के, वेदोंमें तो एसा कहीं नहीं लिखा. क्या अन्य स्मृति वा धर्मसिंधवादिका लेख, उक्त वेद लेख वा रूढीसे शिरोमणी है? यदि शिरोमणी मानो, तो वेद प्रमाणरूप नहीं हुवा. ओर जो वेदका लेख शिरोमणी, तो आप लोक वेद नहीं मानते, एसा पूर्वोक्त प्रकारसे सिद्ध होजाता है. (देखो, वर्तमान विषे काशी ओर सिद्धपुरमें जिन ब्राह्मणोंने यज्ञमें पशुवध किये उनको जातिसे निकाला.)

अथवा वेद असर्वज्ञ है अर्थात् उसको यह ज्ञात नहींथा के कलिकालमें पशुवधादि अनुचित होंगे, अतः कलि वास्ते अमुक २ बातें निषेध कीजाय. इसी प्रकार अपवाद वाक्यों, वास्ते यथोचित समझ लेना चाहिये.

निदान आप वेदको अभ्यासरूप प्रमाण मानते हो, अंतःकरणसे यथार्थ नहीं मानते. अतः उसके लेख पर आपकी रीतिसे आधार नहीं होसकता. किंवा जेसे वेदकी उक्त बातें कलि वास्ते मनमुखी निषेध मानली वेसे, यदि वेदमें जीव ब्रह्मकी एकता है एसा हठसे मान लेवें तो, उसकोभी सतयुगमें इतर काल वा कलियुग वास्ते निषेध मान लेना चाहीये.[१]

१ इसका पुरावा यह है के, आपकी रीतिसे द्वैतवादी कणाद, गौतम, पतंजलि, कपिल, जैमिनि, इत्यादि सर्वज्ञ ओर वेदानुयायी हुये हैं.—ये यातो वेद ज्ञाता नहीं, यातो वेद द्वैत प्रतिपादक है, या उन्होंने कलियुगमें वा अमुक काल वास्ते जीव ब्रह्मकी एकताका निषेध किया, एसा मानना पडेगा. सर्व पक्षमें आपके पक्षकी हानी है. जो यह कहो के वैशेषिकादि शास्त्रके कर्ता कणादादि तो वेदानुसार अद्वैत परही हैं परंतु, उनके वृत्तिकार, भाष्यकार भ्रांत हुये हैं—उन्होंने द्वैतमें अर्थ किये हैं. सोभी ठीक नहीं.—श्री मच्छंकराचार्यने शारीरि-

जो यह कहो के, वेद वाक्यके जो पशुवधादिमें अर्थ लगाये हें सो, वेसे अर्थ नहीं हों किंतु, अन्य होंगे. (देखो स्वामी दयानंद कृत भाष्य) तो हम कहते हें के दयानंदजीने तो द्वैतमें अर्थ किये हें–जीव ब्रह्मकी एकताका निषेध किया हे. (देखो दयानंदजी कृत सत्यार्थ प्रकाश, वेदांती ध्वांत निवारण, ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका ओर यजुर्वेदका भाष्य तथा अ. ४०). इतनाही नहीं किंतु, जैमिनि आदियों (उव्वट, सायनाचार्य, महीधरादि) के अर्थ मिथ्या* हुये, तो आपके किये अर्थभी भ्रांत रूप क्यों न हों ?

क भाष्यमें सांख्य सूत्रोंको लेकर खंडन किया हे. सांख्यने कणादिके मतको, "वैशेषिकादिवत्" [१–२५] इत्यादि सूत्रसे अन्योंका खंडन किया हे. "अथातो धर्म व्याख्यास्याम:" इस कणादके सूत्रसे द्वैत स्पष्ट हे. निदान वृत्ति और भाष्य छोडके मूल सूत्र देखो तो उनसेभीद्वैतही सिद्ध होता हे. "नात्यन्तोच्छेद:"–(सृष्टिका कभी उच्छेद नहीं होता. सांख्य) यह वेदांत पक्षके विरूद्ध हे. "भेदव्यपदेशाच्च" (व्यास सूत्र) इत्यादिभी. (सर्वज्ञ कनादका उलूक और गोतमका अक्षपाद क्यों नाम हुवा ?).

* भागवतके एकादश स्कंध अ० २१ में लिखा हे कि पशुवधसे निवृत्ति होनेके वास्ते वेदमें कहा हे. मनुस्मृतिमें पशुवध, नियोग, मांस श्राद्ध इत्यादिका विधान हे. उक्त शास्त्रादि वा पुराणादि स्वतः प्रमाण नहीं ओर यहां वेद प्रसंग हे; अतः उनका वर्णन विस्तार पूर्वक नहीं लिखते. थोडेके प्रमाण टांक देते हें. "यज्ञाय जग्धि मांसस्य" मनु अ. ५ (यज्ञमें विधान) "तस्माद् यज्ञे वधोऽवध:" वहांही. "सौत्रामण्यां सुरांपिबेत्" "वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति" "अथेच्छेत्पुत्रोमे पण्डितो" इत्यादि (श. ब्र. अ. ९). आज्यमन्नाद्य काम (गृहसू.) "अग्निषोमीयं पशूमालभेत" "एतद्वास्वादिवो यदत्राधि गवांक्षीर

तथाहि जबकि अन्यके ग्रंथोंको स्वतः प्रमाण न मान सकें तो, वेद ग्रंथकोही क्यों माना जाय ?–तहां–वेद, अनादि वेद (ज्ञान) रूप है इस लिये (१), वा ईश्वरी ज्ञान है इस लिये (२), वा उसमें यथार्थ वर्णन (ज्ञान) है इस लिये (३) स्वतः

वा मांसं" (अथर्व. ९।६।३९) अतिथि मांस विधान. "नियोगविधि मनु अ. ९ श ६. "देवराद्वा सापिंडाद्वा स्त्रिया सम्यक् नियुक्तया" (मनु) "अन्य मिच्छस्व सुभगेपतिं" ऋ. मं. १ सु. १० मं. १ "कुहस्विद्दोषा" [ऋ. अ. ७ व. १८ मं. २] (नियोग) "इयंनारी पतिं लोकं" (अथर्व कां १८. अ. ३ व. १ मं. १) "इमं मंत्र पत्नी पठेत्" (श्रोत सू.) स्त्रीविद्या वेदाध्ययन विधान. जो चारों वेद, चारों ब्राह्मण ओर गृह सुत्रों अनुसार हिंसा–पशुवध, नियोग इत्यादिकी सविस्तृ. विधि देखना हो तो, उनके मंत्रोंके अर्थ सहित "निगम प्रकाश" प्रसिद्ध ग्रंथमें वांचो. यह ग्रंथ सं. १९३० में जिले अहमदावाद शहेर (इलाके मुंबई) गत मामाकी हवेलीमें युनाइटेड प्रिंटिंग ओर ज. ए. कंपनी लिमिटेडके प्रेसमें रणछोडलाल हीराचंदने छापा है. उक्त ग्रंथ (वैदिक धर्मनो खुलासो)का कर्ता "लो. हि. निबंध संग्रह" का बनानेवाला तथा भोलानाथ भगवान शास्त्री रायकवाल है. इस ग्रंथमें सायनाचार्य के भाष्य ओर गृह्य सूत्र, पुराण, स्मृति आदिको लेके वेद ओर ब्राह्मण ग्रंथ तथा सूत्रोंके दोष दरसाये हें–वेदोमें इतिहास हें ओर यज्ञमें पशुवध हे तथा मांस शराब भक्षण विधि हे.–जडको ईश्वर मान्ने वाला हे.–नियोग सूचक हे ओर अश्वमेदादि प्रसंगमें महान अरुचीकारक निंदनीय कर्मका विधायक हे इत्यादि बातें, संस्कारों सहित यज्ञ विधि ओर अनेक वृतांत जनाये हें, मंत्र ओर सूत्रोंके अर्थ सहित सविस्तर वर्णन किया हे.–परिणाम यह निकाला हे कि वेद त्याज्य हें ओर प्रमाण योग्य नहीं. दयानंद स्वामी कृत भाष्य अनुसार यह कह सकते हें कि, वे अनुचित मन घडत अर्थ हों. ओर इत्यादि का-

प्रमाण मानना चाहिये ? यह ३ विकल्प हैं. अब जो पहिला (सांख्य, मीमांसाका) पक्ष मानें तो, मिथ्या ज्ञानभी अनादि होनेसे प्रमाण होवेगा. वेद धूर्त निशाचरोंका बनाया हुवाहै, यह दस्यु ज्ञानभी प्रमाण होगा. दूसरा पक्ष प्रमाण मानें, तो जिस ईश्वरने भृगुका पत्न छलसे लेलिया, बालीको छलसे मारा, बलीराजाको छला, युधिष्ठिरको असद बोलनेका उत्तेजन दिया, गोपिकाका चीर उठाया एसे (पौराणिक) ईश्वरका ज्ञान (वेद), अयथार्थ वा असत्‌भी क्यों न हो ? किंवा सत् असत्, भाव अभाव, तम प्रकाश, ज्ञान अज्ञान, परस्पर विरोधियों का "उपादान" माया, तद्विशिष्ट चेतन (वेदांतियोंके) ईश्वरका ज्ञान यथार्थ अयथार्थ क्यों न हो ? जो यह कहो के, जो अयथार्थ वा असत ज्ञानवाला वा अयथार्थ वक्ता होसो ईश्वरही नहीं, किंतु नित्य सत्य यथार्थ ज्ञानवाला (योग, न्याय, आर्य समाजका) ईश्वर होता है; अतः वेदमें जो उपदेश है सो, यथार्थ है; इस लिये वेद प्रमाण है. यह पक्ष उक्त सर्व विकल्प वालोंको मान्य होपडनेसे तीसरा पक्ष हो गया. इसमें यह विचार है कि यथार्थ है, इतने विश्वास मात्रसे प्रमाण मानें तब तो, ख्रिस्तियोंका ईश्वरी पुस्तक बायबलभी प्रमाण मानना चाहिये. क्योंकि वे एसा मानते हैं के, इसमें बहोतसी बातें एसी हैं कि जो प्रत्यक्ष वा मनुष्य बुद्धिसे अयथार्थ प्रतीत होती हैं, परंतु ईश्वर यथार्थ वक्ता है; अतः मनुष्य बुद्धिके अर्थ वा असमझसे उसको अयथार्थ नही कहसक्ते. किंतु अ-

---

रणसे मेरी दृष्टिमें वेदकी निंदा कीहै. इसका मुख्य कारण वेदके अर्थोंकी गडबड सिवाय, अन्य नहीं जान पडता. ओर यादि वे अर्थ यथार्थ हैं, तो पौराणी, वेदांती वेदोक्त कर्म नहीं करते वा वेदको प्रमाण नहीं मानते; एसा मान्ना पडेगा.

ज्ञात वा संदिग्ध अर्थोंमें विश्वाससे यथार्थही माननाचाहिये. जब यूं है तो, अभावसे भाव ओर अपुनर्जन्मादिभी मान लेना पडेगा; जो के वेद विरुद्ध है. किंवा अर्थ ओर तद्ज्ञान विनां, विश्वास मात्रकी यथार्थता किस कामकी है.—जड समान निरुपयोगी है. ओर जब उपयोगार्थ अर्थ बताओगे तो, भाष्यकारोंके नाना अर्थ होनेसे कोनसा अर्थ यथार्थ है जिस प० विश्वास करें, एसा संशयही रहेगा. एसी व्यवस्थामेंभी निरुपयोगी रहा. जो यह कहोगे कि अमुक प्रकारसे अमुक अर्थ ठीक अमुक अयथार्थ है. वहां सृष्टिनियम, प्रत्यक्ष, युक्ति ओर बुद्धि उपयोग मध्यमें आगये. तो पूर्वोक्त "धीर पुरुषोंसे सुनाहे" वा "न तस्य प्रतिमाऽस्ति" इत्यादि अनेक शंकाके समाधान ओर समग्र अर्थ निर्णयके विना, प्रमाणताकी प्रतिज्ञा सिद्ध नहीं होसकेगी. इतने कथनसे यह सिद्ध हुवाके वेद (अपौरुषेयहो वा पौरुषेय हो वा ईश्वरकृत वा प्रेरित वा मनुष्यकृत हो) में यथार्थ ज्ञानहे, इसलिये अप्रमाण नहीं किंतु प्रमाण है. (क्योंके उसको प्रमाण• मानने वालोंकी युक्ति, बुद्धि, लेख, फिलोसफी ओर यथार्थता यही परिणाम निकालतीहे. इत्यादि अनेक कारण हैं.) परंतु उसके यथार्थ समुक्त अर्थ (पद पदार्थ संबंध) ओर ज्ञान, बहुत कालका होने ओर नाना धर्म तथा परदेशियोंकी गडबडसे वर्तमानमें ज्ञात नहींहै; अतः यथार्थ अर्थ ज्ञात होने तक प्रमाणताकी प्रतिज्ञातो हे परंतु सिद्ध नहींहोती. प्रिय बंधवो ? यथार्थ कथन वा ज्ञान तो बालकका भी मान्य होताहे, वेदका तो क्यों न हो ? इसलिये आर्य संतानको यह चाहिये कि कुरीतिसे वेदकी मान्यताका अभाव न करावें (जेसा के पुराणोंने किया); किंतु उस अपूर्व अमूल्य पुस्तक

के यथार्थ अर्थ और ज्ञान (जो कि युक्ति, प्रत्यक्ष, अनुमान, कुदरत-सृष्टि नियम-से विरुद्ध न हों.-संशय रहित होंवे.) संपादन करनेका उपायलें. ओर विश्वास मात्र वा अनुचित अयुक्त आग्रह मात्रसे "वेदमें कहाहे" "उसका अर्थ यूंहीहे" "इस लिये अमुक विषय प्रमाणहे" एसे, कथनार्थ तैयार नहीं होना चाहिये.

जो कोई कदाचित यह प्रतिज्ञा करे के "दूसरोंके किये हुये वेदार्थ यथार्थ नहीं; आवे कोई, हमारेसाथ शास्त्रार्थ करे, हम षडांगकी रीतिसे उसका खंडन करते हें. ओर मूळ यथार्थ अर्थ हम जानतेहें." तो उनसे यह कहना चाहिये कि आपके किये हुये अर्थोंमें वेद सिवाय इतर-(आपवा प्रत्यक्षादि) कोई प्रमाण नहीं माने जाते, अन्यथा वेदको स्वतः प्रमाणताका बाध होजायगा. ओर उभय-वादी प्रतिवादीके कथनपर आधार रहही नहीं सकता. अब जो आपके किये हुवे अर्थ ठीकहें, इसकी साक्षीमें प्रजावर्गको मानें तो, हिंसक यवन, अहिंसक जैन, मूर्तिपूजक वा ईश्वरोतार माननेवाले पौराणी, ईश्वरोतार न माननेवाले-मूर्ति खंडन करनेवाले आर्य समाजी, मैमांसिक, सांख्यमतवादी, ब्रह्मु, किरानी, कुरानी, बौध वगेरे की संमतिमें अंतरही रहेगा; कोइ योग्य कोई अयोग्य कोई योग्य अमान्य इत्यादि संमति देंगे, उससे कुछ फेसला-निश्चय नहीं होनेका. जो षडांगको साक्षी मानेंगे तो, वे उभय पक्षकारको अवसरदाहें, जो एसा न होता तो, नाना अर्थ प्रचलितही नहीं होते. (देखो रामानुज उव्वट सायनाचार्य वगेरे के अर्थ.) अब हारके उन प्रतिज्ञाकर महाराजके किये हुये अर्थही ठीकहें, एसा विश्वाससे मान लेवें तो, वेदांग न पढे हुये अनुयायी बुद्धिमानको यह सं-

श्रय क्यों न होगा ? कि जो प्रतिज्ञकसे प्रबल, षडांगको फेरफार करनेवालाहो तो, अन्य प्रकारके अर्थ क्यों न करसके वा क्यों न होसकें ? अतएव क्या तो अनगमता विश्वास स्वीकारेगा. वा तो संशयात्मक मन रहेगा. विश्वास मात्र फलका यथार्थ अयथार्थपर निर्णय होतव्यहै; जोकि संशयके रूपमें आनेवालाहै. इसलिये उत्तम प्रकार यही सिद्ध होताहै कि, किये हुये अर्थका विषय, प्रत्यक्ष युक्ति आदिसे सिद्धहोतो (तबहो) मान्य, संतोषकारक वा सफल होसकताहै; अन्यथातो संशयरूपही रहनेका है.

इत्यादि प्रसंगोंसे वेद ग्रंथ प्रमाण देनाही आपको प्रतिकूल फलदहै. ओर आपके यथार्थ प्रमाणमें न होनेसे उसकी प्रमाणता अप्रमाणतामें प्रयत्न करना व्यर्थ जानके संक्षेपमें लिखा है.

(सूचना)–इस प्रसंगमें ईश्वर है वा नहीं, वेद ईश्वर प्रेरित हो वा न हो, ओर वेद प्रमाण हो वा न हो–इससे मुख्य–विशेष प्रयोजन नहीं है. ओर न उनके खंडन मंडनमें हमारा प्रयत्नहै. किंतु यह विषय "दयानंदी दोया (दीपक)" नामा ग्रंथमें आर्य समाज प्रसंग विषे, जेसा है वेसा लिखाहै. जो जाननेकी इच्छा हो तो, वोह ग्रंथ बांचना. यहां तो आपके संप्रदाय मान्य पुरुषोपनिषद् ओर उनके वाक्यमें आशयहै. अतः आपकी संप्रदायको लेके कथन है.*

* यद्यपि ऋग्गादि चार संहिता ग्रंथके संबंधमें १–मनुष्य सृष्टि वा भारतके रक्षण, व्यवहार, नीति, ओर राज्यादि विषयके आद्य प्रबंध उत्पादक ओर प्रबंधक मनुजी जेसे महर्षिका लेख यह है कि "खरा धर्मज्ञ वेदज्ञाता वोह है कि वेदार्थको वा वेद लिखित विषयको युक्ति ओर तर्कसे सिद्ध करे" २–भारतके फिलोसोफरों (तत्ववे-

वेदोक्त नएकता.

यदि आपके उक्त कथन (वेदकी स्वतः प्रमाणता) को पांच पल वास्ते मान भी लेवें तोभी, आपका प्रयोजन सिद्ध नहीं होता; क्योंके तत्त्वमस्यादि वाक्य चारों वेदोंमें नहींहैं; अतः यह वाक्य स्वतः प्रमाणरूप उपदेश नहीं माना जाता.

त्ताओं) के वे सूत्रके जिनमें लिखी हुई फिलोसाफिका आरंभ (ओर) युरोपकी फिलोसफीका अंतहे; वेदको शिरोमणी स्वीकारते हैं (देखो षडशास्त्र); उनका सत्कार मुझको एसा उपदेश कररहाहै कि वेदमें इतिहासादि वा सृष्टि नियम विरुद्ध कोइ विषय नहीं होना चाहिये किंतु उसके सायंसादि विषय हितकारी, यथार्थहों ओर सर्व को समान उपदेष्टाहों. इत्यादि—हमारी अनेक रीतिसे वेद प्रमाण होना चाहिये, यह मेरा विश्वासहे. तथापि अनेकोंके भाष्योंमें उसके अर्थकी गडबड ओर मत भेद प्रसिद्धहे.— सृष्टि नियम विरुद्ध भी भाष्योमें अर्थ वांचतेहैं; अतः उसके निबेडे होने (अर्थकी गडबडके निर्णय, मत भेदके अभाव) तक पूर्वोक्त इत्यादि हेतुओंसे वेदकी प्रमाणताका विश्वास वा प्रतिज्ञा दिलमेंहे, परंतु सिद्ध करनेमें असमर्थ हूं. ओर अप्रमाणता भी नहीं कहसकता; क्योंकि आर्यावर्त्तके जगत प्रसिद्ध ओर मान्य उत्तम ज्ञान, विद्या, नीति ओर व्यवहार आदिका मूल यही वेदतोहे. जिसको वर्त्तमानके लोक मान्य दृष्टिसे नहीं देखते. ओर कितनेक उपनिषदोंके रहस्यतो एसेंहैं कि, जिनकी बराबर कदाचित् तमाम सृष्टिमें शांतिकारक, अवधी सूचक (वैसा) उपदेश नहीं होगा. तथापि उनमें स्वतः प्रमाणताकी सिद्धि नहीं होसकती. ओर उपर जितने अंशका खंडनहे सो "वादी भद्रं न पश्यति" समान वेदांतियोंकी संप्रदाय वा मंतव्यपरहे. जैसेकि वेदका अर्थात् जो सांख्य वा पूर्व मीमांसाकी रीतिका ग्रहण अभिमत होतातो, वेद अपौरूषये होने, ईश्वर नमानने से जीव ब्रह्मकी एकता बाधे

ओर जो पूर्वोक्त प्रकारसे उपनिषद् परतः प्रमाण रूप मानके जीव ब्रह्मकी एकता सिद्धकी सोभी, नहींबनती; क्योंकि आदित्यो वैप्राणः (शतपथ ब्राह्मण देखो)—आदित्य प्राणका नामहे. "आदित्यो वैप्राणोरयिरेव" (मांडुक्य) —जो प्राणमें पूर्ण ओर प्राणमें सोया हुवा तथा प्राणका प्रेरक है सो जीवात्मा पुरुषमें हूं. अब उक्त अर्थोंसे पूर्वोक्त प्रसंगमें—सहजसे यह सयुक्त योग्य अर्थ सिद्ध होजाताहे कि "योऽसा वादित्यो पुरुषः सोऽसावहम्"—जो आदित्य (प्राण) में पुरुषहे वोहमें जीवात्मा हूं (दयानंद रामानुजादिकोंने इसके अर्थ, भेदमेंही लियेहें.—एकतामें नहीं. इस रीतिसे आपके किये हुये अर्थोंसे विपरीत अर्थ होताहे ओर जीव वादीको सयुक्त अनुकूलहे ओर आपका किया हुवा युक्तियोंको (जो के पहिले कही ओर आगे वांचोगे) नहीं सहारता; प्रत्युत "कुर्वन्नेवेह कर्माणि इत्यादि" उसी इशोपानिषदादिके भेद बोधक बचनसे ही विरुद्ध हे.

जो यह कहाके श्रुतियोंके अनेक भेदहें; कोइ अभेद बोधकहे, कोइ कर्म प्रवृत्ति, कोइ कर्मसे निवृत्तिकी बोधकहे,

---

ओर वेद तथा शब्दको अनादि अनंत [नित्य] ठेरानेसे द्वैतापत्ति कहना पडता. जो आर्यासमाजकी रीतिसे लेना प्रयोजन होता तो, रामकृष्णादि अवतार न मानके जीव ब्रह्मका भेद कहके द्वैतापत्ति मान लेते. ओर जो पुज्यपाद शंकराचार्यजीकी रीतिसे अभिप्राय लें तो, पूर्वोक्त लेखानुसार अनादि अनंत कहनेमें आजाता, परंतु वेदांती भाई तो अनादि सांत मानतेहें.

निदान वाचक महाशयको सारग्राही दृष्टिसे ध्यान देना चाहिये. द्वैतवादकी रीतिसे वेदकी सिद्दि अर्थ, स्वामी दयानंदजीकृत ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका ओर सत्यार्थ प्रकाश ग्रंथ देखिये.

कोइ गौण कोइ मुख्यहे, कोइ व्यवहारिक कोइ पारमार्थिक प्रसंगकोहे; अतः विरोध दोष नहीं. सोभी आपके संप्रदायसेहे. जेसेके आप (वेदांती) "ब्रह्मसे इतर ईश्वर वेदादि सर्व मिथ्याहें" एसा कहके फेर वेदकोही सद्ब्रह्म विषे प्रमाण देते हो !!! इत्यादि व्याघातक व्यर्थवादवत् श्रुतियोंको स्वकल्पित सिद्धांतानुसार विभाग मान लियेहों, एसा क्यों न माना जाय[१]? क्योंके जैमिनी आदि मैमांसिकोंने आप (वेदांतियों)के विभागकी हुई हो श्रुतियोंके, वेदांतियोंके पक्ष (विभाग) से विरुद्ध स्वमंतव्यानुसार विभाग कर डाले हें ओर रामानुजादिकोंने ओर ही प्रकारसे मानेहें. कुछ भी हो परंतु विवादितहें. अतः विवाद प्रसंगमें एकको ही मन मानी वात स्वीकार नहीं होसकती. अर्थात् परस्पर विरोधी[१] वाक्यके सिद्धिवाळे भाग दोष दर्शकहें.—आपको लाभिष्ठ नहीं. निदान केसे भी विभाग हों तोभी, पूर्वोक्त प्रसंगपर आनेसे पूर्वोक्त अर्थ भेदसे जीव ब्रह्मकी एकताके प्रतिपादक उपनिषद् भागमें आपकी रीतिसे परतः प्रमाणताभी सिद्ध नहींहोती. होकहांसे अभीवेदकोही स्वतः प्रमाणता सिद्ध नहींहे.

जो यह कहोके स्वामी दयानंदादि कृत (उक्त) अर्थ प्रमाण हों, श्री शंकराचार्यादिके न हों, इसमें हेतु क्या? इसका यह समाधानहेके, नैसर्गिक नियम (सृष्टि नियम), युक्ति, प्रमाण तथा उस काळके विद्यमान महार्षियोंके किये हुये जो ग्रंथ, उन अनुसार जो अर्थ हों सो मान्य होसकतेहें. अन्यथा यह उत्तर देना उचित्त होगा कि स्वामी दयानंदादिके

१ क्यों कि सत्य ओर यथार्थ वक्ता ग्रंथमें पूर्वापर विरुद्ध ओर व्याघात दोष नहीं मान सक्ते.

किये हुये अर्थ क्यों न माने जाय ? निदान एसे उभय पक्षके निकमपे तर्कोसे पूर्व नियमही ठीक ज्ञात होताहै. (ओर अत्यंत विचार कर देखें तो किसी ग्रंथ वा वाक्यके कैसे भी नाना अर्थ करो, जो अर्थ वा लक्ष्य नैसर्गिक नियम, युक्ति, प्रमाण और अनुभवको सहारसके—उसके अनुकूलहो सोही ठीकहै. अन्यथा कोइ वक्ता स्वयंभी कुछ कहै, सोभी अमान्य है. जिसका यहां प्रसंग नहीं.)

ओर जो उक्त प्रसंगमें आग्रह होतो, हमको दीर्घ दृष्टि करके यह जनाना चाहिये के वर्त्तमान कालमें वक्ताके तात्पर्यानुसार वेदार्थ होनाही कठिनहै; क्योंके उस कालके व्याकरण कोशके बिना, उस ग्रंथके यथार्थ अर्थ नहीं होसक्ते, यह वार्ता स्पष्टहै. अब आप पक्ष रहित विचार देखेंके रावण, उव्वट, महीधर, सायनाचार्य, दयानंदादिने जो अर्थ कियेहैं उनमें परस्पर अंतरहै ओर कहीं कहीं तो परस्परके विरोधी अर्थहैं. कहिये—उसमेंसे किसका मान्य किसका अमान्य ? इस निर्णयार्थ मुख्य व्याकरण कोशादि (षडांग)की आवश्यकता, तिस बिना, झगडा समाप्त नहीं होसक्ता.

अब जो अन्य झगडोंको छोडके केवळ अकेले व्याकरण ही उपर दृष्टि डाली जाय तो, वेदार्थ वास्ते मुख्य अष्टाध्यायी व्याकरण कहाताहै, परंतु उसीमें अन्य व्याकरणोंकी साक्षीहैं, विकल्पहै, ओर मत भेद भीजनायेहैं. जेसे "वासुप्यायशाले" (देखो अष्टाध्यायि अंतर अचसंधी प्रकरण) "ऋतो भारद्वाजस्य" (ऋकारांत धातुकोही इट प्रत्यय होताहै, यह भारद्वाज ऋषिका मतहै.) "वाशाकटायनस्य" (द्वित्व प्रसंग देखो). ओर अष्टाध्यायीके कर्ता पाणिनि मुनी महाराज, श्री रामचंद्रजीके पीछे हुयेहैं; क्योंकि "वामदे-

वड्ढारूप्यौ" [४।२।९] "गर्गादिभ्योयञ्" (४।१।१
ओर पूर्वोक्त सूत्रोंसे भी स्पष्टहे. अर्थात् भारद्वाज ऋषि
मचंद्रजीके समयथे यह वात जगत प्रसिद्धहे, वामदेव
राजा रामचंद्रके पिता श्री दसरथजीके मंत्री, वेद प्रसंगो
तिष अंगके कर्त्ता गर्गऋषि, वेदकाल पीछे हुयेहें, या
सिद्धही हे. परंतु उक्त सूत्रोंसे एक ओर वार्ता सिद्ध हो
हर्ताहे, जरा के ध्यान देनेसे समझमें आसक्तीहे. ओर
के जिन गर्गादिके कुल वास्ते प्रत्ययहें वे कुल, सृष्टि
वा जिनके नाम (गर्गादि) से कुल प्रसिद्ध हुवाहे उनके
काल पश्चात् मानने पडेंगे. क्योंके जिन कुल प्रत्यय विशे
रूढी पडगई ओर नित्यके व्यवहारमें न आवे एसी, सं
भाषाके जेसे, व्याकरणमें भी उनके प्रत्यय जनानेकी
वश्यकता पडी तो वे कुल, उस व्याकरणसे बहोत काल
चले आते हें, यह वात बुद्धिमान विद्वान पुरुषोंकी स
आना सुगम हे, अतः अष्टाध्यायीका कर्ता; गर्ग ओर वा
देव ऋषिके बहुत काल पीछे हुवा हे.

संस्कृत व्याकरणमें जो अणादि १४ सूत्र हें उनसे
प्रत्याहार बनाये जाते हें, वे चौदाही सूत्र, मुख्य व्याकर
कर्ता श्री महेश (महादेव) ऋषीजीके बनाये हुये हें; जो के
ष्टि ओर वेदारंभ पीछे हुये हें.

महा भाष्यके कर्त्ता पतंजलि मुनी हुये हें जो के पाणि
के शिष्य नहीं थे. यदि एसा न होता तो, महा भाष्यमें सूत्र
वृत्ति ओर विरोधादि जना जनाके शंका समाधान नहीं होता.
लिखनेका अभिप्राय यह हे के जेसे व्यास सूत्रोंके भाष्य श्री
शंकराचार्य, रामानुज, वल्लभादिने किये हें ओर उनके परस्
अर्थोंमें रात दिन जितना (द्वैताद्वैत) भेद हे. अर्थात् व्या

जीका मुख्य आशय क्या है इसमें संशय है. तथाहि श्लोकबद्ध गीताके भाष्योंमेंभी परस्पर अंतर है; वेसेही महा भाष्यके कर्तासे, पाणिनि मुनीका आशय छूटा वा बदल गया हो, इसमें क्या आश्चर्य है. अर्थात श्लोकबद्ध ग्रंथके भाष्यकी यह गति तो, सूत्रोंकी वेसी गति हो इसमें क्या आश्चर्य? इस रीतिसे संभव है के अष्टाध्यायी वा उसके महा भाष्यानुसार वेदके अर्थ किये जावें तो अन्यथाभी हों.

जो यह कहोकि वामदेव और भारद्वाज, रामचंद्रजीके कालवाले नहीं किंतु अन्य हैं, तो उसका पूर्ण पुरावा होना चाहिये, सो तो अद्यापि नहीं है. हां, इन नामवाले अन्य हुये होंगे, परंतु प्रसिद्ध विद्वान तो यही प्रसिद्ध हैं. जो पूरावे विना ही मानोगे तो, जैनमतानुसार वा पुरुष सूक्त [1]गत पूर्वोक्त लेखको अर्थापत्तिसे वे वेद अन्य हों, एसा क्यों न माना जाय? जिसका पुरावाभी है. निदान केवल कल्पना मात्रसे नहीं मान सकते.

पूर्वोक्त वृत्तांतसे इतनी वातें ध्यानमें आगई होंगी (उन को विस्तारसे जनाना व्यर्थ समझा गया क्योंके स्पष्ट हैं.):—

१ अष्टाध्यायी व्याकरण वेद कालमें नहीं बना किंतु बहुत काल पीछे (आर्य संतानकी रीतिसे लाखो वर्ष पीछे) बना है.

२ अष्टाध्यायीके पूर्व ओर वेद आरंभ पीछे, वेदार्थ होने वास्ते अन्य व्याकरण प्रचलित थे.[2]

---

१ पुरुषसे ऋगादि वेदोत्पन्न हुये हैं. २ अष्टाध्यायी पूर्वके महेश, प्रातिशाख्य, बृहस्पति, इंद्र, चंद्र, पिशालि, शाकटायन, काशी, कृत्स्न (कृष्ण) इन व्याकरणो पर ध्यान दीजिये. हेमाचार्य कृत जिनेंद्र व्याकरण ओर अमरकोश तथा सिद्धांत कौमुदि देखिये. तो व्याकरणकी गडबड ज्ञात होजावे.

३ पूर्व पूर्व संकलना मानेभी अष्टाध्यायी अनुसारही वेदार्थ हों इसमें संशय है.

४ पाणिनिका आशय संभव है के भाष्यमें रहभी गया हो.

जो यह कहो के, "जैसे वेदका कोश वेदमेंही है यथाः— इन्द्रं मित्रं वरुणमग्नि इत्यादि ऋ मं. १ सु. १६४ मं. ४६ में ईश्वरके नाम जनाये हैं; वेसेही वेद ग्रंथोंका व्याकरणभी वेदोंमें होना चाहिये. अन्यथा (मनुष्य कृत व्याकरण) स्वीकार नहीं होता; अतः पूर्व दोष नहीं." तो हमको यह कहना योग्यहे के भाष्यकारोंके अर्थमें विवाद नहीं होनाचाहिये था. ओर विवाद तो है; अतः उसमें व्याकरण नहीं है. ओर न कोई एसा मानता है. ओर न एसा व्याकरणप्रसिद्ध है. स्वबुद्धिसे संगति प्रसंगोंको लेकर कल्पना करलेना दूसरी बात है. भाषासे व्याकरण होता है. व्याकरणसे भाषा नहीं, यह स्पष्ट है. तथाही जो आपकी कल्पना मान लेवें ओर भाष्यकार व्याकरणियोंको भ्रांत समझें तो, प्रथम उसका उसकी रीतिसे व्याकरण प्रसिद्ध करिये, उसके निर्णय पीछे विद्वान वेद वक्ताओंके स्वीकारने पर अर्थका निर्णय होगा; वहां तक किसी एककी साक्षी पर आधार नहीं होसक्ता.

एतदृष्टि (पूर्व प्रसंग पर ध्यानको खेंचो) वेदके वेद कालके जो मुख्य व्याकरण हैं वेहों ओर संशय रहित उनका आशय निर्णित हो जावे, तब उनकी साक्षीसे वेदार्थका निर्णय किया जावे तो, अथवा सर्व विद्वान संपूर्ण वेदांगोंको लेके धर्मराज सभाके स्वाधीन, दुराग्रह रहित परस्परमें निर्णयरूप विवाद करके जो अर्थ निश्चय करें तो, इसका निवेडा हो; अर्थात् संभव है के वेद वक्ताका अभिप्राय ज्ञात हो (वोह कथन यथार्थ है, वा अयथार्थ, यह प्रथक बात है); वहां तक कि-

सीकेभी अर्थकी साक्षी लेकर निर्णयरूप अर्थ नहीं कहसके (अपरंच जो वेद कालके कोशादिकी चर्चा शोधो तो, निर्णयरूप अर्थ करनेमें कितनी अपूर्णता है, यह वात सहेज ध्यानमें आजायगी)

एतदृष्टि उक्त श्रुतिकी साक्षी देकर उपनिषदोंको परतः प्रमाण कहना नहीं बनता. ओर आपका किया हुवाही अर्थ ठीक है अन्यका नहीं, एसा सिद्ध नहीं होता. किंतु आपके मंतव्यके विरुद्ध परिणाम निकलता है; क्योंकि उसी वेद ग्रंथमें जीवेश्वरकी एकता तो स्वप्नमेंभी नहीं, उलटे (कर्मोपासनादिके प्रतिपादक) भेद वाक्य स्पष्ट हैं. उन उभय (द्वैतवादी अद्वैतवादी] संमत्त श्रुतियोंके सन्मुख आने ओर विवादित मंत्रोका बल नहीं चलनेसे भेदवादही स्वीकार होगा. उसके विना उपदेश ओर प्रमाणता अप्रमाणताका प्रश्नभी नहीं होसक्ता.

यद्यपि मैमांसिक ओर रामानुजादिकोंने तत्त्वमस्यादि वाक्योंकेभी भेदमें अर्थ किये हैं* तथापि हमको इनके अर्थ नि-

---

* मैमांसिक उन वाक्योंको अर्थवाद रुप कहते हैं, द्वैतवादी एसा अर्थ करते हैं कि तत्त्वमसि–प्रसंग प्राप्त पूर्वोक्त ईश्वरका तूं दास, भक्त आधीन वा व्याप्य है. हे श्वेत केतु? यहां दासादि पद अध्याहार हैं.–भावार्थ, लक्षणा प्रकारसे लिये जाते हैं. ओर असि पद एकतामेंही लगे, एसा नियम नहीं है. अतः उक्त अर्थ निर्दोष है. १. किंवा "त्वं तत् असि" अर्थात् पूर्वोक्त विशेषणवान (ईश्वर) आपही है–स्वयंभु है, अद्वितीय है, हे श्वेत केतु. २. अथवा सो (पूर्वोक्त विशेषणवान ईश्वर) तूं (ही) है; हे श्वेत केतु! एसा जान. वा एसे उपासना कर. ३. किंवा तत् (शरीरादि जगत्का कर्ता ईश्वर) त्वं (शारीरी–जीव जिसका शरीर है अर्थात् जीवमें व्यापक) है. एसे समानाधिकरण मानके अभिप्राय है. एककी एकता वास्ते सो, तू

णेथ न निर्णय करनेसे उदासीनता है; क्योंकि यदि उपनिषद् ग्रंथ स्वतः प्रमाणरूप ठेरें तब तो, इस प्रसंग वास्ते अर्थ ओर उसके उपक्रमोपसंहारादि षड्लिंगके निर्णय करनेमें प्रयास करना सफल हो अन्यथा व्यर्थ हे.

अतः उक्त प्रकारसे जीव ब्रह्मकी एकता बाधक उपनिषदादि स्वतः प्रमाण नहीं यह सिद्ध हुवा.

तब अब अन्य कोनसा शब्द प्रमाण माना जाय ? अन्योंके ग्रंथ वा आचार्य तो उस सिद्धांतके विरूद्ध हें. केवल

कहना आवश्यक नहीं. (देखो रामानुज कृत अर्थ). ४. इत्यादि अर्थ करते हें. तथा अहं ब्रह्मास्मि—में ब्रह्म विषे स्थित वा में ब्रह्म में व्याप्य, वोह (परमात्मा) मेरा अधिष्ठान व्यापक ओर आधार हे; एसा बामदेवके अभिप्राय प्रसंग ओर योग्यतासे अर्थ होता हे. (कोइ, में ब्रह्मका दास, भक्त, व्याप्य, शरीर हुं, एसा अर्थ सिद्ध करते हें, तथा अयमात्मादि दो वाक्यके अर्थ तो समाधिस्थ योगी ओर शोधककी दृष्टिमें भेद बोधक ओर प्रसंगमें ब्रह्म सूचक स्पष्ट प्रतीत होसकते हें—जेसेकि समाधिस्थ योगी, ब्रह्मांड व्यापक पुरूष को शरीर व्यापी आत्मा उसके साक्षात् होने कालमें कहता हे कि अयमात्मा ब्रह्म—यह आत्मा व्यापक—अपारीच्छिन्न हे. इत्यादि प्रकारसे अन्य महा वाक्यभी ब्रह्म बोधक जान लेना ओर इन उत्तर महा वाक्योंके अर्थमें वेदांती भाइभी विशेष आग्रह नहीं करते. पूर्वोक्त दो वाक्योंविषे आग्रह किया करते हें, जिनकी संक्षेपसे पूर्वमें व्यवस्था कही.

कहां तक लिखें—माया, अविद्या, अनृत, अभास—आभासादि पद पद ओर तमाम अद्वैतवादियोंकी श्रुतिके अर्थ रामानुज, आनंद तीर्थ इत्यादि द्वैतवादियोंने द्वैतमें लगाये हें.—जेसेकि, अ (परमेश्वर) विद्या [ज्ञान] अर्थात अविद्याका अर्थ ईश्वरकी ज्ञान शक्ति वा ईश्वरका ज्ञान इत्यादि. अतः शब्दार्थमें पडना तो झगडाही हे.

स्वगुरु वा आचार्य वाक्य और उस पर विश्वासरूप प्रमाण कहोगे तो, अव्यवस्था और अनवस्था दोष आजाते हैं. स्व स्व विश्वासमें स्व स्वगुरु वा आचार्य वाक्य प्रमाण होनेसे भेदमें अभेदमें अव्यवस्था रहेगी. और परंपरा चलानेसे आद्य गुरु [वेदांतियोंका मिथ्या वेद ईश्वर] पर आनेसे अव्यवस्था होगी. जो वेद ईश्वर पर नहीं ठेरोगे तो, अनवस्था होगी. किसी गुरु वा आचार्यको नहीं बता सकोगे, जो कदाचित् बताओगे, तो पूर्वोक्त दोष [अन्यके गुरु आचार्यके वाक्य मान्य क्यों न हो?] प्राप्त होंगे. जो शब्द प्रमाणसे नइग युक्तयादिका आश्रय लोगे तो, स्व सिद्धांत त्याग होगा तथा वक्ष्यमाण युक्तिआदिसे आपका पक्ष सिद्धभी नहीं होता है.

शब्द लक्षणा वृत्ति अभाव.

जो यह कहोगे के "जैसे पुर्वमें कहा गया है के "वाणी और शब्द, ब्रह्मको विषय नहीं करते, अतः शब्द प्रमाण उस विषयमें नहीं होसक्ता." वैसेही हो, परंतु जीव, ब्रह्म, शब्दकी शक्ति वृत्ति (शब्दके मुख्यार्थ) का विषय नहीं है, किंतु शब्दकी लक्षणा वृत्ति-(शब्दका गौणार्थ-भावार्थ) का विषय है;" यह कथनभी हास्य जनक है. क्योंके जब शब्द, स्वशक्यकाही बोधक नहीं तो, लक्षणासे कैसे बोधक होगा? लक्षणा तो, पद, शक्य और माने हुये मन संकेतके आधीन है.

तथाहो शब्द स्वयं तो जड है, अतः ब्रह्मको किसीप्रकारसेभी विषय नहीं करसकता. और शब्द संकेत द्वारा, मन बुद्धि उसको विषय करे सोभी नहीं होसकता; क्योंकि मन बुद्धि वहां नहीं जासकते-उनका ब्रह्म विषय नहीं. जैसे कहीं दस लडके हों, उनमेंसेएक लडका गिनने लगा, वहां भूल वा अज्ञानसे अपनेको नहीं गिनता, तब कहता है कि ह-

मनो ९ लडके हैं. फेर कोई वृद्ध पुरुष कहे कि "दसवां तू-हे" इस पदको सुनके उसकी मनोवृत्ति दसम पदके आकार (पूर्व ज्ञात संकेत आकार) होके पश्चात पूर्वोक्त अभ्यासित-संस्कार बलसे वातदानुसार पदके शक्य जीव(शरीर विशिष्ट वक्तृत्व ज्ञातृत्व अभिमानी)का अपनेमें अभिमान होता है, वा सो (जीव) अभिमान करता है. अर्थात् तू है, वा तू चेतन ज्ञान स्वरुप वा ज्ञानगुण वाला है, एसा किसीको कहा जाय तोभी, विश्वास वा अनुमानसे इतर पृथक, कोई वस्तु विशेष, ज्ञानका विषय नहीं होती† वा नहीं होसकती, क्योंकि ज्ञाता ज्ञेय वा अनुभवी, अनुभव होने योग्य—यह परस्पर भिन्न होते हैं. ओर ब्रह्म प्रसंगमें तो इतनाभी नहीं बन सकता; (क्योंकि किसी शुद्ध वृत्तिवालेकोभी कहे कि "तू ब्रह्म है" वा "मैं ब्रह्म हूं" एसा जान. इन वाक्य करके उसके माने हुये शक्य वा लक्ष्य पूर्व अज्ञात, अदृष्ट, परोक्ष ब्रह्मकार होके ब्रह्मका ब्रह्मस्वरुपसे किसीभी परिच्छिन्न—शुद्ध वृत्ति—मन—बुद्धि,—जीवको वा अन्यको ज्ञान नहीं होसकता (यह स्पष्ट है); तो, ब्रह्मत्व (धर्म) रहितको, स्व स्वरूपका ब्रह्मत्व रूपसे ज्ञान केसे होसकेगा? नहीं. इस रीतिसेभी जीव ब्रह्मके स्वरूप वा एकताके ज्ञानमें शब्द प्रमाणका प्रवेश नहीं. क्योंके जेसे किसीने गुलाबके वृक्ष वा फूलको पूर्व नहीं देखा तो "गुलाबका फूलका" इस वाक्यसे उसको ज्ञान नहीं होता. परंतु "वृक्ष! फूलका नाम गुलाब हे" एसा सुना ओर देखा हो, उसको कालांतरमें गुलाब पद सुनके उसके शक्यकी, वृत्तिमें स्मृति होके ज्ञान होजाता हे. तथाही नभ उष्णादि पद श्रवणसेही नभता उष्णताका ज्ञान हो, यह नियम नहीं; किंतु नैसर्गि

† अद्यापि सृष्टिमें जितने मतहैं, उनमें जीव स्वरूप विषे मत भेद हैं.

क साधनसे* स्वयं होता हे ओर फेर उसके नभ उष्णादि नाम रखे जाते हें, परंतु ब्रह्मका सामान्य विशेष–उभय स्वरूप, पूर्व अज्ञात हें ओर उसको स्वयं विषय करनेके साधनभी नहीं हे; अतः शब्दद्वारा (वा स्वयमेवभी) मन–बुद्धि–वृत्ति. विषय-शब्द-के शक्य वा लक्ष्य पर नहीं जासक्ति. जो अहं अहं† एसे सामान्य प्रतीति सर्व कोहे, सोतो स्वभावतः हे. ब्रह्मके सामान्य रूपसे नहीं. किंवा जीव वादीको जीवके सामान्य भावकी स्वभावतः प्रतीति हे; जो के आवरण विक्षेपके अभावमेंभी होती रहित हो. आवरण काल (सुषुप्त्यादि) विषे असाधनतासे प्रयोगमें उदासीन रूप हे. ओर जब पदार्थ विद्या संपन्न हो, तब जीवके विशेष स्वरूपका विश्वास वा अनुमान वा युक्ति वा अन्य प्रकारसे कथन होना संभव हे. परंतु ब्रह्मरूपसे ज्ञान होना वा माना सर्वथा असिद्ध हे.

जो हठसे मानोगे. तो हम यह पूछते हें के, "तूं ब्रह्म हे" "मैं ब्रह्म हूं" इस पदके शक्य वा लक्ष्यका मनको वा बुद्धिको वा वाणीको वा अंतःकरणको वा ब्रह्मके आभासको वा इन सबको वा ब्रह्मको वा किसको ज्ञान हुवा? जिस हेतुसे, जीव ब्रह्मकी एकताका बोध मान लिया जाय. उक्त सर्व विकल्पोंमेंसे मनादिको मानें तो, सो ज्ञान (तूं ब्रह्म में ब्रह्म) होना असंभव हे; क्योंके आपके सिद्धांतनुसार वे जड हें, उक्त ज्ञान करने योग्य नहीं. तथाही आपके सिद्धांतमें वे मिथ्या. हें, अतः उ-

---

* नभ ओर उसका व्यापकत्व, वृद्धि वा अवकाशादि हेतुसे अनुमानका विषय होताहे. उष्णत्वादि (परिच्छन्न) का त्वचादिसे ज्ञान होताहे.

† अद्यापि जितने मतहें उन सबमें, इस जीवके स्वरुप विषे मत भेदहें (देखो तत्व दर्शन), इस वास्ते संशयात्मक होनेसेभी, जीवको ब्रह्मका अंश नहीं ठेरासकते.

नका यह ज्ञान के "मैं ब्रह्म हूं" सोभी मिथ्या मान्ना पडेगा. ओर मिथ्या ज्ञानसे कुछ सिद्धि नहीं होती; उलटा दोष है. तथाहि अन्यके स्वरूपका अन्यको उस स्वरूपमें ज्ञान होना वा मानना झूटा ज्ञान है. यथार्थ नहीं. मनादि ब्रह्म नहीं, चेतन नहीं, किंतु जड ओर परिच्छिन्न हैं. अतः उनका ज्ञान वा विश्वास, झूट ओर मिथ्या हे. ओर जो यह कहोकि ब्रह्मका ज्ञान हुवा, तो अनेक असंभव दोष प्राप्त होंगे. मनादिसे भिन्न अन्य ज्ञाता मानोगे, तो द्वैतापत्ति, पूर्व दोष ओर स्व सिद्धांत त्याग होगा. तथाही "इस वाक्यके श्रवण पूर्व ब्रह्मस्व स्वरूपको नहीं जानता था, अब अपने स्वरूपको जाना" एसा सिद्ध होगा; परंतु "ब्रह्मको स्व स्वरूपका भूलना वा नहीं जानना, कहना-मान्ना, हास्य ओर लज्जाको प्राप्त करताहै. जो वोह स्वस्वरूपको भूला, एसा मानें तो, स्वसिद्धांत त्याग होगा;" क्योंके ब्रह्मको चिन्मात्र वा ज्ञानस्वरूप मानते हो, ज्ञान, ज्ञानको भूला ओर जाना, एसा कथनही अयुक्तहै. ओर भी, वोह नित्य मुक्त वा मोक्ष स्वरूप नहीं ठरेगा; क्योंके फेर भी स्वरूपको भूल कर वर्त्तमान वत् बंधको प्राप्त हो सकेगा. जो यह कहोके, अनादिसे एसाहै; ज्ञान पश्चात् स्वरूपको भूलना नहीं हो सकेगा. तोभी आश्चर्यहै.-स्वस्वरूपको भूला, एसा कथनही असंभवहै. जो अनादि अज्ञान बल करके भूला, एसा मानें तो, अनादि वस्तु सांत ओर सांत अनंत नहीं होसकती, यह नियम थोडेक विचारसे ध्यानमें आसकताहै. अतः स्वस्वरूपका ज्ञान होनाही असंभव होगा. ओर जो संभव मानोगे, तो अनादि कूटस्थता (निर्विकारता) का अभाव होगा. तथाही "कोन भूला ओर किसको भूला" इन दो विकल्पोंसे यह परिणाम निकल आताहै के ब्रह्म, स्व स्वरूपको

भूलाथा अब उसने अपने स्वरूपको जाना. जब यूंहे तो, ज्ञाता पदका ब्रह्म ओर ज्ञेय पदका स्वरुप वाच्य वा लक्ष्यहें; निदान ज्ञाता ज्ञेय भिन्न २ होतेहें, इस नियमसे ब्रह्म ओर स्वरूप दो वस्तु भिन्न २ हुइ. सो आपके सिद्धांतके विरुद्धहे; क्योंके ब्रह्मसे इतर सर्व मिथ्या मानते हो. अतः यहांभी दोनोंमेंसे एकको मिथ्या कहना पडेगा. जो दोनोंकोसत्य मानोगे तो, द्वैतापत्ति होगी पुनः ज्ञान वास्ते, ज्ञाताज्ञेयकी अनवस्था चलेगी. जो राहुका माथा, इस मिथ्या दंत कथावत् किंवा अग्नि उष्णहे, इस दृष्टांतवत्, ब्रह्म सच्चिदानंद एकही स्वरुपहे, एसा समझाओगे; तो, इस प्रसंगमें यह नहीं लगता; क्योंके यहां स्वरूप मात्रका प्रसंग नहींहे, किंतु ज्ञाता ओर ज्ञेयका प्रसंग हे. ब्रह्म स्वगत भेद रहित हे; अग्नि, उष्ण-एकही पदार्थहें,-ज्ञाताज्ञेयवत् नहीं. अतः उक्त दृष्टांत यहां युक्त नहींहे.

इस रीतिसे ब्रह्म, स्व स्वरूपको भूलाथा, अब तत्त्व मस्यादि श्रवण करके स्व स्वरूपको जानने लगा-इत्यादि कथन बच्चोंकी कथा समान हे. अतः पूर्व वृत्तांतकी रीतिसे 'तू ब्रह्म' में ब्रह्म'एसा शब्द कथन वा श्रवण वा पठन वा मनन न करना निष्फलहीहे.-किसीकोभी उक्त पदके शक्य वा लक्ष्य-स्व ब्रह्मत्वका अनुभव नहीं होसकता. हो कहांसे, जो हो, तो हो.-जो वास्तवमेंही वेसी वस्तु न हो, उसका ज्ञान केसे होगा ? किंतु नहीं होगा. जेसेके श्रोता संबंधमें पूर्व विषे कथन हुवा, वेसे उपदेष्टा संबंधमेंभी अनेक दोष समझ लेना, विस्तार भयसे पुनरावृत्ति नहीं लिखते.

अहं ब्रह्म तू ब्रह्म "एसे वक्ता वा श्रोता, मन-बुद्धि-अंतःकरण, आभास वा यह सर्व वा *साधिष्टान यह सर्व, वा इनमें

* ब्रह्ममें वक्तृत्व वा श्रोतृत्व वा मंतव्य नहीं, एसा माननेपर

से कोइ होना चाहिये; परंतु निराकार, निर्विकार ब्रह्ममें उक्त वक्तृत्व वा श्रोतृत्व वा मंतव्य वा ज्ञातृत्व है नहीं, ओर मनादि जड हैं, यह आपको संमत है. तो उसके शक्य वा लक्ष्य (जीव ब्रह्मकी एकता, जीव ब्रह्मका स्वरूप, एसे लक्ष्य) के कथन श्रवण ओर ज्ञानके अभाव होनेसे, जीव ब्रह्मकी एकता मानना वा कहना, वाणीमात्र वा विश्वास वा रूढी मात्र वा अभ्यास मात्र है. युक्ति अनुभव प्रमाणसे विरुद्ध है. हां, मनादि ओर मायाको एकता कहो तो, संभव है; तथापि इनमें ज्ञातृत्वादिके अभावसे उसका ज्ञान, जीव चेतन ज्ञाता माने विना, सिद्ध नहीं होगा.

बाध समानाधि करणाभाव.

जो यह कहो के यद्यपि निर्गुण ब्रह्म विषे उपदेश वा जानना वा भूलना वा अहं ब्रह्म अभिमान वा अनुमान किंवा अहं ब्रह्म रूपसे ज्ञान नहीं बनता; तथापि शब्द द्वारा (उसके शक्य वा लक्ष्य—ब्रह्म स्वरूप प्रति) मन—बुद्धि—अंतकरण, चिदाभासादि किसी एकमें वा सर्वमें अहंब्रह्मका मिथ्याभिमान होके बाध समानाधिकरणसे बनता है. सो बातभी समीचीन नहीं, क्योंके किसी रंकका "में राजा हूं" एसा अभिमान, उसको राजा नहीं बना सक्ता. ओरन उसका राजामें बाध होसकता है. एसेही में ब्रह्म हूं, इसका लक्ष्यार्थ माननेवालेको सो अभिमान ब्रह्म स्वरूप नहीं बना सकता. अर्थात् निष्फल, व्यर्थ ओर झूट है.

केवल जड मनादिमें ही कहना पडेगा. अतः ब्रह्माश्रित जो मनादि, एसा यहां अर्थहै. ब्रह्म ओर जड मनादि मिलके, श्रोता वक्ताहों, एसा अर्थ नहीं करना; क्योंके ब्रह्म स्वभावतः सत्तास्फुर्णा देताहै. कुछ सूचना नहीं करता; एसा वेदांतियोंको संमतहै.

जैसे दरपन (काच)में मुखका प्रतिबिंब पडता है वहां मुख उपरसे प्रकाश (रोशनी) उठके काच पर आता है, तब अन्य (मुखादि) रूपाकारवत् चक्षुमें विषय होता है और काच पर मुखाकार प्रतीत होता है (वोहि कैसे होता है, इसका विस्तार करना यहां प्रासंगिक नहीं), सो काचके अभाव हुये सूर्य वा अंतरिक्षमें लय होता है. उनका (रोशनी किरणोंका) काच वा मुखमें बाध नहीं होता. और वे मुखमें लय वा मुख रूप नहीं होजाती अर्थात् प्रतिबिंब रूप किरणका सूर्य प्रकाश में बाध समानाधि करण है, मुखमें नहीं (देखो परीक्षा पूर्वक फोटोग्राफ और प्रत्यक्ष सिद्ध पुरावा). इसी प्रकार 'अहं ब्रह्म' 'तूं ब्रह्म' जीव ब्रह्म एक, इस प्रकारका अभिमानी जो मनादि वा उनका अभिमान ब्रह्ममें लय नहीं होता. किंतु उनका बाध समानाधि करण प्रकृतिमें होता है. अतः अनुमान वा विश्वास रूपभी 'अहं ब्रह्म' 'तूं ब्रह्म' ब्रह्म वा कूटस्थ नहीं हो सकता. औरन उसका बाधसमानाधि करण ब्रह्ममें होताहै.

परंतु जैसेके निरूपाकाशका प्रतिबिंब नहीं होता और वेदांती लोक जलादिमें गंभीरताके दृष्टांतसे निरूपका आभास बतलाके बुद्धिको विभ्रम करते हैं और व्याघात दोषमें फंसते हैं. यह ध्यानमें नहीं लेतेकि, चक्ष्यका विषय, रूप और आकार है. सो तो नभमें नहीं स्वीकारते हैं और फेर उसका आभास दृष्ट बताते हैं. वैसेही निरूप निराकार चेतन ब्रह्मका, माया—अंतःकरण—बुद्धि—वृत्तिमें आभास बताके 'अहं ब्रह्म' 'तूं ब्रह्म' वाक्योपदेशद्वारा चिदाभास प्रसंगको लेके बाध समानाधिकरण दृष्टांतसे अहं ब्रह्म (जीव ब्रह्म एक) सिद्धांतको सिद्ध करते हैं, अर्थात् अयुक्त है. यह नहीं सोचते के चेतनका आभास, चेतनका जडमें आभास, सत्का मि-

ध्यामें आभास और निरूप (शब्द आकाशादि)का आभास ही सिद्ध नहीं होता, तो बाध समानाधिकरण कैसे होगा? वा मिथ्याभिमान द्वारा लक्ष्य कैसे ग्रहण होगा? जैसेके पूर्वोक्त प्रकारसे ब्रह्ममें श्रोतृत्व, वक्तृत्व और ज्ञातृत्वका अभावहै, वैसे आभास होने और आभास लयका अभावहै. क्योंके जिसका आभास और जिसमें आभासहै, इन दोनोंसे भिन्न, आभास वा प्रतिबिंब—वस्तु विशेष होती है, यह पूर्वोक्त रीति और वक्ष्यमाण प्रकारसे प्रसिद्ध है (वेदांती लोक उसे अनिर्वचनीय मानते वा विवादमें डालते हैं सो परीक्षा और प्रत्यक्ष पदार्थ विज्ञानके विरुद्ध है). इस रीतिसे उनके मतमें दोष विशेषभी आता है. अर्थात् माया ब्रह्मसे भिन्न आभास वा (किरण समान) उसका उपादान तीसरा पदार्थ, उभय विलक्षण मानना पडेगा. उस करके स्वपक्ष त्याग होगा.

और जो स्थाणुमें पुरुषका बाध होके पुरुष स्थाणुका बाध समानाधिकरण मानते हैं, सोभी समीचीन नहीं है; क्योंकि वेदांतकी रीतिसेही पुरुषका उपादान साक्षीस्थ अविद्या है, स्थाणु ज्ञान पश्चात पुरुषका लय साक्षी आश्रित अविद्यामें होता है. स्थाणु उपहित चेतनमें नहीं; अतःपुरुषका स्थाणुके साथ बाध समानाधिकरण नहीं. तद्वत् अहं ब्रह्म वक्ताका ब्रह्म साथ नहीं; एसा पूर्व प्रकारवत् जान लेना. और जो प्रकाश विद्या (फोटो) की रीतिसे स्थाणुकी किरण चक्षुमें हैं. उसका ज्ञान मानो, भूमिस्थ स्थाणुका प्रत्यक्ष होना नहीं मानो तोभी, पुरुषका समानाधिकरण स्थाणुमें नहीं होता किंतु किरणोंमें वा उक्त अविद्यामेंही बनेगा.

अतः शब्द शक्ति वा लक्षणा वृत्तिद्वारा मिथ्याभिमान होके आभासद्वारा वा अन्यथा, बाधसामानाधिकरण प्रका-

रसे एकता वा अहं ब्रह्मका ज्ञान वा स्व ब्रह्मत्व भाव अलीकहे.

इसी प्रकार शब्दके माने हुये शक्य वा लक्ष्य ब्रह्म चेतन रूपका ग्रहण, कोइ शक्ति वा वृत्ति द्वाराभी वा किसी प्रकारसेभी नहीं होसक्ता.

इत्यादि प्रबल कारणोंको लेके जीव ब्रह्मकी एकतामें शाब्द प्रमाण नहीं हे. वेद उपनिषदसे इतर प्रस्थानों (गीता, ब्रह्म सूत्रादि)की चर्चा इसलिये नहीं लिखते के, वे सर्व, वेद उपनिषद्के आधीन हें. स्वतः प्रमाण रूप नहीं; एसा वेदांती लोक मानते हें.

(सूचना) पूर्व शब्द प्रमाण प्रसंग, जीव ब्रह्मकी एकताके प्रसंगमें हे; तदेतर विषयोंमें वेद प्रमाण हे वा नहीं, सो चर्चा नहीं हे. अतः तदेतर प्रसंगमें नहीं समझ लेना. अर्थात् पूर्वोक्त लेखसे हमारा एसा दुराग्रह नहीं समझना चाहिये कि, वेदोपनिषद सर्वथा त्याज्य हें. यदि कोइ एसे अन्य अर्थ हों कि जो सृष्टि नियम ओर युक्ति प्रमाणके अविरुद्ध हों तो, उनके अर्थ स्वीकारनेमें दुराग्रह नहीं. किंवा उन्ही ग्रंथोमें यथार्थ उत्तम उपदेशभी होने योग्य हे ओर हे. उसके खंडनमें आग्रह नहीं हे. परंतु साथही यहभी जितादेना आवश्यक हे के, किसीके एक असत्य वा सत्य वचन करके उसके सर्व बचन असत्य वा सत्यही हों, एसा हमारा मंतव्य नहीं हे. किंतु सत्यासत्यके निर्णय पूर्वक त्याग ग्रहणमें अभिप्राय हे. चाहे वोह वाक्य ग्रंथकर्त्ताका हो वा किसीने उसमें मिला दिया हो वा हरकोइका होवे. निदान जहां तक उसको छाण वीण नहीं हुई वा नहीं होसक्ती वहांतक, उस पर विश्वास वा आधार नहीं रखा जाता.[१] अन्यथा त्याग ग्रहणमें आग्रह नहीं.

---

१ संभवहेके अनर्थ ग्रहण होके हानीमें पडे.

उपमान अर्थापत्ति अभाव.

शेष रहे उपमान, अर्थापत्ति और अभाव प्रमाण; सोभी इस विषयमें प्रमाण नहींहें; क्योंके वे सर्व, प्रत्यक्ष, अनुमानके आधीन हें. अतः उनउनके दोष आवेंगे. यदि उपमान प्रमाणको इनसे भिन्न स्वयं प्रमाण मानो; तो निरुपम, अगोचर ब्रह्ममें कोइ प्रकारसेभी उपयोग नहीं होता.

तद्वत् अर्थापत्तिको भिन्न प्रमाण मानें; तो दृष्ट श्रुत वा अनुमानसे भिन्न नहीं. तीनोंमें पूर्वोक्त दोष प्राप्त होंगे. और केवल भिन्न प्रमाण मानें; तो प्रत्यक्षके अंतर्गत होनेसे पूर्व दोष आवेंगे. जो उपमानादिको हठसे मानोगे, तो द्वैतापत्ति होगी.

(अभावाभाव)

अभाव प्रमाणभी, ब्रह्म जीव वा उनकी एकता विषे नहीं हे; क्योंकि ब्रह्मादि भावरूप हें. अभावको पदार्थ वा अधिकरण वा विशेषण वा शून्य अथवा अन्य कुछभी मानें परंतु इंद्रिय वा मनके विना और प्रतियोगी अनुयोगी विना, गम्य नहीं होता. जिनका ब्रह्मके साक्षात् अपरोक्ष होनेमें बाध हे. वेदांती लोकभी उपमानादिको ब्रह्मका विषय कर्त्ता नहीं मानते; अतः विशेष विस्तारकी आवश्यकता नहीं.

तथा स्मृति प्रमाणकोभी उनके मतमें प्रमाणरूप नहीं माना हे; इस लिये उसकोभी प्रत्यक्षादिके आधीन जानकर विस्तार नहीं करते.

जो स्वपक्ष सिद्धिमें सर्व प्रमाण मानोगे, तो स्व सिद्धांत (तत्त्वोपनिषद)का त्याग होगा. इतनाही नहीं किंतु पूर्वोक्त सर्व दोष प्राप्त होंगे.

निदान वेदांती लोक षट् प्रमाणकोही मानते हें अन्य नहीं; सो जीव ब्रह्मकी एकता सिद्धिमें उनकी रीतिसेही उपयो-

गी वा मान्य नहीं होसक्ते; जेसाकि, यथोचित उपर वर्णन हुवा.

(अनुभवाभाव.)

जो यह कहो के उक्त विषयमें अनुभवही प्रमाण हे अन्य नहीं. यह कथनभी शांति प्रद वा यथार्थ पुरावा नहीं हे. क्योंके अनुभव पदही अपने अर्थको पराधीन जनाता हे. अर्थात् यह स्वतः प्रमाण नहीं किंतु प्रत्यक्षादि करके जो यथार्थ ज्ञान हो उसीको अनुभव कहा जाता हे. (अयथार्थ अनुभवका यहां प्रसंग नहीं हे.) ओर प्रत्यक्षादिकी उपर व्यवस्था कही गई; अतः अनुभवकोई, स्वतः प्रमाण नहीं. जो कोइ भिन्न प्रमाण मानो, तो यह प्रश्न उठता हे के, मनेंद्रिय जन्य अनुभव वा इनके विना स्वयं होता हे? प्रथम विकल्प मानें, तो पूर्ववत् दोषकी प्राप्ति होगी ओर दूसरा विकल्प मानें, तो किसका अनुभव माना जाय? अर्थात् जगत्में प्रसिद्ध बात हे के कोइ कहता हे ईश्वर हे, कोइ नहीं बताता हे, कोइ जीवको अणु कोइ मध्यम कोइनाना व्यापक कहता हे. ओर सर्व उसमें स्व स्वानुभवको साक्षीमें देते हें. नहीं मालूम इनमें किसका अनुभव प्रमाण हे. जो इंद्रिय अजन्य ईश्वरका अनुभव प्रमाण मानें, तो ईश्वरके अस्तित्वमेंही तकरार हे. तथा उसका अनुभव उसपास हे, अन्यको विश्वास सिवाय उपयोगी नहीं. जो यह कहो के "योगद्वारा संस्कारित वृत्ति करके परीक्षा करलो. हमारे अनुभवानुसार जीव ब्रह्मकी एकता ज्ञात होजायगी?" तो मेरा यह कहना हे के, बौद्ध, जैन, पातंजल—इत्यादि सर्व, एसाही कहते हें. अब इनमेंसे किसके प्रकारवत् अपनी आयुष्य गुमावें? कदाचित् व्यर्थ काल जावे तो, पीछे मनुष्यत्व निष्फल होने ओर वेसीकी वेसी तकरार रहने ओर अन्योंकी संका निवारण न होनेसे पस्तावा रहे-

गा. किंवा चार्वाकका मंतव्य हे के "मरनेके पीछे कोई मोक्ष पद नहीं हे, किंतु मरण, यही मुक्ति. क्योंके जोव पंचभूत जन्य पदार्थ हे, तदेतर कोई तत्व रूप नहीं* यह हमारा अनुभव हे." जो कहो के वक्ताके अनुभवका जो विषय सो, युक्ति प्रमाणसे सिद्ध करलेना चाहिये. तो आपके मतमें पूर्वोक्त तथा वक्ष्यमाण यौक्तिक दोष प्राप्त होते हें, अतः त्याज्य होगा. ओर अनुभव प्रमाणको बाध आवगा.

तथाही चर्मगिर (चमार)के स्थानमें जो राजाके कुंवरको ले जाया जाय. तो दुर्गंध करके मस्तकमें वेदना हो पडती हे, ओर यहां महा दुर्गंधी हे, एसा स्वानुभव कहता हे, परंतु चर्मगिरसे पूछो तो, दुर्गंधीका अभाव कहेगा. कदाचित् सामान्यतः दुर्गंधी बतावेगा. इनमें किसका अनुभव प्रमाण ? तद्वत् पाचक ओर राजकुमारके अनुभवमें अग्निकी उष्णताकी प्रतीति विषे न्यूनाधिक रूप अंतरहे. इस प्रकार किसी एकके अनुभव पर विश्वास सिवाय आधार नहीं होसक्ता. कदाचित् हठसे मानोगे, तो परस्पर विरोध आनेसे सर्वका अनुभव अप्रमाण वा सर्वका प्रमाण, एसा माननेसे प्रमाण युक्ति करकेही परीक्षा करनी पडेगी. वा अव्यवस्था रहेगी.

ओर जो अनुभवको प्रमाण मानभी लेवें तो, जीव ब्रह्म वा उनकी एकता नामा विषय (वा अनुभवका विषय) ओर जिसका अनुभव, विश्वास करके माना हे वह अनुभव कर्ता, जीवादि विषय (वा विषय मात्र)से भिन्न मान्ने पडेंगे; क्योंकि "अनुभव कर, स्व विषयसे भिन्न होता हे" यह नियम प्रसिद्ध हे. अतएव द्वैतापत्ति होगी; जोकि आपको असंमत हे;

* शरीर, तिसके यंत्र, मगज, हृदय, चक्र, ब्रह्मरंध्रादिके खोलके, तपासके अनुभव किया ओर करासकतेहें.

क्योंकि मिथ्या-(ब्रह्मेतर अविद्या, अंतःकरण, मनादि तमाम), सत्य ब्रह्मको विषय करने योग्य नहींहे. नहीं करसकता.. ओर जो जीवादिको अनुभव स्वरूप मानते हो तो, अनुभव प्रमाणका प्रसंगही नहीं रहा. उसकी सिद्धिमें प्रत्यक्षादि माननेसे उक्त दोष प्राप्त होवेंगे. इसलिये आपके मंतव्यमें अनुभव प्रमाणको कोईभी स्वीकार नहीं करसकता.

जो प्रमाणका प्रमाण नहीं, एसा कहोगे, तो प्रत्यक्षादिमें प्रत्यक्षादि तो प्रमाण नहीं होसकते, तब स्व सिद्धांतकी सिद्धि केसे कर सकोगे?, परको केसे अनुभव करासको वा मनासकोगे? नहीं. ओर न स्व पक्षकी प्रतिज्ञा करसकोगे. तथा उक्त विषय (जीव, ब्रह्म, ओर एकता) अज्ञेय, तो प्रमाण मात्रकी आवश्यक्ता नहीं. ओर जो ज्ञेय, तो आपकी पूर्वोक्त श्रुतिके विरुद्ध ओर द्वैतापत्ति.

निदान पूर्वोक्त प्रकारसे जीव ब्रह्मकी एकतामें कोईभी एसा योग्य प्रमाण ज्ञात वा सिद्ध नहीं होता कि जिससे संतोष मिले. जब यूं हे तो, एकता, केवल कल्पना मात्र लेख हे वा विश्वास मात्र कथन श्रवणहे वा संप्रदायकी रूढी रूप शैली हे, एसा, क्यों नहीं मान लिया जाय? ओर उस पर क्यों कर विश्वास रखा जाय? (संक्षेप में--सयुक्त परीक्षामें न लासकें, एसी प्रकारका किसी-ग्रंथ वा महात्मा-का प्रमाण देना, उलटी उसकी निंदा करने जैसाहे; क्योंकि प्रामाणीक वाक्य अयुक्त नहीं होते, ओर यह अयुक्तहे; अतःप्रमाण नहीं, एसा विश्वास होजाताहे. यहां वक्ताकी युक्ति अज्ञात मानें, तो उस (वेदवक्ता-ईश्वरादि) का आशय वा अर्थभी हमारेसे अज्ञात-अन्य होना क्यों न मान जाय?-एसा होना संभवहे. वा कोन जानें किस दृष्टि, देशकालके आशयसे एसा लिखा? वा किसी अन्यका (महाभारतादि ग्रंथगत क्षेपकसमान) मिलाया हुवा वाक्य क्यों नहो?-एसा होना संभवहे. तद्वत् उक्त अन्य प्रमाणों विषे अनेक बातें विचारणीय होती हें). अतः केवल एक प्रकार [विश्वास वा शब्दादि प्रमाण) के आधारपर उक्त विषय मान्य नहीं होसकता.

लक्षणा, अपरोक्षत्व दर्शन २.

(तत्त्वमसि महा वाक्यकी लक्षणा–अर्थ)

(एक जीववाद–एकताका अपरोक्षत्व.)

जो हठाकारसे विश्वासमें आकर आपका सदोष (दो' आगे वांचोगे) सिद्धांत मानभी लेवें तोभी, साधारण युक्ति ओर सृष्टि नियमसे हठ ओर विश्वास भंग होजाता हे. किंतु अनर्थ प्राप्त होता हे. सो संक्षेपसे जनाते हें:–

"एकदो न दोएक" यह अटल नियम हे–अर्थात् जो स्वरूपसे एक वे दो, ओर जो दोहें, वे एक, कभी नहीं होते (१). तथा स्वरूप मात्र स्वरूपसे भिन्न रहें. अर्थात् स्वस्वरूप संबंध विना, अन्य स्वरूपोंके साथ, स्वरूप संबंध नहीं कर सक्ते वा नहीं होता (२). यह सर्व मान्य ओर सृष्टि नियम हें–तथा सर्वको अनुभव गम्य होने योग्य हे. एतदृष्टि अब जो, जीव–ब्रह्म उभयको स्वरूपसे भिन्न २ मानें, तब तो, इनकी एकता, जीवके जीवन्मुक्त वा विदेह मुक्त हुये वा किसी कालमें, कभीभी नहीं होसक्ती ओर जो एकही स्वरूप हें–व्यवहार मात्र पर्याय रूप दो नाम रखें हें–तो, उनकी एकताका कथनही झूठ–अयोग्य–अनुचित वा असंभव हे, जेसेके जल ओर पानीकी एकता हे–एसा कथन अयोग्य हे; किंतु जल ओर पानी एकही वस्तुके दो पर्य्याय नाम हें, एसा कहना योग्य हे. दो भिन्न लक्षण, वाचक नाम कहके एकता कहना झूठ वा अनुचित हे. वेदांती लोक जीवको, संसारी-बद्ध,-कर्त्ता-भोक्ता-व्याप्य ओर परिच्छिन्न मानते हें; ओर ब्रह्मको तद्विरुद्ध (असंसारी, मुक्त, अकर्त्ता, अभोक्ता

ओर व्यापक) विशेषण लगाते हैं. (देखो द्वासुपर्णादि श्रुति) अतः उभयका स्वरूप भिन्न सिद्ध होनेसे उभय भिन्न २ हुये.

जो यह कहोके, यद्यपि तुम्हारा कथन ठीक हे, तथापि इस वचनमें गुह्य रहस्य हे—जिसको अनुभव भाषाकी परिपाटिसे ब्रह्मनिष्ठ–श्रोत्रिय गुरु महात्मा लोक करके जानने योग्य हे—वोह यह हेः—व्यवहार मात्रमें पदका लक्ष्यार्थ रहा हुवा हे.—जेसे "जलला" इस पदको श्रवणकरके 'ज' कार 'ल'कार नहीं लाता वा नहीं लासक्ता, ओर लाना बनताभी नहीं; अतः भावार्थ बलसे जलपदका शक्य वा लक्ष्य (वाक्यार्थ वा लक्ष्य) जो तृषा निवारक पीनेका पदार्थ हे उसको× लावेगा. क्योंके वक्ताका अभिप्राय उस पदार्थमें हे—'ज'कार 'ल'कार—शक्यमें नहीं. किंवा "नलिये चूते हें" इस वाक्यका प्रचार हे ओर भावार्थसे जलका चूना जान लिया जाता हे. किंवा "सैंधवला" इस पदको सुनके श्रोता, प्रसंगानुसार लवण वा अश्व (भोजन समय हो तो, लवण ओर हवा खाने वा लडाईका प्रसंग होतो, अश्व) लाता हे. निदान् व्यवहार मात्रमें शब्दका भावार्थभी होता हे. इसी प्रकार "जीव—ब्रह्म एक हे" "तत्त्वमसि" "अहं ब्रह्म" वाक्योंमें वाच्यार्थ ओर भावार्थ हे उसको संक्षेपसे जनाते हैंः—

अंतःकरण—बुद्धि वा अविद्या विशिष्ट चेतन, अथवा आभास (ब्रह्मके आभास सहित) अंतःकरण—बुद्धि वा अविद्या विशिष्ट चेतन, अथवा अंतःकरणादि अवच्छिन्न वा-अनवच्छिन्न चेतन, अथवा अज्ञान विशिष्ट वा अज्ञान अवच्छिन्न वा अनवच्छिन्न चेतन,—जीव पदका वाच्यार्थ हे. सो-

× जल पद सुनतेही पूर्व परीक्षित संकेतभानसे, जल द्रव्यके शीतत्वादिका स्वभावतः स्मरण—ग्रहण होता हे. लक्षणासे नहीं.

ही कर्त्ता-भोक्ता-सक्रिय कहाता हे; ओर उपाधि रहित-व्यापक शुद्ध-अद्वैत चेतन, ब्रह्म पदका वाच्यार्थ हे अथवा माया—अज्ञान विशिष्ट वा अवच्छिन्न वा अनवच्छिन्न किंवा साभास माया-अज्ञान विशिष्ट चेतन ईश्वर-ब्रह्म पदका वाच्यार्थ हे. उक्त वाच्यार्थमें लक्षणा करें (वक्ताका भावार्थ लेवें) तो, चेतन पदार्थसे इतर अंतःकरणादि ओर उपाधि माया अज्ञानादिका त्याग करके, चेतन शुद्ध स्वरूप ब्रह्ममें तात्पर्य हे. अर्थात् व्यापक चेतन एक ब्रह्म हे. वही अंतःकरणादि ओर मायादिका अधिष्ठान ओर उनमें व्यापक हे. वे इसके व्याप्य हें. व्यवहार ओर उपाधि प्रसंगसे नाना नाम कल्पते हें. इस प्रकार जीव-ब्रह्मको एकता, (दोएक, एकदो) का कथन हे—उपाधि सहितसे प्रयोजन नहीं हे. ओर यहि तत्त्वमसि, अहंब्रह्मादि वाक्योंका रहस्य हे ओर वेदका सार (वेदांत) हे. (इति पूर्वपक्ष). मेरे प्यारे वेदांती भाइका उक्त कथन (भी), वाक्योंको प्रमाण माननेसेभी नहीं बनता. क्योंकि "ब्रह्मचेतन एक हे ओर सजातीय-विजातीय-स्वगत भेद रहित अचल हे, तदेतर अनिर्वचनीय पदार्थ अनादि सांत मिथ्या हें;" यह आपका सिद्धांत हे. जब एसा कहा-वा माना तो, "जीव ब्रह्मकी एकता" एसा कथन वा उपदेश झूठ होजायगा. क्यों के चेतन सत्य हे, अंतःकरणादि मिथ्या हें, अतः विलक्षण (मिथ्या-प्रातिभासिक) उपाधि वाले जीवकी पारमार्थिक ब्रह्मके साथ एकता कथनकी शैली, रत्न देखाके काच देने जैसा हे. ब्रह्मको विजातीय भेद रहित कहना ओर फेर विजातीय मायादि मानना, आश्चर्य जनक बात हे. यह मानाके सत्य परमार्थ रूप विजातीय नहीं; तथापि सजातीयसे अन्य सत्, असत्, सदासद् (वि-

लक्षण वा कैसेभी हों, सर्व विजातीय कहाते हैं. अतः विजातीय पद कथन अनुचित है. जो कहो के तद्देतर कुछभी नहीं, तो जो कुछ उपदेश वा कथन वा खंडन मंडन करोगे वा मनमें अनुभवोगे सो तमाम, व्याघात वा छलकपटका आरोप करेगा. ओर आपकी संप्रदायका अवच्छेद होगा. सो अभीतक नहीं देखते; इसीसे हमारा उक्त कथन अयथार्थ नहीं, किंतु प्रत्यक्ष प्रमाण बलसे सिद्ध है.

जो कहोके स्वप्नवत् है, तो आपका सिद्धांत वा मंतव्य वा उपदेश वा अनुभवभी स्वप्नवत् वा बाल कथन समान होगा. जेसे परिच्छिन्न-सक्रिय-परिणामी-दृष्ट पदार्थोंको "सर्वंखल्विदं ब्रह्म"¹ कहते हो, वा "अनादिको सांत, सादिको अनंत" मानते हो, यह स्वप्न वा अज्ञान बल नहीं तो क्या है! अतः स्वप्नवत् त्याज्य है. ओर सत्यरूप जाग्रतमें (सत्यासत्यके निर्णयरूप अवस्थामें) आनेकी आवश्यकता है. उक्त वाक्यका जो अर्थ आप मानते हो वा वेसाही होतो, अयुक्त है. तत्वमस्यादि वाक्योंको प्रमाण कहके वक्ताके अभिप्राय उपर लक्षणा मानके जो, अर्थ किया है वोहभी, आपका मनोरथ सिद्ध नहीं करता; क्योंके जेसे किसीसे पूछेंकि कहां रहते हो? तब उसने कहाकि "नारायण सरोवरमें." यहां नारायण नामा मनुष्यका खुदायाहुवा जलपूरित जो खड्डा है, उसका नाम नारायण सरोवर है. ओर नारायण सरोवर वाक्यका सो शक्यार्थ—(वाच्य) है; परंतु जलपूरित खड्डेमें मनुष्यका सर्वदा (जीवन पर्यंत) निवास असंभव है;

¹ यह सर्व जगत् ब्रह्ममें स्थित है, एसा द्वैतवादी अर्थ करते हैं. यह सर्व जगत् ब्रह्म है वा यह सर्व जगत् नामरूप त्यागके सर्व ब्रह्म है, एसा वेदांती लोक [अद्वैतवादी] अर्थ करते हैं.

अतः वक्ताके कहनेका तात्पर्य यह है कि नारायण सरोवर के तीर (किनारे) में रहता हूं. [1]इस उदाहरणमें नारायण सरोवर ओर तीरका जो संबंध (शक्य संबंध) उसे लक्षणा कहते हैं. ओर नारायण सरोवर पदका (शक्य संबंधी) तीर लक्ष्य (लक्ष्यार्थ) हे. इसी प्रकार तत्त्वमस्यादिमें जो लक्षणा करें तो, दोष आता हे.—ओर आपके सिद्धांतकी हानी होती है. संशय रहित सिद्धांत नहीं होता. उसका दिग्दर्शन मात्र यह हेः-

"शक्य संबंधो लक्षणा" यह आपकी रीतिसेभी लक्षणाका लक्षण हे. लक्षणा करके जिसका ग्रहण होसके सो लक्ष्य (उभयके दृष्टांत ऊपर जिताये हैं). लक्षणा करनेके तीन प्रकार हें अर्थात् लक्षणा तीन प्रकारकी हे.[2]

शक्यको छोडके शक्यसंबंधी लेना, जहत कहाती हे;.जेसेके उक्त उदाहरणमें सरोवर छोडके तीरत्व धर्मवान् स्व स्वरूप संबंधी विशिष्ट जोतीर व्यक्ति, तिस (केवल तीर) में लक्षणा हे..१.

शक्यको न त्याग करके शक्य संबंधीकाभी ग्रहण करना, सो अजहत् लक्षणा हे; जेसेके "दूधको कागसे रक्षाकर". यहां दूध नाशक सर्पत्वादि धर्मवान् स्व स्वरूप संबंध विशिष्ट सर्पादिव्यक्ति (सर्प बिल्ली इत्यादि--शक्य संबंधी) काभी ग्रहण हे. ओर काक (शक्य)काभी हे. २.

शक्यके एक भागको छोडके एकका ग्रहण करना, यह जहताजहत—भाग त्याग—लक्षणा कहाती हे; जेसेके पूर्व दृष्ट राज्य सामग्री विशिष्ट भरत राजाको किसीने जंगलमें विभूति लगाये हुये देखके किसीसे कहाके "यह वही हे" वा

---

१ वाचकको लक्षणा प्रकारका बोध होजाय, इस लिये उदाहरण लिखाहे. २ ग्रंथकार वा पक्षकारोंने जो जो भेद लिखे हें, उन सर्वका, वेदांतियोंके इन तीन प्रकारोंके अंतरगत समावेश होजाते हे.

भरतसे कहा "सो तू हे." यहां पूर्व देशकाल राज्य सामग्री युक्त जो शरीरत्व धर्मवान स्व स्वरूप संबंध विशिष्ट शरीर व्यक्ति, सो वहो वा सो पदका वाच्य–शक्य–हे. (शक्यं क संबंधी नहीं). ओर वर्त्तमान देशकाल वनस्थ विभूति लगाये हुये जो शरीरत्व धर्मवान् स्व स्वरूप संबंध विशिष्ट शरीर व्यक्ति सो, यह वा तू पदका वाच्य–शक्य हे. (शक्य संबंधी नहि) पूर्वोक्त वहो–सो पदके शक्यका संबंधी बन विभूति आदि हें, परंतु शरीर नहीं. ओर यहवा तू पदके शक्यके संबंधी राज्य सागग्री आदि हें. परंतु शरीर नहीं. निदान शरीरत्व धर्मवान स्वस्वरूप संबंध विशिष्ट शरीर व्यक्ति तो, शक्यहो हे.

अब यहां जो भागत्याग करें तो, सो (वही)के वाच्यका एक भाग स्वस्वरूप संबंध विशिष्ट व्यक्ति मात्रका ग्रहण हे. ओर तूके वाच्यमेंभी उसीका ग्रहण हे. अर्थात् स्वस्वरूप संबंध विशिष्ट शरीर मात्र लक्ष्य हे. किंवा उपर जो जीव ब्रह्मकी एकताके प्रकारमें जनाया गया हे सो, भाग त्यागका उदारण हे. १

उक्त तीनों[२] प्रकार प्रचलित प्रसिद्ध ग्रंथ ओर वेदांतियोंके मतानुसार हें.

---

१ विदित रहेके ऊपर जो जाति व्यक्ति विशिष्ट पद लिखे हें वे, न्यायादि शास्त्रोंके मत वा व्यवहार दृष्टिसे विशेषतः लिखे गये हें. ओर स्व स्वरूप संबंध विशिष्ट जो वाक्य लिखा हे वोह, वाचकको यथार्थ बोध ओर व्यवहार मात्रमें उपयोगी होनेकी दृष्टिसे लिखा हे. कुछ तकरारकी दृष्टिसे नहीं लिखा हे. क्योंके शब्दकी शक्ति ओर लक्षणा वृत्ति तथा जाति व्यक्तिमें अनेक प्रकारके मंतव्य- वादविवाद हें. यहां तो, उपयोगी प्रसंगमात्र लिखा हे.

२ वाचक महाशय? आगे, दार्ष्टांत प्रसंगमेंभी कहे हुये प्रकारसे विवेक करनेका हे. ध्यानमें रहे.

अबमें (समीक्षक) आप (वेदांतियो)से यह पूछता हूं के उक्त तत्त्वमस्यादि वाक्योंमें कोनसी लक्षणा मानते हो ?

यदि पहिला प्रकार मानते हो तो, 'जीवेश्वर एक' वा 'जीव ब्रह्म एक' इस वाक्यमें स्वस्वरूप संबंध विशिष्ट चेतन ब्रह्म व्यक्ति ओर माया अविद्या तथा उसके कार्य तो, शक्यतासे अवछेदक हें; अब इनको त्यागके कोनसे शक्य संबंधीका ग्रहण करें. आपकी रीतिसे तो, शून्य वा अभावसे इतर, अन्य कुछ ग्रहण करने योग्य नहीं ठेरता. अतः शक्य संबंधी अत्यंताभाव--शून्यके ग्रहण होनेसे स्व सिद्धांत, वक्ता का अभिप्राय त्याग ओर एकताका अभाव है; एसा सिद्ध होगा. किंवा, आभासवाद माननेपर, चिदाभास[1] जडका ग्रहण होगा. अथवा तो, जड चेतनके संबंध वा भेदका ग्रहण होगा; परंतु जीव ब्रह्मकी एकता--(चेतन भाग) ग्रहण नहीं होगी.

तथाही उक्त प्रकारके ग्रहणसे जहां तत्त्वमस्यादि वाक्य हें उसके पूर्व प्रसंगसे विरुद्ध अर्थ वा प्रसंग संगति त्याग दोष होगा. परस्पर महा वाक्योंका समान अर्थ नहीं होसकेगा. ओर संबंध वा भेद वा उभयके मानने वा ग्रहणसे अनवस्था दोष आवेगा. ओर संबंध भेदको अनंत मानना पडनेसे तथा उनके संबंधोकोभी अनंत मानना होनेसे अद्वैत मतका त्याग होजायगा. इत्यादि स्पष्ट दोष हें.[2]

---

१ वेदांत पक्षमे चेतन, माया, जीव, ईश्वर, जड चेतनका भेद, जड चेतनका संबंध यह षड वस्तु अनादि ओर इनमेंसे चेतन इतर, पांचों सांत मानी हें. कोइ पक्षकार चिदाभासकोभी मानता हे. एतद्दृष्टि माया चेतनसे, इतर-आभास, संबंध ओर भेद को शक्य संबंधी मानके ग्रहण करनेमें विकल्प किये हें.

२ वेदांतीभाइ महा वाक्योंमें जहत ओर अजहत लक्षणाका

जो दूसरा प्रकार लेवें, तोभी, स्वस्वरूप विशिष्ट चेतन व्यक्ति तथा माया और उसके कार्य अविद्या अंतःकरणादि से इतर अन्य वस्तुका आपके मतमें अभाव है और वेतो यहां शक्य हैं; तब शक्य संबंधी कोन वस्तु लोगे? जो कुछ लोगे तो, शक्य चेतन सकार्य माया–अविद्या–यहदो–शक्य और तीसरा शक्य संबंधी अभाव–शून्य–इन तीनोंके ग्रहण होनेसे जीव ब्रह्मकी एकताका अभाव है (सोतू अभावरूप वा सोतूका अभाव है), एसा परिणाम निकलेगा.

किंवा "सोतू है और नहीं" (जीव ब्रह्म है और नहीं) एसा, पुनः तकरारी और स्व विरुद्ध पक्ष स्वीकार होनेसे स्वपक्ष त्याग होगा. और अनवस्था आवेगी. कुछ निर्णय फल नहीं निकलेगा. किंवा स्वपक्ष विरुद्ध असंभव चिदाभास जडका ग्रहण होनेसे, यह परिणाम निकलेगा के, सो [चेतन व्यापक, शुद्ध, सर्वज्ञ, माया विशिष्ट चिदाभास व्यक्ति है] और तू [चेतन अल्पज्ञ कर्ता भोक्ता परिच्छिन्नादि विशेषणवान अविद्या–अंतःकरण–विशिष्ट चिदाभास व्यक्ति है], उभय एक हैं; एसे विरोधी सिद्धांतका ग्रहण होजायगा. किंवा आभासके संबंधको वा जड चेतनके संबंधको शक्य संबंधी मानके ग्रहण करें तो, सो (पूर्वोक्त शक्य) तूं (पूर्वोक्त शक्य) आभासवाला है वा उभय संबंधी है.--और जो जड चेतनके अनादि भेदको शक्य संबंधी मानके लेवें तो, सो (पूर्वोक्त शक्य) तू (पूर्वोक्त शक्य) भेदवाला है. अर्थात् जी-

उपयोग नहीं स्वीकारते हैं. किंतु दोष सिद्ध करते हैं और तदंतर किसी पक्षवालेने मानी है तो, उसका वही भाइ खंडन कर डालते हैं; इसलिये यहांभी उक्त दोष उद्देश मात्र जनाये हैं. अन्य दोषोंका विस्तार नहीं लिखा.

व ईश्वर भिन्न है—सो तू भेदवाला है. एसा सिद्ध हो जायगा. परंतु जीव ब्रह्मकी एकता, सिद्ध नहीं होगी. तथा उक्त प्रकारके ग्रहणसे जहां यह वाक्य हैं उसके पूर्व प्रसंगसे विरुद्ध अर्थ वा प्रसंग संगति त्याग दोष होगा. महा वाक्योंका परस्पर समान अर्थ न होसकेगा, संबंध, भेद इन उभय पद करके अनवस्था दोष आवेगा. अद्वैतका त्याग होगा-इत्यादि दोष हैं[1]

जो तीसरा प्रकार लेवें तहां, स्वस्वरूप संबंध विशिष्ट शुद्ध चेतन ब्रह्मनामा व्यक्ति—स्वकार्य ओर अंतःकरण अल्पज्ञता सर्वज्ञतादि सहित माया—अविद्या—जीव ईश्वर यह सर्व तो "जीव ईश्वर एक" इस वाक्यके वाच्यार्थ—शक्यार्थ हैं. ओर जो "जीव ब्रह्म एक है" एसा मानके सो (शुद्ध चेतन) तू (अंतःकरणादि विशिष्ट पूर्वोक्त जीव) मानके 'सो'का वाच्यमात्र ओर 'तू'का लक्ष्य चेतनमात्र लेवें तो, भागत्याग लक्षणा उभय पदमें नही होगी; किंतु एक पदमें शक्यार्थ ओर दूसरेमें भागत्यागसे लक्ष्यार्थ लेना पडेगा. सो, प्रसंगमें अनुचित है. क्योंके प्रसंगवशात् सो पदका वाच्य ऐश्वर्यवान सगुण परमेश्वर है. ओर अद्वैत शुद्ध चेतन तो गुण रहित निर्गुण है; अतः "जीवेश्वर एक है" एसाही वाक्य ठीक है. तथा जहां जीव ब्रह्म एक है वहांभी "ब्रह्म ईश्वर वाची पर्याय शब्द हैं" एसा समझनेसे निर्वाह होता है; एसा प्रसंगवशात् मानना पडता है. अतः पूर्वोक्त ब्रह्म व्यक्तयादि तत्त्वं के शक्य हैं. अब विचारना चाहिये के लक्षणाका "शक्य संबंध" लक्षण मानें तो, पूर्वोक्त शक्यके संबंधी अन्य तो ज्ञात नहीं होते, किंतु वेदांती लोक ब्रह्म, माया-(अज्ञान), इनका संबंध, जड चेतनका भेद, ईश्वर ओर जीव यह ६ वस्तु अनादि

---

१ प्रथम प्रकारगत प्रसंगकी दोनों टिप्पण वांचो.

मानके ब्रह्मेतर पांच, सांत मानते हें ओर एकपक्ष लेके चिदाभास ओर, मान लिया जावे तथा इनसे अन्य शून्य वा अभावभी कहदें तो, पूर्वोक्त शक्यके संबंधी आभासादिका ग्रहण करसकें; परंतु पूर्वोक्त जहत ओर अजहत लक्षणा वाले दोष प्राप्त होंगे. तथाही शक्यके एकभाग त्याग ग्रहण विना, जहत वा अजहत लक्षणामें व्याप्ति होगी, भागत्यागके स्वरूपका निर्वाह नहीं होगा; अतः उक्त लक्षण मानके भाग त्याग लक्षणाका अभाव होजानेसे, तत्त्वमस्यादि वाक्योंमें भागत्याग करना सदोष लक्षणा हे. ओर लक्ष्यमें प्रवृत्ति नहीं होगी, ओर जो भागत्याग लक्षणा मान लोगे तो, लक्षणकी अव्याप्तिसे पूर्वोक्त उभय लक्षणाका बाध होजायगा. क्योंकि शक्य संबंधीका ग्रहण नहीं वा शक्य मात्रका त्याग नहीं; किंतु शक्यकेही एक भागका त्याग एक भागका ग्रहण, भागत्याग लक्षणा हे; सो पूर्वोक्त उभय लक्षणामें लक्षण नहीं जाते; अतः परस्पर विरोध आजाने कर, लक्षणाका अवच्छेद होनेसे, तत्त्वमस्यादिका बोह अर्थ के जो वेदांती लोक करते हें सो, नहीं होगा.

जो यह कहो के "चेतन, माया, ओर इनका संबंध तीनों मिलके ईश्वर, 'तत्' पदका शक्य ओर अविद्या, चेतन ओर इनका संबंध मिलके त्वं पदका शक्य हो, परंतु चेतनका स्व स्वरूपमें तादात्म्य संबंध हे, तिस विशिष्टको शक्य संबंधी लक्ष्य समझो, मायादि विशिष्टको शक्य समझ लेना; इस रीतिसे लक्षणाके लक्षण ओर भागत्याग लक्षणाका बाध नहीं होता." यह कथनभी अयुक्त हे; क्योंके जो, पदका शक्य होता हे सो, स्व स्वरूप संबंध विशिष्टही होता हे, स्व स्वरूपको त्यागके होवे नहीं. जेसेके तीरादि स्व स्वरूप सं-

बंध छोडके निवासके हेतु नहीं होते, काकादि स्व स्वरूप संबंध छोडके दुग्ध घातक नहीं होते, ओर शरीर स्व स्वरूप संबंधको छोडके विषय नहीं होता. वसही चेतन पदार्थभी स्व स्वरूप संबंध विशिष्ट विना, वाच्य वा लक्ष्य नहीं होसक्ता. यहां अभिप्राय यह हे के स्वस्वरूपका स्वस्वरूप साथ तादात्म्यादि संबंध, समझाने वास्ते कल्पे जाते हें. स्व, स्वरूप, ओर स्व स्वरूप तादात्म्य संबंध-यह तीनों कुछ भिन्न भिन्न वस्तु नहीं हें. जो मान लोगे तो, स्वपक्षका त्याग होगा; क्योंके ब्रह्म स्व स्वरूपसे कभी तादात्म्य विनाका नहीं होनेसे, ब्रह्म, उसका स्वरूप, ओर तादात्म्य संबंध—यह तीन पदार्थ अनादि अनंत माननेसे द्वैतापत्ति होजायगी. पुनः स्वरूप संबंधका संबंध मानना पडेगा. उससे अनवस्था ओर अव्यवस्था होगी.

जो कदाचित् चेतन व्यक्ति ओर तिसेकी जाति, दोनों मानके पूर्वोक्त शक्य गत शक्य संबंधी (चेतन, माया, चेतनत्व, मायात्व) व्यक्ति वा जातिमेंसे, एकका ग्रहण अन्यका त्याग करके भागत्यागका निर्वाह करोगे तो, स्व सिद्धांतका त्याग होगा, क्योंके वेदांत पक्षमें ब्रह्म चेतनको जाति(धर्म)रहित व्यक्ति मात्र माना हे, जो जाति मानें तो, द्वैतापत्ति होगी; क्योंके जाति, व्यक्ति विना, नहीं रहती; अतः जाति व्यक्ति—यह दो पदार्थ नित्य माननेसे द्वैत सिद्ध होगा; शुद्ध ब्रह्म धर्मवान् ठेरेगा; गा; तथा एक धर्मवाली अनेक व्यक्ति हों, तब जातिकी सिद्धि होती हें; इसलिये अनेक चेतन, ब्रह्म वा ईश्वर माननें पडेंगे. ओर व्यवहार बुद्धिसे इतर, जाति अलीक पदार्थ हे उसकोभी मानना पडेगा.

जो यह कहो के जेसे "सधवला" इस प्रसंगमें सैंधव प-

दके दो शक्योंमेंसे, एकको शक्य ओर दूसरेको उसका संबंधी मानके लक्षणा करसकते हें, वेसेही 'तत्'के वाच्य—शक्य—चेतन—माया-इन दोनोंमेंसे माया शक्य ओर तत्संबंधी चेतन लक्ष्य लेनेसे लक्षणाके लक्षणमें दोष नहीं आया. ओर भागत्याग लक्षणाभी बन गई." आपका यह कथनभी समीचीन नहीं; क्योंके सैंधव पदके दो वाच्य—शक्य—हें. जिस कालमें सैंधव पदका कथन हुवा उस समय, किसको शक्य ओर किसको शक्य संबंधी मानें? तब यही उत्तर बन आता हे. के तात्पर्यानुपपत्तिही हेतु नहीं किंतु, प्रसंग वश ओर वक्ताके अभिप्रायको लेके अनेक अर्थोंमेंसे किसी एक शक्य-लक्ष्यका ग्रहण हे. वहां केवल एक हेतु नहीं, किंतु तीन वा दोनों होंगे; क्योंके जेसे विवाह कालमें "राम सत्य हे" एसा कोइ कहे तो, यह वाक्य मुरदेके लेजाने समय बोलनेकी रूढी होनेसे शोक—अमंगलकालमें प्रयोग होता हे. ओर वहां तो, मंगलकार्य हे; अतः प्रसंगवशात् ईश्वर स्तुतिमें लिया जाता हे. ओर वही वक्ताका अभिप्राय होने योग्य हे. कदाचित् वक्ताका अभिप्राय अमंगल रूप होवे तो, मनमुखी वा ऐच्छक होनेसे अमान्य हे. जेसेके भोजन कालमें सैंधव पदका अश्व लानेका अर्थ कहे सो, अमान्य हे. उभय प्रसंगमें तात्पर्यानुपपत्तिही लक्षणाका बीज नहीं हे. अतः जहां, एक पदके अनेक शक्य—वाच्य—हों वहां, प्रसंगवशात् ओर वक्ताके अभिप्रायको लेके जो अर्थ लिया जाता हे सो शक्य हे, वहां लक्षणा नहीं हे. श्रवण कालमें श्रोता किसको शक्य माने, यह निर्णय नहीं होता; अतः तत्संबंधीका निश्चय नहीं होता. ओर जब वक्ताके अभिप्राय ओर प्रसंग ऊपर बलदेताहे तब, जो ग्रहण होने योग्य हे सोही, उपस्थित होता हे.—अन्य

अर्थोंके त्याग ग्रहणका प्रयोजन नहीं रहता. और तत्त्वमस्या दि वाक्य प्रसंगमें तो, यह दृष्टांत ही लागु नहीं पड़ता, क्य के तत्–त्वं-अहं, यह सर्व नाम हैं–प्रसंगवशात पूर्वोक्त परमे श्वरका वाचकही 'तत्' है. आपके मंतव्यवत् केवल चेतन व केवल मायाका वाचक नहीं है, किंतु 'तत्' का शक्य माया वि शिष्ट ईश्वर है. वैसेही त्वं पदका शक्य अंतःकरणादि विशि ष्ट चेतन है. अतः मायाको शक्यमानके तत्संबंधी एक शक्य चेतनका ग्रहण और एकका त्याग उक्त प्रकारसे नहीं हो सक्ता.

जो यह कहो के तत्के शक्यका संबंधी जीव (त्वंका श क्य वा लक्ष्य) और त्वंके शक्यका संबंधी ईश्वर–ब्रह्म (तत्का शक्य वा लक्ष्य) है; अतः उसका ग्रहण करनेसे तत्त्वमसि वा क्यमें लक्षणा हो जातीहै. सोभी सयुक्त नहीं; क्योंके तत के शक्यका संबंधी, चेतन रहित जीवांश (अंतःकरण, अवि द्या और तत्कार्य अल्पज्ञतादि) है. कारणके जो, चेतन त्वं पदका शक्य है सोही, तत्का शक्य मानते हो. वैसेही त्वंके शक्यका संबंधी चेतन भाग रहित ईश्वरांश (माया अज्ञाना दि, तत्कार्य सर्वज्ञतादि) है; क्योंके जो चेतन तत् पदका शक्य है, सोही त्वंका शक्य मानते हो; अतः वाक्यका लक्ष्या र्थ यह हुवा के माया अंतःकरण एक है. इस रीतिसे चेतनका ग्रहण नहीं हो सकता, कारण के एकहै और उभय पदका शक्य है. शक्य संबंधी नहीं. यदि तत् पदका चेतन और त्वं पद- का चेतन स्वरूपसे भिन्नभी हों तो, 'उभय चेतन एक हैं' एसा कहेना व्याघात है. निदान उभय चेतन (सो चेतन तुं चेतन) में, चेतनता मात्र समान है (व्यापक और परिच्छिन्न ताका यहां प्रसंग नहीं), एसा भावार्थ लेसकते हैं, सोतो, आपके सिद्धांत वा मनोरथके विरुद्ध होगा.

इसी प्रकार लक्षणा प्रसंगमें अनेक रीति वा कल्पना† हैं. व्यर्थ ओर अयुक्त जानके नहीं लिखते.

जो कहो कं* "बोध्य संबंधो लक्षणा" यह लक्षणाका लक्षण हे; तो रामानुजादिने जो द्वैतार्थ किये हैं ओर अन्य श्रुतियोंके अनुकूल होसकतेभी हैं, उनश्रुतियोंके अनुकूलबोध्य कहाने योग्य हें, वेभी ठीक मानने पडेंगे, क्योंके बोधक उद्दालक ऋषि किंवा छांदोग्य ओर बृहदारण्यक कर्त्ता तो, विद्यमान नहीं हें, यदि होते तो, उनसे पूछ लेते. ओर प्रसंग संगति ओर शब्दका आधार लेके अर्थ करते हैं तो, अनेकार्थको अवकाश मिलता हे. ओर विवादित तथा संशयात्मक विषय रहता हे. अतः एसे विवादित वाक्यके आधारको सा-

---

† तत् (पूर्वोक्त सर्वज्ञ विभु चेतन ईश्वर) संबंधी (ईश्वरका व्याप्य, दास–आज्ञा उठाने योग्य होनेसे जीव, उसका संबंधी हे) तूं (अल्पज्ञ, परिच्छिन्न चेतन वा जड जीव) हे, हे श्वेत केतु ! इत्यादि प्रकार हें. ओर अनेक शंका समाधान हें.

"उद्दालक श्वेतकेत्वादि, कोइ जीव विशेष नहीं हुये, किंतु लोकोंके समझाने वास्ते कल्पित कथा हे, अतएव अर्थमें लक्षणा वगेरेका उपयोग नहीं, एकता मान लो." एसा कोइ कहे तो, उसको इतना उत्तर देना बस हे कि, उपनिषद् कर्त्ता (ईश्वर वा महऋषि) असत्यवादी ठेरे, उनका लेख प्रमाण नहीं हो सकता, इसलिये उनके वाक्यके शक्य वा लक्ष्यार्थ, ऊभय त्याज्य. किंवा कोन जाने उक्त उपदेशमें उनकी क्या कल्पना-अर्थ अभिप्राय होगा ? अतएव उनके लेखाधार मात्रपर निर्णय नहीं होसकता;

* क्योंकि 'शक्य संबंध,' लक्षणाका लक्षण कहें तो, शक्यका शक्तिके साथ जो संबंधहे उसका ओर तत संबंधी शक्ति–पदका ग्रहण होजाताहे, इत्यादि (शब्दोंकी) तकरारहें.

क्षीसे जीव ब्रह्मका एकता नहीं मानी जासकती. इससे इतर जो, युक्ति प्रमाण सृष्टि नियमको सहन करसके एसा, प्रबल पुरावा होना चाहिये.

जो एसा कहोकि "लक्षणाके लक्षण माननेकी आवश्यक्ता नहीं; किंतु पदके भावार्थ लेनेके पूर्वोक्त तीन प्रकार हें, इतना माननाही बस हे.—एसा मानके जो भाग त्याग हो के लक्ष्य (चेतन मात्र) हो सो, मान लो." आपका यह कथन घडी वास्ते मान लेवें तोभी, अन्य अनेक दोष आवेंगे. जेसेकि प्रत्येक के मनमुखी अर्थको अवसर मिलेगा (पासही मायादिके ग्रहणकी रीति कह आये हें) १. रामानुजादिकोंके अर्थ खंडन करनेको असमर्थ रहोगे. २. नाना चेतन मानने पडेंगे ३. प्रसंगवशात् दो तीन अर्थ वा लक्ष्यार्थ होजानेसे संशय उत्पन्न होके महावाक्य त्याज्य, वा आधार योग्य नहीं होगा ४. अथवा उसके निर्णयार्थ युक्ति, अन्य प्रमाण तथा सृष्टि नियमादिकी आवश्यकता होगी, तो आपके मनोरथका बाध हो जायगा. ओर आपकी मानी हुई लक्षणा वा लक्ष्यार्थसे निर्वाह नहीं होगा ५. उपदेशक मिथ्या बोधक ओर श्रोता मिथ्या ग्राहक ठेरेंगे; क्योंके " हे श्वेतकेतु सो तूं हे " इसका यही परिणाम, निकलताहेकि श्वेतकेतु नामाव्यक्ति व्यापक चेतन हे; सो यह कथन मिथ्या हे. कारणके व्यापक चेतनका नाम शक्ति वा लक्षणासे श्वेतकेतु सिद्ध नहीं होता, किंतु शरीर विशिष्ट जीव (वा जीव चेतन) का नाम हे, वा जो श्रोता हे वा शिष्य हे, उस व्यक्तिका नाम हे. अतः हे श्वेतकेतु, 'तु व्यापक चेतन हे वा ईश्वर हे,' यह उभय लक्ष्य, मिथ्या ग्रहण कराना वा करना हे. क्योंके ब्रह्मको तो, उपदेश नहीं बनता, तब उक्त भाग त्यागसेभी किसको बोध

"शक्य संबंध लक्षणा," इस पूर्वोक्त लक्षणमें "शक्य संबंध" तो वाच्य हे ओर "**लक्ष्य** (पदके शक्यका संबंधी–पदका परंपरा संबंधी–वक्ताके तात्पर्यका विषय-इष्ट-श्रोता ओर प्रसंगको इष्ट) शक्यका परंपरा संबंध मात्र हे," यह लक्षण, भाग-त्याग-प्रकारसे लिया गया हे. अर्थात् उक्त संबंध मात्र लक्षित हे. शक्य ओर पदका जो संबंध वा अन्य संबंधका यहां ग्रहण नहीं हे. प्रसंगके अनुकुल, वक्ता के तात्पर्यका विषय,–एसा जो शक्य संबंधी–उसे **लक्षित** कहते हैं. अतः विरोध नहीं.

तदुपरांत जो अन्य लक्षण मानें ओर तकरार लें तोभी प्रसंगका बाधक नहीं होता. यथाः—

शक्यके संबंधके साक्षात् ओर परंपरा, यह दो भेद हैं. **केवल लक्षणा**–शक्यका जहां साक्षात् संबंध होवे सो, केवल लक्षणा. यथा–गंगा पदके शक्य प्रवाह ओर तीरका साक्षात् संबंध हे. वा उक्त महावाक्योंमें हे. एसे प्रसंगमें केवल लक्षणा. **लक्षित लक्षणा**–शक्यका लक्ष्यके साथ परंपरा संबंध होवे सो लक्षित लक्षणा. यथा नोकरकी तरफ देखके ध्वजापद कहनेसे ध्वजा चढाना, स्टीमर आइ, दरवाजा खोलना," इत्यादि ध्वजाद्वारा बोधता हे. ओर जहां द्विरेफका प्रयोग हे वहां 'भ्रमर' पदद्वारा 'भंवरे' पक्षी व्यक्तिका ग्रहण केवल लक्षणासे होता हे, क्योंकि लक्षणावृत्तिसे प्रतीत, एसा जो कोई तिसकी लक्षणा सो लक्षित लक्षणा हे. अतः प्रसंगमें लक्ष्य ओर लक्षितका अर्थ देखनेसे यह केवल लक्षणा हो जाती हे. किंवा "शक्य संबंधी द्वारा लक्षणा" अर्थात् शक्य (का संबंधी जो उस) का संबंध सो **लक्षित लक्षणा**. यथा द्विरेफ शक्य संबंधी भ्रमरपद तिससे "भंवरे" पक्षीका ग्रहण. अथवा शक्यका जो संबंधी हे-अर्थात् लक्ष्य, उसका संबंध सो लक्षित लक्षणा-जेसे महा वाक्योंमें कल्पनासे संभवे हे.

किंवा "लक्षणवाली लक्षणा" अर्थात् लक्षणाका असाध
धर्म जो शक्य संबंधत्व, तिसवाली अर्थात् शक्य संबंध, सो लक्ष

इसी प्रकार भावार्थ-तात्पर्य ग्रहणमें व्यंजना, गौणी-इत्य
कितनेक प्रकार माने जाते हैं.-और उनमें पकक्षारोंकी बारीक त
रारें हैं. प्रसंगमें व्यर्थ जानके नहीं लिखी.

निदान किसी प्रकारसेभी अपने अनुकूल लक्षण वा
करो, परंतु प्रासंगिक शक्यार्थमें लक्षणा प्रकार (जहत्, अजह
भागत्याग वा अन्य) का ग्रहण और वक्ताका रहस्य, उद्दालक,
मदेवादि वक्ता किंवा छांदोग्य, बृहदारण्यकादिके कर्त्तासे पूछे ि
संशय-विवादका पर्यवसान नहीं आसकता. और जो कदाचित
वेदांतीयोंकी कल्पना समान एकताको लक्ष्य बतावें तो, पूर्वोक्त
युक्ति-निर्णय और सृष्टिनियम तथा परीक्षापर ध्यान देकर ।
ग्रहण करना योग्य हे. केवल उनके वा अर्थकारोंके कथन म
किंवा शक्ति वृत्ति वा लक्षणावृत्तिमें पडके व्यर्थ समय गुमाना
नुचित-हेय हे.

विचारोः-वक्ता अपने कहे हुये वाक्य भावार्थको सयुक्त
रीक्षा सिद्ध करानेके लिये जोखमी-जवाबदार हे. वक्ता त्रिव
नहीं होय तो, उसके वाक्य वा भावार्थको यथार्थ माननेवाला स
सिद्ध करनेका जवाबदार हे. निदान जवाबदार विना, शब्द-वा
मात्र प्रमाणका काम नहीं देता. तद्वत् कहा वा लिखाहुवा मा
माणही माना जाय, एसा नियम नहीं होसकता. अतः शब्द प्रमाण ।
प्रमाण नहीं.

होगा? जिसको बोध होता हे सो, व्यापक चेतन नहीं हे; अतः मिथ्या प्रलाप हुवा. कदाचित् श्वेतकेतुका अर्थ ब्रह्म-व्यक्तिमें लगावें तो, क्यातो पूर्वोक्त द्वैतवादीके अर्थ (हे ई-श्वर,सो अद्वितीय तूंही हे, तेरे समान अन्य नहीं. इ.) स्वीकारने होंगे. अथवा तो, ब्रह्म उपदेश योग्य न होनेसे मिथ्याव्यर्थ विलाप मानना पडेगा. हां "सो (पूर्वोक्त ईश्वर वा ब्रह्म-चेतन) तेरा-(श्वेत केतुका) आत्मा हे, हे श्वेत केतु." एसा उपदेश करता वा एसा उसका अभिप्राय होतो, ईश्वर जीव वादीको संमत होता ओर संशय नहोता. कुछ युक्ति प्रमाणको सहारता. सो तो आप नहीं मानते; अतएव पूर्व दोषकाभी बाध नहीं होता. ६. पूर्वोक्त ओर वक्ष्यमाण युक्तिसे विरुद्ध हे. ७. तदुपरांत जो आग्रहही हो तो, जीव ब्रह्मकी एकताके विरूद्ध, जो जो ईस ग्रंथ विषे लिखा हे, उसपर दृष्टि डालके उद्दालक वामदेवादि वा छांदोग्य, बृहदारण्यकके कर्त्ता पास जाके उनकेवाक्यार्थ ओर लक्ष्यार्थका निर्णय, अनुभव भाषाकी परिपाटी द्वारा उनसेकरो; जबतक, एसा न होगा (उन पास नहीं जाओगे) वहांतक "हम कहते हैं सोही उन (उद्दालकादि) का अभिप्राय हे "इस हठको रहने दीजिये*

[शब्दवृत्ति]पक्षरहितहोकेविचारियेः!—शब्द-वर्ण—अक्षर-पद—प्रकृति—प्रत्यय-अव्यय.) में स्वाभावतः,स्वतः कोई एसी योग्यता—सामर्थ वा शक्ति नहीं हे किं, वोह स्वयं अर्थको जनावे; जो एसा होता तो, 'हुररे' पदसे आर्य लोकको अपनी निंदा

* लक्षणा संबंधी विशेष खंडन मंडन देखना होतो, "वृति-प्रभाकर केतु" नाम ग्रंथमे लिखा हे, वहां देख लेना चाहिये. यहां तो, साधारण जिज्ञासुओंकी दृष्टि लेके, सामान्यतः संक्षेपमें दिग्-दर्शन मात्र जनाया हे.

ओर यूरोपियनको अपने 'धन्यवाद'का बोध नहीहोता. किंवा, राम पदसे मुसलमानोंको "अनुचर" ओर आर्योंको 'ईश्वर'का बोध नहोता. इसी प्रकार अग्नि, घट, वेद, देवादि तमाम शब्दोंमें कल्पना करलेना उचित हे. ओर शब्दमें किसी अन्यकी शक्ति हे, एसा मानें; तहां तो जो एक ईश्वरको स्वीकारें वा उस अद्वितीयका संकल्प मानें तब तो, अमुक एक (अग्निआदि) पदसे सर्वको समान–वेसाही बोध होना चाहिये–विपरीत वा तेद्तर अर्थका ज्ञान नहीं होना चाहिये. परंतु एसा नहीं होता. अतःईश्वरकी शक्ति पदमें नाहिं हे.तथाहि शक्ति, स्वशक्तिवान्से भिन्न–अतरिक्त देशमें नहीं होती,–दूसरेमें नहीं जाती, यह नियम हे; इस लिये ईश्वर वा मनुष्यकी शक्तिभी शब्दमें नहीं हे. ओर जो, शब्द सुननेसे मन, श्रोत्रद्वारा खिंचता हे, उसका कारण यह हे कि शब्द विषय हे, उसके सुननेकी योग्यता, मन श्रोत्रमें हे. अर्थात् उसको विषय करे. ओर शब्द ध्वनिरूप विषय हो, इतना दोनोंमें नैसर्गिक योग्यता संबंध हे, एसा (अन्य स्पर्शादि विषयवत्) सर्व मनुष्योंमें देखते हें. परंतु अमुक शब्द (पद) सुनके अमुक अर्थका स्वाभावतः बोध हो, एसी नैसर्गिक पद्धति नहीं हे.–अर्थात् शब्द ओर अर्थका, स्वाभाविक कोई संबंध विशेष (वाचक वाच्य, भेदाभेद, स्मार्य स्मार्क, अनिर्वचनीय, तादाम्यादि), नहीं हे. जो एसा होता तो, पूर्व प्रकारवत् सर्वको समान बोध होता, वा अन्यथा नहोता; परंतु एसा नहीं देखते. जब यूं हे तो, घटादि पदसे कलशादि अर्थका स्मरण–भान, क्यों होता हे ? उसमें क्या कारण हे ? तहां, जेसे आगबोट बंदरकी लाल, पीली ध्वजा ओर रेल्वे (अगनगाडी) के स्टेशनकी झंडी, घंटी वगेरेसे, मनुष्यों

ने संकेत बना रखे हैं, वे मंडली विशेषमें चलने—अभ्यासित होनेसे अर्थके सूचक मानें जाते हैं. किंवा, गायन—संगीत विद्यामें जेसे कंठ, तार, तालादि पर शब्दकी कल्पित रचना करके कल्पित गत, बजन, ताल, स्वर, रंगत मानके स्वकल्पित रागरागनीसे मनमें आनंदित होते हैं—मंडली विशेष में वे कल्पित संकेत फलके अभ्यास होगया हे, वेसेही ध्वनिरूप शब्द, कुदरती पदार्थ हे, उसके कंठतालवादिसे भिन्न प्रकारकी ध्वनि (मंद, उच्च, मधुरु, तीक्ष्ण, पोली, चोडी, लंबी, -हस्व, दीर्घ, हलकी, भारी वगेरे भेदवाली स्वाभाविक, नियमसे निकलती हे, उनको स्वाभावतः अनुभवके शब्द ओर अपनी स्वाभाविक योग्यतासें, उपयागार्थ अकारादि वर्ण उनके नाम कल्पे. उनको मिलाके अर्थ सूचक पद वगेरे संकेत बनालिये* (जेसेकि बंदर, हजारदास्तानादि पशु पक्षीमेंभी उनउनके संकेत हैं) वे, संकेत मंडली विशेषमें एकत्र हूये प्रवर्त्त होजानेसे बहोतों को, अभ्यासरूप होगये. जिस जिस मंडलीमें, जैसा जैसा शब्द—पद संकेत प्रवृत्त हैं, उसउस मंडलीमें उस नियतपदसे उसउस अर्थका ज्ञान होताहे.—दूसरे पद से नहीं. इस प्रकार शब्दमें अर्थ जनानेकी शक्ति नहीं हे; किंतु संकेतभान (जिस अर्थ-द्रव्य गुणादि—सूचक जो शब्द संकेत (ध्वनि वर्णाकृति) बनाया, सो अमुक अर्थका सूचक हे, एसा जो मनुष्य—कल्पक, श्रोताकी बुद्धिमें संकेत भान सो) शब्द वृत्ति†—शब्द शक्ति कहीजाती हे. ओर उसभान तथा

* शब्दकी शक्ति वृत्ति, लक्षणा वृत्ति ओर स्वरूपका, 'तत्व दर्शन' नाम ग्रंथमें विस्तार हे, वहां देख लेना. † पहिले २ के से बने वा बनाये गये, इत्यादि रीति तत्वदर्शनमें लिखी हे. यहां विशेष उपयोगी न जानके संक्षेपसे नाम मात्र वर्णन किया हे.

अभ्यासके कारण, उस पद उस अर्थका (कल्पित) वाच्य वाचक भाव (इत्यादि) संबंध मान लिया—व्यवहार अर्थ कल्प लिया. वस्तुतः वेसा नहीं. द्रव्य वाचक पदसे उसके गुण कर्म जातिका ग्रहण वा गुणादिके वाचक पदोंका जो बोध होता है, सो संकेत भान होने काल समान, यथा अभ्यास बलसे स्वाभावतः होता है. लक्षणासे नहीं. इसी प्रकार शब्दकी लक्षणा वृत्ति—भावार्थमें जान लेना चाहिये. आद्य संकेतभान होने कालमें वा उसके उत्तर नाना व्यवहार विषय होने करके यथा अभ्यास, त्याग—ग्रहण वा बोध होता है. (व्यवहारमेंभी उन संकेतोंका, अर्थकी यथार्थ अयथार्थता पर आधार है, नकि शब्द मात्र पर). (शं.) जो शब्दमें अपनी शक्ति नहोती तो, तिस करके "रस" उत्पन्न नहीं होता. वा रस नहीं आता. (उ.) जहां शब्द (राग, कविता वगेरे) श्रवण मननसे शृंगार, वीर, शांत, अद्भुतादि रस उत्पन्न होते हैं —वहां, पूर्वाभ्यासित संस्कार वाले स्थूल सूक्ष्म शरीरका उसको देशकाल स्थितिविशिष्ट योग्यता *(रसपात्र) अनुसार, प्रकार *विशेष *उद्भव प्रकार पाता है—जिसे 'रस' कहते हैं. उस उद्भव प्रकारमें संकेत भान (भी) *निमित्त है. जो शब्द मात्रमें रसोत्पादक शक्ति होती तो, युरोपियन वा जंगली वा अनपढ मनुष्यमेंभी, हिंदी कविता वा गायनसे रस उत्पन्न होता. परंतु एसा नहीं होता है. किंवा अनपढ पुरुषको, लडाई देखके वीररस उत्पन्न नहीं होता; परंतु होता है. किंवा वनस्थ बाल ब्रह्मचारी युवा पुरुषको शृंगार छंद सुनके शृंगार रस उत्पन्न होता; परंतु एसा नहीं होता. इत्यादि बहोत कुछ भेद हैं. अप्रासंगिक विषय जानके विस्तार नहीं करते—[†]उपराम होते हैं.

[†]रस, रसपात्र, उद्दीपनादिका स्वरूप, लक्षण भावप्रकाशादि

इस प्रसंगके लिखनेका प्रयोजन यह हे कि जो, शब्दमें-अर्थ जनानेको स्वाभावतः शक्ति होती ओर उसका उपयोग मनुष्य स्वेच्छानुसार वा अन्यथा न करसकता-किंतु उस सामर्थ्यके नियमसे भिन्न नहीं लेसकता-सत्यका असत्यमें असत्यका सत्यमें वा अन्यथा उपयोग न लेसकता; तब तो, शब्दमें स्वतः प्रमाणता मानलीजाती; परंतु एसा नहीं होता हे; इसलिये शब्द स्वतः प्रमाण नहीं होसकती. ओर जो शब्दमें ईश्वरका सामर्थ्य वा संकल्प होता तबभी, पूर्व प्रकारवत् होना चाहिये था-अन्यथा नहीं होता, परंतु एसा नहीं हे, यह प्रसिद्ध वात हे-एकही शद्धके-एक मन, एक घर, एक राज, एक देश, एक जाति ओर नाना देश, नाना मंडली, नाना कालमें भिन्न २ अर्थ ओर भाव हुये, हें-देखते हें; इस लिये उसको प्रमाणता, अप्रमाणता, मनुष्य (वा कल्पक जीव) के ज्ञान ओर उपयोग पर हे. निदान शद्ध स्वतः प्रमाण नहीं.

शद्ध, अणु हे, विभू हे वा मध्यम? इसके निर्णय करने समय, शद्ध एक व्यापक वस्तु हो, एसा सिद्ध नहीं होता. किंतु न्यूनाधिक ध्वनि होने,-विशेष मनुष्यं बोलनेसे पद समझमें न आने ओर शब्दके फोटो-उपाकृत्ति होने-इत्यादि कारणोंसे अणु समूहात्मक-विलक्षण पदार्थ सिद्ध होजाता हे-सार यह हे कि शब्द गतिवान हे ओर वर्णात्मक कोई वस्तु नहीं हे.

निदान जबकि शब्दका उपयोग मनुष्यके संकेतमान ज्ञानाश्रित हे, शब्दमें स्वयं अर्थ जतानेको सामर्थ्य नहीं, तो किसीके कहे

ग्रंथोंमें प्रसिद्ध हे, ग्रंथ विस्तार भयसे लक्षग, हेतु, उदाहरण सहित वर्णन नही किये.

हुये–लिखे हुये शब्द–पद–वाक्यका वही अर्थ है, जो कि सृष्टिसे नियत है, एसा नहीं मान सकते. वा, मनुष्यने जैसा कहा वैसाही है, एसा सर्वांश सिद्ध नहीं होता. अतः शब्द प्रमाण, स्वतः प्रमाण नहीं तब उसके अर्थ पर तकरार करके व्यर्थ काल गुमाना बुद्धिमानोंका काम नहीं.

अपने अपने पक्ष प्रकारसे अपने २ अनुभवको भिन्न २ भाषा, मतों प्रति हैं; अतएव आपहोकी भाषासे, आपका मंतव्य स्वीकार नहीं होसकता. किंतु सत्यका विषय सर्वदा एकही होनेसे, सर्वके अनुभवकी दृष्टि लेके, तोलना योग्य है. (छंद) "केवलं शास्त्रमाश्रित्य न कर्तव्योहि निर्णयः ॥ युक्ति हीने विचारेसु धर्म हानिः प्रजायते." ॥ १ ॥ बृहस्पति (मनु १२-२१३ टोकोधृतवचनं). "यस्तर्केणाऽनु संधत्ते स धर्म वेदनेतरः" (मनु). और व्यासजीने "तर्काप्रतिष्ठात्" कहा है वहां, अर्थ शून्य-शुष्क तर्कके निषेधमें अभिप्राय है; जो एसा नहींहोता तो, उन्होंनेही ब्रह्मसूत्रोंमे तर्क युक्ति लेके दूसरे मतोंका खंडन किया है, सो प्रकार उनको व्याघातमें डालता है.

वशिष्टजीभी (योग वासिष्टमें) 'युक्ति युक्तमुपादेयं' इत्यादि वचन करके कहते हैं कि सयुक्त वाक्य बालककाभी मान्य करना चाहिये और युक्तिहीन कथन, परमेष्टिकाभी स्वीकार नहीं करना चाहिये. जो एसा नहीं करता और सन्मुख प्राप्त निर्मल, शांतिप्रद, स्वच्छ, प्रशंसित गंगाजलको छोडके बापदादाके खुदाये हुये क्षार जलवाले कुवे पर जावे तो, उसे कोन ना करे.--(व्यभिचारी पिताके अनुसार,-देखा-देखो, रूपवंत सुशील स्व पत्निको छोडके व्यभिचारणी स्त्री संग करने समान है. परिणाममें उससे १० हानी होती हैं.

किंवा अपने अंध पिताको देखके 'कुलानुसार चलना' इस कल्पित नियम पर ध्यान रखके अपनी स्वछ, कुशल नेत्रोंके फोडने समान हे.)

एतदृष्टि आपकोभी चाहिये कि सर्वके अनुभव भाषाके मूल पर ध्यान देके अनुभवको तोलें. क्योंकि अनुभव, स्वतः कोई प्रमाण नहीं हे.

(एक जीव वाद).

जो एसा कहो कि:-"सच्चिदानंद नामा व्यक्तिको अनादिसे अज्ञान हे, तिस करके अपनेको कर्त्ता भोक्ता बंधीवान, जीवरूपसे मानता हे. उपदेशद्वारा भ्रांति जन्य जीव भाव मिटके स्वरूपमें स्थित होने योग्य हे. करण राधा पुत्र दृष्टांत*वत्. (शं) जब कि ब्रह्मनामा जीव एक हे तो, किसी (श्वेतकेतु इत्यादि) को ज्ञान होनेसे स्वकार्य सहित अज्ञानका अभाव होना चाहिये. ओर हुवा तो नहीं—अर्थात जगत देखते हैं. (स.) अद्यापि किसीको ज्ञान हुवा नहीं. न कोई बंधन मोक्ष. कर्मोपासना, तत्वमस्यादि महावाक्य, मोक्ष आर मुक्त सूचक वाक्य अर्थवादरूप वचन हैं. (शं.) वोह कोनसा जीव हे कि,जिसको स्वरूप ज्ञानसे अनादि अज्ञानका अभाव प्रतीत होगा—ज्ञान होगा..जीवभाव मिटेगा. (उ.) सो तूंही हे.

---

* करणको, 'में राधा पुत्र हूं, एसी भ्रांति होनेसे नाना दुःख क्लेश भुगतने पडेथे. अपनेको तुच्छ, अनुभव करता था. जब प्रसंग उपर सूर्य (ऋषि)ने कहा कि तू मेरे वीर्य द्वारा कुंतिके उदरसे जन्मा हे—क्षत्रिय हे; तब करणकी भ्रांति ओर दुःखका अभाव हुवा. अपनेको क्षत्रिय जानके कर्तव्यको प्राप्त हुवा. यहां, जैसेकि, भ्रांति पूर्वभी, करण, क्षत्रिय था वेसाही, पीछेभी वही रहा. इसी समान ब्रह्मनामा जीवमें जानने योग्य हे.

(शं.) अपनेसे विलक्षण—अन्यथा? अपनेको केसे मान सकते हैं और अभेद क्योंकर सिद्ध होता हे. (स.) जेसे काचमें वृत्ति जाके—टकराके उलटती हे तब, ग्रीवास्थ मुखकोही विषय करती हे; परंतु वेग बलसे काचकी पृष्ठ पर मुखभिन्न, प्रतिबिंब प्रतीत होता हे. यहां मुखसे भिन्न, बिंब प्रतिबिंब, कोई वस्तु विशेष नहीं हे; किंतु काचकी उपाधि विद्यमान हुये वृत्तिको प्रतिबिंब, भिन्न ज्ञात होता हे; उस अपेक्षासे मुखमें बिंबत्व ओर काचस्थ पदार्थमें प्रतिबिंबत्व तथा संसर्गसे प्रतिबिंब विषे काचके लघु श्यामतादि धर्म, प्रतीतिके विषय होते हैं. निदान प्रसंगमें बिंब प्रतिबिंब-दोनों स्वरूपसे नहीं ओर बिंबत्व तथा लघुतादि धर्म विशिष्ट प्रतिबिंबत्व मिथ्या प्रतीत होते हैं. तद्वत् अज्ञानको काच ओर ब्रह्म चेतनको मुख मानके ईश्वर जीव ओर उनके धर्मकी प्रतीति घटा लेनी चाहिये. अर्थात् वस्तुतः जीव व ईश्वर तो नहीं हैं, परंतु ईश्वरत्व जीवत्व धर्म, मिथ्या होते हैं. जेसे प्रतिबिंबके लघुतादि धर्म, अपने मुखमें आरोप होते हैं, वेसे ब्रह्ममें जीवत्वका आरोप होता हे. जेसे मुखमें बिंबत्वका आरोप हे, वेसे ईश्वरका ब्रह्ममें आरोप हे. जेसे काच उपाधि रहे वा न हुयेभी मुख-बिंब प्रतिबिंब एकही वस्तु हैं तोभी, काचके अभाव हुये प्रतिबिंबका मुख विषे मुख्य वा बाधसमानाधिकरण भावसे एकत्व आरोप होता हे, वेसे ब्रह्म ईश्वर ओर जीव संबंधमें जान लेना चाहिये. (शं.) जबकि ईश्वर शून्य वस्तु हे-बिंबवत् कोई वस्तु नहीं-अक्रिय ब्रह्म (मुखवत्) मात्र हे, तो, ईश्वरत्व धर्म किसके आधीन होगा. कर्म, रचना, कर्म फल-दुःख सुखकी अव्यवस्था होगी. [स.] स्वप्न समान सर्व आभासरूप हैं-मिथ्या प्रती

१ परिछिन्न, सक्रिय, दुःखी. ब्रह्म, अचल, चिदानंद.

त होते हैं अज्ञानके परिणाम और अधिष्ठान चेतन-आत्म [ना-माजीव]के विवर्त्त हैं. जेसे स्वप्न विषे स्वप्न द्रष्टा अपनेको अपराधी, अनुचर विषय करता है और स्वप्नवाले राजा द्वारा दुःख सुख इनाम पाना अनुभवता है परंतु, वहां न कोई अपराधी, अनुचर है,और न दंड इनाम दाता है. न धर्मधर्मी है. तथापि अविद्याकी महिमासे सर्व व्यवस्था अनुभवाती है. स्वप्नका अधिष्ठान-स्वप्न द्रष्टामात्र-सर्वका साक्षी व्यापक सर्व आभासोंका आत्मा प्रकाशक है; तद्वत् ईश्वर, जीव और फलादिककी व्यवस्था तथा धर्म-धर्मी, आभास रूप ज्ञातव्य है. स्मृति प्रत्यभिज्ञाज्ञान, अज्ञान आदि त्रिपुटी मात्रकोभी, इसी प्रकार जान लेना चाहिये.

[शं.] स्वप्न कोनसे जीवका है? [स] स्वप्नात् यह तुझ (श्रोता) कोही भासता है. अन्य कोइ नहीं-सर्व आभासरूप है. (शं) यह श्रोता वक्ता कोन? आभासरूप वा ब्रह्म? ब्रह्म अवाच है.-इंद्रिय विनाका है. अतएव आभासेंही श्रोतृत्व वक्तृत्व कहना होगा. (स) सर्व स्वप्नवत् आभासरूप-प्रतीति मात्र." (पू. प.) ब्रह्म-ज्ञेयभी मिथ्या हुवा; आभासोंकर प्रतिपादित-ज्ञेय, मात्रेमें आनेसे. तथाही आपका सिद्धांत और मंतव्यभी. सर्वथा अव्यवस्थाकी अनवस्था चलेगी. वाहरे एक जीव वादि तेरा सिद्धांत?! जरा आंखें खोलिये! बौद्ध न बनये! जाग्रतमें आइये!

उक्त पक्षमें अन्य दोष[१] (संक्षेपसे) यह हैं:—सद् ब्रह्म ज्ञान स्वरूपको अज्ञान कहना हास्य जनक वात है. अपना आप उपदेशक न हो सकने, अन्य उपदेष्टाके अभावसे, अ-

---

१ पूर्वोक्त प्रसंग प्रति, क्रमशः दोषका कथन है. अतएव पूर्व प्रसंग पर ध्यान रखनेसे अभिप्राय खुलेगा.

नादि अज्ञानकी निवृत्ति अनुपपन्न मानी जासकनेसे अज्ञान, अनादि अनंत सिद्ध होता है. अज्ञान विषेभी जड होनेसे उपदेशकत्व असंभव. अतएव अज्ञान और उसका कार्य अध्यासरूप मिथ्या नहीं. स्वयंप्रकाशको अज्ञान मानना उसकी स्वयंप्रकाशताका नाश करना वा उसे धब्बा लगाना है. करणका दृष्टांत विषम है; क्योंकि करण संस्काराधीन था. ब्रह्म वैसा नहीं. जबकि वेद उपनिषदादिके ज्ञानसूचक वाक्य और मुक्तोंके इतिहास, अर्थवाद रूप हैं तो, आपका कथनभी वैसा क्यों न मान लिया जाय? जबकि ब्रह्मनामा जीव,में [जिज्ञासु मुमुक्षु] हो हूं तो, आपके उपदेशका त्याग करना चाहिये; क्योंकि आप अध्यास—आभासरूप हो. प्रतिबिंबका दृष्टांतभी योग्य—यथार्थ नहीं है; क्योंकि वृत्ति, शरीरसे बाहिर नहीं जाती. जो वैसा होता तो, दिवसको ओंड कुवेमें उतरे से तारे नहीं देख सकते.[1] किंवा, कुवेमें उतरे विना, सूर्य समान दृष्ट होते. किंवा, लाल काचमेंसे श्वेत वस्तु, श्वेतही दृष्ट पडती[1] वा, श्वेत काचद्वारा पीतादि वस्तु, श्वेतही प्रतीत होती. क्योंकि काच, रंगकीदृष्टा-वृत्तिको वा विषयको, नहीं रंगता है. १ किंवा, एक कटोरेमें चांदीका छल्ला डालके उ इतनी दूर रखें कि छल्ला चक्षु गोचर न हो, फेर कटोरेमें पानी डाला जावे तो, छल्ला गोचर[1] होजाता है; यदि वृत्तिका बाह्य गमन होता तो, प्रथमभी दृष्ट पडता. किंवा, जबकि विशेष प्रकाश वा शब्द, वृत्तिको रोकता है तो, किसी एक ।

---

१ पदार्थोंकी किरणें चक्षूमें पडनेसे, विषयाकार विषय मान रंग होनेसे तथा प्रसिद्ध—ज्ञात किरणोंके नियमसे, एसा हो है. मेस्मेरिझम और योग अवस्थामेंभी दूरस्थ शब्दादि विषयका ज्ञ सूक्ष्म किरणादि सामग्रीसे होता है.

हू पर सैंकडों मनुष्य एक कालमें देखें तो, परस्परकी वृत्ति क्यों नहीं विरोधी-प्रतिबंधक होती¹ ? वा, आकाश व्याप्त वृत्ति होने पर, न्यूनता क्यों न जनाती ?२ वा, दूरस्थ सूर्य चंद्रको देखनेवाली वृत्ति, मध्यदेशवार्ति गगनस्थ पक्षीको क्यों नहीं देखती ?२ किंवा अन्येंद्रियोंका शरीरस्थ रहे उपयोग ओर चक्षु वृत्तिका तद्विरुद्ध क्यों ? इत्यादि अनेक* पुरावे हें जिनसे वृत्तिका बहिर गमन असिद्ध हे. अब जो हठसे यहभी मान लेवेंकि वृत्ति बाहिर जाती हे, तोभी, काचसे उपराम होके स्व मुखको विषय करती हो, एसा नहीं हे. जो एसा होता तो, काचस्थ हमारा मुख दूसरेको गोचर नहोता. ? वा, परका प्रतिबिंब हमको न देख पडता. [ओर गोचरतो होते हें]; वा काचद्वारा दूसरेका मुख, घटादि वत, विषय होता. वा जलस्थ सूर्य प्रतिबिंब देखने पर वृत्तिको, सूर्य दृष्ट समान चकाचूंदमें आना पडता [परंतु वेसा नहीं होता]. वा काचकी रचना विशेषसे अपनी पृष्टका प्रतिबिंब नहीं देख सकते. वा, एकही काच विषे सन्मुखमें आगे पीछे चार चार फोटो-स्व शरीरके प्रतिबिंब नहीं देखने पाते [परंतु देखते हें]. विशेष क्या कहें, प्रसिद्ध प्रत्याकृति यंत्र (फोटोग्राफी यंत्र) देखिये ? अंतरमें छबी पडती हे; वहां वृत्ति, यंत्रमें जाके नहीं कोतरती. किंवा, वहांसे उठके मुखको नहीं देखती; ओर छबी तो होती हे. प्रत्यक्ष पुरावा हे. निदान प्रतिबिंबका उपादान, मुख, काच वा वृत्ति नहीं; किंतु तद्भिन्न किरणें हें.—जो कि काचका स्पर्श करके

---

१ वृत्ति सावयव.—मध्यम होनेसे शब्द प्रकाश विशेष करके रुकनेसे यह प्रश्न हें. * विशेष विस्तार, प्रकाश विद्या, मार्मिक योग उत्तरार्ध ओर तत्वदर्शन नाम ग्रंथमें खंडन मंडन सहित बांच सकते हो.

चक्षुमें गोचर होती हें ओर बडे बडे पहाडोंको वेसेही रूपमें देखाती हें. प्रतिबिंबमें लघुता श्यामतादि, किरण काचके संबंध मे हें. प्रतिबिंबको किरणोंकालय काच, मुख, ओर वृत्तिसे भिन्न, सूर्य वा अंतरिक्षमें होता हे. परंतु अज्ञ-पदार्थ विद्या-को न जाने वाले अन्यथा मानते हें-कल्पते हें. इसी रीतिसे दार्ष्टांतमें जान लेना चाहिये. अर्थात् ब्रह्मका प्रतिबिंब माने तो, किरण, जीव, ईश्वर ओर उनके धर्म तद्भिन्न हें; उनका ब्रह्मके साथ मुख्य वा बाध समानाधि करण नहीं होता. उलटा आपका दृष्टांत जीव ब्रह्मको एकताका बाधक हे. तथाहि निरूप† ब्रह्म चेतनका मिथ्या अज्ञान-मायामें अभास-प्रतिबिंब मात्र-कल्पनेमें कोइ युक्ति, प्रमाण, अनुभवभी नहीं मिलता. अतएव आपकी कल्पना मान्य नहीं होसकती. स्वप्नवाला दृष्टांत भी ठीक नहीं-आपके उक्त मंतव्यवत् "जीव ईश्वर हे" यह बात किसने जानी? 'ब्रह्म अज्ञानी हे' यह किसने जाना? ब्रह्म ओर अज्ञानसे भिन्न तीसरा कहा चाहिये? सो तो, आपके सिद्धांतमें कोई हे नहीं; अतः आपका सिद्धांत कल्पना मात्र ठेरता हे.

किसका स्वप्न, किसने स्वप्न देखा वा किसको स्वप्न देख पडता हे-अज्ञान परिणाम हे-आभासरूप हे? इत्यादि निर्णयमें वक्ष्यमाण [अज्ञान, अध्यास, अनिर्वचनीय] प्रसंगवाले असामग्री इत्यादि तथातत् संबंधी दोष आवेंगे ब्रह्मके प्रतिबिंबकी उपादान, किरण वगेरे, भिन्न सामग्री मानी पडेंगी. जब अज्ञानको दृष्टा मानना असिद्ध होगा. स्वप्नवाले अपराधी, अनुचर, राजा-दृष्टा-मिथ्याको जाग्रतवाले दृष्टा साथ, जेसे

---

† नभको निरूप मानके जलगत् गंभीरता नाम चक्षु गोचर प्रतिबिंब कहना वा मानना व्याघात हे.

कता नहीं होती वैसे, दृष्टा-ब्रह्मके साथ मिथ्या जीवेश्वर आभास रूपकी एकता न होसकेगी.

इत्यादि दोष करके आपका सिद्धांत अलीक होगा. अत एव बंध मोक्षका अभाव प्रतिपादक, व्यवहार व्यवस्थाका अव्यवस्था करनेवाला आपका मंतव्य त्याज्य है. युक्ति, प्रमाण, अपरोक्ष-अनुभवका विषय नहीं.*

(अपरोक्षत्व)

हरकोइ उक्त प्रकारका सिद्धांत, केवल विश्वास मात्रसे मानना तो, सफल नहीं होता. उसका अनुभव गम्य अपरोक्ष-साक्षात्कार-प्रत्यक्ष-होना चाहिये, एसी सबको जिज्ञासा होती है. ओर आपकी श्रुति "तस्मिन् दृष्टे परावरे" "तमेव विदित्वा" [आदि वाक्य], ब्रह्मको दृश्य ओर ज्ञेय बताती है; एतद्दृष्टि जीव ब्रह्मकी एकता अनुभवगम्य अपरोक्ष होने योग्य है. तदंतर जो, अनुभव मात्रकी चर्चा उपरकी गइ है; उस रीतिसे अनुभव मात्र, विश्वास योग्य नहीं है ओर परीक्षा योग्यभी नहीं जान पडता. अवशेष रहा अपरोक्षत्व, उसकी परीक्षाका विचार करते हैं:-प्रासंगिक विषय विषे बाह्येंद्रिय [चक्षुवादि ओर उनकरके प्रत्यक्ष-अपरोक्ष-]का तो, आपके सिद्धांतमें उपयोग नहीं. तब दुःख, सुख, धर्म, संस्कारादिवत् आंतर अपरोक्ष (प्रत्यक्ष) उपर दृष्टि डालनी पडती है. वहां अपरोक्षत्व क्या है? जिस करके ब्रह्म, जीव, वा जीव ब्रह्मकी एकताके साक्षात् होनेकी सिद्धि मानली जावे.?

संस्कारादिक वा, मन [अंतःकरण-चित्त-बुद्धि वृत्ति, ऋतंभरा वृत्ति इत्यादि] वा, चिदाभास योग्य चेतन [योग्य

---

* विशेष दोष आगे वांचोगे.

विषयका स्वानुकूल ओर स्व व्यवहारानुकूल जो चेतन], वा योग्य विषय[1] [जिस बिषयका प्रमाता--चेतनसे अभेद होवे प्रत्यक्ष व्यवहार होवे सो विषय[1]], किंवा, योग्य विषय ओर योग्य चेतनका अभेद संबंध, अथवा योग्य वृत्ति-मन-का योग्य विषय साथ अभेद संबंध, किंवा, विशिष्ट चेतन वा उपहित चेतन, वा, इनका विषय साथ अभेद वा अन्य कुछ हे. अर्थात् अपरोक्षत्व क्या हे? इसका निर्णय नहीं कर सकोगे; क्योंके चेतन तो, प्रकाश स्वरूप (आपही प्रकाशमान) हे. किसी करके वा किसीका अपरोक्ष (ज्ञेय) नहीं हे. अत उस निर्धर्मप्राति अपरोक्षत्वका कथन नहीं होसकता. ओर मनादि जड हें ओर विषय प्रत्यक्ष होने योग्य हे; अतः इनमें विषय होनेकी योग्यता हो. घटादि विषय अपरोक्ष-प्रत्यक्ष हें परंतु, उनको अपरोक्षत्व नाम देना नहीं बनता. ओर चेतनादिका तादात्म्य-अभेद वा संयोग संबंध तो, संबंध ही. उनकोभी अपरोक्षत्व नाम देना नहीं होसक्ता. अर्थात् संबंध, अवस्था विशेष हे; उसका अपरोक्ष कथन संभव होनेसे सो, अपरोक्षत्वका वाचक नहीं. जेसे घटपटका व

---

१ धर्म संस्कारका, चेतन साथ अभेद परंतु, स्व व्यवहारानुकूल-स्वानुकूल नहीं-योग्य विषय नहीं; अतःपरोक्ष हे. अतएव उसमें प्रत्यक्ष व्यवहार नहीं. तद्वत् घटादिक पृष्ठभाग साथ संबंध न होनेसे परोक्ष हे. दुःख सुखादि योग्य विषय (प्रत्यक्ष योग्य) हें; अतः अभेद संबंध हुये अपरोक्ष होते हें; इसलिये प्रमाता-चेतन-जीव ओर विषयका अभेद वही अपरोक्षत्व, एसा वेदांती लोक मानते हें; परंतु समवायरूप संबंधका यहां प्रसंग नहीं किंतु, संयोग संबंध (विषय चेतनका संयोग) वा तादात्म्य-अभेद-संबंध मानना पडेगा। तहां स्वरूप मात्रके तादात्म्यका अभाव हे ओर संयोग कल्पनासे दोषहे

षटेंद्रियका सन्निकर्षरूप विषय, अपरोक्ष होने योग्य है; वैसे संबंध वा अभेदको समझ लेना चाहिये. इस रीतिसे अपरोक्षत्व क्या[1] है, उसका निर्णय नहीं हो सक्ता.

"यदि आपके मंतव्यानुसारही उद्दालकादिका कथन-अभिप्राय-हो, एसा पांच पल वास्ते मानभी लेवें,तोभी,आपका मनोरथ सिद्ध नहीं होगा; क्योंके पूर्वोक्त रीतिसे वे वाक्य स्वतः वा परतः प्रमाणरूप तो नहीं हैं, तब इसकी यथार्थतामें कौन प्रमाण हे ? इस निर्णय पर जावें तो, कितनेक पूर्वोक्त दोष आजावेंगे. जो प्रमाण निर्णय पर नहीं आवोंगे तो, अन्य कुरानी, किरानी, जैनी, पौराणी, बौद्ध, चार्वाकादि और उनके आचार्य तथा ग्रंथोंका सिद्धांतभी क्यों नहीं माना जाय ? इसका निर्णय असंभव होपडेगा. कारण के वे उनको सर्वज्ञ, निर्भ्रांत, यथार्थवेत्ता मानते ओर सिद्ध करते हैं. अतएव इस निर्णय वास्ते युक्ति प्रमाण, सृष्टि नियमादिका आश्रय लेना पडेगा. तब आपका सिद्धांत पूर्वोक्त ओर वक्ष्यमाण अपरोक्षत्वाभाव तथा युक्ति वगेरेसे असमीचीन माना जा सकताहे."

प्रसंगमें जो चेतन वा अंतःकरण-वृत्ति चेतनका विषय साथ अभेद संबंध मानके उसीको (अभेद संबंधको) अपरोक्षत्व मानें तो, जीव ब्रह्मकी एकता नामा विषयमें उपयोगी नहीं. क्योंके जीव ब्रह्मका अपरोक्षत्व विधायक तद्भिन्न (जीव, ब्रह्म ओर उनकी एकतासे भिन्न), होना चाहिये. जेसेकि नीलघ

---

१ इस अद्भुत प्रसिद्ध विषयमें अनेक शंका समाधान हैं. तथापि निर्दोष नहीं होता. इस वास्ते विशेष विस्तार नहीं लिखा. प्रसंग विषे, जीव ब्रह्मकी अपरोक्षता पक्षमें, वाचक महाशयके ध्यान खेंचने वास्ते, उद्देश मात्र जनाया हे. ओर वेदांत संप्रदायकी रीतिसे लिया हे.

टादि विषयोंका अपरोक्षत्व विधायक, घटादिसे भिन्न कोइ अन्य है—घटादि नहीं. वेसेही वहांभी कोइ भिन्न मानना पडेगा, सो तो, आपके पक्षमें स्वीकार नहीं हे. अतः जीव ब्रह्मकी एकताको, अविषय—असाक्षात्—अनपरोक्ष कहना पडेगा.

जो यह कहोकि वृत्ति, ब्रह्मको विषय नहीं करती, किंतु निराकार, असीम, अक्रिय, अपरिणामी ओर व्यापक ब्रह्मके कल्पिताकार हुइ वृत्तिमें, दीपक चक्षुवत्, ब्रह्म प्रकाशता हे (इस प्रकारको वृत्ति व्याप्ति ओर फल व्याप्ति कहते हें). तो—वहां यह शंका होती हे कि यह बात किसने अपरोक्षकी ? इसका उत्तर नहीं देसकोगे. क्योंके ब्रह्ममें ज्ञातृत्व—द्रष्टापनका अभाव हे. ओर वृत्ति सहित चेतन वा चेतन सहित वृत्तिमें ज्ञातृत्वादि मानें तो, ब्रह्ममें उसका बाध होनेसे परिशेष प्रकारसे केवल वृत्तिमेंही मानना पडेगा ओर वृत्ति तो जड हे; अतः "ब्रह्म, वृत्तिमें प्रकाशता हे" वा "स्वप्रकाश हे" इस कथनका पुरावा नहीं मिलेगा. जो चक्षु प्रकाशवत पुरावा मिलता होगा तो, जीव बुद्धिवत् वहांभी, वृत्ति, ब्रह्मसे भिन्न, कोइ अन्य मानना पडेगा. ओर स्वपक्ष त्यागना पडेगा.

तथाहि जिस कालमें ब्रह्म, अंतःकरण—वृत्ति—को प्रकाशता हे, उसकाल विषे वृत्ति (चेतन)में उसके प्रकाशनेके साक्षात् होनेकी योग्यताभी नहीं हे; क्योंकि उसकालमें वृत्ति स्वयं विषय हे. विषय, विषयीको केसे जान सकेगा ? इस रीतिसेभी उक्त वार्ता सिद्ध नहीं होती. तब अंतःकरण विशिष्ट वा उपहित चेतन जीव ओर माया विशिष्ट ईश्वर वा शुद्ध ब्रह्मकी एकता हे; इसका विषय कर्त्ता, सिद्ध होना तो, सर्वथा असंभव हे. जब यूं हे तो, उद्दालकादिके वा आपके सिद्धांतमें कोइभी संतोषकारक पुरावा नहीं होनेसे केसे मा-

न्य होगा? और साक्षात् विना कैसे मोक्ष होगो? (नहीं).

बाह्य पदार्थ विषय करनेमें, इंद्रिय प्रमाण-साधन-हैं. इंद्रियोंके विषय करनेमें, कोन साधन होगा? यदि मनको मानें तो, मनके विषय करनेमें कोन करण-साधन-होगा? जो ब्रह्मको मानें तो, ब्रह्म मनादिको जानता है वा विषय करता है वा प्रकाशता है, इसके प्रकाश करनेमें कोन साधन होगा? जो ब्रह्मको स्वतः प्रमाणभी और प्रकाशरूपभी मानो तो, इसका कोन कथन करता है? ब्रह्मके कोइ इंद्रिय वा वाणी नहीं; अतः एसा मंतव्य विश्वास वा कथन मात्र होगा. और जो संस्कारी वृत्तिको स्वतः प्रमाण मानें तो, उस वृत्ति और ब्रह्मके प्रकाशमें कोन प्रमाण होगा?-इत्यादि निर्पक्ष गुह्य विचारसे, जीव ब्रह्मकी एकताका अपरोक्षत्व-साक्षात्-वा अस्तित्व सिद्ध नहीं होसकता. जब यूं है तो, मंतव्य मात्रसे वा विश्वास मात्र कथनसे कोइ (मोक्षादि) फल नहीं होता. किंतु संशयही रहेंगे; जोके विनाशके हेतु हैं. इस रीतिसे उद्दालकादिके वाक्य माननेसेभी कोइ प्रयोजन सिद्ध नहीं हुवा.

जो कहोके, जेसे दुःखादि अनुभव अपरोक्ष हैं, वेसे ब्रह्म चेतन वा जीव ब्रह्मका एकत्व, अपरोक्ष होता है. सोभी नहीं बनता; क्योंके दुःखादिके अपरोक्ष कालमें अपरोक्ष विधायक, दुःखादिसे भिन्न है. तद्वत् ब्रह्म वा एकत्वका साक्षात्कर्त्ता, वा अनुभव कर्त्ता, वा लक्ष्यज्ञाता, उनसे भिन्न कहा चाहिये. जब एसा कहोगे तो, द्वैतापत्ति होगी. और वक्ष्यमाण दोष (देखो विशिष्ट चेतन ज्ञाता है इस प्रसंगको) प्राप्त होंगे.

और एक जीव वादकी रीतिसे तो, अपरोक्षत्व, अक्रिय जीव ब्रह्मकी एकताका ज्ञान-इन सबका उच्छेद है, अत एव अपने पक्षको आपही असिद्धि करता है; इस लिये तिसके संबंधी कथनसे उपराम होते हैं.

अनेकता-दर्शन. ३.

अन्यप्रकारसे एकता.

नवीन वेदांतियोंकी रीतिसे, जीवका स्वरूप बनाके दो
ष कहे गये. अब अद्वैत पक्षके कितनेक रूपांतर भागवालों
जीवका स्वरूप कथन करके दोष देखाते हैं. यद्यपि इस
लिखनेका प्रसंग नहीं; तथापि शुद्ध, विशिष्ट और केवला
अद्वैतमतकी संप्रदाय हैं. तथा कोइ पक्षकार जीवका, सादि
सांतादि भेदभी, कथन करते हैं. अनः वाचक महाशयके
कल्पनाओंमें संशय उत्पन्न नहो; इसलिये संक्षेपमें जनाते हैं
ताकि वाचकगण अपनी बुद्धिमे अन्यकल्पना करकेभी, आ
पही निवारण करसकें.

जो जीवको ईश्वरकी संकल्पशक्ति वा संकल्प (जैसे
कुरानी किरानीलोक अमररब्बी-खुदाका हुकम-मानते हैं.
वा ईश्वरका अंश (जैसेकि वल्लभादि वा सूफीलोक मानते
हैं.) किंवा ईश्वरका गुण मानके जीवेश्वरकी एकता कहोगे
सो भी नहीं बनता-किंतु सदोष होगा; क्योंकिः—

(१) व्यापक-अकंप-अक्रिय-अछेद्यमें, संकल्प-क्रि
या-कहना अयुक्त है.

---

१ संक्षेप शारीरिक कर्त्ता सर्वज्ञ मुनीका मत हैः—"पूर्व सिद्ध
मसोहि पश्चिमोनाश्रयो भवतिनापि गोचरः" (जीव, ईश्वर, और उ
नका भेद अज्ञानोत्तर भावि होनेसे अनादि नहीं है.) तथाही ज
अनादि मानें तो, अज्ञान--माया, उसका उपादान न होसकेग
-वे मायीक न होंगे; क्योंके उपादान और निमित्त, कार्यसे पूर्व
होते हैं. आभासकोभी अनादि मानो तो, ब्रह्म और अज्ञानसे भिन्न
तीसरी वस्तु माननी पडेगी.

(२) ओर जिसकी जो शक्ति हो सो उसीमें रहती है—उस-को छोडके अन्यमें नहीं जाती—यह नियम हे. इसीप्रकार ई-श्वरकी शक्ति उसीमें रहती हैं. अन्य शरीर वा परमाणु वा मध्यममें रहना संभवे नहीं. जो कहोके उसका उपयोग मनु-ष्य शरीरमें भासना बनता है, तब यह पूछना पडता है के सो शक्ति अणु हे वा मध्यम हे, वा विभु हे? जो अणु मानोगे तो, ईश्वरके किसी भागमें होगी, किसीमें नहीं; अतः जिस भागमें नहीं होगी वहां ईश्वर अशक्त होगा. जेसेके यज्ञदत्त-का शरीर काशीदेशमें जब गया तब, पूर्व देश जो मथुरा वहां वोह शक्ति नहीं रहनेसे वहांके ईश्वरमें सो शक्ति नहीं, एसा कहना पडेगा. जो ईश्वरी शक्तिको मध्यम मानोगे तो ना-शवान ओरजन्य होगी—परंतु अनादि नित्य वस्तु जो ब्रह्म वा ईश्वर (यदि शक्तिमान हे तो,) उसकी शक्ति उसमें अ-नादि अनंतही माननी पडती है; एसे माने विना छुटकारा नहीं होता. जो कदाचित् सादि मानोगे तो, ब्रह्मसे भिन्न होगी. उससे जीवेश्वरकी एकता कहना भी नहीं बने-गा. ओर जो शक्तिको विभु मानोगे तो, अन्यमें प्रवेश वा क्रियादि नहीं होंगे, किंवा उसको ईश्वरका स्वरूप रूपही मानना पडेगा, उससे प्रसिद्ध जीव समान मलिन कर्म होना न संभव.

(३) जेसाकि शक्ति वास्ते कहा गया है, वेसेही अ-क्रिय गुण माननेमेंभी जान लेना चाहिये.

(४) जो जीवको, ईश्वर वा ब्रह्मका अंश मानके एक-ता कहते हो तो, व्यापक वस्तुके खंड—भाग—नहीं हो सकते—ब्रह्म—ईश्वर—अखंड हे. जो खंड मानोगे तो चार्वाक मत स्वी-कार हो जायगा; क्योंके वे भी समूहात्मक परमाणु शक्ति

करके परस्पर संयोग वियोगसे ज्ञान, क्रिया, स्थिति मानते हैं.

(५) जो घटाकाश महाकाशवत् सोपाधिक अंश मानोगे तो, यह कहना पडेगा के चेतन एक है—जोके नित्य कूटस्थ, शुद्ध, अक्रिय, अकर्त्ता, अभोक्ता है. और उपाधि (अंतःकरणादि) सादि सांत, मध्यम, कर्त्ताभोक्ता और सक्रिय है.–इनकी एकता नहीं होसकती. और विशिष्ट (उभयको युक्त) मानके एकता करनेमें (पूर्वोक्त और वक्ष्यमाण) दोष प्राप्त होते हैं.

(६) जो, ईश्वरका श्वास रूप जीव है, एसा मानके एकता करोगे तो, श्वास मध्यम होनेसे जीव नाशवान ठरेगा. और ब्रह्म-ईश्वर–व्यापकके मध्यम श्वास कहना विस्मयकारक–हास्यजनक- अयुक्त–बात है.

(७) जो यह कहोके "जेसे दीपकसे दीपक होता है तहां, पूर्व दीपकमें न्यूनाधिकता नहीं होती, फेर दोनों मिलके एक स्वरूप हो जाते हैं. इसी प्रकार ईश्वर-ब्रह्म-रूपी-दीपकसे मायांश वा अन्य कोइ परमाणु-पदार्थ विशेष-ईश्वरकी संधि–सन्निधि-से चेतन हो जाता है, स्व परिमाणमें सारूप्य और सायुज्य होता है; सालोक्य (ब्रह्म लोकमें), सामीप्य रहता है. वेसे जीव है; सो दीपक, दीपक समान एक है. ईश्वरका अंशभी है, व्यापकका व्याप्य है, दासभी है, और सखाभी है. और अभेद स्वरूप होनेसे एकभी है." यह कहना वा माननाभी समीचीन नहीं; क्योंके ब्रह्म–ईश्वर–व्यापक है, जो दीपक समान परिच्छिन्न होता तो, अन्यदीपकका कथनभी बनता. जो परिच्छिन्न मानके वा अन्य प्रकारसेभी निर्वाह करोगे, तोभी नहीं बनेगा; क्योंके जेसे जलके परमाणु अन्य जलमें मिलते हैं और एक स्वरूप भासते हैं तोभी, वे स्व स्वरूप-

से, अन्य, जल परमाणुसे भिन्नही हैं, इतनाही नहीं किंतु उनका शीतत्वादि गुण स्वभावभी भिन्न२ ही हे, उसका पृथक्करण पदार्थ विद्याके ज्ञाता जानते हैं, ओर अनुभव गम्य हे; अर्थात् वे परस्पर संयोग संबंधसे एक रूपसे रहे हुये हैं, तादात्म्य संबंधसे नहीं; किंतु जलके परमाणुके शीतत्वादिकोभी कल्पित तादात्म्य संबंधरूप मान सकते हें. अन्यथा वस्तु मात्रका तादात्म्य संबंध कल्पना तम–रातको दिन–प्रकाश–बताने समान हे. इसी प्रकार जब अन्य दीपकसे अन्य दीपक किया जाता हे वहां, आद्य दीपकमेंसे तेजके सूक्ष्म परमाणु उत्तर दीपकके साथ संयोग पाते हैं ओर उससे उत्तर दीपकके तेजके परमाणु जोके तेल, बत्ती, ओर अंतरिक्षमें विद्यमान हें सो, आकर्षण, विद्युत वा स्वभाव बलसे एकत्र होके प्रादुर्भावको प्राप्त हुये प्रकाशमान होते हें जेसेके नित्यप्रति दीपक प्रकाशमें प्रवाह देखते हो. अर्थात् जेसे गुप्त धूम, दीपकसे निकलता रहता हे ओर कालांतरमें मकान पर श्याम रूपसे देख पडता हे वेसे, दीपकमेंसे तेजोमय परमाणु निकलके अन्य अंतरिक्षस्थ तेजके परमाणुको प्रकाशमान होनेके हेतु होते हें ओर आपभी प्रकाशमान होते हें. परंतु इतना अंतर हे के जेसी जेसी योग्यता–आकर्षण–देशकालादि होते हें वेसे वेसे, उनके सृष्टि नियमसे प्रकाश पाते हें. अर्थात् दीपकके समीपही यदि कोइ आवरण विशेष प्रकारसे होतो, वहां प्रकाश नहीं पाते; किंतु जेसेके दीपकसे दूर गये हुये परमाणु तम बल करके तेज सहायक नहीं होनेसे तिरोधान हो जाता हें; वेसेही कारण विशेषसे–आवरणादि निमित्तसे समीपमेंभी, उनका तेज तिरोधानको प्राप्त हो जाता हे. ओर जहां अति दूरसे दीपककी लोशिखा-का प्रकाश तो देख पड़ता हे परंतु, दृष्टि ओर दीपक

(सूर्यचंद्रादि) के मध्यभागमें तेजके परमाणु वेसे नहीं प्रकाशित होते, जेसेके दोपक समीप देवार वा पदार्थ पर प्रकाशमान होते हें. वहांका यह प्रकार हे के जहां दीपकके समीप देवारादि पर देखते हो वहां, दीपकी किरणे (परमाणु समूह) देवार पर पडके उनकी प्रभा चक्षुमें टकर खानेसे प्रतीत हो पडती हे. (विशेष विस्तार प्रकाश विद्यामें देखो. यहां अप्रयोजन समझके दृष्टांतमात्र अनुग्रहणकी अपेक्षासे ग्रहण हे). परंतु जहां अंतरिक्ष भाग हे वहां, वे किरण नहीं टकरानेसे, प्रकाशमान नहीं जनाती. वेसेही दीपक ओर चक्षूके मध्यमें नहीं टकरानेसे ज्ञात नहीं होती. यदि मध्य देशमें पदार्थ रखोगे तो, उस पर टकराके ज्ञात होपडेंगी. निदान चक्षुमें टकरानेसे दूरका दीपक प्रकाश सहित प्रतीत होता हे. ओर जहां अत्यंत दूरस्थ दीपकभो चक्षुमें प्रतीत नहीं होता वहां, मध्यभागमें दीपककी किरणे वायु वा अन्य परमाणुसे छिन्न भिन्न ओर आवृत्त हो जानेसे प्रतीत नहीं होती. सूर्य तारागण अत्यंत दूर होतेभी जो सप्रकाश प्रतीत होते हें सो, उनके आकर्षण नियमसे उनके स्थूल पृथ्वीको किरणे पानेसे ज्ञात होते हें. दिनको तारागणकी किरणे तिरोधान रहती हें तोभी, सीधे ओंडे अंधकूपमें उतरके देखो तो, सूर्यके प्रकाशके अभावसे, वहां दिनकोभी तारा देख सकोगे. **खग्रास-सूर्य ग्रहण समयभी दिनको तारा देख पडता हे.** वेसे अन्य सूक्ष्म यंत्र दूर दर्शक पदार्थोंके प्रकार हें (प्रकाशविद्या—अर्थवेद—के पढनेसे ज्ञात ओर परीक्षा होसकती हे). जब अनेक दीपक वा मशालके समीप वांचते हें तो, अक्षर नहीं देख पडते. अर्थात् तेजके परमाणु जोके दीपक

से निकले वे, चक्षु और अक्षरों पर आवृत्त हो जाते हैं, यदि केवल प्रकाशमात्र केवल दीपककी सत्ता होती,-अणुरूप वा समूहात्मक मध्यम नहीं होता तो, एसा नहीं होता.

निदान पूर्वोक्त तमाम रीति वा दृष्टांतोंमें दीपकसे दीपक होना परमाणुका संयोग हे ओर प्रकाश मध्यम वस्तु—परमाणु जन्य—हे, यह सिद्ध हो जाता हे.

अब दार्ष्टांत पर दृष्टि डालिये—ईश्वर वा ब्रह्म यदि चेतन परमाणुका पुंज—समूहात्मक पदार्थ—होवे तो, आपका दृष्टांत बनेगा. आप व्यापक मानो तब तो, व्यापक अग्निमें नाना दीपक अभाव समान, दृष्टांतका अभाव प्रसिद्ध हे. ओर जो परिच्छिन्न (वैकुंठ, कैलास, कुरसी, चोथा आसमान, मोक्षसिला, गोलोक, अक्षरधाम इत्यादि देश परिच्छेदवान-वासी) मानो तो, सावयव मध्यम होनेसे नाशवान होगा. ओर एक अणु रूप मानो तो, उससे अन्यमें चेतनत्व नहीं आवेगा. क्योंके उसकी सत्ता—शक्ति-गुणादि उससे भिन्न तो अन्यमें नहीं गये. तब अन्यमें चेतनत्व प्रकाश केसे होगा? इत्यादि दीर्घ विचारसे दीपक दीपक समानके जीव ब्रह्मकी समानता वा एकता नहीं बनती सामीप्य—सायुज्य—सालोक्यता तो, ईश्वरवादी करके गर्धव, विष्टादि मेंभी सिद्ध हो सकती हे; उसके निर्णयका यहां प्रसंग नहीं.

(८) जो यह कहो के "जेसे जलमें सूर्यका प्रतिबिंब पडके देवार उपर चांदना प्रतीत होता हे. अर्थात् देवारको प्रकाशता हे वेसे, ब्रह्म—ईश्वर—व्याक वा परिच्छिन्न, जीवनामा पदार्थको स्व प्रकाश करके वा स्व प्रतिबिंब करके प्रकाशित करता हे; किंवा सो देवारस्थ प्रकाश जीव हे वा प्रतिबिंब जीव हे. निदान सूर्यवत् जीवसे भिन्नाभिन्न रूप हे; अ-

र्थात् एकताभी हे ओर उपाधी रहते हुये भेदभी हे; इस प्रकार अज्ञ वा ज्ञानवान् जीवको, जीवन कालमें ईश्वरसे भेद हे ओर ज्ञान वा विदेह मुक्त कालमें अभेद हे." इस दृष्टांतसेभी जीव ब्रह्मकी एकताका कथन नहीं संभवता; क्योंके जो सूर्य व्यक्ति हे सो, जलस्थ प्रतिबिंब व्यक्तिसे भिन्न हे ओर जलके अभाव हुये उसका लय अंतरिक्षमें होता हे-सूर्यमें नहीं. ओर जो देवार पर प्रकाश हे सोभी, सूर्यसे भिन्न हें; किंतु सूर्यकी तेजोमय किरणें (परमाणु विशेष जो सूर्यमेंसे ओर उसके समीपसे आते हें) जल उपर गिरके देवार पर टकराके द्रष्टाकी चक्षूमें टकराती हें तब, देवार सहितकी किरणे, देवार, प्रकाशमान-ज्ञात होती हें. एसेही सूर्यकी किरणे जलमें पडके चक्षूमें आके टकराती हें. तब प्रतिबिंब ज्ञात होता हे (विशेष विस्तार प्रकाश विद्यामें). जेसेके सूर्य काच-मणी-में जब सूर्यकी तेजरूप किरणें काचमें समूहरूप होके एक स्थानमें एकत्र होके गिरती हें तब, समूह होनेसे रुइ, तृणादिको जला देती हें, यदि मध्यम-परमाणु रूप नहीं होती तो, केसे एकत्र होती किंतु उस बिनाभी जला देती*

इत्यादि प्रकारसे सूर्यसे भिन्न किरणोंका समूह सो-प्रतिबिंब ओर प्रकाश हे. तद्वत् जो ब्रह्म चेतन वा ईश्वरमेंसे कोइ किरण वा पदार्थका अंतःकरण साथ संयोग मानके

---

* सूर्यकी किरणोंद्वारा पृथ्वी उपर, नित्य जितनी उष्णता आती हे सो, सूर्यकी तमाम आकाशमें फेलती उष्णताका, मात्र दो अबजवां भाग हे. अर्थात् सारी पृथ्वी पर २४ घंटेमें जितनी उष्णता आती हे उससे दोअबज गुनी अधिक उष्णता इतने कालमें सूर्यसे निकलती ओर अंतरिक्षमें जाती हे, यह वर्त्तमानके परीक्षक फिलोसोफरोंका अनुमान हे.

उस समूहको जीव कल्पके, जो समानाधि करण वा बाध समानाधि करणकी प्रक्रियासे एकता करोगे तो, (पूर्व प्रकाशवत्) सर्वथा अयुक्त है; किंतु ब्रह्म, उसका आभास–प्रतिबिंब ओर अंतःकरणादि सर्वथा भिन्न २ होनेसे, जीव ब्रह्म भिन्नही सिद्ध होगा.

जो यह कहोके जबके सूर्यमेंसे परमाणुरूप प्रकाश, नित्य –ब्रह्मांडमें निकलता होतो, सूर्य न्यून क्यों नहीं देख पडता? अतः (दार्ष्टांतगतभी) तुम्हारा कथन अयुक्त हे. इसका समाधान यह हे के सूर्यका सर्व ब्रह्मांडोंमें प्रकाश नहीं जाता किंतु, अन्य दीपकोंसे यह बडा दीपक हे; अतः विशेष स्थान (अंतरिक्ष, तारामंडलादि) में स्व सीमा पर्यंत जाता हे, आगे अन्य सूर्य वा प्रकाशदायी पदार्थ हैं, उनके प्रकाशका उपयोग होता हे. तोभी, अपने सूर्यकी ओर अन्य प्रकाशमान सूर्यकी किरण (प्रकाश-गरमी) इधर उधर आती जाती रहती हैं, यह बात थोडेक विचारसे जान सकते हो. तदुपरांत अन्यभी कारण हैं, अतः थोडे कालमें न्यूनाधिकता नहीं ज्ञात हो सकती. [१]

उपरांत कुच्छभी हो, परंतु यह बात बहुत काल वा-

---

१ खगोल विद्या पढके परीक्षा करोगे तो, जान लोगे कि जो रात्रिको तारामंडल दृष्टिगोचर होता हे उसमें दरेक डबडबते तारे स्व प्रकाशित पदार्थ–सूर्य–हैं. उन सबमेंसे स्व सीमामें प्रकाश फैलता रहता हे. अपने सूर्यसे तो, वे बडे सूर्य हैं (बहोत दूर होने से छोटेसे प्रतीत होते हैं). आकाश मंडलके सब सूर्योंकी किरणें अरस्परस आती जाती रहती हैं, ओर सूर्यकी आसपास अति उष्ण तेजावरण हे, उसमें सूर्य पर जो काले दाग सूक्ष्म दर्शक यंत्रसें प्रतीत होते हैं वे ज्वालामुखी जेसे हैं. उनसे ज्वलित पदार्थकी धारा उठके मिलती हे. स्पेक्ट्रोस्कोप नामक यंत्रसे निरीक्षा द्वारा, निः

स्ते तो, निःसंशय सिद्ध हो जाती हे के, सूर्यनामा पदार्थ संयोग जन्य हे. धीरे धीरे बना हे, एक साथ नहीं. तथा वेसे ही क्रमसे न्यूनभी होता हे. अर्थात् नैसर्गिक नियमानुसार, कालांतरमें बनता बिगडता रहता हे. इसका पुरावा इस सृष्टि नियमसे प्रत्यक्ष हे के, सूर्य परिच्छिन्न अणु परिमाण नहीं किंतु परिच्छिन्न मध्यम हे (क्योंके काले दागभी उसमें प्रत्यक्ष प्रतीत होते हें). ओर "मध्यम सादि शांत होता हे, यह नियम हे" अतः न्यूनाधिकता युक्त होनेसे उक्त कथन अयुक्त नहीं हे.[१]

शंक सिद्ध हुवा हे के सूर्यके तेजावरणमें हैड्रोजन, लोहा, मेग्निासियम, सोडियम स्पष्ट प्रतीत होते हें, ओर सब पदार्थके मूळ तत्व उसमें हें.—ओर तारोंमेंसे खिरता हुवा भाग सूर्यमेंभी जा पडता हे उन भागोंकी गति अकस्मात अटकनेसे इतनी गरमी पेदा होती हे के सूर्यमें निकलती रहती गरमीसे जो न्यूनता होती हे, सो पूर्ण कर देता हे. तोभी, यह बात सिद्ध हो चुकी हे के 'सूर्यसे इतनी बहोत उष्णता बाहीर निकलती रहती हे कि उसमें गरमी कम होती चली जाती हे.' परंतु वोह बडा (अपनी पृथ्वीसे बार लाख गुना) होनेसे ओर ऊपर लिखी ऊष्णताकी सहायता मिलती रहेनेसे, थोडे कालमें न्यूनाधिकता ज्ञात नहीं हो सकती.

ऊस विद्याके ज्ञाताओंने यहभी निश्चय किया हे के, कालांतर पश्चात् सूर्यकी सब ऊष्णता निकल जायगी ओर अपनी पृथ्वी जेसा हो जायगा. तिस कालमें ऊसको प्रकाश वास्ते अन्य सूर्यकी अपेक्षा रहेगी. (देखो खगोल). (हमने हमारा कथन, अन्य प्रकारसे स्वतंत्र सिद्ध किया हे. अतएव अन्यकी साक्षी वा अनुमान कहां तक ठीक हे, इस पर चर्चा करनेकी आवश्यकता नहीं रहती.)

१ ओर आर्यावर्त्तके फिलोसोफरतो, प्रलयको क्रमशः मानते हें, यह आपभी जानते हो.

(९) जो "सत् चित् ओर आनंद यह तोन अंश ब्रह्मके व्यापक मानके उनमेंसे सत्–माया, चित्–जीव ओर आनंद-ब्रह्मको कहके संसार दशामें जीव आनंदको प्राप्त नहीं होता ओर ज्ञान वा विदेह दशामें प्राप्त होकर चेतनानंद एक स्वरूप होता हे," एसा मानके जो, जीव ब्रह्मकी एकता मानोगे तो, अनेक दोष आवेंगे.-तीनो समान एक देशमें नहीं रह सक्के. वा परिभाषा मात्रके अंतरको त्यागके प्रकृति, जीव ओर ब्रह्म अनादि अनंत हें, एसा मानना पडेगा जो के सदोष मत हे. क्योंके तीनों अंश सर्वथा, सर्वदा स्वरूपसे भिन्न २ ही हें, किंवा चेतनांशवत् सदांश–माया–भी ब्रह्म स्वरूप मानना पडेगा. तो, मल, पाषाणादिभी ब्रह्म स्वरुप होनेसे लक्षणा विना "सर्वं खल्विदं ब्रह्म" माननेसे अव्यवस्था होगी. कर्त्ता, भोक्ता, चोर, दुष्ट, मलादि-तमाम ब्रह्म स्वरूप होनेसे पाप पुण्य, स्वर्ग नरकादिकी नास्ति होगी. जीव एकही व्यापक माननेसे सर्वके दुःख सुख, एक दूसरेको ज्ञात होंगे. ओर सर्वका सर्वमें अहंत्व होगा. (जोकि गोचर नहीं हे). जो माया वश वा उपाधि भेदसे चेतनांशमें नानात्व कहोगे तो, पूर्वोक्त, अंतःकरण विशिष्ट चेतन मत गत जो जो दोष हें वे सर्व दोष आवेंगे. इत्यादि अनेक दोष हें ओर युक्ति हीन मत हे. अतः इस रीतिसे जीव ब्रह्मकी एकता नहीं बनती.

(१०) जो यह मानोगे के "सत् चित् आनंद, यह तीन अंश ब्रह्मके ओर असद्–मिथ्या–जड ओर दुःख, यह तीन अंश मायाके परस्पर सर्वदा साथही उद्भव, तिरोधान होते हें. जेसेके सुषुप्तिमेंसे उठते हें तब, तीनों क्रमशः साथ प्रादुर्भूत होते हें. तथा असत्की अपेक्षासत, सत्की अपेक्षा–मिथ्या–असत्–का प्रयोग वा कल्पना वा प्रतीति होती हे. इसी

प्रकार चिद् जडादिमें समझ लेना, अतः उभय अनादि अनंत हैं उनमेंसे चेतन, दुःखनामा अंश साथ रहनेसे जीवका वाच्य होता हे–सो ब्रह्म चेतन भागके साथ एक हे. इस प्रकार व्यवहारमें भेद ओर वास्तविकमें सर्वदा एक हे." यह प्रक्रियाभी एकतांशमें अविवेकसे मानते हैं; क्योंके उभय अंश परस्पर विरोधी हैं, उनका साथ रहना तो ठीक हो, परंतु एकता कहना असंभव हे. जेसे खद्योतमें तम प्रकाश भिन्न २ देशमें हैं–भिन्न स्वरूप हैं–वेसे जड, चेतन स्वरूपसे भिन्न हैं. ओर व्यवहार तथा ज्ञान वा विदेह कालमेंभी भिन्न २ रहेंगे; क्योंके अनादि स्वरूप मात्र, संसर्ग पाते हुयेभी भिन्न २ ही हैं, यह सृष्टि नियम हे. अतः कल्पना मात्र सिवाय एकता नहीं कही जाती. सुषुप्ति कालमें जडत्व चेतनत्व यद्यपि प्रतीत हों, तथापि जाग्रत कालके सहचार विवेकसे सुषुप्ति कालमेंभी, भिन्नताही सिद्ध होती हे ओर तीनोंको अनादि अनंत मानोगे तो, अद्वैत–वेदांत–पक्षकी हानी होगी.

(११) जो कीट भृंगवत् जीवको ब्रह्मके सारुप्य होना मानते हो तो, सोभी असंगत हे; क्योंकि दृष्टांतमें वेसे स्वरूप होनेकी सामग्री, वीर्य मनुष्य, बीज वृक्ष समान प्रथम विद्यमान हे, भृंग उसके उद्भव होने वा उपयोगमें आनेका निमित्त हे परंतु जीव परिच्छिन्न, अल्पज्ञ परतंत्रमें तो ब्रह्मसे विरुद्धभी धर्म हैं. अर्थात् व्यापक, सर्वज्ञ, स्वतंत्र, सर्व शक्तिमान होनेकी सामग्री नहीं हे; अतः जीवको ईश्वर, अपने समान नहीं बना सकता ओर न जीव, स्वयं वेसा हो सकता हे. तथा चार भुजादि शरीर होना यह तो, एक प्रकारकी योनी मान सकते हैं: ईश्वरत्व नहीं हे, अपरंच यहां जीव ब्रह्मकी एकताका प्रसंग हे, अतएव "भृंगसे भिन्न, कीट भृंग होता हे" सो विषय, इस

प्रसंगका विषय नहीं है.

[१२] अब विशेषतः कहां तक लिखें.—जो जो एकता वा जीव ब्रह्म मायाके स्वरूपमें कल्पना करोगे वा मानोगे, उस उसका पूर्वोक्त युक्तियों ओर सृष्टि नियमसे खंडन हो जायगा. ओर "एकताका सिद्धांत कल्पित—अयथार्थ है" एसा जाननेमें आजायगा.

ईश्वर जीव-दर्शन-.४

वेदांत संप्रदायको रीतिसे किंवा अन्य *संप्रदाय वा प्रकारसे उद्दालकादिके वाक्य ओर जीव ब्रह्मकी एकताका साक्षात्—अपरोक्षत्व—थोडी देर विश्वाससे मानभी लेवें, परंतु ब्रह्म—ईश्वर—ओर जीव कुछ वस्तु होतो, इस विश्वासमें काल व्यय करें, जो वेही वस्तुतः सिद्ध नहीं होवें तो, विश्वास भी व्यर्थ है. सो प्रसंग संक्षेपसे जनाते हैंः—

(ईश्वर विषे.)

ब्रह्म, वा जगत्कर्त्ता ईश्वर है, इसमें क्या प्रमाण है? इसकी सिद्धि विना, वेदांतपक्ष (एकता) सिद्ध नहीं होता. प्रत्यक्षादि प्रमाणके दोष उपर कहे गये, वेसेही यहां जान लेना. जो यह कहोगे के "वेदांतियोंके आग्रहको लेके इस प्रसंग विषे प्रत्यक्षादिको उपर नहीं माना हैं परंतु, वस्तुतः इसमें प्रत्यक्षानुभव प्रमाण है. अर्थात् संस्कारी बुद्धिकर गम्य होता है." इसका यह प्रत्युत्तर है के (बाह्य प्रत्यक्षका यहां प्रसंग नहीं, आंतर प्रत्यक्ष

---

* रामानुज, वल्लभ, कबीर, सूफी, पुराण मत.

वास्ते पूछा जाता हे। प्रत्यक्ष हे, इसीमें क्या प्रमाण हे? प्रत्यक्ष ओर प्रत्यक्षके विषयमेंही अंतर देख पडता हे. इस संबंधमें राजा, अग्निके दृष्टांत उपर लिख आये हें. तथा जब दूरसे कोइ वृक्ष देखते हें उससे. समीपमें (उंचाइ, लंबाइ, रंग रूपादि विषे) अन्य स्थिति वा अंतर प्रतीत होता हे. एसेही अंतरको ज्योतिष्मति† (योग क्रियाका विषय)में, काल प्रति विषयमें अंतर पडता हे.-वर्त्तमानमें गर्जना होती हे, मोर उसको सुनके बोलता हे; मनुष्य कहता हे के कोइ शब्द नहीं होता. मिष्टान्नकी गंध आरही हे, कीडी उधर दोडती हें; मलकी दुर्गंध हो रही हे, मक्खी जाती हे या शरीर उपर बेठती हें वा विष्टा युक्त मक्षिका खानेके भोजन वा सूंघनेके फूल पर बेठती हे; परंतु मनुष्य कहता हे के, यहां गंध नहीं हे. तमस्थ मनुष्य कहता हे के यहां सर्प नहीं हे; परंतु बिल्ली दोडके मारती हे. अन्य मनुष्य वा पक्षी रातको नहीं देखते; परंतु भगेर, उलुक सूक्ष्म वस्तुकोभी देखते हें. मनुष्य कहता हे के यहां (किसीने कूवेके उपर कुछ आच्छादन करके अज्ञात पृथ्वीवत् कर दिया हो) खड्डा वा कूवा नहीं हे, वहां हाथी धोका खाके गिर जावेगा. ओर मनुष्य पड जावेगा; परंतु अजा (बकरी) जानती हे के यहां खड्डा हे, कभी नहीं जावेगी. सूर्य प्रकाशस्थ रंगदार वस्तुके रंगका, जेसाके अपरोक्ष वा प्रत्यक्ष ज्ञान यज्ञदत्तको होता हे, वेसा न्यून प्रकाशस्थ उसी वस्तुके रंगका साक्षात् नहीं होता, किंतु विलक्षण होता हे. सूक्ष्म यंत्रद्वारा जलबूंदमें सेंकडों जीव मैथुन वगेरे क्रिया करते हुये प्रतीत होते हें.-जूं. पहाड जेसी मोटी प्रतीत होती हे. वगेरे. तहां यह नहीं कहा जाता कि काच

† शरीरांतर चक्रोंवाली विद्युत-प्रकाश दर्शन.

—चश्मे—दूर दर्शक—यंत्र विना जो वा जेसा लंबा चोडा रू-प—रंग—डोल—रचना देख पडता हे वोह १ किंवा काच वगेरे द्वारा जो—जेसा गोचर होता हे वोह २ किंवा अभी भविष्यमें अन्य यंत्र वा योगवृत्ति होनेवाले हें उनद्वारा जो प्रतीत होनेवाला हे—बुद्धिका विषय होनेवाला हे वोह ३ यथार्थ हे ? अर्थात अनिश्चित हे. जो कदाचित सूक्ष्म यंत्र समान योग्यतावाली मनुष्य चक्षु होती तो, वर्त्तमानसे अन्यथा निश्चय—प्रतीति—होता. इत्यादि अन्य इंद्रियादि विषे ज्ञातव्य हे. निदान मनुष्य प्रमाण [ज्ञान होनेके साधन] सप—सीमासूचक नहीं जान पडते हें.

इतने लिखनेका प्रयोजन यह हे के देश कालादि उपर अपरोक्ष ज्ञानका अंतर हो, इतनाही नहीं किंतु, जीवोंके प्रमाणमेंभी न्यूनाधिकता हे वा योग्यतामें अंतर हे. ओर मनुष्योंके प्रमाणसे अन्य उत्कृष्टभी हें; अतः संभव हे कि जिसे जितना (देखा—साक्षात किया) मानते हो उससे, भिन्न वा कुछ अन्य—न्यूनाधिकता रुप सो वस्तु हो, यथा आपके माने हुये जीव स्वरूपसे जीवका स्वरुप, विलक्षण-अन्य हो. जो उसको अज्ञात मानोगे तो, स्व पक्ष त्याग होगा. मोक्षाभाव होगा. ओर आपकी श्रुति ["तस्मिन् दृष्टे परावरे०" "तमेव विदित्वा०"] के विरुद्ध होगा. तथा उन्हीं श्रुतियोंसे यहभी सिद्ध होता हे के, ज्ञेय ब्रह्म उस दृष्टा—ज्ञाता—से भिन्न हे के जो, उसको देखके मोक्षको प्राप्त होता हे. अर्थात् जीवसे भिन्न हे. तो ब्रह्मकी अस्तिवा उसके ज्ञानको मानकेभी पूर्वोक्त प्रत्यक्षत्वकी तकरार समान, यथार्थ स्वरूप नहीं जान सकनेका संभव हे. अतः यथार्थ अपरोक्षके अभावसे आपके मंतव्यानुसार ब्रह्मको अस्तित्वमें कोइ योग्य [प्रत्यक्षादि] प्रमाण नहीं.

तद्वत् आपके माने हुये मिथ्या मिश्रित (समिष्टि) ईश्वर-के अस्तित्वमें समझ लेना. ब्रह्म वा ईश्वर यदि है तो, वोह अपनेको आप जानता है वा नहीं? जो कहोगे के जानता है. तो, ज्ञाताज्ञेय, दृष्टादृश्य भिन्न२होनेके नियमसे ब्रह्म ज्ञाता और स्वरूप ज्ञेय, यह दो वस्तु सिद्ध होंगी और दोनों अनादि अनंत होनेसे द्वैतापत्ति होगी. तथाहो 'मैं इतना वा एसा हूं' एसी सीमा होनेसे परिच्छिन्न होगा. अनंतत्वका बाध हो जायगा. जो यह कहो के 'अनंत स्वरूप होनेसे अपनेको अनंत जानता है.' इस कथनका परिणाम, स्व स्वरूपसे अज्ञात है, एसा निकलेगा. विचार कर देखिये. और जो कहो के 'अपनेको नहीं जानता' तो, एसा अज्ञ अन्यको क्या जानेगा? किंवा जगत्कर्त्ता केसे होगा? तथा चेतन पर प्रकाशक वा स्वयं प्रकाश केसे मान सकोगे.? अतः चेतन ब्रह्म नहीं. यदि ईश्वर है तो, जीव पद वाच्य वस्तु समान अज्ञ. असर्वज्ञ-है-एसे ब्रह्मेश्वर मानना निष्फल है. किंवा अनुपयोगी है.

ब्रह्मको प्रकाशक मानते हो तो, सांश सिद्ध होनेसे मध्यम परिणामी सिद्ध होके नाशवान् मानना पडेगा, क्योंके काशी देशस्थ, मथुरा देशस्थका प्रकाशक भाग भिन्न २ है. यह इसका वोह उसका नहीं, अर्थात् सर्व स्वरूप सर्वका प्रकाशक रूप नहीं है. जेसेके सूर्यका प्रकाश जिस गृहमें है वहांका वही प्रकाश प्रकाशक है. सो, अन्य गृहके पदार्थों वा प्रकाशका प्रकाशक नहीं. किंवा, जेसे एक गृहगत आकाश, जिन घटादिकोंको अवकाश देता है सोही; अन्य गृहगत घटादिकोंका अवकाशदा नहीं. जेसेके सूर्य प्रकाश, तेज परमाणुका समूहात्मक है. वेसे आकाश यदि वस्तु मानो तोभी, आपके सिद्धांतनुसार ब्रह्मके एक देशमें होनेसे व्यापक नहीं

किंतु मध्यम हुवा. और मध्यम सावयव होता है; इस रीतिसे अवयव विशेषका समूह पदार्थ है. वेसेही ब्रह्मभी स्वयं प्रकाश अवयवोंसे समूहात्मक है; एसा सिद्ध हुवा. जो एक स्वरूप होता तो, परस्परका प्रकाशक वा वही सर्वका प्रकाशक होता; जो एसा मानोगे तो, परिच्छिन्न–अणु–सिद्ध हो जायगा.

यद्यपि साक्षीपना तो, वृत्ति वा अंतःकरणकी उपाधिसे उसमें कल्पते हैं, क्योंके ज्ञातृत्व उसमें नहीं, वृत्ति वा अंतःकरणमें है. अतः साक्षी नाना हैं. तथापि 'स्वयं प्रकाश स्वरूप चेतन एक है,' एसा माने पर पूर्वोक्त प्रकारसे उक्त दोष आते हैं.

यदि आकाशवत् एक स्वरूपही मानोगे तो, काशीस्थ वाले भाग करके मथुरास्थ वालाभी प्रकाश्य होना चाहिये. और जो उपाधि बलसे भेद मानोगे तो, मिथ्या, उपाधि करके भी जो भेद्य वा छेद्य है उसको, अमध्यम-अपरिणामी केसे मान लेवें? जेसेके आकाशके मठाकाश भागरूप उपाधि नाश होनेसेभी, अन्य मठ–गृहगत घटादिकों को, सो उपाधि रहितवाला आकाश, अवकाश नहीं देसक्ता; क्योंके भिन्न भाग है. वेसेही ब्रह्ममें समझ लेना चाहिये. और हठसे मानोगे तो, पुनरुक्ति, गौरव, असंभव तथा चल दोष आवेगा.

जो यह कहोगे कि "उक्त रीतिसे प्रकाशक चेतन में जो सावयवत्व कल्पते हो सो, तुम्हारी वृत्ति बुद्धिकी दृष्टिसे है–लडकोंकी फेरीमें मकान वृक्ष फिरते हुये दृष्ट आने समान भ्रम वा कल्पना मात्र है. वस्तुगतया उसमें इन शंकाका अवसर नहीं; किंतु बुद्धिपर-अगम्य है; अतएव उक्त लेख–दोष मान्य नहीं." इसका समाधान यह है कि वाह, अगम्यविचक्षण

अम्य प्रकारका है, एसी सिद्धि किसनेकी ? तहां, जो प्रत्य नुमानको स्वीकारोगे तो, उक्त दोषोंका परिहार नहीं हो कता; क्योंकि उनको साधक नैसर्गिक नियमवाळी बुद्धि आप अवसर नहीं देते. शब्द प्रमाण मानोगे तो, उक्त द आवेंगे. निदान ब्रह्मको उपाधीवान् वा सुधर्म मानोगे तो, द्धि आदिके विना, उसकी सिद्धिही नहीं होगी. इत्यादि तिसे आपको शंका और मंतव्य भ्रमरूप वा कल्पना मात्र उक्त रीतिसे "ब्रह्म सावयव है, वा ब्रह्म नहीं है" ए मान्ना पडेगा.

तद्वत् ईश्वरमें सर्वज्ञता नहीं घटती; क्योंके आपकी तिसे. ब्रह्मकी व्याप्य–माया तद् विशिष्ट चेतन वा अंतःक ण अवच्छिन्न वा अनवच्छिन्न चेतन, ईश्वरका स्वरूप है अर्थात् मायाका अंश सावयव मध्यम वा समष्टि रुप है. साव यमें एककाली एक अभिमान होनेसे सर्वज्ञत्वका अभाव है. कदाचित एसाही मानोगे तो, जडवाद सिद्ध होजायगा. ओ जो एक व्यापक मानके वा समूहात्मक–समष्टिरुप–मानके ए अहंकारवाला (में एक ईश्वरही सर्वज्ञ हुं, वा एक ईश्वर सर्वज्ञ है) मानोगे तोभी, प्रबळ दोष आवेगा; क्योंके एक कालमें काशी अंतःकरण गतकर्म ओर इच्छा तथा परमाणु का संयोग वियोग ओर उनका ज्ञान तथा 'प्रयाग' अंतःकर गतकर्म ओर इच्छा तथा परमाणुओंका संयोग वियोग ओ उनका ज्ञान जब होता है तब, एकही ईश्वर उनका ज्ञाता है अभिमानी है ? वा भिन्न २ देश वाला ईश्वरांश ज्ञाता है जो उत्तर पक्ष लोगे तो, ईश्वर नाना ओर परिच्छिन्न होंगे उस उस देशकालका अभिमानी भिन्न होगा; एसा माननें अव्यवस्था ओर असर्वज्ञता होगी. ओर जो प्रथम पक्ष लोगे

तो, एक कालमें अनेक ज्ञान एक अभिमानीको होना असंभव. जो कहोगे के 'वोह अनंत ज्ञान शक्तिवाला है' तोभी उसका अभिमानी एकही होनेसे उक्त दोषका परिहार नहीं होगा. जो कहोगे के 'मनुष्य बुद्धिसे ईश्वरके ऐश्वर्यका निर्णय नहीं होसक्ता' तो, ईश्वर है, एसा माननाभी तद्वत् है. अर्थात् है ओर नहीं माननेमें दोष प्राप्ति होनेसे संशयात्मकता होगी.

तथाही जो हठसे एक देशकाली सर्वज्ञ मान लेवें तोभी, सिद्ध नहीं होता.—जेसे कि, १ इतनीवार सृष्टि उत्पन्नकी ओर करुंगा, २ अमुक परमाणुका अमुकके साथ इतने वार संयोग वियोग हुवा ओर होगा. ३ अमुक जीव अमुक काल में अमुक कर्म करेगा, ४ अमुक जीवकी अमुक कालमें मुक्ति होगी, ५ आकाश—देश—कालका आद अंत कितना है इस वातकी वा उनके अनादि अनंतत्वकी उसको खबर है? ६ परमाणु कितने हैं? ७ (में ईश्वर—ब्रह्म) कितना हूं—इत्यादि वातोंको ईश्वर जानता है वा नहीं? जो कहोगे के नहीं जानता. तवतो सर्वज्ञ नहीं. जो कहोगे के जानता है, तो सृष्टि ओर उपादान अनादि नहीं.- तथा जीवकी मोक्ष, पुरुषार्थ पर नहीं होगी; किंतु ईश्वरका सत्य ज्ञान होनेसे अमुक कालमें नियमसे होगी; एसा सिद्ध होनेसे जीव परतंत्र हुवा. ओर जव यूं है तो, जीव मात्रके भविष्य कर्म उसके ज्ञानानुसार होने चाहियें. जो एसा नहीं मानो ओर जीवकी स्वतंत्रतामें मानो तो, उसकी सर्वज्ञताका अभाव होगा. ओर जो सर्वज्ञता मानो तो, जीवके स्वतंत्र कर्म करनेका अभाव होके उनके फल भोक्ताका अभाव होजायगा. वा वुराइ भलाइ ईश्वरके सिर होगी.—वही भोक्ता होगा. (यह वातोंकि

चित्‌ही विचारसे ज्ञात होसक्ती है; अतः विस्तार नहीं किया).-देशकाळ ओर ईश्वरके शरीर तथा ज्ञानकी सीमा हो पड़नेसे वे (देशकालादि), मध्यम परिमाणवाले—नाशवान—परिच्छिन्न ठेरेंगे.-सृष्टिकी व्यवस्था न होगी.—इत्यादि दोष आवेंगे. इस प्रकार ईश्वर सर्वज्ञ नहीं. असर्वज्ञ, जगत्‌का कर्त्ता, धर्त्ता, हर्त्ता ओर व्यवस्थापक नहीं होसक्ता. जो योगियोंके नाना व्यूह ओर सर्वज्ञताका, ग्रंथोंमें कथन हे सो, विश्वास, कल्पना ओर अल्प बुद्धिसे किया हे. विचार सहित नहीं हे. जो वोह लेख सत्य मानते हो तो, शंकराचार्य, पतंजलि, गौतम, कनाद, व्यास, ऋषभदेव, महावीर, ब्रह्मा, विष्णु, इत्यादिके मतका भेदभाव नहीं होता.—राजाके मृत्त शरीरमें जाके छल प्रकारसे शंकराचार्यजीको कामका अनुभव नहीं लेना पडता. [पूज्यपाद शंकराचार्यके नामपर किसीने यह कलंक कथा बनाई हो, एसा जान पडता हे]. तथाहि ब्रह्मा सर्वज्ञ होता तो, वत्सहरण लीलामें नहीं भूलता. रामचंद्रजीको सीताकी खबर होती—बालीको छलसे नहीं मारते.-सीताजीको धोबीके कहनेसे बाहिर नहीं निकालते. विष्णुको छल नहीं करने पडते. शंकर महाराज कर्तबी भीलनी (पारबती)को पहिछान लेते.—इत्यादि वातें विपरीत नहीं होती. तथा जैनियोंके सर्वज्ञ तिर्थंकर ऋषभ देव वा महावीरने अपने सूत्रोंमें लिखनेके योग्य नवीन यह वात कि, "श्रावकोंकी पूज्य जो हमारी मूर्तियें, सिद्धाचळ (पालीताणा शहरके शत्रुंजय) परवत पर होंगी, उन मूर्तियोंके शिखर—मस्तक पर, हिंसक मुसलमानोंकी मसजिद बनेगी," नहीं जनाई हे. वाहरे! उनको सर्वज्ञ और सर्व शक्तिमान माने वाळो! पारबती पति—महादेवजीने वा उनके अनुयायी—भक्तोंने, यह कहीं

नहीं लिखाकि "काशी विश्वेश्वरनाथके मंदिरके जोडे हिंसक, वेद विरोधी मुसलमानोंकी मसजिद बनेगी.-प्रभास-पाटनका सोमनाथ ज्योतिलिंग, मुसलमान लोक तोडेंगे." वाहरे सर्व शक्तिमान सर्वज्ञ कहने वालो! नवी मुहिम्मद ओर यसु ख्रस्ति वगेरे पेगंबरोंको कोईभी सर्वज्ञ वा सर्व शक्तिमान नहीं मानता.—उनकी योग्यताका आधार उनके खुदा पर मानते हें—खुदाकी सर्वज्ञता वास्ते उपर कहा गया हे ओर सर्व शक्तिमानत्व आगे वांचोगे. कदाचित जो कोई पेगंबरोंको सर्व शक्तिमान वा सर्वज्ञ मानता हो तो, उसको उनकी मोत (यसु मसीहका सूली पर चढाया जाना, नवी मुहम्मदकी बारे वफात) याद हो, यही उत्तर बस होगा. उपरांत जीवका पुनर्जन्म होना ओर उसका पुरावा मिलना योग तथा प्रचलित मेस्मेरिझम विद्यासे प्रत्यक्षभी होता हे परंतु, ईरानी (पारसी), किरानी, कुरानी, ब्रह्मसमाजी वगेरे नहीं मानते; ओर प्रसिद्ध जीव स्वरूपको मेटर विना, नवीनोत्पन्न मानते हें.—किंतु खुदाका श्वास मानके गुन्हगारभी बताते हें; यह क्या उनके सिक्षक खुदाकी थोडो सर्वज्ञता हे. ! तद्वत् व्यापक पर ब्रह्ममें क्रिया बताने वाले-व्यापक ब्रह्मका रूपांतर जगत हे, एसा कहने वाले—असंभव दोष ग्रसित थियोसोफिस्टोंके महात्माओं वास्ते विचारणीय हे. इसी प्रकार अन्य—बुद्ध, जरतोश्त, रामानुज, वल्लभ, सहजानंद स्वामी—वगेरेकी सर्वज्ञता वास्ते यथा प्रसंग घटा लेना चाहिये.

तथाहि पूर्वोक्त पतंजलि, ऋषभदेव, महावीर जैनी तिर्थंकर वगेरे ओर थियोसोफीकल सोसाइटीके गुरु—महात्मा—ध्यान चोहा मनस पुत्र—आदि देवों वगेरे सर्वज्ञ जीवोंको "अद्यापि हमारे इतने जन्म हुये हें" एसा तमाम भूत ज्ञान हो-

ना मानें तो, जीव सादि ठरेंगे –अनादि नहीं होंगे.–इसप्रपंचसे सर्वज्ञ वादियोंको स्वपक्ष (सृष्टि प्रवाह वा स्वरूपसे अनादि है–जीव अनादि हैं इस पक्ष)को त्याग देना पडेगा. जो उनको "अपने तमाम जन्मोंका ज्ञान नहीं था" एसा मानें तो, वे असर्वज्ञ ठरेंगे. किंवा 'अनंत जन्मरूप' ज्ञान मानें तोभी, असर्वज्ञ ठरे. तथा अमुक जीव वा सर्व जीवोंको कब मोक्ष होगो?–उनको कितने जन्म लेने पडेंगे; यह ज्ञान उनको नहीं है तब तो, वे असर्वज्ञ हुये; ओर जो उक्त ज्ञान उनको है, एसा मानें तो, सृष्टिका अंत आजाना मानना पडेगा–पुनः सृष्टि होनेका हेतु नहीं रहेनेसे सृष्टि नहीं होगी; परंतु एसा होना असंभव है. तथा पूर्वोक्त प्रसंगानुसार मोक्ष वास्ते पुरुषार्थ करना असिद्ध रहेगा. अर्थात जबकि मोक्ष होनेका काल, नियत है तो, उस कालके आने पर जीव, स्वाभावतः मोक्ष हो जायंगे. तथाहि जो ग्रंथकार सर्वज्ञ होते तो, सूत्र वा गीता वगेरे ग्रंथोंमें अन्य ग्रंथोंकी साक्षी नहीं लेते –इतनाही नहीं किंतु सर्व पक्षकार–ग्रंथकारोंके लेखका एकही अभिप्राय होता.–भिन्न २ नहीं होता.–कोई ईश्वरको जगत् कर्त्ता मानता है, कोई नहीं मानता है (यथा थियोसोफिस्ट, जैन, पूर्वमीमांसा वाला, सांख्यकर्त्ता कपिल देव, बुद्धदेव वगेरे ईश्वरको वा जगत् कर्त्ता ईश्वर है एसा, नहीं मानते). इत्यादि मत भेद नहीं होता. परंतु मतभेद स्पष्ट है. अतः वे सर्वज्ञ नहीं. तथा जिनको सर्वज्ञ वा ईश्वर मानते हो उन्होंने, अपनेको कहींभी सर्वज्ञ नहीं कहा है. तथा अपनेको सर्वज्ञ कहनेवाले वा सर्वज्ञत्व माननेवालोंको छोडके सर्वज्ञत्व सिद्धि में क्या प्रमाण है? इसकी सिद्धि विश्वास वा कल्पना मात्रसे इतर, योग्य प्रकार (युक्ति, सृष्टि नियम, प्रत्यक्षादि प्रकार) में नहीं हो

सकती. (अन्यथा अस्मदादिको भी सर्वज्ञ मान्ना पडेगा).
अतः अमान्य हे.

उक्त प्रकारसे किरानी, कुरानी, ईरानी, जैनी, पौराणी, नवीन पौराणी [थियोसोफिस्ट], ब्रह्मसमाजी वगेरोंके मान्य सिद्ध जीव वा ईश्वरकी सर्वज्ञताही, सिद्ध नहीं होतीहे तो, अन्यकी सर्वज्ञतामें संशयही बना रहेगा. हां, कालांतरके अनुभव क्रमसे, भूत कालका कुछ विशेष ज्ञान ओर शतावधानी, प्रकाश-विद्युत के अवाच्य शीघ्र गति-संयोग वियोग-समान वा उससे विशेष प्रकारसे शरीर ज्ञान क्रम समान. वर्त्तमान ज्ञान तथा प्रकृतिके गुण कर्म स्वभावको जाननेसे विषयकी रचनाका कुछ ज्ञान ओर पडे हुये संस्कार ज्ञानसे जीवोंके किंचित् भविष्यका-अनुमानिक ज्ञान, ईश्वरकोभी होना संभव हे. तथापि निर्मूलका नहीं; अतः जो इश्वर मानो तो भी, वोह सर्वज्ञ, नहीं होसकता.

जो कहोगे के 'भूत भविष्यता तो जीवोंकी दृष्टिसे हे, ईश्वरको सर्व वर्त्तमान हे' यह कथनभी अविचारसे हे. क्योंकी, जीवको जब शिक्षा देता होगा तब, वर्त्तमानके सर्व कर्म हें, एसा समझके देता हे वा प्रारब्ध [भूत] अनुसार देता हे ? पूर्व पक्ष मानें तो, उसका ज्ञान मिथ्या होगा. उत्तर पक्ष मानें तो, भूत ज्ञान मानना पडेगा. 'पूर्ववत् सृष्टि रचता हे,' इस मंतव्यसे कदापिभी वर्त्तमानरूप सिद्ध नहीं होता.

जो ईश्वरको अनादि सांत (यह वेदांत पक्ष हे) वा सादि अनंत मानोगे, तो वोह, अपने उत्तर ओर पूर्व वृत्तांत न जान सकनेसे उसमें सर्वज्ञताका अभाव स्पष्ट हे. ओर जो अनादि अनंत मानोगे तो, द्वैतापत्ति होगी. क्योंके वोह ओर उसके सर्वज्ञत्वादि गुण कर्म-ऐश्वर्य-भी नित्य होने चाहि-

यें. जो यह कहोके 'सर्वज्ञत्वादि मायाकी सन्निधिसे मायाके हें' तो, मायाको अनादि अनंत मानना पडेगा. उससेभी द्वैतापत्ति होगी. जो 'मायाको अनादि सांत मानोगे' तो, ईश्वरमें अनादि अनंत सर्वज्ञताका अभाव होगा. ओर जो मायाकाल पर्यंत सर्वज्ञताका अर्थ लोगे तो, मायाके अभावकी असिद्धि होगी. अर्थात् उसके अभावका ज्ञान किसको होगा ? अतः वेदांतियोंका माया विशिष्ट ईश्वर, सर्वज्ञ नहीं मान सके. सर्वज्ञताके अभावसे जगत्के कर्तृत्वादिका उसमें अभाव होनेसे ईश्वर कल्पना मात्र सिद्ध होगा.

जो ईश्वरको विभु मानोगे तो–"अंतराय रहित दो परमाणु मिलते हें तब, कार्य होता हे. अर्थात् उन दोके संयोग में अंतर न रहे तब कार्य होता हे" यह नियम हे; परंतु ब्रह्म –ईश्वर,–अखंड विभु पदार्थ माना हे तो, उसके अखंड होनेसे दो परमाणुके संयोगमें वोह होना चाहिये अर्थात् अंतराय सहित संयोग हे. जब यूं हे तो, दो परमाणु भिन्न २ रहेभी कार्य होना चाहिये, परंतु एसा नहीं देखते. ओर अनुभव विरुद्ध हे; अतः नभ, ब्रह्मादि कोइभी विभु वस्तु नहीं. किंच उसके स्वरूपसे इतर देशका अभाव होने ओर अभेद्य अच्छेद्य ब्रह्मके स्वरुपमें प्रवेश न होनेसे जगत् ओर मायाके स्वरुपकी स्थिति संभव न होगी. ओर जगत्का स्वरूप सर्वको प्रत्यक्ष हे; अतः जहां जहां जगत्, वहां वहां ईश्वर–ब्रह्म–नहीं; किंतु परिच्छिन्न होगा, वा नहीं होगा. जो परिच्छिन्न मानोगे तो, जगत् कर्त्ता धर्त्ता ओर नियामक–व्यवस्थाकर–नहीं होगा. परिच्छिन्नगत् मध्यम मानोगे तो, नाशवान् होगा. ओर जो अणु मानोगे तो, सर्व अंतर्यामी, सर्वका साक्षी, सर्वका प्रेरक इत्यादि विशेषणवान् न होनेसे जगत् कर्त्ता धर्त्ता

हरत्ता नहीं होसकेगा. ओर जो नहीं है, एसा मानोगे तो, जीवकी किसके साथ एकता कहोगे? अर्थात् एकताका सिद्धांत समीचीन न हुवा. तथाही ब्रह्म जिज्ञासाकाही बाध होगा. ब्रह्मको व्यापक मानके, जिज्ञासु वा जिज्ञासा माननाही असंगत है.

यदि ईश्वर है एसा स्विकार लें तो, सर्व शक्तिमान न होगा. सर्व शक्तिमानके अभावसे जगत् कर्त्ता न होगा. जेसेके उसमें किसी अपराधी जीवको स्वदेशसे भिन्न निकालने की शक्ति नहीं. स्वार्थी न होनेसे करुणा ओर दया (किसीके अपराध क्षमा करने)की शक्ति नहीं. जो उभय शक्ति मानोगे तो, परिच्छिन्न ओर अन्यायी ठेरेगा, ओरभी अनेक दोष आवेंगे. जो एसा नहीं मानोगे तो, सर्व शक्तिमान नहीं होगा.

जबके अनुग्रह (अपराध क्षमा) नहीं कर सकता तो, ईश्वर स्तुति, प्रार्थना ओर ध्यान व्यर्थ होगा. जो केवल कर्मानुसार व्यवस्थापक मानोगे तो, प्रपंची होगा. उसको हानी लाभ न होनेसे जीवोंके कर्म प्रपंचमें पडनेका कोइ हेतु सिद्ध नहीं होगा. जो पशुपक्षी समान स्वभावतः मानोगे तो, शक्तिकी सीमा होनेसे सर्व शक्तिमान न होगा. असर्वशक्तिमान, ब्रह्म वा जगत् कर्त्ता धर्ता हर्त्ता नहीं होसकता; अतः ईश्वरमानना व्यर्थ है.

तथाही माया (वा मूल प्रकृति परमाणु-तत्व) के स्वरूप गुण कर्म स्वभाव ओर स्वगुण कर्म स्वभाव बदलने वा न्यूनाधिक करनेकी उसमें शक्ति नहीं है. जेसेके अग्निके स्वरूपादिको नहीं बदल सक्ता (गुरुत्व शीत वा वायुको रूपवत् चक्षु गोचर नहीं कर सक्ता.), अपने जेसा ईश्वर नहीं बना सक्ता वा अपना आप नाश नहीं कर सक्ता, वा भावसे अभाव वा अभावसे भाव पदार्थ नहीं कर सक्ता. इत्यादि-

एसे अनेक कार्य हें कि जिनके करनेमें असमर्थ हे. जो तद्वि-रुद्ध (मूल स्वरुपादि बदलना, अभावमें भावरूप करना इ-त्यादि) मानोगे तो, मायादि सादी होंगे.-अनादि नहीं होंगे. इस रीतिसे आपके सिद्धांतका अभाव होगा. ओर भी सादि मायाके अभाव हुये पुनः अभावसे भावरुप करेगा; क्योंके नित्य ईश्वरके, 'अभावमें भावरुपोत्पत्त्यादि करना रूप,' गुण कर्म नित्य हें. इस रीतिसे मोक्षाभाव होगा. तथा अनेक अ-न्य दोष आवेंगे.—जीवोंको बुराइसे बचावे, सत्पात्रोंको दुःख दे, विना ज्ञानादि साधनके मोक्ष करे. इत्यादि आरोप हो सकेगा. जो कहोगे कि 'शक्ति होतेभी, अन्यथा नहीं करसक्ता' इसका यह उत्तर हे के उसने कभीभी अन्यथा किया या करेगा? अथवा अभी तक नहीं किया ओर आगे नहीं करेगा! प्रथम पक्ष मानें तो, अब वेसा क्यों नहीं करता? ओर अन्यायी क्यों न हो? परंतु आपके कथनानुसार उत्तर पक्ष मानें तो, उसमें अन्यथा करनेकी शक्ति हे, एसा सिद्धही नहीं होसकता. ओर जो एसा (अन्यथा करने, गुणादि बदलनेमें समर्थ) नहीं मानोगे तो, सर्व शक्तिमान नहीं कहा जायगा. इतनाही नहीं किंतु, जबकि, माया-अज्ञान—का जो गुण स्वभाव (अविद्या-अं-तःकरणादि नाना पदार्थ रूप-प्रपंचरूप परिणामपाना), तिस-को, ईश्वर नहीं बदल सकता, तो जीव, ज्ञानादि बलसे उस-का कैसे अभाव* कर सकता हे? अर्थात् नहीं कर सक्ता, एसा सिद्ध हो जायगा.

तिससे आपके सिद्धांतका अभाव होगा. यदि अनादि ईश्वरमें उक्त असंभव सामर्थ्य (अपने गुणादिको बदलना) मानें तो, मायामेंभी एसी (असंभव) शक्ति नहीं मा-

* माया, अविद्या—ज्ञान निवर्त्तनीय हे, यह वेदांत पक्ष हे.

ननेमें कोइ हेतु नहीं. अर्थात् जो वेदांती भाइ उस अनादिको सांत कर देते हैं तो, वोह ईश्वरवत् अपने अभाव प्रवृत्तिमें अशक्य ईश्वरकोही सांत करके, स्वसांताभाव करनेमें शक्तिमान क्यों न हो? परंतु जैसेके उक्त कल्पना, कल्पना है, वैसे ईश्वरका अस्तित्व और उसके सर्व शक्तिमानत्वको कल्पना समझ लेना चाहिये.

तथाही आपका मंतव्य है कि "एकोहंबहुस्याम" एसी ईश्वरने इच्छा (ईक्षणा)की. इससे ज्ञात होता है के, आपका ईश्वर सर्वज्ञ है, इच्छावाला है. और आपके मतमें ईश्वरका स्वरूप, माया विशिष्ट [अज्ञान विशिष्ट वा साभास शुद्ध सत्व माया विशिष्ट*] चेतन सर्वज्ञ, अंतर्यामी, जगत्कर्त्ता, धर्त्ता,

---

* ज्ञान निवर्त्तनीय, अस्वतंत्र, जड, भावरुप अज्ञानके विषे वेदांत पक्षमें पांच मत हैं, उन मतों अनुसार जीव ईश्वरका स्वरुप भिन्न २ प्रकारसे कल्पते हैं.—१ शुद्ध सत्व गुण प्रधान माया विशिष्ट चेतन ईश्वर एक; मलिन प्रधान अविद्या (मायांश विशेष) विशिष्ट चेतन जीव नाना. २ अज्ञानकी ज्ञानशक्ति प्रधान अज्ञान (माया) प्रतिबिंबित चेतन ईश्वर एक. अज्ञानकी क्रिया शक्ति गत—रज सत्वसे नहीं दबा हुवा तमोगुण—आवरण शक्ति प्रधान—अविद्या प्रतिबिंबित चेतन जीव, नाना. ३ एकही अज्ञान विक्षेप [माया] आवरण (अविद्या) क्रिया शक्ति भेदवाला है.—विक्षेप क्रिया प्रधान [माया] अज्ञान उपहित बिंब चेतन ईश्वर. आवरण क्रिया विशिष्ट [अविद्या] अज्ञान प्रतिबिंबित चेतन जीव. [इस पक्षमें जीव—प्रमाता जीव १, तिस जीव विषे अनेक—कल्पित हैं. ४ वनवत् अज्ञानोंका समुदाय—समष्टि अज्ञान उपहित चेतन ईश्वर. वृक्षवत् प्रत्येक व्यष्टि अज्ञान उपहित चेतन जीव—नाना. ५ कारणरुप अज्ञान उपहित चेतन ईश्वर. कार्यरुप अज्ञान अंतःकरणादि विषे उ-

हर्त्ता, जीवोंकी कर्मानुसार व्यवस्था करनेवाला, इत्यादि विशेषणवान् हे, यह्न मंतव्य सर्वथा असिद्ध ओर व्याघात दोषवाला हे; क्योंके चेतनमें इच्छा, ज्ञातृत्व हे नहीं ओर मायामेंभी नहीं. जो मायामें मानोगे तो, जेसे एक स्वरूप भूनमा-

---

पहित चेतन जीव-नाना. इन पांच पक्षोंमें, वेदांती भाई परस्पर दूषण भूषण गाते हें ओर कहते हें कि, कोईभी रीतिसे तत्वमसि-जीवेश्वर–ब्रह्मकी एकताका बोध हो, सोही उस जिज्ञासुको उपादेय हे. उक्त पक्षोंके अंतर ओर इतर अवच्छिन्न, अनवच्छिन्न, नाना ईश्वर-एक जीव एक ईश्वर-इत्यादि भेद हें. इन सर्वका संक्षेपसे इस ग्रंथकी रीतिसे खंडन होजाता हे. अतः भिन्न २ रूपसे खंडन नहीं लिखा. ईश्वर, जीवका विषय, बांचके पुनः यह टिपण ध्यानमें लेना चाहिये.

ओर जीव (परमाणु, समूह-मगज) ब्रह्म (समष्टि परमाणु-व्यापक ईश्वर)की एकता, जडवादीकी रीतिसेभी होती हे; अतएव इन पंच प्रकारकाही माननेका नियम नहीं.

इन पक्ष होनेका यह, कारण जान पडता हे:—वे लोक ब्रह्मको, मन वाणीसे पर मानते हें.-माया तकका विषय नहीं. तब यह शंका होती हे कि, 'ब्रह्म हे' यह बात किसने सिद्ध की? जो ब्रह्मको ज्ञेय मानें तो, स्थाणु, पुरुषका विषय (प्रमेय), उसका द्रष्टाभी होना चाहिये,-किंवा जड मूर्तिका विषय-प्रमेय, पुजारीभी होना चाहिये.-परंतु एसा नहीं होता. इतने लिखनेका सार यह हे कि–मन बुद्धिके अनुमानका विषय ब्रह्म–ईश्वर हे. 'ब्रह्म हे वा नहीं' इसका निर्णय–साक्षात्, मन बुद्धि नहीं कर सकते, इसलिये स्व कल्पना-अनुसार पक्ष रच डाले. उन विषयको परोक्ष भ्रमका विषय क्यों न कहा जाय. ! परोक्ष भ्रम प्रसंगवत् मन माने लक्ष ईश्वर क्यों न मान लिये जावें. ?

याके कार्य ईश्वरमें ज्ञातृत्व हे वेसे उसके कार्य पाषाणादिमें भी होने योग्य हे; परंतु हे नहीं; जो यह कहो के "मायाके सत्व रज तम तीन गुण हें, तदंतर शुद्ध सत्व [ज्ञान प्रकारी] चेतनयुक्त ईश्वर, मलिन सत्व युक्त चेतन जीव, ओर शेष सृष्टि. शुद्ध मलिन, रज तमादिसे बनी हे." इस मंतव्यमें यह आक्षेप होता के, माया एक वस्तु नहीं; किंतु सांश, सावयव हे.—सावयव, निरवयवसे विलक्षण नहीं. जब यूं हे तो, विभु परिमाणभी नहीं; किंतु, अणुपरिमाण रूप हुइ. इसके विना मध्यम परिमाणवाले (अंतःकरणादि) नहीं बन सकते. जेसेके स्वप्नादिमें अति सूक्ष्म स्वरुप, सृष्टि हे उससे अधिक स्थूल यह सृष्टि हे. सो अणु परिमाण जन्य हे. इसका परिणाम यह निकलाके ईश्वर विभु परिमाण नहीं किंतु मायाके शुद्ध सत्वांश मिलके समष्टिरूप ईश्वरका स्वरूप हे, अर्थात् मध्यम परिमाण हे. चेतनभाग विभु परिमाणवाला हे; ओर माया भाग मध्यम हे, माया विभु परिमाण नहीं. यह आपकी श्रुति "त्यतिष्ठत् दशांगुलम्" सेभी सिद्ध हे. जब यूं हे तो, उस मध्यम परिमाणवाले पदार्थके बीच बीचमें जीवादि अणु आवेंगे; इससे ईश्वर चालनी समान वस्तु परिच्छेदवान होगा. ओर इसलिये अंतर्यामित्वका बाध होनेसे जीवोंकी व्यवस्था नहीं कर सकेगा—सृष्टिके रचनेमें असमर्थ होगा. तथाही उन शुद्ध सत्वांशके एक एक अवयवमें इच्छा वा ज्ञातृत्वादि गुण धर्म हें वा समूहात्मकमें? जो अवयव प्रति मानोगे तो, ईक्षण प्रति अनेक इच्छा ओर अनेक ज्ञातृत्व होनेसे जीववत् अनेक परिच्छिन्न ईश्वर मानने पडेंगे, ओर जो उत्तर पक्ष मानो तो, इच्छा ज्ञातृत्वादि सर्व अंशोंमें विभाग पाये हुये मानने पडेंगे.—जेसे जलकी शीतता अणु २ प्रतिथी.—समूहात्म-

साथ है.—यहां उसका प्रसंग नहीं; तथापि आप करके उनकी रीति माननेसेभी, जीव ब्रह्मका भेद सिद्ध ओर आपके पक्षकी हानी तो है. इस लिये लिखा है.

निदान जबकि पूर्वोक्त लेखसे व्यापकत्व, सर्वज्ञत्व, सर्व शक्तिमानत्वादिका अभाव ओर परिच्छिन्नत्व, [1]सावयवत्व, असर्वज्ञत्व ओर असर्वशक्तिमानत्वादिका भाव सिद्ध है. किंवा ईश्वरत्व[2]की असिद्धि है.[3] तो जीवेश्वरकी एकताका कथन केसे होसकता है वा माना जासकता है? नहीं मान सकते. ४

१ पुराणोंमें इश्वरके कच्छ, मच्छ, रामादि अवतार होना प्रसिद्ध है. बाइबलमें एक [इसराइल] पेगंबरके साथ खुदाका कुस्ती लडना, मुसाको तूर पहाड उपर अग्नि समान दृष्ट पडना लिखा है. कुराननमेंभी पूर्वोक्त प्रकारसे मूसाको दर्शन देना लिखा है. तथा नबीमोहम्मदका सातवें आसमान पर खुदाके मिलने वास्ते, घोडे पर चढ कर जाना ओर खुदाका सातवीं कुरसी पर बेठके, परदे डालके मोहम्मद साहेबके साथ बातें करना, मुसलमानोंमें प्रसिद्ध है. (देखो म्याराज). ब्रह्मसमाजी आदि 'ब्रह्मको संकल्प कर्त्ता ओर ईश्वरसे भिन्न सर्वको अभावसे ईश्वरने बनाया, एसा मानते हैं. एसेही इसाई, मुसलमान मानते हैं. इसलिये उक्त विशेषण बनते हैं.

२-३ ईश्वर मंतव्य प्रसंगमें "इस जगत्का कोइ कर्त्ता होने योग्य है. कार्यरूप (संयोग वियोग जन्य) प्रतीत होनेसे. घट कुंभकारवत्" इत्यादि अनुमान प्रकारका खंडन इस लिये नहीं लिखा कि, उसके माने हुये मूलस्वरूपकीही सिद्धि नहीं होती है. तो, उसके अस्तित्व संबंधी विचार करनेमें, क्यों श्रम लिया जाय? -व्यर्थ है. अनुमान प्रकारकी तमाम प्रक्रिया जनाये विना, खंडन मंडन हरएकको समजनें नहीं आसकता, जोकि बहुत विस्तारवाला है; उस पर यह कठणी कि, पक्षकारोंमें व्याप्ति, उपाधी, हेतु, हेतु आ

जो दुराग्रह करके किरानी, कुरानी, ब्रह्मसमाजी यहूदी और पारसियों वाला ईश्वर (स्वेच्छा मात्रसे अनुपादान जीव प्रकृति बनाने वाला, अपरिच्छिन्न) मानोगे तोभी (इस पक्षमें), अनेक दोष आवेंगे, आपका इष्ट सिद्ध न होगा; अर्थात् अभावसे भावरूप वा उपादान विना, उपादेयकी उ-

---

भासकी तकरार पडने [सदोष साधन सिद्ध करने] पर, शब्द–कथनमात्र वा नाकाम–व्यर्थ तकरारके सिवाय, अन्य कोइ विशेष परिणाम नहीं निकलता. (जैसे कर्त्ता विना भूकंप, पहाड वृक्षकी उत्पत्ति नाश, विच्छुकी मैथुनी अमैथुनी–स्वाभाविक, मनुष्य रहित सृष्टि, एक बीजसे स्वेच्छानुसार रंगदार फूल उत्पन्न करलेना, अन्न बना लेना, यथेच्छा रंगवाला अश्व उपजा लेना इत्यादि व्यभिचारी-दोषदायी हेतु हैं. साध्य साधनके व्याप्ति दर्शन, उपाधि रहित हेतुकी असिद्धि है. वा, "ईश्वर नहीं" इतने कथनमेंही उसकी सिद्धि. निषेधका निषेध संभव–वंध्या पुत्रवत्. इत्यादि विकल्प हैं). २ इसपर भी यह होगाकि, वेदांती भाई अनुमानको स्वतंत्र प्रमाण नहीं मानते. ३ इसलिये अनुमान प्रमाणका खंडन मंडन नहीं किया. [यहां दर्शन २१–२२ गत निवृत्ति प्रसंगकी अनुमान प्रमाणवाली टिप्पणभी वांचना चाहिये]. ४ इसीतरह अन्य प्रमाणों संबंधमेंभी पूर्ववत् समझलेना.

५ इसी प्रकार, क्रियावान, अवतारधारी, गर्भवासी, परिच्छिन्न, मूर्तिमान-जड पाषाणवाले ईश्वर, और ऐसे माननेवालोंके मतमें अनंत दोष आते हैं. [जोकि यह सिद्धांत–मत सहज प्रकार किंचित् विचारसे दोषका विषय होजाता है और यहां प्रसंगमें उसकी चर्चाकी आवश्यकताभी नहीं, इसलिये विस्तार नहीं किया]. और जो, ऐसा ईश्वर मान लेवें तोभी, धर्म नीतिव्यवस्था एकता सिद्ध नहीं होसकती. बुद्धिमान सहज विचार करनेसे जान सकता है.

त्पत्ति माननी पडेगी; जोकि हास्यजनक बात है ! जीवोंके कर्म माने विना (अनादि जीव, पूर्व जन्म माने विना), जीवोंकी अहेतुक उत्पत्ति स्वीकारनी होगी. तब, इस पक्षमें यह प्रश्न उठेंगेः-ईश्वरने जीव क्यों किये ? किसीको अंधा, किसीको काना, किसीको राजा, किसीको कंगाल, किसीको स्वभक्त, किसीको अभक्त, किसीको ईश्वर न माननेवाला क्यों बनाया ? नीरपराधी बालक, गर्भमें क्यों रहा ? ६ मासका बालक, रोगमें दुःख पाके क्यों मरा ? हमारी इच्छा विना, जंगली, अर्व [गंवार] गरम देशमें हमको क्यों उत्पन्न किया ? कशमीर वा हिंदुस्थान 'जिन्नतनिशान'में हमको क्यों न पैदा किया ? हमारी तकदीरमें जैसा उसने नियत किया वैसा, हम करते हैं फिर हम अपराधी क्यों ? क्या खुदासे हम जबरदस्त-शक्तिमान हैं कि जो, स्वेच्छासे कुछ करें ! वा उसके यथार्थ सर्वज्ञत्व धर्मवाले ज्ञानके विरुद्ध कुछ हो सकता है का हम कर सकते हैं ? जैसी हमको बुद्धि, इंद्रिय दिये वैसा हम करते हैं, हम अपराधी नहीं. तो फिर हम स्वर्ग नरकमें क्यों डाले जायगे ? हमने बुरे कृत्य कहांसे सीखे ? हम बुरे कृत्य सीख सकें वा करसकें, एसी बुद्धि हमारे यंत्रमें क्यों रखी या हनको क्यों दी ? किंवा हम स्वतंत्र सीखनेमें असमर्थ हैं, उसने हमको बुरे कृत्य करने क्यों सिखाये ? हमको बुरे कर्म करनेमें क्यों नहीं रोकता ? ख्रिस्ति मुसलमानोंके खुदाने, हमारे बहके बहकानेवाले शैतानको क्यों पैदा किया ? खुदाका हुकम जब शैतानने नहीं माना तब, उसको क्यों नहीं कैद किया ? अपने दिये हुकमको क्यों बदलता है ? एसा बेवकूफ, अन्यायी, असर्वशक्तिमान खुदा, क्या कर सकता होगा ? हमको दुःख क्यों प्राप्त होने-आने देता

है? सादि कर्मोंका अनंत फल (नरक, स्वर्ग) क्योंकर है सकता है? इत्यादि शंकाओंके उत्तर वा, जिसमें कोइ स्वच्छंद अन्यायी ईश्वर, अपराधी ठरेगा जीव नहीं?. किंवा उभय अनपराधी हैं—बंध, मोक्ष, कर्म फलका अभाव मान्ना पडेगा २ सृष्टिके पूर्वोत्तर कालमें ईश्वरके गुण नाकाम रहेंगे जोकि असंभव बात है ३. अद्वितीय केवल स्वरूप मानके अनंत शक्ति गुणवाला मान्ना व्याघात दोषवाला पक्ष है ४. इत्यादि अनंत दोष आवेंगे. तदुपरांत जो, कदाचित पारसियोंके खोटे विश्वास (वे अग्निको रक्षक मानते हैं तोभी, जब उसके उंगली लगावें तबही जला देती है) समान उक्त जंगली कल्पित सिद्धांतको मानभी लोगे, तोभी, जीव, ईश्वरकृत (सादि) होनेसे अपने कर्त्ता ईश्वरके समान वा तिसके साथ वा सोही—एक स्वरूप नहीं होसकता. इसलिये जीवेश्वरकी एकता नामा इष्टका अभाव सहज सिद्ध है. ९

ईश्वरका परिच्छिन्न होना पूर्वोक्त प्रकारसे असिद्ध है. विभु—देश परिच्छेद रहित—अर्थात् अनंतभी सिद्ध नहीं होता; क्योंकि व्यापकता, दृष्ट परिच्छिन्न जगत् और बुद्धिकी अपेक्षासे कही जाती है. कोन जाने, जहां तक देशादि ब्रह्मांडकी कल्पना होती है उससे आगे अन्य प्रकार रचना हो. इसलिये जो ईश्वर—ब्रह्म होवे तोभी, व्यापक वा अव्यापक नहीं कहा जासकता. जैसेकि परमाणु जितने हैं उतनेही हैं;—न्यूनाधिक नहीं होते; तोभी, बुद्धि उनको अनंत कहती है. नभ—देश जितना है उतनाही है; तोभी, बुद्धि उसको अनंत मानती है. अर्थात् केवल कल्पना मात्र है. विभुत्व—व्यापकत्व—अनंतत्वका कथन मंतव्य, संशय रहित यथार्थ सिद्ध नहीं होता. जब यूं है तो, ईश्वरत्वकी सिद्धिभी न-

हीं कही वा नहीं की जासकती. विश्वास वा शब्दमात्र मानना जुदी बात है.

जो मायाद्र-दृष्ट परिछिन्न जगत्का अधिष्ठान-आधार, कूटस्थ नहीं मानें तो, परमाणुओंका संयोग वियोग-क्रिया-गति-विकार किस पर होगा-उसका आश्रय कौन ? आधार बिना, गति-परिणाम कैसे हो सकते हैं, इत्यादि सिद्ध कल्पना है; (परस्परके आश्रय-अन्योऽन्याश्रय-से उक्त कार्य नहीं होसकते. आकर्षणमें आधारत्व, एक स्वरूपसे व्यापकत्व, चेतनत्व और नियामकत्व सिद्ध नहीं होता,* प्रत्युत उसमें जडत्व मध्यमत्व और पराश्रयत्व सिद्ध* होता है. तद्वत् प्रसिद्ध पदार्थ विद्युत्, कर्मादिमें ज्ञातव्य है) इत्यादि प्रबल कारणोंसे, कोई परिपूर्ण-परर्राहत, स्वयंभू आधार* तो, बलात् मानना पडता है. जब कि आधार माना या है, तो ईश्वर (जगत्का कर्त्ता-क्रियावान-जगत् धर्त्ता हर्त्ता-व्यवस्थापक) की सिद्धि हो वा न हो परंतु, ब्रह्मकी सिद्धि अवश्य होगी; परंतु जब ब्रह्म माना तो, व्याप्य माया (जगत्-प्रपंच) का सर्वथा अभाव मानना पडेगा; जो कि असंभव है. एतद्दृष्टि या तो ब्रह्म (विवर्तवाद-अद्वैतवाद) नहीं. अथवा तो ब्रह्म है, द्वैतवाद नहीं-ब्रह्मेतर कोई भी नहीं- इन दो परिणामोंमेंसे एक मानना पडेगा; परंतु जोनसा पक्ष मानोगे उसीमें दृष्ट अदृष्ट सृष्टि वगैरे विषयकी योग्य व्यवस्था नहीं होसकेगी.-अव्यवस्था रहेगी. और अज्ञान वाद मानें तो, वक्ष्यमाण (दर्शन २३ में जो दोष लिखे हैं वे) दोष प्राप्त होंगे.

इतने लिखनेसे क्या आया ? ईश्वर-ब्रह्म जीवकी एकताका कथन मंतव्य यथार्थ नहीं.-इसका अवसर नहीं-उस

---

* आगे-दर्शन २४ में आवेगा.

की जिज्ञासा नहीं बनती. क्यों? ईश्वरकी असिद्धिसे. अर्थात
उसे निर्विकल्प मानें, तो 'ब्रह्म-ईश्वर है' ऐसा कहनाही न
बनता. और जो सविकल्प मानें, तो आत्माश्रय, अन्ये
न्याश्रय, चक्रिका और अनवस्था [अव्यवस्था] दोपकी !
प्ति होती है; क्योंकि धर्म [विशेषण गुण-कर्म जाति शक्ति
त्यादि] विना धर्मीकी सिद्धि नहीं होती-असंभव है. जब
है तो, माने हुये-कहे हुये-धर्मविशिष्ट धर्मी तत् धर्मविशि
ष्ट तब तो, उसको सिद्धिमें वोह (धर्म-विकल्प) आत्माश्र
दोष वाला ठरेगा. जो माने हुयेसे भिन्न मानें, तो अन्य
न्याश्रय दोष आवेगा. इस दोष निवारणार्थ तीसरेके मा
से चक्रिका और आगे जाने (४-५ वगेरे कल्पने-मान्ने)
अनवस्था दोष आवेगा.-धर्मी (धर्म विशिष्ट) सधर्म धर्मी है
धर्म रहित धर्मी है, इत्यादि [तथा धर्म, सधर्म वा वि
धर्म धर्मीका भेद; भेद, धर्म सहित वा रहित; पुनः वो ह
रा धर्म वा भेद सधर्म वा विधर्म-? इत्यादि] कल्पनासे उत्प
धर्म-धर्मी, इनके भेद और संबंध तथा आधार-आधेय
स्वरूप प्रोशकी व्यवस्था करनेमें उक्त अनेक दोष आते
कुछभी व्यवस्था नहीं होती-कुछभी निश्चय नहीं होता
काका परिअवसान नहीं आता-(निरर्थक जानके, शब्द
तकरार समझके विस्तार नहीं लिखते). निदान जबकि
-ईश्वर [वा तमाम द्रव्य गुणादि]की सिद्धिमें, सत्स्वय
द्वैतवादियोंकी बुद्धि-जीव चेतन, अशक्य-*असमर्थ है, त
दांतियोंकी मिथ्या श्रुति-मिथ्या जड बुद्धि-अंतःकरण म
कैसे शक्य होसकती है? नहीं. "ब्रह्म--ईश्वर है, वा
और है तो कैसा है इत्यादि" नहीं कह सकते. जब यूं
'जीव ब्रह्मकी एकता है' ऐसा प्रतिपादन करना-मान

कहां, "कैसे बन सकता है" मिथ्या प्रलाप है. एकता कथनका भी अवसर नहीं, एकता तो कहां.* निदान उक्त तमाम प्रसंगसे मिथ्यावादियों करके एकता अप्रतिपाद्य है. और न है.*

---

*प्रसंगारंभसे यहां तक वेदांत प्रसंगी किंवा लोकमान्य प्रसिद्ध ईश्वरका निषेध हुआ. सत्य [खरा] ईश्वरके प्रतिपादनका यहां प्रसंग नहीं—वेदांत संप्रदायका उपयोगी नहीं—एसी दृष्टिसे ग्रंथकारने ईश्वर सिद्धिका प्रसंग नहीं लिया हो, एसा ज्ञात होता है; क्योंकि ग्रंथकर्त्ताका, एक अद्वितीय, व्यापक, सत्ताधारी, चेतन परमात्माकोही 'ईश्वर' पदसे व्यवहारनेका आशय हो एसा "आधार प्रसंग" देखने और इस ग्रंथके आदि मंगलाचरण तथा उसके बनाये हुये 'जडाजड', 'जिनज्ञन' ग्रंथोंसे प्रतीत होता है. जिस अनुपम प्रकारसे यहां संक्षेपमें लोकमान्य ईश्वरका खंडन दिखाया है, वैसेही अनुपम रीतिसे ईश्वरकी सिद्धि, उक्त ग्रंथोंमें की है; जोकि अनीश्वरवादीको माननीही पडे. प्रसिद्ध कर्त्ता.

जब तक कि (आप या हम) वेदके मान्य षडांग, उपांग नहीं पढें और वेदकाल प्रकारसे अर्थोंका निश्चय न करें, वहां तक उसके महीधर, सायन, उव्वट, मेक्षमूलर, बुल्हर भट्टादिके किये हुये अर्थ वांचके "वेद जंगलियोंका बनाया हुवा है, यथार्थ वक्ता नहीं, सदोष है." इत्यादि दोष आरोप नहीं कर सकते—उसे अच्छा या बुरा नहीं कहसकते. जो कोई उल्लड भाई नवीन रोशनीमें आजावे, उसे बुरा भला कहता है. चाहे मानो. अपने बापदादाके मंतव्य और आदर किये हुये के विरोधी हुये कृतघ्नी होय नहीं, एसा कह सकते हैं [मुक्तावलीमें देखो स्वामी श्री दयानंद कृत वेद भाष्य]. हां, जब तक अपने मान्य ग्रंथका अर्थ, सृष्टि नियम युक्ति प्रत्यक्षादि अनुकूल न हो—न जानें वहां तक, प्रसंग प्राप्त विषयोंके निर्णयार्थ उसकी साक्षी न देके, सृष्टि नियमादि अनुकूल निर्णय

जो, विवेकहीन मुसलमान, ख्रिस्तियोंके समान यह
होवे कि, तुम्हारी शंका-प्रश्न-सवालोंका उत्तर और हम
खुदाकी सिद्धि, ज्ञान उन्नति पीछे भविष्य कालमें होगे
अतः अबही मान लो.'' इस छल-कपट वा पोलीसीवा
कथनका उत्तर यह कहो कि, 'वर्त्तमानमें अज्ञ लोकोंने
पदार्थ-तत्व विद्याको न जान्ने वालोंने जैसा खुदा मानरखा
है, उस मंतव्यका उच्छेद, ज्ञानोन्नति कालमें अर्थात् वर्त्त
मान कालमें हो जायगा.-''ईश्वर है वा नहीं'' यह सवाल
भी नहीं रहेगा.-इस मंतव्यके संस्कारभी नहीं रहेंगे.-क्या
ईश्वर, माना जाताथा, एसा खयालभी नहीं रहेगा; एसा
क्यों न माना जाय.''? इसीप्रकार जीवब्रह्मकी एकता ना
पक्षभी शश शृंगवत् हो जायगा. किंवा जैसे वर्त्तमानमें मि
थ्या माया, ब्रह्मका अन्यथा (सच्चिदानंद) स्वरुप देखाती
और वोह रज्जु सर्प समान मिथ्या है. वैसे, भविष्यमें दूस
प्रकारसे अन्यथा दरसावेगी, सोभी रज्जु सर्प समान मिथ्या
होगा; एसा क्यों न माना जाय?

संक्षेपमें हम अपनी कल्पनाओंका ओरकी रीतिसे ईश्व

करके त्याग ग्रहण करनेमें स्वतंत्र हो. परंतु अर्थ निर्णय तक, कि
सी ग्रंथ वास्ते अच्छा बुरेका हुकम चलाना भूल है.

वैसेही जब तक ''ईश्वर असिद्धि वा अमुक प्रकारका ईश्वर
सिद्ध, अमुक प्रकारका असिद्ध है'' एसा-संशय विपरीतभावना
असंभावनादि दोष रहित यथार्थ निश्चय न हो जावे, वहां तक, ई
श्वरको न मानना, अपने पूज्य बापदादोंका अनादर करने-मूर्ख क
हने जेसा है-अनीतिके सहायक होने समान है.-भूल है. इत्यादि
जेसी दृष्टि, ग्रंथकारकी है. (देखो उक्त दोनों ग्रंथ और मंगला
चरण.) प्र. क.

सिद्ध होना मानभी लेवें तोभी, उससे "जीव ईश्वर-ब्रह्म-भिन्न है" एसा परिणाम निकलेगा. परंतु अच्छी वा बुरी वा उभयथा अनंत शक्तिवाला ओर अनंत ज्ञानवाला सर्वज्ञ ईश्वर-ब्रह्म किंवा नवीन वेदांतीयोंवाला ईश्वर किंवा किरानी, कुरानी, पुराणी, ईरानी, जैनी, यहूदी वगैरे लोक प्रसिद्ध मतवाला ईश्वर-खुदा-ब्रह्म, न सिद्ध होता है. ओर न है. अतः जीव ब्रह्मकी एकता कल्पना मात्र है.*

(जीव विषे.)

इसी प्रकार जो जीवको मलिन सत्व (अविद्या-अज्ञान-अंतःकरण) विशिष्ट मानोगे तो, यद्यपि चेतन भाग उसमें व्यापक-विभु परिमाणवाला है; तथापि मायांश मध्यम परिमाणी होनेसे जीव सादि सांत होगा;[१] अतः जडपाषाणादिसे अन्य प्रकारके माया अवयवजन्य नाशवान् जीवकी एकता करनेसे कुच्छ प्रयोजन सिद्ध नहीं होता. उलटी हानी है. क्योंके शुद्ध सत्वभाग मायाके, शुद्ध सत्वमें, मलिन सत्व, मलिनमें तम, तममें रज, रजमें मिलेगा. जो यह सब एक स्वरूपही होते तो, पाषाण-जड-जीव-ईश्वरमें विलक्षणताही नहीं होती. अतः जीवका व्यापक वा मध्यम वा परिच्छिन्न ईश्वरसे, ईश्वरका जीवसे अनादि अनंत भेदही रहेगा. इस रीतिसे शक्य वा लक्ष्य प्रकार कहकेभी जीवेश्वरकी एकता कहना मिथ्या ओर असदाचरणकी प्रवृत्ति कराना है.

जो आर्यसमाजी किंवा यवनाचार्य वा जैनियों समान जीवको अणु-वा मध्यम परिमाण मानोगे तोभी, आपके म-

---

* २० पृष्टकी नोट वांचो. १ आगे वांचोगे.

नको दूषित करेगा. अर्थात् वोह, मायाके मलिन सत्त्वका परमाणु है, अतः उसमें जो ज्ञातृत्वादि धर्म–गुण–हैं वे, चेतनकी सन्निधिसे उद्भव होते हैं, एसा मानना पडेगा. जो यूं हो तो, जीव अनादि अनंत होगा. ओर चेतन मानना पडेगा. क्योंके इच्छा ज्ञातृत्वादि, जड मायामें नहीं होसकते. अथवा जीवको आप कल्पित नाम–मायांश रखते हो एसे. ब्रह्मांडगत वा ब्रह्मांड अंश, एक जीवनादा चेतन अणु है एसे भाषा फेरके सिवाय अन्य अंतर नहीं होगा. अणु अनादि है, अतः अनंत होगा. परंतु अणु परिमाण शरीरके एक भागस्थ रहनेसे सर्व शरीरका ज्ञान होना न संभव. अतएव आर्यसमाज वा जडवादियोंके समान, दीपक प्रकाशवत् उसकी सत्ता, सर्व शरीरमें व्यापक मानके निर्वाह करना चाहोगे तो, सोभी नहीं बनेगा; क्योंके सत्ता, सत्तावानके सदा साथ रहती है. तिससे भिन्न नहीं रहती–नहीं जाती–नहीं होती. एतद्दृष्टि जो सत्तावान अनादि अनंत 'तो, उसकी सत्ताभी अनादि अनंत होगी. ओर जितने देशमें सत्तावान है, उसमें तिनाके देशमें अनाश्रय नहीं रह सक्ति;' अतएव पूर्व मान्यताका अभाव है. जो हठसे मानोगे तो, वही जीव यदि हाथी वा मनुष्य शरीरमें जावे किंवा ज्यूं ज्यूं बाल शरीर युवा होवे त्यूं त्यूं उसकी सत्ता पसरेगी, वा ओछी होगी, एसा मानना पडेगा; एसी लचकवान् सत्ता, मध्यम परिमाणवाली होनेसे सावयव ओर संयोगजन्य मानोगे तो, ज्ञान तंतुवत् नाशवान् होगी अतः तमाम शरीरमें अणुरूप जीवकी सत्ता नहीं. इस प्रकार अणु परिमाण माननेमेंभी अनेक दोष आनेसे जीव अणुरूप नहीं. जो विभू परिमाण मानोगे तो, क्रिया, जन्म, मरण, गमनागमनका अभाव होगा. तथा शरीरसे भिन्न

भाग निरर्थक रहेगा. और मन इंद्रियादि वा उपाधि वा विषयों वा अनादि पदार्थोंका सर्व जीवोंके साथ संबंध होनेसे, अहमत्व ममत्वकी अव्यवस्था होगी; प्रत्यक्ष व्यवहारके विरुद्ध सर्व इंद्रियादि वा उपाधि वा विषयोंको सर्वका सर्वमें वा किसीका न किसीमेंभी अहमत्व ममत्व वा संबंध मान्ना पडेगा (इस सूक्ष्म-संक्षेपमें लिखे हुये विषयको विचार कर देखिये).-जीवोंको परस्परका व्यापक व्याप्य मान्नेसे व्याघात दोष होगा-अर्थात् एककोही एकका व्यापक और व्याप्य कहना पडेगा. एक दूसरेके स्वरूपमें एक दूसरेका प्रवेश न होने और स्वरूप मात्र भिन्न २ होनेसे उन व्याप्य वा व्यापक-किसी एककीभी सिद्धि न होनेसे यह सिद्धांत असंगत वा कल्पित मान्ना पडेगा. तथाही स्वपक्ष त्याग होगा. इत्यादि दोष आवेंगे.

जो जडवाद (चार्वाक, यूरोप) का मत स्वीकारने जाओगे तो, ब्रह्मका त्याग होगा. और योगविद्या वा वर्त्तमान प्रचलित मेस्मेरिझम विद्या द्वारा जो काशीस्थ पुरुष, द्वारका निवासी पुरुषके वर्त्तमान समाचार बतलाता है-इत्यादि प्रसिद्ध और प्रत्यक्ष पुरावोंसे जडवाद मतका उच्छेद होगा. इत्यादि दोष अन्य मतमेंभी जान लेना चाहिये.*

---

*जीवके स्वरूप मान्नेमें "अणु, चेतन वा जड, मध्यम जड वा चेतन,-पुनः इस शरीरमें एक देशस्थ वा फिरनेवाला और विभु चेतन है? इत्यादि [तथा एक, नाना, सगुण-निर्गुण, सक्रिय, अक्रिय, अनादि अनंत, अनादि सांत, सादि अनंत, सादि सांत, कर्त्ता भोक्ता, अकर्त्ता अभोक्ता, अकर्त्ता भोक्ता, सोपाधि कर्त्ता भोक्ता;-तथाही जड, चेतन, जड चेतन. पुनः सद्, असद्, सदासद्, सदासद्विलक्षण, अपरिणा-

मी, परिणामी, क्षणिक अक्षणिक, बंध, मोक्ष, प्रवाहित बंधमोक्ष, न बंध मोक्ष वाला वगेरे) विकल्प हें." इनमेंसे जितने कि, जीव ब्रह्मकी एकतामें उपयोगी विकल्प हें, सो वेदांत रीतिसे जनाये. तद्भिन्न अन्य-विकल्पोंका दोष संक्षेपमें यह हेः-

१-जो, 'जीव अणु हे और शरीर विषे हृदय वा मगजमें स्थित रहता हे,' एसा मानें तो, उसको पादादिगत दुःखका ज्ञान न होसकेगा.-उसके स्थानसे इतर भाग, जडवत् होना चाहिये.-जलस्थ पादके शीत और मस्तक पर जो धूप, तिसकी गरमीका झटक ज्ञान न होगा.-पाद काटनेसे पीडा न होनी चाहिये.-शरीरमें दरद-रोग होनेसे रुदन व्याकुलता वा दुःख नहीं होना चाहिये. जो जीवकी सत्ताको व्याप्त मानें तो, उपर कहे हुये दोष आवेंगे.

२-जो उसको फिरता हुवा मानें तो, मानोंकि, अति शीघ्र गतिवान हे तोभी, उसके स्थानसे इतर भाग जडवत् होना चाहिये. पीडा करके रोना, व्याकुलता नहीं होनी चाहिये; क्योंके दुःख तो, जड शरीरमें होता हे; जीवमें नहीं. जो दुःख करके जीवका दुःखादि रूप परिणाम होना मानें तो, मध्यम हो जायगा. जब अपने पेरको दो उंगली मिलावें तो, वहां एक दुसरेका स्पर्श ज्ञान नहीं होना चाहिये अर्थात जीव एक उंगलीमेंसे दूसरीमें जावे तब, पहिली उंगलीके स्पर्शका ज्ञान होसकता हे. अन्यथा हाथकी शीतताके स्पर्शका ज्ञानभी होजाना चाहिये; इस रीतिमें जो उंगलीमेंसे निकलके दूसरी उंगलीमें गया, एसा मानें तब तो, शरीरमेंसे भिन्न होने काल (क्षण)में शरीर, मृत्यवत् होजाना चाहिये. और जो हृदय वा मगज नामकके केंद्रमें होके जाना मानें, तो, उंगलियोंके संयोगका अभाव होना चाहिये; परंतु संयोगके ज्ञानका अभा

व होता है, संयोगका नहीं. जो एसा मानें कि "जब शरीर चलता है तो, अवयव हलते हैं, मनमें संकल्प होता है—इत्यादि अनेक कार्य एक क्षणमें होते हैं, तोभी ज्ञान, एक कालमें नाना नहीं होते, किंतु जीव, अवयवोंकी कल हिलाके शरीरस्थ विद्युत्को जोड देता है; इसलिये क्रिया होती रहती हैं. तद्वत् उंगलियोंका संयोग रहता है." तोभी, अन्य भाग जडवत् होने चाहिये. स्वप्नमें नाना आकार नहीं हैं, परंतु तद्रूप होता है. इसलिये मध्यम ठेरता है. अणुमें नाना इच्छा ज्ञानादि ओर अनंत संस्कार होना न संभव. तथाहि इतना बडा शरीर वा भार अणुमात्र करके नहीं उठाया जा सकता. विच्छुका डंक—जेहर थोडा होता है, परंतु उसकी उष्णता रक्तमें मिलनेसे अनेक जघे पीडा होती है, वेसे सूक्ष्म अणु जीव विषे कल्पना करें तोभी, शरीर चेष्टावाले अद्भुत कार्य अणु मात्रसे नहीं संभवते. भार उठाना तो कहां.

३—जो परिच्छिन्न क्षणिक मानें, तो परणामी होनेसे मध्यम हुवा,—जन्य ओर नाशवान ठेरेगा. उसके परिणामका ज्ञानकर्त्ता साक्षी, भिन्न मानना पडेगा. क्योंकि ज्ञेय, ज्ञान ओर ज्ञाता—इन तीनोंका आकार, एक कालमें नहीं रख सकता.

४—जो यूरोपके फिलोसफरों समान (मगज रूप) वा जडवाद मनवत् (तमाम शरीर) जीवको मध्यम मानें ओर स्थित रहता है—फिरता नहीं किंतु, ज्ञान तंतुद्वारा उसको ज्ञान होता है; एसा मान लेवें, तोभी दोष आते हैं:—दरद कोन स्थान पर ओर कैसा है, यह ज्ञान नहीं होना चाहिये. जो ज्ञानतंतु द्वारा दरद, मगजमें जाता हो तो, दरद स्थानसे मगज तक तार समान प्रतीत होना चाहिये; परंतु एसा नहीं होता. बालक, जिस अवयव [पेट वा पाद] में पीडा होती है उसको हाथ

स्पर्श किये विना, पश्वादि समान उचकाता है, एसा, नई होना चाहिये; क्योंके तंतु, अवयवको नहीं बताते. जो एसा मानें कि 'दरदके फोटो जाते हैं १, दरदके मारे जीवको हरकत पहोंचती है'२, सोभी नहीं बनता; क्योंकिः—जो एसा होतो, फोटो मिलनेसे जीवमें रुदनादि व्यवस्था नहीं होनाचाहिये.—पीडाका यथावत् अनुभव नहीं होसकेगा. ओरभी परमाणुकी अवस्था विशेष (अवयवमें दरद होने पर) होनेसे मगजको हरकत [गति] विशेष तो होती हे, परंतु पीडाका यथावत् भान-अनुभव नहीं होसकता; क्योंकि पीडास्थान ओर मगजकी अवस्थामें अंतर होता हे.—फोडेवाला रोगी सो जाता हे तो, पीडा ज्ञात नहीं होती; परंतु पीडा—परमाणुओंकी प्रतिकूल अवस्था हे तो सही. जो एसा नहीं होवे तो जागनेके साथही पीडाका ज्ञान नहीं होना चाहिये. तथाः—१—हाथ पेर काटनेसेभी मनुष्य जीता हे, वेसाही ज्ञान उसमें रहता हे जेसाकि पूर्वमें था. २—जो जान्नापना—ज्ञातृत्व नामशक्ति बालपनमेंथी, सोही युवा, वृद्धावस्थामें हे; उसमें फेरफार नहीं होता. ओर शरीरमें तो क्षण क्षण विषे न्यूनाधिकता होती रहती हे. ३—द्रष्टा दृश्य परस्पर भिन्न २ होते हैं; अतः हस्तादिका ज्ञाता, हस्तादिसे काम लेनेवाला उनसे भिन्न हे. ४-इंद्रियों [ज्ञानतंतु] एक जेसी नहीं, उनके विषयभी भिन्न २ हैं, एसा भेद जाननेवाला उनसे भिन्नहे. ५ स्वप्न जाग्रतका अंतर ओर तद्गत पदार्थोंका भेद जाननेवाला, अवस्था त्रयकी विलक्षणताको निश्चय करनेवाला, उनसे भिन्न होने योग्य है. स्वप्नकालमें स्थूल शरीरको न हलानेवाला ओर स्वप्नके पदार्थ, इंद्रिय, त्याग ग्रहणादिका उपयोग लेनेवाला, स्थूलसे भिन्न होने योग्य हे. ६ शरीर गत इच्छा, संकल्प, अहंकार, स्मृति—इत्यादि कर्म-

गति--परिणाम--अवस्था और उनकी उत्पत्ति, नाश, सबोंको जान्नेवाला, इनसे भिन्न होने योग्य है. ७ सुषुप्तिके पूर्व उत्तरसे विलक्षण 'मैं' अपनेको नहीं जानता' 'मैं सुखसे सोया' ऐसा मनमें अनुभव करनेवाला पडे हुये स्थूलसे भिन्न था. ८ पाठ करने समयभी अंतरमें संकल्प करनेवाला वाणी आदिसे भिन्न है. ९ इत्यादि प्रबल, प्रसिद्ध हेतुसे यह सिद्ध होता है कि स्थूल सूक्ष्म शरीर वा मगजसे उनका जाननेवाला भिन्न है. --जीव, शरीर वा मगज रूप नहीं.

५--जो जीवको शरीर वा मगजके समुदायका गुण--शक्ति विशेष मानें, तो सो ज्ञान शक्ति, अणु है वा विभु वा मध्यम, यह सिद्ध न करसकोंगे. और इन तीनसे इतर प्रकारकी तो मात्रा असंभव है. शरीरसे इतर स्थानमें न होनेसे विभु नहीं, स्वयं पदार्थ न माननेसे अणु नहीं. जब अणु रूप नहीं तो मध्यम केसे कह सकोगे? नहीं. जो वोह ताकत, स्वरूपसे पदार्थ नहीं तो, मगज वा शरीर जन्य कहना हास्य जनक बात है.--

६--मगज वा शरीर अपनेको जानता है वा नहीं? जो जानता है तो, मगज शरीर ज्ञेय और उनका ज्ञाता भिन्न मानना पडेगा. जो नहीं जानता तो मगज वा शरीर समूहही ज्ञाता है, यह केसे और किसने जाना? जो कहो कि 'शरीर वा मगजके दो विभाग हैं, एक ज्ञाता परिणाम दूसरा ज्ञेय परिणाम' तो परमाणु जन्य--मध्यम ज्ञेय समान ज्ञाताभी अणु जन्य जाने, जनाने वा सिद्ध करने योग्य है; परंतु ऐसा नहीं होता. जो कहो कि, 'अनुमानसे जाना जाता है,' तो व्याप्ति नहीं मिलती.--अर्थात् शरीर वा मगज--अपनेसे भिन्न व्याप्ति, कहना चाहिये. परंतु अनुमान करनेकी साधनरूप जो व्याप्ति (परिछिन्न ज्ञान--मगज समुदाय) उसमें आपको ज्ञा-

सिद्ध मानते हो. अतः व्याप्तिका अभाव है. तथाहि व्याप्ति-की सिद्धि होनी चाहिये.—अर्थात् अविनाभाव संबंधके अ-भावकी सिद्धि करना चाहिये; जो कि असंभव है. क्योंकि अपनी वा अपनी परकी चेतन ज्ञानशक्तिका उत्पत्ति नाश अदर्शनसे तथा परमाणुमें चेतनत्व-ज्ञानत्व गुणकी सिद्धि अ-परोक्ष न हो सकनेसे वा तिनसे इतर चेतनत्व-ज्ञानत्वका अ-भाव न सिद्ध कर सकनेसे जड पक्ष—जडानुमान असिद्ध है.

७-जो शरीरही आत्मा-ज्ञाता-भोक्ता-होतो, अमुक स्था-न पर पीडा है, ऐसा भेद नहीं होना चाहिये; किंतु तमाम शरीरमें वैसीही दुर्गति-दुःख-व्यवस्था होनी चाहिये.

८--अन्य मकान गत बंद पेटीमें कटु मिष्ट दो बादाम हों, (उसे) अन्य मकानस्थ मैस्मेरजर—(विधायक)का सबजेक्ट-वि-धेय, उनकी आकृति और स्वाद वगैरे बताता है जो कि जडवाद-की रीतिसे नहीं होना चाहिये. तद्वत् सोही विधेय (वा योगी); दूरस्थ परोक्ष शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंधादिको बताता है, सो नहीं होना चाहिये. परंतु ऐसी परीक्षा वर्त्तमानमें प्रसिद्ध है.

९-जडवादकी रीतिसे स्वप्नगत आकृति (शब्दादि), शं-रीर वा मगजका परिणाम है, उनका द्रष्टाभी शरीर वा मग-जका परिणाम है. तहां आकृति—पदार्थ, मध्यम—अणु अणु जन्य जानी जाती है; परंतु द्रष्टा-ज्ञातामें मध्यम—अणु जन्य त्व प्रतीत सिद्ध-गोचर नहीं होता. जो ज्ञाता-द्रष्टा अणु मा-नें, तो ज्ञेय पदार्थका एक साथ ज्ञान नहीं होगा. परंतु घट दे-खतेही एक साथ ज्ञान हो जाता है.

१०-'मगजमें रूपकी जो छाप (प्रत्याकृति) पडती है और शब्दका धक्का लगता है, तथा स्पर्श, रस, गंध अवस्था-अ-सर रूप होता है; किंवा सर्वकी छाप पडती है, तिससे ज्ञान

और स्मृति होती है." जडवादका यह पक्षभी जडवादसे असिद्ध है; क्योंकि शरीर, मगजके परमाणु क्षण क्षणमें बदलते रहते हैं; अतः पूर्वकालकी स्मृति होना असंभव है. जो एसा कहो के पूर्वके परमाणु उत्तरके परमाणुमें छाप देते जाते हैं, तो "मगजमें छाप क्रमशः है-उपर नीचे हैं-जिन मगज अंशोंमें छाप हैं उन अंशोंके दरमियान छाप विनाका मगज है," एसा मान्ना पडेगा. जब यूं है तो स्मृति क्रमशः होने योग्य है. परंतु स्मृति तो क्रम विनाभी होती है. जो यह कहो कि वे फोटो उपर नीचे होके प्रतीत हो जाते हैं; तो मगजको कितनी जघे लेनी पडती है. और अनंत फोटो केसे रख सकेगा. इसकी व्यवस्था नहीं कर सकोगे.

११-जब पहाड वगेरे देखते हैं, तब उनका फोटो चक्षुमें होता है,-चक्षुके अंतर भागमें किरणें पसरती हैं, उनका फोटो होता है, यह युरोपके जडवादकी रीति है. तहां छोटे स्थानमें बडे रूपसे फोटो केसे प्रतीत होते हैं, इसकी व्यवस्था नहीं कर सकोगे. (उनके मतमें इस पक्षका समाधान नहीं है)

१२-जो यह कहो कि मगज अद्भुत यंत्र है, बुद्धिमें न आवें एसे कार्य उस यंत्रसे होते हैं. तो हमको यह कहना चाहिये कि, मगज वा शरीरमें जो मगज वा शरीरसे भिन्न वस्तुतः स्वरुपसे जो ज्ञान कला है, वोह स्थूल बुद्धिकी समझमें नहीं आती. किसी आर्य योगी विद्वान् द्वारा उसका अनुभव लो. और अद्भुतताका दर्शन करो. वोह वस्तु परोक्ष वा अनुमानकाही विषय हो, एसा नहीं है; किंतु अपना स्वरुप तुम्हारी बुद्धि वा अहंकारमें प्रकाशमान करने योग्य है. आचरण-परलोक-पुनर्जन्मके भयसे वा दुराग्रह-मनमुखिताके दबावसे उस लाभ लेनेमें पीछे मत पडो.

१३-जो "ज्ञान-चेतन कला शरीर वा मगजके परमाणु, में विभाग पाई हुईहे ओर उनके अमुक प्रकारके संयोग तथा रचनासे प्रादुरभूत होतीहे" ए सामानें, तो सो (ज्ञान-चेतन कला) परमाणु के स्वरूपसे भिन्न हुइ, एसा मान्ना पडेगा.-परमाणुका जो स्वरूपहे सो उसका नहीं, उसका हे सो परमाणुका नहीं, एसा सिद्ध हो जायगा, जब यूंहे तो (जड) परमाणु के स्वरुपसे, विलक्षण मान्नी पडेगी. अब यह बात रही कि वे (परमाणु ओर चेतनकला) परस्पर मित्य जुडे हुये वा तादात्म्य रूपमे रहते हें-इसमें हमको दुराग्रह नहीं. तो भी जब कि स्वरूपसे भिन्न रहें, तो जेसे कि शरीर परमाणुका अन्य स्थलमें गमन होके संयोग वियोग होता रहताहे, वेसेही उसका भी (पुनर्जन्म) मान्ना पडेगा. जब यूंहे तो, उसके निमित्त तथा उपयोगपर दृष्टि डालनी पडेगी. परंतु यह बात जब तककि उस कलाके गुण कर्म स्वभाव निश्चय नहीं हों वहां तक, (उक्त विषयका निर्णय) नहीं मानीजा सकती. ओर जब कि उसके गुणादिपर दृष्टि डाली (अप्रसंग समझके नहीं लिखते) कि जडवाद जड होजायगा. जो परमाणुओं में विभक्त नहीं मानो, तो यह पूछते हें कि, वोह चमत्कृति कला कहांसे आई? 'अन्य स्थलसे आके संयोगीकरणमें शामिल हुइ' एसा कहो; तब तो जडवाद गया. जो नवीनोत्पन्न हुइ मानो, तो असंभव दोष. जो यह कहोकि "जेसे आग पानीकी शक्ति-वराळसे यंत्र चलता हे वेसे, वोहभी परमाणुओंकी अवस्था विशेषहे, कोई भिन्न पदार्थ नहीं" तो वोह क्या? जहां आग पानी एकत्र होतेहें वहां अग्निको निकलने वा उपर आनेका स्वभावहे, अतः उसके साथ जल भी उडताहे. इन दोनोंके धकेसे यंत्र चलताहे. यह धका:-गति

परमाणुसे विलक्षण नहीं. परंतु ज्ञानकलातो परमाणुओंकी द्रष्टा—ज्ञाता हो पडती है, अतः उनकी अवस्था नहीं कह सकते. किंतु परमाणुओंकी अवस्था (संयोग—तत्जन्य असर वगेरे) का ज्ञाता—द्रष्टा—भोक्ता—है. अतः जड परमाणु और तत्जन्य शरीर, मगजसे भिन्नहै.

९४—ओर भी, उपर जो अणुवादमें दोष जनाये सो दोष भी उक्त पक्षमें आतेहैं. निदान, जो जीवको मगज—वा जड समूहात्मक पदार्थ मानके उसीके परिणामसे सब व्यवस्था करते हैं, उन मतमें यह बडा भारी दोष आ जाताहै कि जिस कालमें उसकी, प्रत्याकृति (फोटो) वा अंतरमें कोइ आकृति विशेष वा स्वप्नमें विषय रूप—विषयाकार परिणाम होताहै, उस कालमें उसीका ज्ञान रूप परिणाम नहीं हो सकनेसे विषय—आकृति—उक्त परिणाम समकाल प्रतीतिका विषय नहीं होना चाहिये ओर होता तो है (यह दोष बुद्ध, जिन, चार्वाक, यूरोप, दहरिया, मीमांसा, या जो भी पक्ष जीवको मध्यम परिमाणवाला ज्ञाता मानतेहैं उन सर्वको लागु हो जाता है).

उक्त तमाम कथनका रहस्य यहहै कि जीव ब्रह्मकी एकतावादी जो, जीवका स्वरूप अणुमाने वा विभू माने तो, अनादि अनंत होनेसे सर्वदा भिन्न होगा ओर जो मध्यम मानें तो, सादि सांत होनेसे, ब्रह्मके साथ एकता कथन न संभव; क्योंकि जड मध्यमका चेतन साथ एकत्व नहीं होसकता. ओर चेतन-मध्यम सावयव होनेसे निरवयव ब्रह्मके साथ एकरूप नहीं होसकता. ओर विभू विभूकी एकता मानना हास्यजनक बात है. सोपाधि एक विभूकी अपने में एकता कहना नहीं बनता. किंतु उपाधि हुयें वा न हुयेंभी, विभु स्वरूपसे नित्य एकही होता है.

इत्यादि सूक्ष्म विचार और रीतिसे मोक्षवादी और जड वा क्षणिकवादीके माने हुये जीव स्वरूप तथा परिमाणमें, अनेक दोष* प्राप्त होतेहैं. और पूर्वोक्त रीतिसे‡ आपके माने हुये प्रकारसे भी जीवकी सिद्धिही नहीं होती, तब उसकी एकताकी कल्पना तो कहां.-मिथ्या कल्पना है. (पू. प्र.:-)

पूर्वोक्त ब्रह्म-ईश्वर जीव स्वरूप मानने में, उनके स्वरूप गत दोष दर्शक प्रकार-रीतिसे वेदांतियोंका **जीव न ब्रह्म**× जीव ब्रह्म नहीं ऐसा सिद्ध हुवा; इतनाही नहीं, किंतु जब कि वेदांतियोंके ब्रह्म-ईश्वर और जीवकी× ही सिद्धि नहीं होती तब, उनकी एकता-मानना तो कैसे बने. एतद् दृष्टि "जीवब्रह्मएक," इस सिद्धांतमें विश्वास नहीं ठरता.

जो, मुसलमान, ईसाई वा पारसिओंके समान ऐसा कहोगे कि "यह ब्रह्मांड विचित्र कार्य रूपहै-मनुष्यसे यह नहीं बना-नहीं बन सकता. कार्य, कर्त्ता विना नहीं होता. इस हेतुसे "जगत् कर्त्ता कोई ईश्वर है" ऐसा मान लेना चाहिये. इतनेमें ही विश्वास रखो. इसमें आगे तर्क, बुद्धि

---

* यह वेदांत पक्षका प्रसंग है, इस लिये अन्य पक्षोंके विशेष दोष नहीं लिखे.

‡ पूर्व [दर्शन २-३] में जो शैली-निर्णय प्रकार-रीति जनाई है, उसका उपयोगभी यहां जीव स्वरुप निर्णय प्रसंगमें यथोचित ले लेना चाहिये.

× वाचक महाशयको विदित हो कि, इस प्रसंग विषे जीवेश्वरके खंडनमें आग्रह नहीं है; किंतु वेदांतियोंके जीव ब्रह्मकी एकता संज्ञक विषयकी असमीचीनता देखने अर्थ उनके माने हुये जीवेश्वरकी असिद्धिमें यथार्थ प्रयास है-उनका, माना हुवा जीव ईश्वर सिद्ध नहीं होता, यह आशय है. (पृ. १२९ की नोट देखो).

मत चलाओ; क्योंकि तमाम धर्म पंथकी नींव (मूळ) विश्वास मात्रपरहै, अन्यथा नहीं. इसी प्रकार जीवेश्वरको विश्वाससे मानके तर्क, युक्ति प्रमाणविना, उनकी एकताभी विश्वाससे मान लो." इसका यह समाधान है कि, उक्त हेतु निर्दोष नहीं; क्योंकि ईश्वर मानें; परंतु पूर्व रीतिसे सर्वज्ञत्वादिकी सिद्धि नहीं होती तब, कर्त्ता कैसे सिद्ध होगा? यौक्तिक वा अनुमानिक विश्वाससे, विना कर्त्ताके भी, जगतका स्वरुप और क्रमसे जगतकी अनादिता सिद्ध होजाती है. अतः वोह हेतु सदोष है. और जबकि, ईश्वरके माने, अनुमानिक अस्तित्व ठेरानेमें मूल साधन बुद्धि, युक्ति, कुदरतको माना—इनका उपयोग किया, तो फेर सर्व स्थल प्रसंग—विषे उनको लेनाही पडेगा. अन्यथा 'ईश्वर है' इतना कथनही असंभव होगा. वा एक अणुमेंभी वा, मुझ अपनी सामर्थ्य न जितानेवालेमेंभी अगम्य शक्ति मानके अणुको वा मुझको ईश्वर क्यों न माना जाय? वा ईश्वर नहीं है वा न मालूम क्या है? इत्यादि क्यों न माना जाय? इत्यादि कारणसे संशय, असंभावना, विपरीत भावना रहित, मनको विश्वास नहीं होनेका.—किंतु भ्रमरूप वा कल्पना मात्र है. जैसेकिः—जो मुसलमानोंका उक्त विश्वास सच्चा वा निर्दोष था तो उन्होंने स्व विश्वासमें रहे हुये दूसरे धर्मवालों (पारसी, हिंदु वगेरे) के तन, धन, मन, आबरू, पुत्र पुत्री, स्त्रियोंको क्यों खराब—भ्रष्ट किया? क्यों दुःख दिया? किरोडों अनपराधि मनुष्योंकी जान क्यों ली? रोमन कैथलिक, प्रोटस्टंट ईसाईयोंने धर्म युद्धार्थ लाखों मनुष्योंका रक्त क्यों वहाया? वर्त्तमानमेंभी वे उभय, पर धार्मियों*को स्वधर्ममें लानेकी क्यों कोशिश करते हैं? पीढियों-

* मूर्ति, वा गुरु वा सूर्य वा एक जड अणु उपर ईश्वर रूप-

से पूजते आये हुये विश्वासु पारसियोंकी पूज्य अग्नि उनके [अपने आश्रितोंका] ही हाथ वा घरको क्यों जलाती है? सोमनाथ पट्टनवाले महादेव [जडमूर्त्ति] ने अपने विश्वासु पूजारियोंको, महमूद गजनवीसे क्यों न बचाया? निदान ऐसे विश्वास, कथन मात्र वा कुविश्वास है; अज्ञ लोकोंको बहकाना ओर उनकी हाना करनी है. अन्यथा १ कंकरमें रुपैयेका विश्वास करनेसे उस द्वारा बाजारमें पदार्थ प्राप्त, २ संखिया अमृतरूप फलप्रद, ३ उपासकका चतुर्भुजादि स्वरूपसे दर्शन, ४ ओर ब्रह्मज्ञानी वेदांतीभाई, अभिक्षुक, सर्वज्ञ- अंतरजामी हो जाना चाहिये. परंतु उक्त विकल्पों समान होता तो नहीं है; अतः विश्वास मात्रसे ईश्वर वा जीव मानके उनकी एकता मानना एक प्रकारका छल, कपट, अज्ञान वा कुविश्वास होगा. व्यर्थ है, हानीकारक है. क्योंकि प्रमाण, युक्ति, कुदरतके अनुकूल नहीं है. इसी प्रकार असिद्ध-असमीचीन एकतापरभी विश्वास अकर्तव्य है. हेय है.

ओर जो यह कहो कि "जैसे जीव वा ईश्वर वस्ततः तत्व वस्तु हों वा न हों, [इस विवादसे अपना कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं होता, अतः इसको त्याग देना चाहिये]. परंतु सदाचार-सद्धर्म-मनुष्य ज्ञातव्य-कर्तव्य-प्राप्तव्यमें लगे रहना चाहिये. दुराचार, अधर्म-अकर्तव्यसे, बचना चाहिये. अब मानो कि:-१ 'यदि दंडदाता-फलप्रद कोई ईश्वर नहीं है तब तो, सदाचारी, दुराचारी-उभयकी उनके मरने पीछे समान अवस्था है (कुछ नहीं. शून्य)-उभयमें कोई विलक्ष-

---

से विश्वास रखनेवाले इत्यादि.

क-१४३ पृष्ठसे पीछे १४४ पृष्ठके उत्तर-इस दरमियानमें पृष्ट १४३ क, १४३ ख, १४३ ग, १४३ घ, १४३ ङ,

णता–विशेषता नहीं हे. परंतु जीवनकालमें सद्गुण कर्मवाले को तन मन ओर लोकका सुख–आनंद, फल मिलता हे–विशेष दुःख नहीं. ओर दुष्ट गुण कर्मवालेको तन, मन ओर लोकका दुःख, फल मिलता हे–विशेष सुख नहीं. इतनी उभयमें विलक्षणता–वशेषता हे; जोकि जडवादी–अनीश्वरवादी–नास्तिक, परलोक न वादीकोभी संमत हे. २ यदि ईश्वर जीव वस्तुतः हों तो, मरने पीछेभी सदाचारीको वर्त्तमान जन्मसे विशेष सुख–स्वर्ग ओर दुराचारीको विद्यमान जन्मगत् दुःखसे अधिक–दुःख विशेष–नरक फल मिलेगा; इतनी उभयमें विलक्षणता–विशेषता हे. अर्थात् सदाचारी–सद्कर्म गुणवान उत्तम रहा. परंतु भय वा किसी लोभ विशेष विना, अदीर्घदर्शी–अज्ञानी जन–लोक समाजकी, परिणाममें स्वहानी कारक–निषिद्ध से निवृत्ति ओर परिणाममें स्व सुखकारक–शुभमें प्रवृत्ति होना–रहना कठिन हे–संभव नहीं. क्यों? उनका विषयाधीन होना स्वभाव रहताहे. एतद्दृष्टि दंडदाता–फलप्रद–व्यवस्थापक ईश्वरका मान्ना–मनाना ही उत्तम हे–लोकको सुखकारी हे. वेसेही, ‘जीव ब्रह्मकी एकता हो वा न हो’ इस विवादको छोड देना चाहिये. सदाचारादिमें लगे रहना योग्य हे. अब जो १–एकता नहीं हे–नहीं होती होगी’ एसा मानें तो, उपदेशभी नहीं होसकता–अनहुईका ज्ञान नहीं होसकता. २–ओर ‘जो हे वा हो’ तो, जब तब होने योग्य हे–उसका ज्ञान हो जायगा. परंतु ‘जीव, ब्रह्मरूप हो जाने’–नामा लोभ (–जब तब* जीव ब्रह्मकी

---

१४३ च १४३ छ, १४३ ज–८ पेजहें–प्रेसने अपनी प्रतिज्ञा न पाली ओर दूसरे प्रेसमें भी छपा, इस कारणसे एसा क्रम रखना पडा.

* ‘बोह जन्म–समय यही हो–किसीको इसी जन्ममें उपदेश

एकताके ज्ञानसे मोक्ष होती हे–) के विना, जिज्ञासुओंको एकताके ज्ञान होनेके विरोधी–प्रतिबंधकोंसे निवृत्ति–त्याज्य –निषिद्ध–निषेधसे अरुची ओर तिसके साधनोंमें‡ प्रवृत्ति नहीं होसकती; इसलिये जीव ब्रह्मकी एकता (जीवका ईश्वर-ब्रह्म होना–हे) के माने मनानेमें प्रयास करना चाहिये.''

इसका उत्तर-समाधान यह हेः–जीव, ईश्वर (वा जीव ब्रह्मकी एकता) के विवादको छोडके 'सद्गुण कर्म स्वभावका संपादन–ग्रहण–प्रचार-वर्तन-अभ्यास-उपदेश-श्रवण-मनन-उपयोग ओर दुर्गुण कर्म स्वभाव-प्रकृतिका-असंग्रह' इतना पक्ष तो ठीक हे; यद्यपि सद्गुण कर्म ओर असद्गुण कर्मके स्वरूप--मंतव्य निर्णय संबंध विषे रूढी--जाति-देशकाळ-मत-धर्म-पंथ-शास्त्रकारोंका विवाद-मत भेद हे.-यथाः–'बौद्ध, मुसळमान हिंसाको, शाक्त, ख्रिस्ति–हिंसा—पशूवध, मांस खान-मदिरापानको, वेद-नियोगको, जैन-मनुष्य पीडा ओर मळिनताको, दोष-पाप-अधर्म-त्याज्य-असद् गुण कर्म नहीं मानते; अन्य मानते हें. इत्यादि'—लोक विषे कितनीक मूळ मूळ वातोंमें अंतर हे; तथापि जिसको मनुष्य मात्र मंडळी -सर्व सद्गुण कर्म मानते वा मान सकते हों, वेसी वातों-बाबतोंके संबंधमें उक्त-पक्ष-आपका कथन लागु पड जाता हे -सद्गुणादिका निर्णय हो जाता हे. यथा.:--'सत्य, अक्रोध, धैर्य, क्षमा, अस्तेय, तन मन वाणीकी पवित्रता, इंद्रिय मनको स्वाधीन रखना, बुद्धि-वीर्य-बळ ओर विद्याकी वृद्धि करना–तदर्थ तद्योग्य-वेसे उपाय लेना;' यह **धर्म**—इन

द्वारा होने वालाहो. अतएव उसका प्रचार–उपदेश सर्वदा उचित्त हे' एसा इस वाक्यका अध्याहार–अदृष्ट प्रयोजन हे.

‡ तकरारी–विवादित विषय हे.

का मूल मनुष्यमें स्वभावतः+ अदृष्ट जेसा विराजमान हे. वो मनुष्यके कर्तव्य हें. तिसके विपरीत अकर्तव्य हें.-यह †बात सबको संमत हे. इस लिये सर्व मान्य गुण कर्म--आचरण विषे आपका कथन माने योग्य हे. तथापि जीवेश्वर—जीव ब्रह्म-की एकताके विवादको छोडकेभी, वेसा सिद्धांत नहीं मान सकते. अर्थात् जो 'एकता नहीं हे,' तब तो, आपका पक्ष गया. ओर उक्त धर्मका उत्तम फल, जीव भोगेगा. ओर जो 'एकता हे' तो, जीवको कुछ कर्तव्यही न होगा.—कर्मोपासना ज्ञानकी आवश्यकता ही नहीं रहेगी. ओरभी, जीवेश्वरकी एकता माने मात्रका फल, जेसे विद्यमान-जीवनकालमें भिक्षा मांगना, द्वंद्व सहन करना, बुरी भली दृष्टि उठाके-पाप पुण्य-उनका फल न मानके अनाचरण-यथेच्छा वर्तनमें प्रवृत्त होना—आलसी बनना,—इत्यादि, दुःखोत्पादक कृत्य ओर उनके माननेवालोंको विशेषतः दुःखी देखते हें. वेसे 'मरने पीछेभी, दुःख फल होगा' एसा क्यों न माना जाय ? ब्रह्म-ईश्वरकी बराबरी करनेसे सुख फल मिलना मुशकिल—असंभव. ओर शब्देतर, न—उसकी साक्षी. जो आप, उन सत्कर्म उपासनादिका जीवन सुखार्थ, कर्तव्यता मानोगे, तो

+ मिथ्यावादीभी, अपने संबंधमें अपने सामने झूट बोलनेवाले या झूटको अपने दिलमें बुरा समझता हे. चोरकोभी अपनी वस्तु चुरानेवाला या चोरी, मनमें बुरे माल्म होते हें. इत्यादि.

† सत्यादि दसबातें मनुस्मृतिमें मनुमहाराजनेभी बताई हें. इनका कुछ विस्तार ओर कर्मोपासना ज्ञान—इन तीनोंके बिना, मनुष्यका किंचित्भी जीवन व्यवहार नहीं हो सकता. इत्यादि कितनेक सर्व मान्य विषयोंका 'व्यवहार दर्शन' नाम प्रसिद्ध ग्रंथमें वर्णन हे.

'एकता वा भेद हे',-'हे सो हे'-इसका उपदेश अकर्तव्य हे. किंतु 'उन सर्व मान्य विषयका ही-उपचार-उन्नति-उपदेश योग्य हे'; एसा मान लेना पडेगा. अनिश्चित्-असत्यका लोभ देना छोड देना होगा. ओर जो एसा कहोगे कि. "एकता तो हे ही'-केवल-उसके जनाने वासते प्रयास हे" तो, में यह कहूंगा कि जनाना व्यर्थ हे; क्योंकि उसके मान्नेसे मनुष्यका जीवन सुख नष्ट पर्याय होजाता हे.-कर्तव्य दृष्टि उठनेसे नाना दोष प्राप्त होते हें वा उनका अवसर रहता हे. तथाहि एकता अदृष्ट फल नहीं, इस लिये आपका दृष्टांत, दार्ष्टांतसे विषम हे; अतः मान्य नहीं. पुनः एसी (आपने जो कही वेसी) कल्पना मानभी लेवें तो, एकताके बदले "उसका निषेध क्यों न मान लिया जाय ? वा असद् बोलना-सत्य नहीं बोलना. एसा क्यों न स्वीकारा जाय ?-क्यों न कहा वा माना जावे. ?" अर्थात् कल्पना तो कल्पना. तथाहि इस एकता-फल-कल्पना प्रसंगमें वादको अवसर मिलनेसे आपकी पूर्वोक्त (विवाद त्याग) प्रतिज्ञाका भंग हो जायगा. एतद्दृष्टि सर्व मान्य उन्नति-सुखकारक उक्त बाबतोंका ही उपदेश-माना-मनाना उचित्-योग्य हे. असिद्ध, कल्पित-जीव ब्रह्मकी एकता नाम सिद्धांतका उपदेश योग्य नहीं-हानी कारक हे.

शैली-दर्शन-५.

जो यह कहो कि, "आर्यावर्त्तमें जब बौद्ध ओर जैन मतने बल पाया, ओर वेद ईश्वरकी मान्यताका अभाव हुवा; तब शंकराचार्य महाराजने, जीवेश्वरकी एकताकी शैली निकाली, अर्थात प्रत्येक जीवोंको ईश्वर सिद्ध कर बताया. उ-

पनिषदोंके अर्थ वेसेही किये. ओर उसके सिद्ध करनेके लिये अनेक प्रकारकी प्रक्रिया घडी गई. (जिनका खंडन मंडन वर्त्तमान विषे हो रहा हे). अन्यथा वस्तुतः जीवेश्वर कोई पदार्थ नहीं; किंतु मायिक-कल्पित-मन घडत हैं. केवल "चेतन ब्रह्म सत्य, तदंतर मिथ्या." यह सिद्धांत हे." जो एसा हो तो, उनके महत्त्वका निषेध हो पडनेसे यूं क्यों न कहा जावे कि 'ब्रह्म सत्य जगत् मिथ्या' यह सिद्धांतभी पूर्व प्रकारवत् कोई गुह्य कारणसे कल्पा हो? ओर इस शैली (जीवको अकर्त्ता अभोक्ता ईश्वर वा ब्रह्म कहना) से आर्यावर्त्तमें कितनी हानी हुई ओर हो रही हे, उसका दोष किस पर होगा? कर्म उपासना गई; वेद ईश्वर मिथ्या ठेरे; नास्तिकता आई; मिथ्या सिद्धांत होनेसे मोक्षभी नहीं मिला; निरुद्यमता, आलस्यने दबा लिया; दुराचार (व्यभिचार-गुणे गुणान वर्त्तंते) फेल गये; "युवति सदा भोगे संन्यासी" "त्याग आश ईशको" "न बंध न मोक्ष" "न निरोधो न चोत्पत्ति" इत्यादि वाक्य बोधक ग्रंथ फेलने लगगये; अतएव आपका मंतव्य वा शैली ठीक नहीं-त्याज्य हे. इससे अच्छा तो यह सिद्धांत था कि, "**जगत् सत्यम् ब्रह्म मिथ्या जीव ब्रह्मेव ही परः**"-जीवको भय बना रहता. असद् कर्म न करता. सद्कर्ममें लगा रहता. सनीति व्यवहार चलता.

"जो यह कहो कि, "ब्रह्मसे जीव वा प्रकृति कभीभी भिन्न देशमें नहीं होते-ओत प्रोत हैं-अनादि कालसे साथ (समवायसे) रहते आये ओर हैं तथा रहेंगे; अतः एकता हे." उक्त मंतव्य मानेसे, यद्यपि ग्रंथ लिखित दोषोंसे इतर प्रकारके दोष आवें वा न आवें-[उसका यहां प्रसंग नहीं],

तथापि प्रचलित वेदांत संबंधमें, जो इस ग्रंथ विषे दोष लिखे. वे नहीं आते. जब यूं हे तो, इस शैलीका प्रकार मानके कर्म, उपासना, सदाचार आदि करो. कराओ. अहं ब्रह्मपना छोडो छुडाओ.

जो यह कहोकि "जो वस्तुतः सिद्धांत (असल रहस्य-बात हे सो), शब्द पद्धति वा कोइभी प्रकारकी शैली रचे विना, नहीं समझा सकते-समझाने विना जीव, तत्व रहस्य पर नहीं पहोंच सकता; इसलिये अन्य शैलियोंसे उत्तम "जीव ब्रह्मकी एकता" नामक शैली ओर नाना प्रकारकी प्रक्रिया ओर परिभाषा (पद-शब्द) रचेहैं. नहीं तो-वस्तुतः (चिद् ब्रह्म) जड (माया) उभय के स्वरुप अकथ-कल्पनासे पर-सविकल्प निर्विकल्प रहित होनेसे जो कुछ सुनते, कहते, विचारते-कल्पते-सुनाते-उपदेश करते-लिखते हें, वोह तमाम, सदोषहे. अतएव तुम्हारा (समीक्षकका) कथन-खंडन (जो कहा ओर कहोगे) मान्य वा स्वीकार करने योग्य नहीं." इस मोहक कथनका यह उत्तरहे कि, जेसे आप कहते हो वेसे, अन्य मत पंथवाले (यथा अनेकांत वादी जैन, विज्ञान वादी बौद्ध, चारवाक, जडवादी वगेरे) भी स्वसिद्धांत मनाने वास्ते कहतेहें. तहां, 'किसका कथन, शैली, प्रक्रिया, सिद्धांत यथार्थ मानें' यह बात जिज्ञासु (जिसने यथार्थ सिद्धांत-असल तत्व, साक्षात् नहीं कियाहे ओर उसके जाने के लिये पूर्ण इच्छा रखताहे सो.) निश्चय नहीं कर सकता-उसे ज्ञान नहीं हो सकती-सर्व मतोंमें डांवा डोल होनेवालाहे. सर्व पक्षकारोंके वास्ते, समान खयाल-विचार-कल्पना (सर्व पक्षकार-मतवादियोंकी भिन्न २ शैली-शब्दार्थ-शक्यार्थ-शब्द रचना-लक्ष्य लक्षण सिद्धांत-मंतव्य-निश्चय सत्य नहीं

होसकने, उनमें कोइ एकके सत्य वा सर्वके असत्य-अर्थ शून्य होंगे-वा तद्भिन्न अन्य सत्य-यथार्थ होंगे) करने योग्य होगा. उसकी अव्यवस्था होगी. तदुपरांत इसका उत्तर अनुभवादि प्रसंगोंमें भीहे. तथाहि आपका उक्त कथन यदि 'यथार्थ हे' एसा मानभी लेवें, तो आप (मिथ्या-जड अंतःकरण वा वेदादि) कुछ (ब्रह्मनित्य, माया अनादि सांत, जीव ब्रह्म एक, बंध मोक्ष, वा जीव ब्रह्महे वा नहीं, इत्यादि) भी कहने योग्य नहीं रहोगे. आपके संप्रदायी ग्रंथ वा उपदेश बंद करने पडेंगे.

किंवा, जेसे देशकालानुसार उक्त [एकाकी] शैली निकालीथी, वेसे अबभी आप विद्वान, बुद्धिमान, सज्जन, परोपकारी, निष्कामी, महाशय संप करके संप सदाचार-प्रवर्त्तक, सद्धर्म सूचक, वेदेश्वर सिद्धक, किंवा अन्य प्रकारकी, अन्य धर्म पंथोंसे शिरोमणि उत्तम ओर पाखंड धर्म नाशक योक्तिक नवीन शैली, निकालके प्रचार करिये तो ब्रह्म[1] स्वरूप बननेसे जो हानी हुई सो तो हुई (अनहोनी नहीं होती), परंतु जो हो रही[2] हे, सो बंध पड जाय. ओर होने वालीका मूल--बीज उखडे. अस्तु.

---

१ वल्लभ संप्रदाय लीला सूचक, गुजराती भाषाका 'पुष्टि मार्ग' नामक ग्रंथ बांचो.

२ पांचों उंगली समान तो नहीं होती. तथापि कच्छ, काठियावाड, पंजाब, मुंबाई, सिंध, नाथद्वारा, शाहपुरा, अनादि देशों विषे जाके अखाडे, द्वारे, मंदिर, सत्संग-मंडलीको योग्य रीतिसे तपासिये. उनके सामान्य संगियोंमें ब्रह्मज्ञानाभिमानियोंके संस्कार, खयाल, आचार, पुरुषार्थ सामान्यतः शोधिये. शुद्ध-सच्चा-सदाचारी महात्मा पदका वाच्य कोई विरला पुरुष पाओगे. शेषतोशेष,

सूचना.

वक्ष्यमाण दर्शनोंमें योग्य युक्ति (सृष्टिनियमानुकूल बुद्धिका उप
विशेषका प्रसंग आनेवालाहे; अतः वाचक महाशयको पूर्वोक्त (
२) तर्क प्रतिष्ठा प्रसंगपर ध्यान होना चाहिये. गंभीरता पूर्वक तर्क
निष्टापादान) की महिमा ध्यानमें रहने वास्ते यह रुपालंकार

[1] अज्ञान. विपरीत भावना, असंभावना. संशय. तर्क. निर्णय—
[2] शूद्र. दुष्ट. वैश्य. क्षत्री. ब्राह्म

विश्वास } प्रमाण शून्य. अनुमान. प्रत्यक्ष. { यथार्थ
शद्र. } { मुक्त)

अतः जो व्यर्थ वा सदोष वा हारजीत मात्रकी अपेक्षासे तर्ककी जातीहे, उसको छोडके तर्क-युक्ति प्रसंगको ध्यान उसकी उपेक्षा करना, कायरता ओर हानीकारक भीहे. क्योंकि क्षत्रीका काम प्रजाको दुष्टोंसे बचाके रक्षा ओर पालन करनाहै बाडका काम हे, पशु वा अनिष्ट वायुसे फलोंको बचाना. वैसेही तर्क द्वारा असत्‌के नाशपूर्वक सत्‌की रक्षा होतीहे; असतसे सत् जाताहे; अज्ञानादिके निवृत्त ओर यथार्थ ज्ञान होनेका वोह सहकारि धनहे. अतः कितनेक भाई जो एसा कहते वा मानतेहें कि "तर्क अच्छा नहीं—हेयहे." यह बात सर्व स्थलमें मान्य नहीं होसकती. उनकी कायरताहे; यह मान्यता, उनको यथावत-यथार्थ हाथ न ओर दृढता न होनेका वा वेसे अवसरका चिन्हहे. उपमा, उपमेय भिन्न २ हुवा करतेहें; परंतु वेदांती भाई रज्जु सर्पादिके दृष्टांतोंसे उपादान कारण मायाको मिथ्या सिद्ध करतेहें, यह अमान्य युक्ति क्योंकि उभय एकरुप-साध्यहें. इत्यादि. *निदान एसे व्यर्थ युक्ति त्याज्यहें. निर्णयके साधन योग्य तर्क-युक्तिका अनादर करना विषय ओर अपने मान्य मान तथा विद्वान फिलोसोफरोंका अ करने समानहे.

---

1 उपमेय. 2 उपमा. * एसेही अन्य बाडे पंथके पक्षकारोंमें दोष

ब्रह्म सत्यम् जगत् मिथ्या–दर्शन–६:

हमारे प्रयोजनका विषय प्राचीन वृत्तिकार ओर नवीन वेदांतियोंका असंभव अंश नाम सिद्धांत है; किसी पूज्य योग्य आप्त व्यक्ति[1] वा मान्य ग्रंथ किंवा सद्वेदांत[2] खंडनमें प्रयोजन–आशय नहीं है; किंतु सदासद्विचार वास्ते उद्यत होके सत्प्रचार हो, इतना आशय है. किसीके मत–धर्म–पंथ वा योग्य ग्रंथ किंवा किसी महात्माकी निंदा स्तुतिमें हमारा प्रयोजन नहिं है.[3] एतदृष्टि पूर्वोक्त

---

१ उपनिषद् कर्त्ता, ब्रह्मसूत्र कर्त्ता, गीता रचने वाले, उनपर वृत्ति ओर भाष्य करनेवाले इत्यादि पूज्य महात्मा वा आचार्य व्यक्तिओंपर कटाक्ष नहीं है; क्योंकि मेरी समझ अनुसार में एसा समझ रहा हूं के सर्व फिलोसोफरों (गौतम, कणाद, कपिल, जैमिनी, अरस्तु (आरिस्टोटल), फीसागोरस [पीथागोरस], बुद्ध, जिन तीर्थंकर महावीर. वा वर्त्तमानके यूरोप अमेरिकावाले–तमाम फिलोसोफर–इत्यादि) से वेदांत कर्त्ताकी फिलोसोफी प्रबल ओर उत्तम है. तथापि सुव्यवहार विरोधि, भ्रष्टकारक ओर असंभव, " अनादि सांत, मिथ्या ओर जीव ब्रह्मकी एकता संज्ञक अंश (वा सिद्धांत) रूप वर्त्तमान प्रचलित शैली " पर तमाम ग्रंथका कटाक्ष है.

२ जो नैसर्गिक सृष्टि नियमानुकूल युक्ति अनुभव सिद्ध सद्–यथार्थ–हो, उस वेदके सार–[वेदांत पदके वाच्य]–वेदांतपर कटाक्ष नहीं.

३ वेदके सार जाननेवाले, ऐसा नहीं किंतु रुढीमें [अतीत गोसांईवत्] वेदांत संप्रदायी नाम धरानेवाले.

वेदांत सिद्धांतके एक अंश-जीव ब्रह्मकी एकताका खंडन (दोष) ऊपर लिखनेमें आया है. ओर अब आगे उस सिद्धांतके दूसरे अंश (ब्रह्म सत्यं जगत् मिथ्या; असत्य निवृत्ति) विषे तथा उक्त सिद्धांत संबद्ध अन्य प्रचूरण विषय संबंधमें संक्षेपसे (शंका-खंडन-दोष) लिखतेहैं:-

आप (वेदांती महाशय) के माने हुये पूर्वोक्त (ब्रह्म सत्यं जगत् मिथ्या) सिद्धांत स्विकार करनेपर अन्य भी अनेक शंका-प्रश्न-संशय उत्पन्न होते हें, यथा-ब्रह्मसे इतर कोई सत्य भी हे वा नहीं ? जो कहोगे कि हे; तो स्वपक्ष त्याग होगा-द्वैतापत्ति होगी. जो कहोगे कि "नहीं हे; ब्रह्मेतर सर्व मिथ्या हें;" तो ब्रह्मेतरका मिथ्यात्व, सत्य-नित्य हें वा मिथ्या-असत्-अनित्य हे ? प्रथम पक्ष मानोगे तो, मिथ्यात्व नामा धर्म सत्य होनेसे उसका आश्रय धर्मी (ब्रह्मेतर अन्य भी) सत्य ठेरेगा; ओर दूसरा-उत्तर पक्ष मानोगे तो, मिथ्यात्वको मिथ्या वा असत् मान्नेसे व्याघात हे ओर स्व पक्ष त्याग होगा; तथा ब्रह्मेतरकोभी सत्य माना, एसा परिणाम निकल आवेगा. जो ५ मिनीट वास्ते हठसे आपका पक्ष मानभी लेवें तोभी, दोषसे रहित नहीं होता, अर्थात् वेद-शब्द, वाणी, मन, बुद्धि, वामदेव, उद्दालक ओर आपका कथन, मंतव्य बंध मोक्ष, कर्मोपासना, ओर श्रवण मननादि उपदेशभी मिथ्या होंगे. जब यूं हे तो, आपको व्याघात दोष प्राप्त होगा, अर्थात् पूर्वमें आपने उपनिषद्, जीव ब्रह्मकी एकता इत्यादि मिथ्याको प्रमाण ओर सत्य माना हे ; अतः आपका मंतव्य कथन ओर विश्वास त्याज्य हे.

जो ऐसा कहोगेके " व्यवहारमें तो सर्व सत्यही हे परंतु परमार्थमें ब्रह्मेतर सर्व मिथ्या हें " तो सहजमें यह प्रश्न उठता हे के ब्रह्म स्वयंभू हे. उससे इतर व्यावहारिक [वेदादि] सर्व मिथ्या हें. सो, उसकी प्राप्ति करनेमें साधनभूत नहीं होसकते ओर ब्रह्म, प्राप्तभी किसको होवे ? स्व स्वरूप तो सदा प्राप्तरूप हे. ओर मिथ्या-जड उसको प्राप्त नहीं होसकते. वा वोह इनको प्राप्त नहीं होसकता, जेसे स्वप्नका स्वयं स्वप्नद्रष्टा-राजा-जाग्रतकी भूमि ओर राज्य सत्ताको नहीं लेसक्ता; स्वप्नगत दुःखको जाग्रतके वैद्यसे निवारण नहीं करासक्ता; वेसेही व्यावहारिक वस्तु, पारमार्थिक ब्रह्मको नहीं प्राप्त होसक्ती, वा नहीं करासकती, वा ब्रह्मरूप नहीं होसक्ती. इसलिये जीव ब्रह्मकी एकताका उपदेश वा मंतव्य व्यर्थ हे. कारणके आपके सिद्धांतानुसार उसके मानने वा विश्वाससे व्यावहारिक मिथ्या मोक्षकी प्राप्ति, फल होगा. अन्य कुछ फल नहीं. अर्थात् पूर्वोक्त रीतिसे परमार्थरूप ब्रह्मकी प्राप्तिका अभाव हे. एतदृष्टि यह सर्व मंतव्य वा उसकी सिद्धि मानो थूकके पकोडे वा राखमें द्रव्याहुती (द्रव्य, काल, व्यय करना) जैसा हे.

जो कहो के " हमको इष्ट हे अर्थात् बंध, मोक्ष जिज्ञासु, अधिकारी, उपदेश, साधन, वेद, अहंब्रह्मज्ञान, जीव ब्रह्मकी एकताका मंतव्य-इत्यादि मिथ्या हें. ब्रह्म चेतन मात्र सत्य हे. " तो मिथ्या स्थाणु पुरुष समान, द्रष्टा पुरुष ब्रह्मको सिद्ध न कर सकोगे-न जान सकोगे. मिथ्याका विषय ब्रह्मभी मिथ्या मानना पडेगा.

वक्ता कथन यथार्थ है.

कोई ओर किसी प्रकारकीभी वस्तु (जो कि वस्तु-गत्या वस्तु हों) " जो अनादि है सो, सांत नहीं होती ओर जो सादि है सो, अनंत नहीं होसकती " यह सृष्टि नियम है.–सर्व विद्वान ओर बुद्धिमानोंको किंचित् बिचारसे सो नियम गम्य होने योग्य है. " ओर जो नैयायिकादि (किरानी, कुरानी, पौराणी, जैनी, वेदांती आदि[१]) प्रागभावादिको अनादि सांत ओर प्रध्वंसाभावादि (वा कोइ पक्षकार संयोगके वियोग) को सादि अनंत मानलेते हैं सो वात, सर्वथा युक्ति प्रमाण ओर अनुभवके विरुद्ध है. तथाहि वेदांत पक्षमें अभावजन्य भावरूप पदार्थका होना ओर प्रागभावादिको पदार्थ मात्रा अंगीकृतभी नहीं है; अतःएव विस्तार *नहीं लिखते. तथापि

१ किरानी कुरानी, ईश्वर सिवाय अन्य तमामको अभावजन्य भावरुप पदार्थ मानके सादि अनंत ओर कर्मफल तथा मोक्षकोभी सादि अनंत मानते हैं. पौराणी, जैनीभाइ मोक्षको सादि अनंत कहते हैं. वेदांतीभाई ब्रह्मेतर माया, जीव, ईश्वरको अनादि सांत ओर मोक्षको सादि अनंत मानते हैं, इत्यादि. यद्यपि वेदांत पक्षमें माया, जीव, बंध ओर मोक्षको सर्व प्रकार अनिर्वचनीय कहते हैं. तथापि वे निर्णय प्रसंगमें (गडबड करके) उक्त दोषवाला पक्षभी मानलेते हैं जेसेकि ब्रह्मज्ञान हुये जीव अमृत–मोक्ष होता है. बंधसे छूट जाता है. इत्यादि.

* प्रथम तो, अभाव वा वियोगका कोई परिमाण सावयव निरवयवता–स्वरूप वा पदार्थत्व सिद्ध नहीं होता (खंडनखंडन, तत्वदर्शन वांचो),–सर्व पक्षकारों में अभाव वि-

जो कदाचित् स्वपक्ष निर्वाह करने वास्ते स्वीकारेंगे तो, मुझको यह कहना पडेगा:-अज्ञानके नाश पीछे उसका अभाव अनंत रहेनेसे द्वैतापत्ति होगी. जड चेतनका भेद (अन्योऽन्याश्रयाभाव) भी अनादि अनंत मानना पडेगा.

वादका विषय हे. जों उसको कल्पना मात्र कुछ मानभी लेवें तो, व्यवस्था नहीं बनती; क्यों के जो " अभावका अभाव भाव रुप होताहे" इस नियमानुसार प्रागभावका अभाव [सांतपना] उसके प्रतियोगी (घटादि) स्वरुप मानें तब तो, प्रतियोगी घटादिके ध्वंसकालमें सोही प्रध्वंस अभाव होनेका;-एकही प्रागभावका परस्पर विरोधि स्वरुप [पूर्वमें अभाव, पुनः भावरुप-घट, पुनः अभाव-प्रध्वंसाभाव] मान्ना हास्यजनक बात हे. ओर फेरभी उसके स्वरुपका अनादि अनंतत्वका अभाव सिद्ध नहीं हुवा. जो उसके प्रतियोगीसे भिन्न उसका ध्वंस [वा स्वरुप] मानो तो,उसके प्रतियोगी के उपादानसे अन्य कोइ अनुयोगी-आधारही सिद्ध नहीं होगा. ओर अभावका अभाव ही क्या ? तथाही प्रतियोगी [घटादि] के प्रागभावके प्रध्वंसाभावका प्रागभाव उसकी उत्पत्ति कालमें नहीं रहा, इसलिये इस प्रध्वंसका पुनः प्रागभाव मान्ना पडेगा. इस रीतिसे अनवस्था, अव्यवस्था रहती हे. तद्वत् घटके प्रध्वंसाभावके प्रागभावकी अव्यवस्था होती हे. इत्यादि प्रकारसे प्रध्वंसाभाव ओर वियोगके सांत मान्नेमेंभी दोष कल्प लेना चाहिये. ओर सादि कर्मजन्य मोक्ष फलको अनंत कहना-मान्ना सो तो अविचारवान, विश्वासिके सिवाय कोन मानता हे. तद्वत् अभावजन्य भावरुप सादि अनंत मान्ना हास्यजनक बात हे. इत्यादि संक्षेपमें जनाया हे (बुद्धिमान स्वयमेव विस्तार करलेने योग्य हे].

जिसकी मोक्ष अवस्था हे उसको (जीवको) अनादि अनंत कहना पडेगा. यदि मोक्ष कोई वस्तु हे तो, ब्रह्म तथा मोक्ष दोनों अनादि अनंत मान्ने होंगे. ब्रह्म ही मोक्ष स्वरुप हे तो, तिस (ब्रह्म) की जिसको प्राप्ति हुई उसको अनादि अनंत कहना पडेगा.—इत्यादि स्वीकारनेसे द्वैतापत्ति होगी. स्वपक्ष त्याग होगा. जीव तो अभाव जैसा अभावरुप नहीं हे; किंतु भावरुप पदार्थ हे ओर मोक्षभी भावरूप [अवस्था वा पदार्थ] मानते हैं; इसलिये पूर्वोक्त नियमके विषय हैं. इस रीतिसे जीवको अनादि मानें सांत नहीं ठेरता, ओर मोक्ष सादि मानें अनंत नहीं होसकती. अर्थात् मुक्त जीवकी पुनरावृत्ति माने विना छुटकारा नहीं होगा[१] जोके वेदांत पक्षके विरुद्ध हे. इत्यादि रीति—पूर्वोक्त नियमसे वेदांतियोका मंतव्य अलीक हे—श्रेयरुप नहीं. जो कदाचित् एसा कहोगेकि "जीव, माया, ओरमोक्ष—श्रेयको अनिर्वचनीय स्वरुप अनादि अनंत ओर मोक्ष अनिर्वचनीयरुप सादि सांत मानके पुनरावृत्तिभी वेसीही (मिथ्या) मानलो." तो आपके सिद्धांतानुसार कुछ श्रेय हि नहीं हुवा. मिथ्या तो मिथ्या. मृगजलसे प्यास नहीं जाती.

जो यह कहो कि " अनिर्वचनीय " का पारिभाषिक अर्थ अनिर्णिय हे. तब तो जैनियांके मत समान, आपका सर्व सिद्धांत अनिश्चित—अनेकांतिक होनेसे त्याज्य होपडेगा. ओर जो सदासद्विलक्षण—मिथ्या अर्थ

१ जो एसा नहीं मानोगे तो प्रकृत्ति व्यर्थ रहेगी. सृष्टिका अवच्छेद होगा. जोकि —असिद्ध—अमान्य पक्ष हे.

करोगे, तो पूर्ववत् मिथ्या अनादि अनंत वा सादि सांत माननेसे पूर्वोक्त दोषका परिहार नहीं होगा. और "अत्यंत दुःखकी निवृत्ति, परमानंदकी सदा प्राप्ति" जो आपकी मोक्षका स्वरुप है उसका, अधिकारी सिद्ध नहोने और पुनरावृत्ति माननेसे [सो] अलीक होजायगा. [पूर्व पक्ष पुनः विचारिये ?]

जो यह कहो कि 'ज्ञान कर बाध्य–बंध मोक्ष जीवेश्वर सर्व अज्ञान करके भासमान हैं वा कल्पित–मिथ्या हैं. अतः पूर्वोक्त शंका समाधानकी अनुत्पत्ति है;' तो यह कथन भी ठीक नहीं है. क्यों के अनादि सांतादि कथन वा मंतव्य तथा मोक्षके लक्षण माननेसे उक्त प्रश्न बनते हैं और मिथ्या स्वरूप अनादि अनंत माननेसे उक्त प्रकारसे उसकी व्यवस्थाभी होजाती है.

दृश्य कल्पित–दर्शन–८

परंतु आपकी रीति [ज्ञान कर बाध्य अज्ञान कर प्रदर्शित, कल्पित–मिथ्या] में प्रत्युत विशेषतः यह प्रश्न उठता है के, मायादि किसके अज्ञानसे किसको प्रदर्शित हैं–[अवभासमान होते हैं]? तहां, ज्ञान-प्रकाशस्वरूप ब्रह्मको अज्ञानहै, यह कहना तो बनें नहीं और ब्रह्मका अज्ञान, जड माया वा तत् कार्य जीवादि को कहनाभी नहीं बनता. इन दोनों पक्षसे तीसरी यह बात स्वयंसिद्ध होजाती है के, जड चेतन उभय मिलके विशिष्टकोभी उनका [अपना] वा ब्रह्मका, अज्ञान कहना नहीं बनता. क्योंके उभयके भिन्न २ स्वरूपमें उसका (अज्ञान होसकनेका) कथ-

है. तथा जीवेश्वर बंध मोक्षको वेदांती मायिक वा अ-ज्ञान कल्पित मानतेहैः अतः उनको ब्रह्मका; ज्ञान वा अ-ज्ञान कहना नहीं बनसकता. क्योंकि कार्य स्वोपादानको विषय नहीं करसक्ता. ओर अज्ञानकोही १ब्रह्मका वा आपका अज्ञान है, अतः अज्ञानको प्रदर्शित है; यह कथन बालकोंकी कहानी समान हास्यकारक है. इसी प्रकार अपना आपको ज्ञान न होसकने ओर ब्रह्ममें ज्ञान गुण वा ज्ञान धर्म न होने किंतु ब्रह्मको ज्ञानस्वरुप माने-ज्ञाता न होसकनेसे-अज्ञानके तथा उभय विशिष्टमें उभय वाले दोष आने करके उसमेंभी योग्यता न होनेसे, अज्ञानके ज्ञान होनेमेंभी दोष जान लेना चाहिये. अतएव पूर्ति न होने ओर अव्यवस्था तथा दोप प्राप्त होनेसे उक्त विकल्प वा आपका मत त्याज्यहै.

ओर जो कहो कि 'माया [अज्ञान, अविद्या] कल्पित है.' तो, यह प्रश्न उठता है के किसकी कल्पी हुइ है? अंतःकरण, जीव, अविद्या ईश्वरादि तो मायिक हैं ओर चिदाभास, मायाकी उत्पत्तिके उत्तर है. माया नहीं थी उसके पूर्व उसका अभाव था; इस रीतिसे अनादि न होनेसे कल्पक नहीं हुवे. आप अज्ञान-माया-ने अपनेको कल्पी एसा मानो तो, असंभव दोष; क्योंके उपादान विना नसंभव; तथाही आत्माश्रय दोप आता है. अतः अपने अभावकालमें अपनेको कल्पना नहीं बनता. जो यह कहो के 'अभाव-शून्य-ने कल्पी' तो, स्व उपादानवत् कार्य होनेके नियमसे माया अभाव-शून्य-रूप

१ यहां ज्ञानाभाव, अज्ञान वा, भावरुप अज्ञान नामा पदार्थ स्वाश्रयका आवरक, यह उभय अर्थ मानके कथन है.

होनी चाहिये, और उसके (मायाके) कार्यसे मायाकी भावरूपता सर्वको प्रसिद्ध है. अतः अभावकी कल्पित नहीं. जो कहो के ' ब्रह्मकी कल्पित है ' तो कल्पना गुण होनेसे ब्रह्म निर्गुण नहीं कहसकोगे, और स्व पक्ष त्याग करना पडेगा. तथा सत्य-नित्य पदार्थका गुण नित्य और सत्य होताहै; अतः मायाका स्वरूप नित्य सत्य होगा. इस प्रकार नवीन वेदांत सिद्धांतका बाध होजायगा. द्वैतापत्ति होगी.

तथाही जैसेके, किरानी, कुरानी, पौराणी, ब्रह्मसमाजी, प्रार्थना समाजी, उपादान विना अभावसे भावरूप उत्पत्ति मानते हैं और उसमें दोषहै. वैसेही, आपका सिद्धांत दूषित होगा. ईश्वर कहांसे लाया, यह सिद्ध नहीं होगा. तथाही कल्पित मानें यह प्रश्न उठता है के, मायाकी उत्पत्ति पूर्व ब्रह्म विषे किसने और किस प्रकारकी [सावयव, निरवयव, अणु वा व्यापक परिमाणवाली इत्यादि] कल्पी जाय? जब यूं हैतो, पूर्व संस्कार वा ज्ञेय दर्शन-त्रिपुटि विना अनायास अननुकूलकी उत्पत्ति न होसकने और ब्रह्म कल्पित न कही जानेसे मायाका अनादित्वही सिद्ध होगा.

जो कल्पितका पारिभाषिक मिथ्या अर्थ करतेहो तथा माया भावरूप वस्तु है, तो उक्त प्रसंगवत्, बलात्कारसे अनादि अनंत कहना पडेगा. उससे द्वैतापत्ति होगी. तदंतर जो जीवेश्वर कार्यरूप सादि मानोगे तो, वे सांत होनेसे मोक्ष सिद्धांतका बाध होगा. क्योंके नाशवान् सांत होनेवालेके साधन और मुक्तिही व्यर्थ है. और जो मायावत्, अनादि मानोगे तो, जीव अनंत होने और

नवीनोत्पन्न नहोनेसे मोक्षसे पुनरावृत्ति माननी होगी. जो पुनरावृत्ति नहीं मानोगे तो, जब तब जीवोंका मोक्षमें जाने ओर पीछा नहीं आनेसे जीवोंका [१]अवच्छेद होगा. ओर प्रकृति—माया व्यर्थ रहेगी. सो असंभव है. क्योंके निष्फल तत्व-पदार्थ कोइभी सिद्ध नहीं होसक्ता. यद्यपि मायावत् जीव, मोक्ष मिथ्या—ब्रह्मसे इतरसत्तावाले मानो, परंतु जीव अनादि अनंत ओर मोक्ष सादि सांतही माननेसे जीव ब्रह्मकी एकतारुप सिद्धांतका त्याग करना पडेगा. क्योंके जब अनादि अनंत जीव ठेरा तो, अणु वा व्यापक मानना पडेगा. मध्यम—जन्य—सावयव—नहीं माननेसे अंतःकरण, बुद्धि, आभास कार्यरूप अविद्या विशिष्ट चेतन—जीव है, एसा नहीं मानसकोगे. किंतु कोई भिन्न तत्व मान्ना पडेगा. उससे आपके पक्षका त्याग होगा.

ज्ञातृत्व—दर्शन—१.

इतनाही नहीं किंतु, स्वसिद्धांत विरुद्ध, उस अणु वा विभु परिमाण जीवको, कर्त्ता भोक्तावत्—ज्ञातृत्व धर्मविशिष्ट ज्ञाता* तथा द्रष्टृत्व धर्मविशिष्ट द्रष्टा—(चेतन) और इच्छावान् मान्ना पडेगा. तहां [१]—चार्वाक वा जडवादी मत समान किंवा पृथ्व्यादिवत्—(जिनके सूक्ष्म सत्वांशसे वेदांतीलोक, अंतःकरणकी उत्पत्ति मानतेहैं. वा जिनका उपादान माया—जडहै—उसका कार्य अंतःकरण जड है—एसा वेदांतीभाई कहते है), उसे जड नहीं मानसकोगे.

१ यह दोष, सर्व अनंत मुक्ति मानने वालोंमें आताहै.

* जानता—ज्ञाताहूं—जाननेवाला.

क्योंकि, "उन पक्षोंको मानें तो, जड पदार्थ-परमाणु-पृथ्व्यादि और जड माया-तथा उस जडके कार्यमें ज्ञातृत्वादि असंभव हें.-जड स्वतंत्र न होनेसे इच्छा-ज्ञातृत्वादिके योग्य नहीं होसकती. और न उसमें सिद्ध होताहे." (२)-तथा अपरिणामी-अक्रिय-व्यापक-अचल-कूटस्थ-निरीह-निर्धर्म-ज्ञान-प्रकाशस्वरूप-(वेदांतीभाई ब्रह्मको ज्ञान-प्रकाशस्वरुप मानतेहें-अर्थात् ज्ञाता नहीं-किंतु ज्ञानस्वरुप)-चेतनब्रह्म विषेभी ज्ञातृत्वादि नहीं-वेदांतिभी नहीं मानते और नसिद्ध होताहे.(यद्यपि ज्ञातृत्वादि जडके धर्म नहीं, किंतु चेतनमेंही संभवेंहें और ब्रह्म, चेतन हे, अतएव उसमें होनेयोग्य हें. तथापि व्यापक, निष्क्रिय, निर्धर्म मान्नेसे उसमें ज्ञातृत्वादिका अवकाश नहीं होसक्ता. एसा वेदांत पक्ष हे; तथा अवकाश होनाभी नहीं चाहिये.-किंतु परिच्छिन्न चेतनमें उसकी संभवता हे). (३)-उक्त रीतिसे जड-माया और ब्रह्म विषे तो, ज्ञातृत्वादिका अभाव हे. (४)-परंतु, जो प्रसिद्ध व्यवहार देखते हें सो सर्व (व्यवहार), इच्छा, ज्ञान, और दर्शन पूर्वक होताहे-यथाः-' में घटादिको जानता वा देखताहूं-लेताहूं-देताहूं-में इच्छावालाहूं-मुझे इच्छा हे-इत्यादि.' निदान इस-सर्व अनुभवात्मक प्रसिद्ध व्यवहारका निषेद्ध नहीं होसकता. (५)-एतद्दृष्टि, परिशेष और अर्थापत्ति प्रकार तथा दृष्ट व्यवहारको लेके "जड-माया-और ईश्वर ब्रह्मसे भिन्न, जीवनामा कोई चेतन पदार्थ हे" एसा कहना-मान्ना पडेगा.* जो एसा नहीं मानोगे तो, आपके माने

* परिच्छिन्न चेतन मान्नेमें, वा उस विषे ज्ञातृत्वादि मान्नेमें

हुये अज्ञानका,ज्ञान केसे होसकेगा? किस अभिमानीको होग
यह सिद्ध नहीं होसकेगा-नहीं करसकोगे-उस अज्ञानक
ज्ञान नहीं होगा. जब यूं होतो, ज्ञानके विना, आप
अज्ञान ओर ब्रह्मकी सिद्धिही नहीं होगी. उससे स्वप
त्याग करदेना पडेगा-[ज्ञान निवर्त्तनीय अज्ञानका का
यह, प्रपंच नहीं ठेरेगा.] ओर आपकी "तस्मिन् दृष्टे०
"तमेव विदित्वा"इत्यादि श्रुतिसे ब्रह्मभिन्न, किसीमें-जीव
दृष्टापना-ज्ञातृत्व स्पष्ट होताहे, उसका बाध होजायगा-श्
ति अप्रमाण होगी-उसे त्यागना पडेगा.

तदुपरांत, जो आपके मंतव्य समान वा हठसे, जं
(अंतःकरणादि अणु वा विभु-अमिश्रित तत्व पदार्थ
को पाषाणवत् जड [जड मायाका अंश] मानलेवें,
ज्ञातृत्वादि (जीवमें) कहांसे ओर केसे आये? इस बात
विचार-विवेक-पृथक्करण-निर्णय विचारना उचित हो
यगा.-तहां, जो यह मानें कि 'पूर्वोक्त [अणु वा
अमिश्रित कोई तत्व] जीव ओर चेतन ब्रह्म-दोन
मिश्रित-(युक्त-विशिष्ट) होनेसे उत्पन्न होताहे,'
यह शंका होती हे कि " वेदांत सिद्धांतमें वा उसकी
तिसे ब्रह्म विषे (ज्ञातृत्वादि) नहीं हे. ओर जीव (
यांश-जड मायाका कार्य वा जड तत्व) पाषाणवत्
हे. तब ज्ञातृत्वादि [वस्तु-गुण-अवस्था-असर-क्रिय
परिणामविशेष] का उपादान कोन [वस्तु-तत्व] ?
तहां-जो तिन [जड-माया-ब्रह्म] से भिन्न, कोई
री वस्तु मानोगे तो, हम उसीका जीव नाम कहके-

यदि कोइ दोष हो वा न हो; इस निर्णयका यहां प्रसंग न

पाषाण [माया] से विलक्षण विजातिय कहदेंगे.* आपका पक्ष-सिद्धांत गया.

ओर जो युरोपके भुले हुये फिलोसोफरके सिद्धांत समान यह कहोगे के " दो वस्तु मिलके तिनसे अभिन्न वा तिनसे भिन्न,-पूर्वमें कहीं भी नहींथी एसी-नवीन, तीसरी वस्तु उत्पन्न होती हे.-[जेसे कि शीत स्वाद विनाके ओक्षिजन,-हाइड्रोजनसे शीत स्वादवाला जल नवीन उत्पन्न होताहे; अर्थात् शीत स्वाद, उपादान विना उत्पन्न हुये हें]. वेसेही मायाके कार्य वा पाषाणवत् जड अनादि जीव ओर चेतनब्रह्म उभय मिलके इच्छा ज्ञातृत्वादि गुण वा स्वरूपनवीन उत्पन्न होतेहें. जेसे जलके स्वरूपकी स्थिति ओक्षिजनादि विना नहीं होती वेसे, जीवत्व संज्ञाकी स्थिति उभय विना नहीं होती-नहीं रहती. इस रीतिसे जीव ब्रह्मकी एकता ओर अद्वितीय चेतन सिद्धांतका बाध नहीं होसकता. " यह कथन वा मंतव्यभी समीचीन नहीं. क्योंके जीवत्वके उपादान-उभयमें तो, ज्ञातृत्वादि नहीं मानते, तब अकेले अभावसे भावरूपकी उत्पत्ति कहनी पडेगी. अतःब्रह्म माया-उभय अभावसे उत्पन्नहोके अभावमें लय होनाभी मानना पडनेसे आपका सिद्धांत शून्य होजायगा. यह कितना वडा अविचार हे ? जो दो वस्तु मिलके अभावसे उत्पत्ति मानोगे, तो उभयसे [ओक्षिजन ८ ओर हाइड्रोजन१भाग मिलेहुये वा अंतःकरण चेतनसे]कारबोन वा अग्निभी उत्पन्न होजानी चाहिये. ओर जो उभयकी योग्यता मानोगे, तो उभय उपादानमें ज्ञातृत्वादि विभाग पायेहुये

अतः शंका नहीं उठाना चाहिये.*

वा एकमेंही माननें पडेंगें. प्रथम विकल्पमें इच्छा-ज्ञातृत्वा
दिवाला ब्रह्म (चेतन) भी है, एसा ठरनेसे वेदांत पक्षक
उच्छेद होगा. ओर दूसरा पक्ष मानके जो उपहित
ब्रह्ममेंही ज्ञातृत्वादि कहोगे तोभी, उसमें जीवत्व, कर्तृत्व
भोक्तृत्व प्राप्त होकर वेदांत सिद्धांत त्याग होगा. ओ
जो जीवमेंही मानोगे तो, पूर्ववत् [चेतन-जड मायां
विलक्षण] सिद्ध होनेसे, जीव ब्रह्मकी एकताका बा
होजायगा. तथाही ब्रह्म सत्य ओर माया-अविद्या-ज
मिथ्या, इन उभय-परस्पर विलक्षणके मेलनसे, नवी
ज्ञातृत्वादि मानना नहीं होसक्ता. अन्यथा मृग तृष्णा
जल ओर शरीरके संयोगादि संबंधसेभी, तृषा निवा
णरूप फलकी उत्पत्ति होजानी चाहिये. रज्जु सर्पके स
र्शसे शरीरमें विकार होना चाहिये. स्थाणुवाले पुरु
असमदादि दृश्य होने चाहियें ओर होतेतो नहीं. अ
इच्छा ज्ञातृत्वादि जड पाषाणवत् मानेहुये अंतःकरणा
वा ब्रह्ममें वा विशिष्टमें नहीं होनेसे इच्छा ज्ञातृत्वादिवा
भिन्न पदार्थही-जीव मानना पडेगा. तथाही जो विशि
उत्पत्ति मानोगेतो, जेसे 'भूलेहुये बौद्ध, विज्ञानको, नि
यव, अमिश्रित, तत्वपदार्थ मानके क्षणिकपरिणामी (म
मानतेहें,-जोके सृष्टिनियम वा अनुभवसे तदन विरुद्ध
सदोष हे.' वेसेही व्यापक, निष्क्रिय, निष्कंप, निरव
घन ओर अपरिणामी ब्रह्म चेतनमें विकार-परिणाम म
नापडेगा. सो अयुक्तहे. परिणामत्व सावयव [जन्यत्व
चकवाले] विना, नहीं होसक्ता. जेसे, " लोहचुंबककी
सम परिमाणवाली आकर्षण वा दपिक वा सूर्यका सा

समूहात्मक प्रकाश-पदार्थ, अन्यकी स्थिति बदलतेहें.- जो वे आकाशवत् निरवयव, निष्कंप, होतेतो, कभीभी किसी दूरस्थ पदार्थकी स्थिति नहीं बदल सक्ते. नवीन स्वरूप वा गुण उत्पन्न करना करासकनातो कहां ? " वेसे, ब्रह्म-व्यापकमें तो, घटित होही नहींसक्ता. क्योंकि सर्व पदार्थमें व्यापक चेतन करकेभी-जबतक उस उपादानमें कुछ नहीं होगा, तबतक-जिसको नवीन मानतेहो उसका,-भाव-प्रकार कहांसे होगा? कुछ अस्तित्व माने विना, निर्वाह नहीं होगा. सो तो आप मानते नहीं हो, तब वही कहना पडेगा के ' चेतनमेंसे आया; ' ओर चेतनमेंसे जब आवे, वा चेतनगत अंश जब उद्भव हो कि, उस (चेतन) में क्रिया-परिणाम हो; सो तो वेदांत सिद्धांतमें अमान्य हे. अतः विशिष्ट (वा उपहित) में नवीन उत्पन्न नहीं, किंतु जीवनामा भिन्न पदार्थ अनादि अनंत वा सादि सांत मानना पडेगा. वा अन्य कुछ. क्योंकि ज्ञातृत्वादिका व्यवहार सर्वको सिद्ध हे, उसका निषेध नहीं होसक्ता. परंतु पूर्वोक्त रीतिसे आपका सिद्धांत तो नहीं रहेगा. तथा आपकी रीतिसें जब ज्ञातृत्वादिका अभाव मानें तो 'ब्रह्मका ज्ञान वा जीव ब्रह्मकी एकता-कथन ओर उसका ज्ञान वा फलव्याप्ति तथा वृत्तिव्याप्तिकी प्रक्रिया ओर उसका ज्ञान, वा ब्रह्मसत्यं जगन्मिथ्याका ज्ञान ओर आपके सिद्धांत मात्र ' का भंग होजायगा; यह सहजही स्पष्ट हे. अतः सत्य वा मिथ्या जीवचेतन ओर मायादि भिन्न २ पदार्थ हें, एसा बलात्कारसे मानना होगा. तबहीकुछ व्यवस्था होसकती हे. नहींतो जेसे स्थाणु

पुरुष, द्रष्टाको विषय नहीं करसकता–नहीं मान सकता–उसका निर्णय नहीं करसकता, वैसेही वेदांतियोंकी मिथ्या माया और उसके कार्य–मन, बुद्धि आदि, ब्रह्म-जीवके स्वरूप वा उनकी एकता, भेद, अभेदादि कथन वर्णन, निर्णय करने और जाननेमें असमर्थ हैं–नहीं जान सकते; इस लिये उनका सिद्धांत समीचीन नहीं.

औरभी मोक्ष वा जीव ब्रह्मके ज्ञानके साधनका निर्णय और साधनका अनुष्ठान किसने किया–कौन करताहै, इस विषयमेंभी उक्त दोष आसकतेहैं.

जब पूर्वोक्त रीतिसे ब्रह्म सत्, तदेतर जीव, माया मिथ्या–अनिर्वचनीय अनादि, अनंत और (पूर्वोक्त रीतिसे) बंध, मोक्ष, सादि–सांत मानी गइ तो, जीव ब्रह्मकी एकताके ज्ञानसे मोक्ष कहना नहीं बनेगा. प्रत्युत "तीनों परस्परमें विलक्षणहैं," इस प्रकारका ज्ञानमात्र फल होगा.

ज्ञानाभाव–दर्शन–१०

ज्ञाननिवर्त्तनीय जो वस्तु हो सो, सत्य नहीं होती. कर्मनिवर्त्तनीयही* सत्य होसकतीहै–कहसकते–मान सकते

* यद्यपि स्वप्नगत कर्मादि, स्वप्नगत ज्ञानसें निवृत्त नहीं होते. तथापि स्वप्नगत रज्जु सर्पादिकी स्वप्नवाले ज्ञानसे निवृत्ति होती है. यद्यपि स्वप्नगत ज्ञानसे जागृत, जागृतगतज्ञानसें स्वप्नादिके पदार्थ निवृत्त नहीं होते, तथापि एक दुसरी अवस्था, अवस्थावाले पदार्थोंकी बाधक है–तिसके ज्ञानसे तिनकी निवृत्ति वेदांती भाइ मानलेहैं. अतएव जो सृष्टि दृष्टिवादरूप मिथ्या प्रपंच–मिथ्या अविद्यारचित, सिद्ध होजावे, तो, वेदांत पक्षानुसार उसकी निवृत्ति अमुक ज्ञान विशेषसे होसकती है. एसी दृष्टि लेके प्रसंगका कथन है.

है. वेदांत पक्षमें कर्मसे, बंध निवृत्ति नहीं मानी है. किंतु ज्ञानसे मानते हैं; अतएव बंधादि सर्व मिथ्या मान्ना पडेगा. वहां यह शंका होती हे कि, किसके ज्ञानसे किसकी निवृत्ति होगी? ब्रह्म, ज्ञानस्वरूप हे, उसका ज्ञान, वेदांतियोंके जीव-मिथ्या-जड अंतःकरणादिकको नहीं होसकता-नहीं बन सकता. जो एसा हो तो स्थाणु पुरुषको किंवा स्वप्नाभासवाले शरीरोंको दृष्टा-प्रमाता पुरुषका ज्ञानव्यवहार होने योग्य हे; परंतु एसा नहीं होता. ओर ब्रह्मको अपना ज्ञान होके सकार्य अज्ञानकी निवृत्ति मानें, सो भी नहीं बनता; क्योंकि ज्ञान स्वरूप ब्रह्मको [अपना-वा परका] ज्ञान हुवा, एसा कहना पूर्वोक्त रीतिसे बाधितहे.

किसीकोभी अपना ज्ञान, अपनेको नहीं होसकता; क्योंकि प्रकाशक तथा प्रकाशसे-प्रकाश्य ओर दृष्टासे दृश्य, जेसे भिन्न होता हे वेसेही, ज्ञाताभी ज्ञेयसे भिन्न होता हे. अतः अपने (स्वयं) को अपने अज्ञानकी निवृत्ति, असंभव. जो यह कहोकि "जेसे काच द्वारा प्रतिबिंब देखनेसे अपने मुखका ज्ञान होता हे, वेसेही अन्य स्थल (ब्रह्म-ईश्वर-जीव-कोइ प्रकार-मायामें-वा बुद्धिमें प्रतिबिंब पडके वा अन्यथा होताहे-इत्यादि) में जान लेना चाहिये." सो वातभी अयुक्त हे.-प्रतिबिंब वा अन्यकृत छबी देखके, जो मुखका ज्ञान हे सो, अनुमानिक है; क्योंकि प्रतिबिंबका उपादान किरण हे,-बिंब ओर काच नहीं हे. तथा आधार योग्यभी नहीं; क्योंकि लाल लघु काचमें बिंबसे अन्यथाभी देख पडता हे. वेसेही ब्रह्मका प्रति-

बिंब-- आभास, अज्ञान–माया–वृत्ति योग्य वृत्तिमें मान-भी लेवें तो भी ब्रूह्मका ज्ञान, परोक्ष--अनुमानिक होगा. ओर उक्त प्रकारवत् सदोष होसकनेसे विश्वास वा आधारयोग्य नहोगा. इतना हुयेभी मुख्य स्वरूपका साक्षात् होना सिद्ध नहीं होता. निराकार चेतनका प्रतिबिंबही* असिद्ध. प्रतिबिंबका उपादान, अज्ञान–ब्रूह्म इन उभयसे भिन्न, मान्ना पडनेसे स्वपक्ष त्याग होगा. उस आभासका दृष्टा-ज्ञाता ओर उसद्वारा अपने स्वरूपका अनुमान कर्त्ता कोनहे? तहां, ब्रूह्ममें ज्ञातृत्व मान्नेसे ब्रूह्म विकारी-परिणामी ठेरेगा. इत्यादि पूर्वोक्त दोष प्राप्त होंगे. जो यह कहो कि "में 'हुं' एसी प्रतीति सबको हे; 'में नहीं हूं' एसी प्रतीति किसीकोभी नहींहे; इस प्रकार अपना अस्तित्व आप जानता हे–अपनेको प्रतीत–अनुभव होता हे. वेसेही, अपना विशेष स्वरुपभी जान्ने योग्यहे," सो वार्ताभी ठीक नहीं. क्योंके 'में हूं' यह प्रयोग, समूहात्मक व्यक्ति विशेषमें स्वाभावतः (काष्ट पूतळी वाक्यवत्) हे-संस्कारद्वारा अभ्याससे होताहे. 'मेरी आंख' 'में

* रंग, आकारका वा तद्वानका प्रतिबिंब संभव हे; परंतु आकार ओर रंग रहित चेतन पदार्थका असंभव हे. जो वेदांती एसा कहेकि माया, जीवेशको आभास करके करती हे अर्थात् चेतनका प्रतिबिंब श्रुतिमें माना हे. उसका उत्तर इतनाही बस हे कि बहोतसे वेदांतके ग्रंथोमें 'इति श्रुते.' पद लिखमारा हे. वेद ग्रंथमें वे वाक्य नहीं हें. कोनजाने किसने बना बनाके ग्रंथोमें लिखदिये हें. कोईभी नहीं तपासता कि, वेदमें हें वा नहीं. तथाही वेदोपनिषद्की प्रमाणताका पूर्वोक्त प्रसंग याद कीजिये.

काना' इस विपरीत-प्रयोग समान अभ्यास-अध्यास है. अब रही उसकी-अपनी अस्तित्वकी प्रतीति-विषय होना, सो तद्भिन्न किसी [उस] अन्यका विषयहो; जोकि (वोह दूसरा) अपनेको आप नहींजानता. अहंत्वका और उसके मिश्रणसे एकके धर्म दूसरेमें प्रतीतिके विषय होते हैं-जिनको अपना सामान्य ज्ञान कह रहेहो; वस्तुतः वेसा नहीं है 'मैं हूं' यह जिसमें प्रतित-प्रकाश्य-अकारमान होताहै सो, स्वयंप्रकाश ज्ञान स्वरूपहो, परंतु सो, ज्ञाता नहीं. अतः अपनेको आप नहीं जानता.

एतदृष्टि. 'जीव ब्रह्मकी एकताके ज्ञान' के अभावसे मोक्ष वा श्रेय नहीं बनता. ओर पूर्व रीतिसे जीवको ब्रह्मज्ञानका कर्त्ता-ज्ञातृत्वादि विशिष्ट अनादिसांत मानोगे तो, "ब्रह्मतर ज्ञानबाध्य" सिद्धांतका त्याग होनेसे, 'माया, जीवेश्वर सत्य हैं' एसा, कहना मानना पडेगा; क्योंकि ज्ञानसे ज्ञाताका बाध नहींहोता. किंतु ज्ञेय [रज्जु सर्प] -भ्रमका अभाव होताहै-होसक्ता है; इसलिये जीवेश्वर अनादि अनंत, कहना योग्य होगा.

"ज्ञान [नामक] साधनसे अज्ञान ओर उसके कार्यका बाध होताहै" इस मंतव्य विषे दो प्रश्न उठते हैं. विषयका ज्ञान होने पीछे, विषयका अज्ञान न पानेसे अभावस्वरूप ज्ञानअभाव [नामक] अज्ञान है. १. किंवा ज्ञान तथा ज्ञानअभावसे भिन्न, कोई भावरूप (नामक) अज्ञान पदार्थ है. २. आद्य पक्षमें ज्ञान, उसका प्रतियोगी होनेसे, अपने अभावका सिद्धकर्त्ता-प्रकाशक विषयकर्त्ता-नहीं होसकेगा. [घट अभाव समान, यहां प्रसंग नहीं है. ज्ञानमें

ज्ञेयका प्रसंग है). जो मानोगे तो, व्याघात दोष
वेगा–अपने अभावको कोईभी नहीं देखसकता–' स्व अभ
वको विषय करता है ' इस कथनसेही विषय कर्त्ता
भाव सिद्ध होजाता है. अतः ज्ञान भिन्न, कोई तीस
सिद्ध कर्त्ता माना चाहिये. परंतु ज्ञानके विना, ज्ञेय
सिद्धि अलीक है. इस रीतिसे अज्ञान निवृत्तिमें उस
उपयोग नहीं. और जो दूसरा पक्ष मानें तो ज्ञान
विषय होताहुवा ' मैं अपनेको नहीं जानता ' इस प्रक
ज्ञान स्वरूपको आच्छादित करता हुवा. जबकि अ
दि से है तो, ज्ञान, उसका कभीभी बाधक नहीं होसक
क्योंकि; ' अपना ज्ञान आपको नहीं होसकता'. ज्ञा
ज्ञेयसे भिन्न होताहै, उभय अनादि हैं, उभय समाना
करण वर्त्ति हैं, नित्य व्यवधान–अंतराय–रहित सम
र्गात चलेआते हैं, इस रीतिसे ज्ञानसादि विशिष्ट जीवके
ज्ञान मात्रसे आपके मानेहुये अज्ञानका बाध नहोनेसे मोक्ष
प्राप्तिका अभाव है. और जो वृत्तिज्ञान (विशेष ज्ञान
नामक ज्ञान) उस [जीव मूल वा विषयके अज्ञानका] विरं
धी मानोगे तो, वृत्तिज्ञान, मूल अज्ञानका कार्य होनेसे
पने मूल कारणके नाश करनेमें अशक्त रहेगा.–असंभव
है. किंवा अज्ञान नाश पीछेभी शेष रहेगा. अपना अ
नाश न करसकने–न होसकने–स्व नाश नपासकनेसे औ
वृत्तिके अभावका साधन[१] न मिलने तथा अन्य नाश
मानेपर अनवस्था आनेसे–सर्व प्रकार द्वैतापत्ति मानी पड़े

१ प्रचलित ग्रंथोंमें ओके आई, इस विषयका, निर्मली–
तकादि आदिके दृष्टांत किंवा अन्योऽन्य ध्वंस [यथा दो

तथाहि अज्ञान, आप अपनी उत्पत्ति वा नाश करनेमें असमर्थ और न एसाहोना संभव है यह बात स्पष्टहै). तद्वत ब्रह्मभी अपनी उत्पत्ति नाश करनेमें अशकय. और ब्रह्म (ज्ञान प्रकाशस्वरुप), अज्ञानका बाधक नहीं, प्रत्युत साधक है; अन्यथा अज्ञान–मायाका आधार और मायाकी सिद्धिही नसंभव. वैसेही माया–अज्ञान, ब्रह्मका बाधक–नाशक नसंभव. तथा अज्ञानका कार्य (अंतःकरण–अविद्या–वृत्ति –अध्यासमात्र) अपने उपादान–अज्ञान और उनके आधार–ब्रह्मको नाश–निवृत्त नहीं करसकते; यह बात स्पष्ट है. जब यूं है तो, वृत्ति चेतन वा माया विशिष्ट चेतन (ब्रह्म, अज्ञान–माया) दोनों मिलके वा एक दूसरेके आश्रयसेभी एक (ब्रह्म वा अज्ञान)को नाश-निवृत्त नहीं करसकते; यह बात, उक्त लेखके विवेक करनेसे स्पष्ट होजाती है; इसलिये ब्रह्मज्ञान–जीव ब्रह्मकी एकताके ज्ञानसे अज्ञान–मायाकी निवृत्ति नहीं होसकती. जब यूं है तो, वेदांत संप्रदाय मान्य, साधन (ज्ञान साधन), श्रेयके हेतु नहीं; प्रत्युत ब्रह्म और माया, (ज्ञान अबाध्य)–अनादि अनंत–नित्य सिद्ध होंगे और जो अज्ञान निवृत्तिका हेतु, ब्रह्म, अज्ञान वा अज्ञानके कार्यसे भिन्न, अन्य कोई मा-

---

परस्परके शस्त्र परिहारसे मरन वा दो दासियाओंका बांधने बरछी रखके, पेटमें लगाके, मिलनेपर उभयका मरण-नाश] के उदाहरणसे समाधान करतेहैं परंतु वे दृष्टांत विषम हैं.–मूल कारण वा स्वरूपमें नहीं लगते–निर्मली और शरीरके मूल तत्व रहते हैं-इत्यादि स्पष्ट सूक्ष्म दोष हैं. इसलिये इन दृष्टांतोंके खंडनसे उपराम होतेहैं.

नोगे. तो द्वैतापत्ति होगी. तथा उस तीसरेका अभाव होसकनेसे वेदांत पक्षका उच्छेद होजायगा. वा अनवस्थ अव्यवस्था रहेगी. इस रीतिसे वेदांत मान्य श्रेय अं श्रेय साधन, असिद्ध–अलीक–असमीचीन–कल्पना मात्र

जो यह कहोकि "जेसे अपना ज्ञान किसीको न होसकता वेसे, अपना अज्ञान भी किसीको नहीं होत अर्थात् अपना अस्तित्व जीव मात्रको भान होताहै. आपका यह कथन पांच पल वास्ते मान लेवें तोभी. अ पका पक्ष सिद्ध नहीं होता; क्योंकि पुर्व रीतिसे अज्ञा का अभाव हे [उसकी निवृत्तिही क्या]. जबकि अस्ति त्व मानतेहो तो, अपने विशेष स्वरूप [चेतन–जड–अ –मध्यम–विभु–इत्यादि] का अज्ञान, उसके ज्ञानका ज्ञानभी नहीं मानसकोगे. क्योंकि स्वरूपके अस्तित्वादि सामान्य विशेष आदि अंश नहीं मानते हो. किंतु निरवय एक रस स्वरूप मानते हो. निदान जो अपने निरवयव स्वरूपके अस्तित्वको जानता हे. वोह अपने विशेष स्व पको भी जानेयोग्य हे [क्योंकि तद्रूप–एकही है]. ण यूं हे तो, विशेष स्वरूपका ज्ञाता. ज्ञेय स्वरूपसे भिन्न सि हो जायगा. किंवा वर्त्तमानमें जो अस्तित्वको जानताहै उत्तर–विशेष ज्ञान कालमें अपने ओर विशेष स्वरूप त अस्तित्वको भेदसे ग्रहण करेगा. ओर जो विशेष भ नहीं मानो वा विशेषको नहीं जानता. एसा मानो, अस्तित्व मात्र अनुभवानेका कथनभी अभ्यास–प्रवाह मा कुंभ वायुवत् ठेरेगा.–जेसाकि सर्वको प्रतीतरूप हे.–वा म नतेहो क्योंकि आपकी रीतिसे अंतःकरण [आविद्या-अ

तो स्वपर प्रतीति करनेकी योग्यता नहीं. और ब्रह्मविषे स्व अस्तित्व वा विशेषकी प्रतीति होना माने, तो उक्त दोष [प्रतीति कर्त्ता प्रतीतिके विषय स्व अस्तित्वसे भिन्न होना चाहिये] आवेगा. तथा विकारी ठेरेगा. जब यूं है तो, स्वप्रतीति किसको है, यह बात आपकी रीतिसे सिद्ध नहीं होती. और जो प्रतीति कर्त्ताको अणुचेतन मानोगे तो, स्वसिद्धांतका बाध होगा. निदान अपना ज्ञान और अज्ञान असिद्धिसे आपका यह पक्षकि, "अपना (सामान्य, विशेष) ज्ञान होनेसे स्वस्वरूपका अज्ञान नाश होके मोक्ष होतीहै " अलीक ठेरता है.

श्रवण-दर्शन-११.

जो नवीन वेदांतका श्रवण मननहै वोहभी व्यर्थहै, क्योंके तद्गत सिद्धांत जीवब्रह्म एक) पूर्व रीतिसे समीचीन नहीं है.

तथाही अंतःकरण-अविद्या तो जडहै उनमें ज्ञातृत्वादिके अभावसे श्रवण ज्ञान बने नहीं. और अक्रिय ब्रह्म स्वयंप्रकाशमें श्रवणादिकी योग्यता वा आवश्यकता नहीं-उभयमें अभाव होनेसे विशिष्ट[अंतःकरण-अविद्या विशिष्ट चेतन]में भी उसका अभाव है. क्योंके श्रवण और श्रवण ज्ञानकी उनके मूल विषे योग्यता नहीं है. अतः श्रवणादि व्यर्थ है. परंतु श्रवणादिका फल तो हरकोइ, जगतमें प्रसिद्ध देखता है; अतः श्रोता, कोई जीव परिच्छिन्न चेतन तत्व, माया-अविद्याका कार्य नहीं-किंतु उससे और व्यापक ब्रह्मसे भिन्न, अनादि अनंत पदार्थ होगा. इसके विना कर्मोपासना, विवेक-वैराग्य-मुमुक्षुता और श्रवण-मनन-

निदिध्यासनादिका उपयोग नहीं, जो एसा नहीं मानोगे, तो, आपकी रीतिसेही आपकी सप्त भूमिकाका उच्छेद होजायगा.

श्रवणादि साधन कालमें वृत्तिका परिणाम ज्ञेय शब्दादि आकार होताहे, उसी क्षणमें तत्ज्ञान परिणाम वा ब्रह्म ज्ञेयके दृष्ट संस्कार नहोनेसे तदाकार परिणाम होना असंभव. दुसरी क्षणमें माने-ज्ञेयाभावसे ज्ञेयका ज्ञान होना असंभव हे. अतः बौद्ध मत समान अनेक दोष प्राप्त होंगे. इसलिये श्रवणादि ओर उनका फल आपकी रीतिसे व्यर्थ हें. ज्ञानके साधन नहीं वा असंभव हे.

जो केवल अंतःकरण-अविद्या-वृत्तिमें श्रवणादि वा उसका ज्ञान मानोगे, तो उनका ज्ञान उपयोगी नहीं; क्योंके मिथ्या होगा. अतः उसका फलभी मिथ्या होगा. इस रीतिसे जीव ब्रह्मकी एकता, ब्रह्मका ज्ञान, मोक्ष तथा कर्मोपासनादि मिथ्या होनेसे आपका सब सिद्धांत [जगन्मिथ्या, जीवो ब्रह्मैवनापरः] मिथ्या होगा. जिसको स्वप्नवत् सागना वा उसपर विश्वास नहीं रखना उचित हे.

माया-दर्शन-१२

वेदांत पक्षमें माया, एकही जड वस्तु मानते हें-समूहात्मक नहीं, ओर उसी परिणामीका विकार- नाना जगत् जीवादि हें, एसा कहतेहें-एसे असंभव पक्षको मानके, स्वसिद्धांतका निर्वाह करते हें; सो (भी) समीचीन नहीं हे. क्योंके, माया [अज्ञान] निरवयव विभू हे ? वा सावयव-अणु स्वरूप हे ? इन दो विकल्पोंमेंसे जो निरव-

यव विभु मानें तो, अपरिणामी होनेसे उपादान नहीं होसकेगी. ओर जो अणु-सावयव स्वरूप मानें तो, उसके अवयवोंके परस्परके संयोग वियोगसे कार्य तो, बनसकते हैं; परंतु एक स्वरूप नहीं होगी; अतः नाना रूपवान् होनेसे "माया एक मिथ्या स्वरूप हे." यह मंतव्य अयुक्त होजायगा. ओर "सावयव, निरवयव ओर निरवयव सावयव नहीं हो सकता" यह सृष्टि नियम सर्वको अनुभवगम्यहैं. तथा "हरकोई स्वरूप सावयव होगा वा निरवयव होगा" यहभी स्पष्ट है; अतः तद्विलक्षण मानना असंगत युक्तिहीन, अनुभव विरुद्ध हे. अतः यदि मायाको मानके जगत् उसका कार्य मानें तो, मायाको सावयव-समूहात्मकही मानना पडेगा. इतना सिद्ध होनेसे वेदांतके तमाम सिद्धांतोंपर पानी फिरता हे, यह स्पष्ट हे.

जो यह कहो के माया, कल्पित अकल्पित, सावयव निरवयव, सादि सांत, सादिअनंत, अनादिसांत अनादि अनंत, "अणु, मध्यम, विभू परिमाण," नित्यानित्य ओर सत् असत् इत्यादि कल्पनासे भिन्न-विलक्षण-अनिर्वचनीय है; अतः उसके कार्य बंध मोक्ष जीवादिभी वेसेही हें-इसलिये उसमें कोई शंका नहीं होसक्ती." यह कथनभी अयुक्त-अव्यवस्था सूचक हे. क्योंकि जो, "जिसका निर्णय नहोसके" एसा, अनिर्वचनीय पदका अर्थ होगा तब तो, पूर्वोक्त प्रकारवत्* आपके सिद्धांतकी हानी ओर अनिश्चित-अनेकांतिक-नाना कल्पनावाला-विरोध धर्मवाला वा संशयात्मक सिद्धांत होगा. ओर जो विलक्षण

---

* जैनमत समान अनेकांत-अनिश्चित सिद्धांत मानना पडेगा.

सर्प करोगे तो, अव्यवस्था होगी. क्योंके कोइभी वस्तु अनिर्वचनीय सिद्ध नहीं होती है. और दृष्टांतके बिना, अन्यको उसका स्वीकार नहींहोता. माया (और उसके कार्य) को अनिर्वचनीय कहना मानना होतो, उसकी सिद्धि वास्ते त द्भिन्न कोइ उपचार चाहिये. सोतो, है नहीं.-आप नहीं मानते हो. (बुद्धि आदिभी उसके कार्य हैं) और ब्रह्म अनि र्वचनीय नहीं, अतएव अनिर्वचनीयत्वकी सिद्धि नहीं हो सक्ती. रज्जु सर्प, मृगजल, स्वप्न, शुक्ति रजत, प्रतिबिंब नभनीलतादि प्रसिद्ध दृष्टांतभी अनिर्वचनीय सिद्ध नहीं होते. तथा मतवादियोंमें विवादित हैं. अतः संशयात्मक रहनसे और साध्य मायाके कार्य होनेसे आधार योग्य वा उपयोगी नहीं होते.

कदाचित् आपकी रीतिसे विश्वास मानके मायाको अनिर्वचनीय मानभी लेवें, तो कर्मोपासना बंध मोक्ष ज्ञानादि *श्रेयांतर सर्व अनिर्वचनीय मानने पडेंगे. अर्थात् श्रेयभी अनिर्वचनीय*-मिथ्या स्वप्नवत् निकामा हुवा अतः आपकी रीतिसे श्रेयनहीं; क्योंके ज्ञानीकी ज्ञानदृष्टि और अज्ञानीकी अज्ञान दृष्टि -दुःख सुखादि सर्व मिथ्या

*"अत्यंत दुःखकी निवृत्ति परमानंदकी प्राप्ति, यह मोक्षका स्वरूपहे;-एसा वेदांती मानते हैं. इसका यह अर्थ होगाकि 'वर्त्तमान बंध-शरीर-अज्ञान-दुःखसे विलक्षण कोई दुःख हे,' उसकी विलक्षण निवृत्ति (अभाव नहीं किंतु तद्भिन्न अन्यरूप)होगी 'सत् नित्य स्वरुप आनंदसे विलक्षण [ब्रह्मसे विलक्षण] कोई अन्य आनंद है' उसकी, विलक्षण प्राप्ति - जाग्रतसे भिन्न प्रकारकी प्राप्ति [illegible] मानेसे वेदांत सिद्धांतका उच्छेद होगा, जन्म म

मानतेहो ओर ज्ञानी अज्ञानीको दुखः सुख फल समान प्रतीत होतेहैं. इसीप्रकार आपकी रीतिसे उभयकी मोक्षमेंभी दृष्टिहे अर्थात् आपकी रीतिसे मोक्ष, कल्पना मात्र वा विश्वासमात्र हे ओर व्यर्थ हे.

सद् जो ब्रह्म उससे इतर किसी विलक्षणकी प्राप्ति* ओर माया—अज्ञान—बंधकी निवृत्तिसे विलक्षण निवृत्ति मानीजानेसे द्वैतापत्तिहोगी. इस रीतिसे आपके मानेहुये माया ओर उसके कार्यके स्वरुप (अनिर्वचनीय विकल्प) से अव्यवस्था, अनवस्था होतीहे. ओर सयुक्त सिद्धांत नहीं ठेरता.

उपाधि—दर्शन—१३.

जीव ब्रह्मकी एकता वा ब्रह्मका साक्षात्कार होनेका मंतव्य नहीं बनता; इतनाही नहीं किंतु आपके ब्रह्मका निरुपाधी होनाभी सिद्ध नहीं होता. क्योंके जिस देशमें मुक्त अंतःकरण हे उसके गमन वा विदेह पीछे उसी पूर्व देशमें अन्य अंतःकरण आवेगा. तब ब्रह्म फेर सोपाधि होगा. इस प्रकार अनादि अनंतकालसे अनादि अनंत अंतःकरण आते जाते रहनेसे ब्रह्म सोपाधिकही रहा, अर्थात् उसको स्व स्वरूपका अवसर कभीभी नहीं आवेगा. निदान कभी मुक्त न हुवा. किंवा अनादि अनंत काल—तक प्रवाहरूपसे नित्य बंध मुक्त होता रहेगा. इस रीतिसे, सदा अशुद्धही रहेगा.

रणादि दुःखकी निवृत्ति, ओर ब्रह्मकी प्राप्ति नहीं होती; एसा सिद्ध होजायगा. इसी प्रकार अन्य ज्ञानादिमेंभी अर्थकी कल्पना करलेना चाहिये. *

जिस अंतःकरण विशिष्ट चेतनमें जीव ब्रह्मकी एकताका विश्वास वा अभिमान हुवाहे–सो अंतःकरण, उस देशको (के जहां जिस देशमें एकता मानीहे) छोडके अन्य देशमें जायगा तब, उसको स्वाभावतः यह निर्णय होगा के ' व्यापक ब्रह्मके साथ यद्यपि व्याप्य हूं, तथापि में परिच्छिन्न हूं.–पूर्व देशको छोडके इस देशमें आया. ओर उस देशमें इसकाल विषे अन्य अंतःकरण हे. उस चेतन देशके साथ उसकी एकता हे–मेरी अब इस देश साथ एकता हे, इसलिये विशिष्ट भावको लिये व्याप्य व्यापकता भेदसे, आकाश परमाणुवत् व्याप्य व्यापकभाव संबंध हो, परंतु एकता नहीं.

तथा, काशी देशगत पदार्थको जिस अंतःकरणविशिष्टने साक्षात् कियाथा वोह, जब मथुरा देशमें आताहे तब, चेतनके अन्य देशविशिष्ट हे अर्थात् अंतःकरणविशिष्ट चेतन तो हे परंतु, चेतनके अन्य देशयुक्त हे; अतः उस काशीविशिष्ट चेतन ओर मथुराविशिष्ट [वा उपहित] चेतनका उपाधी भेदसे भेद, साक्षात्कार करता हे, तब अपना भेदभी साक्षात्कार करेगा. एकता सर्वथा नहीं.

तथा, अंतःकरणविशिष्टता, एक देशमें परिच्छिन्न हे सो, आकाशके व्यापकत्व विशिष्ट वा नभ कितना व्यापक हे, एसा नहीं जान सक्ता. इसी प्रकार, ब्रह्म देशसे अनंत हे; अतः यह परिच्छिन्न जीव (अंतःकरणविशिष्ट चेतन) उस देश अनंतका साक्षात्कार केसे करसकेगा? अर्थात् नहीं करसकता. हां, अनुमान मानके विश्वाससे मान लेवे, यह जुदी बात हे. अतः चेतनका ब्रह्म रूपसे

साक्षात् अनुमानिक हुवा. तब यह सवाल उत्पन्न होता हेके "कोन जाने इससे इतर देशमें ब्रह्मका कुच्छ अन्यथा विशेषरूप होंगा, वा अन्य होगा, एसा संभव हे" तहां संशयात्मक अनुमान रहनेसे यथार्थ साक्षात् हुवा, एसा सर्वथा नहीं मानसकता. तथाहि अंतःकरण मध्यम होनेसे काल परिच्छेद रहित नहीं ओर ब्रह्मकोतो काल परिच्छेद रहित मानते हो; अतः अंतःकरण विशिष्ट भागने स्वपूर्वोत्तर ब्रह्मस्वरूपका साक्षात नहीं किया ओर न करसकेगा. केवल अनुमानसेही कहताहे के 'यह आत्मा ब्रह्म हे' 'काल परिच्छेद रहित हें'. संभव हे के वर्त्तमानमें जिसको चेतन मानतेहो, वोह अन्यहो–इसके पूर्व अन्यथा–भविष्यमें अन्यप्रकारका होगा. अर्थात विचित्र मायाकी उपाधीसे कालप्रति अन्य प्रकारका भासमान होसकनेकोभी योग्य हे. अतः वर्त्तमानकालमें जो सच्चिदानंद रूपसे साक्षात् होताहे सो, मायाकी उपाधी बलसे होरहा हो; एसाक्यों न मानाजाय? क्योंके वेदांती लोक, वेदार्थ कर्त्ता रामानुजादि ओर अन्य बुद्धादिमुनी, ऋषि, आचार्य, ओर गुरुओंको भ्रांत बतलातेहें; तो जेसेके उनको अन्यका अन्य–विपरीत अर्थ बुद्धिमें आया तथा मनोमय, विज्ञानमय, आनंदमय, कोशमें स्थिति हुई, जोके भ्रांतीरुपहे–(जेसेके जडवादी मात्रको अन्नमय कोशमें, बुद्धको विज्ञानमय कोशमें, मूर्तिपूजकोंको ईश्वरके मायामय कोशमें, अणुरूप जीव माननेवालोंको मनोमय कोशमें, मैमांसिकादिकोंको आनंदमय कोशमें इत्यादि–वेदांत पक्षकार भिन्न, सर्वको भ्रांत मिथ्या–अवास्तविक सिद्धांतमें प्रवेश

हुवाहे.)इसी प्रकार आप-वेदांत पक्षकारभी भ्रांतरूप हो ओर ब्रह्म अन्य प्रकारका हो! एसा क्यों न मानाजाय? सिद्ध होसकता हे. [वेदादिको मध्यमें लानेका यहां प्रयो जन-प्रसंग-नहीं. क्योंके उसकी प्रमाणता अप्रमाणताकी चर्चा उपर होचुकी].

जो कहोके "अंतःकरणादिका गमनागमन ओर ब्रह्मके अंशकल्पना तथा देशकालका अनंतत्व वा देश कालमें अन्य प्रकारकी संभवता-संभावना-इत्यादि भेदभाव जो उपर कहा हे सो, हमारे सिद्धांतमें नहीं बनता; क्योंके जेसे; स्वप्नगत् सर्व कल्पना होतीहे, सो, उस कालमें सत्य हे; परंतु वास्तविक रीतिसे मिथ्या हे." (इसी प्रकार तुम्हारा कथन हे). " यह कथनभी सयुक्त नहीं; क्योंके जेसे स्वप्नद्रष्टा, स्वप्न कालमें स्वप्न सृष्टिको अनादि अनंत वा अनादि सांत मानलेताहे अथवा संस्कार बलसे जीव ब्रह्मकी एकता तथा स्वात्म स्वरुपको व्यापक, अकर्त्ता, अभोक्ता मानलेता हे,- इत्यादि आपका तमाम पूर्वोक्त पक्ष यथार्थ मानता हे; परंतु जब स्वप्नसे उठता हे तब, उन सर्वको झूट मानता हे. किंतु जिससे विलक्षण भेद ओर परिच्छिन्नता देखताहे; इसी प्रकार जब आगे पदार्थ निर्णयरुप-विवेक-विद्यारूप जाग्रतमें आने तो, कदाचित् अन्य प्रकारका सिद्धांत देख पडे, एसा संभव हे. क्योंके पूर्वोक्त ओर वक्ष्यमाण अनेक युक्तियोंसे आपका सिद्धांत दूषित हे.

जो यह कहोगेके "यह दोषतो सर्व पक्षकारोंको प्राप्त होगा. ओर जो जो नवीन पक्ष माना जायगा उसमेंभी आवेगा. [illegible] बिन समान तुम (समीक्षक) कोभी यह दोष

लगेगा." इसका उत्तर यह है के सत्य ख्याति वाले (बौद्ध, न्याय, जैन, द्वैतवादी, सांख्य, यवनाचार्य इत्यादि) वेदांत पक्षके विरुद्ध हैं, स्वप्न जाग्रत् समान नहीं मानते; किंतु सभेद और विलक्षण मानते हैं; अतः उनको सो दोष नहीं लगेगा; कदाचित् उनके भ्रम स्वरूप-ख्यातिकी रीतिसे उनको दोष लगेतो, हमको उसमें क्या? सदोष त्याग-निर्दोष ग्रहण, यह हमारा पक्ष है. और भविष्यमें जो जो पक्ष होंगे उन सर्वमें यही दोष आना कहा, सो ठीक नहीं है; क्योंके संभवहै के 'आजतक जो पक्षकार हुये और हैं उनको ठीकर यथार्थ ग्रहण न हुवाहोतोभी, भविष्यमें पूर्वोक्त दोष निवारण सहित यथार्थका प्रकाश हो.' इस रीतिसे आपके सिद्धांत [जीव ब्रह्मकी एकता वा ब्रह्म सत्यं जगत् मिथ्या] पर विश्वासभी नहीं होसकता.

जो यह कहो कि "जब हमारे (वेदांत) सिद्धांतसे इतर, कोई निर्दोष यथार्थ सिद्धांत, समक्ष हो वा सिद्ध हो जाय तब, वोह मानलेना. अभी तो यही स्वीकारणीय है!" इसका यह उत्तर है कि जो एसा माना, तो संशयात्मक सिद्धांत होजायगा. विश्वासपात्र न होगा. तथाहि आपका यह कथन तो, उस कालमें शोभित हो कि, आज तक जो शोध हुई उन शोधक नियमोंसे अविरुद्ध और निर्दोष होजाता. परंतु सोतो पूर्व और वक्ष्यमाण लेखसे वेसा निर्दोष सिद्ध नहीं होता. एतद्दृष्टि आपके प्रश्नके सविस्तर उत्तर देनेमें उपेक्षाहै.—व्यर्थ है.

कारण—दर्शन—१४

(अभिन्न निमित्तोपादान कारण)

जो वेदांत पक्षमें ब्रह्मको अभिन्न निमित्तोपादान मा-

नके सर्व रचना करते हैं, सोभी अयुक्तहे. क्योंके ब्रह्मको व्यापक, एक, चेतन, निरवयव, अक्रिय ओर अखंड बतलाते हैं ओर जगत्तो परिच्छिन्न, नाना, जड, सावयव, सक्रिय ओर सखंड देखपडता हे; अतः "उपादानवत् उपादेय होताहे तिससे विलक्षण नहीं होता." इस सृष्टि नियमके बिरुद्ध होनेसे अयुक्तहे. तथा एकही, व्यापक, परिच्छिन्न; अखंड, सखंड; चेतन, नचेतन; अक्रिय, सक्रिय इत्यादि मान्ना पडनेसे बिरोध ओर व्याघात दोष आजाताहे. तथाही दोषवाले जड चार्वाक मतका स्वीकार होजाताहे; क्योंके "चार्वाक जड वस्तुको व्यापक मानतेहें, अर्थात् मूल जडत्व विशिष्ट जड पदार्थ देशकाल वस्तु परिच्छेद रहित वर्त्तमानहें.—कोइ एसा देश नहीं जहां, जड पदार्थ [परमाणु] नहों, कोइ काल एसा नहीं केवे नहीं रहतेहों, कोइ तद्भिन्नवस्तु नहीं के जिसमें जडत्व नहो." इस जडवादवत् ब्रह्म, अणुपरिमाण परमाण्वोंका समूहात्मक सावयव स्वरूप मानाजावे तबही, उसके भाग मिलके कार्य बनसकते हें, एकरस निरवयव मानेतो, बने नहीं. जैसेके, चार्वाक मतमें जड वस्तुके नाना भेदहें ओर वे अमुक अमुक प्रकारके परमाणु स्वाभावतः मिलके ज्ञातृत्वादि गुण उद्भव होके कार्य होतेहें. वेसे, ब्रह्मभी नाना प्रकारका अवयव वाला होगा, तबही, उसमेंसे अनेक विचित्र कार्य बनतेहोंगे.—यहां केवल परिभाषा मात्रका अंतर रहा. अर्थात् वे जड पद व्यवहारतेहें, वेदांती चेतन पद व्यहारतेहें. इस रीतिसे "सर्वं खल्विदं ब्रह्म" वाक्यका व्यवहार उभय पक्षमें होसकताहे. जो यह कहोके "शुद्ध ब्रह्म—चेतन, निर्विकार, अपरिणामी, एकरस, घन, अखंड, अच्छे-

द्य, अभेद्य-है, सो किसीका उपादान नहीं है, किंतु सर्वका अधिष्ठान है; और माया विशिष्ट ईश्वर चेतन, जगत्का अभिन्न निमित्तोपादान है.-जैसे मकडी, तंतुको रचती है उस तंतूरूप कार्य प्रति मकडीका शरीर उपादान है.-क्योंके उसके शरीरको तोलके फेर निकले हुये तारोंको तोडके शरीरको तोलोगे तो, न्यून होगा. और चेतन भाग-जीव तंतुका निमित्त कारण है. परंतु सो चेतनमकडीके शरीर विशिष्टही निमित्त कारण है. तद्भिन्न दृष्टिसे अधिष्ठान है. इसी प्रकार दार्ष्टांत-(माया विशिष्ट ईश्वर चेतन अभिन्न निमित्तोपादान कारण प्रति) में समझलेना चाहिये. "-एसा मानेंतो, ईश्वरत्वका अभाव होजायगा; क्योंके माया पदार्थ और चेतन-उभय मिलके जगत्के उपादान और निमित्त माने हैं. वहां निरीह चेतन मात्रमें तो अधिष्ठानताके सिवाय अन्य कल्पना नहीं है. व्यापक में क्रियाके अभावसे कर्तृत्वादि (जगत्कर्त्ता) का कथन असंभव है. तथा उसमें संकल्पादि क्रियाभी नहीं है, तो जेसे, शरीर जड मात्र तंतुके रचनेमें असमर्थ है वेसे, माया मात्र जगत् रचनेमें असमर्थ रहेगी. जो उसको स्वतंत्र मानके उसीमें कर्तृत्वादि मानलोगे तो, अनेक दोषग्रस्त सांख्य वाद स्वीकार होजायगा. और जो माया विशिष्ट चेतनमें ईक्षण इच्छा-संकल्प ज्ञातृत्वादि मानोगे, तो पूर्वोक्त ज्ञातृत्व प्रसंगानुसार,-अर्थापत्ति वा परिशेषानुमानकी रीतिसे शुद्ध ब्रह्ममेंही आरोप होगा.-जोके वेदांत पक्षके विरुद्ध है. और उभय मिलके, उपादान रहित नवीन सर्वज्ञत्वादि धर्मविशिष्ट वस्तु उत्पत्तिका, पूर्वोक्त-

ज्ञातृत्व प्रसंगवत् अभाव हे. अतः ब्रह्ममेंही मानना पडेगा सो वेदांत पक्षके विरूद्ध हे. ओर जो "चेतनकी सत्ता स्फुरणा वा साधिष्ठानतासे माया स्वाभावतः रचतीहे, अर्थात उसमें कर्तृत्व-ईक्षणा-ज्ञातृत्वादि हें." एसा मानोगे तो, पुनः सांख्य वा योग मत मानना पडेगा. कारणके ब्रह्म विन माया ओर माया विन, ब्रह्म कभी नहीं होता; क्योंके जेसे उभय वा उनमेंसे एककी सिद्धि उन उभय विना नहीं होसकती ओर न आजतक किसीने कीहे [यह बात आपकोभी संमतहे], वेसेही सांख्य मत विषे प्रकृति विन पुरुष, पुरुष विन प्रकृति कभीभी नहीं हुये, नहें, ओर नहोंगे; तब केवल अध्यस्त वा साधिष्ठानता भाव, परिभाषा वा कल्पना मात्र हे. जो, 'ब्रह्म विना, माया नहीं रचसक्ती' एसा ब्रह्म भिन्न हुये सिद्ध होता; किंवा, माया विना, ब्रह्ममें स्फुर्णादि सिद्ध होजाते' तबतो, एसा भेद मानलेते; परंतु सोतो हे नहीं. किंतु शारीरिक भाष्यकी भूमिकामें अद्वैताचार्य श्रीमत् शंकराचार्यही मायाको अनादि अनंत कहतेहें.१ अत

१ "अयमनादिरनन्तो नैसर्गिकोऽध्यासः" (शंकर भाष्य). तब अध्यासका मूल माया-अज्ञानतो, अनादि अनंत स्वसिद्ध हे. उपनिषदोंके सार खेंचके कहनेवाले श्रीकृष्ण महाराजने भी मायाको अनादि अनंत कहा हे. "नरूपमस्येह तथोपलभ्यते नान्तो नचादिर्नच संप्रतिष्ठा." यहां वाचक महाशयको में सूचन करताहूं कि, शारीरिक भाष्य [शंकर कृत भाष्य] देखें. उसकी पहिली दूसरी अध्यायमें ईश्वरकी इच्छा, कर्तव्यादिका निषेध ओर श्रुतिका मान अभिन्न निमित्तोपादानका स्वीकारहे, उस प्रसंग बांचने पीछे, पूर्वोक्त वेद ईश्वर प्रसंग याद करो.

व्यापक ब्रह्म चेतनसे इतर देशमें उसका कहना वा अभाव बतानाही नहीं बनता. निदान सर्वदा रहनेसे—व्याप्य व्यापक होनेसे, सांख्य मतसमान स्वाभावतः स्वतंत्र मायामेंही निमित्तोपादानता सिद्ध होगी; परंतु यह बात वेदांत पक्षसे विरुद्ध हे; इतनाही नहीं किंतु, सदोषहे.—" उपादान ओर निमित्त बिना, कोइभी कार्य—वस्तु नहीं होता." यह नियम हे. किंतु प्रत्येक कार्यमें कर्त्ता कर्मादि सात विभक्तिकी अपेक्षाहे. कर्त्ता [प्रकृति], कर्म [इच्छादिसे जो संयोग वियोग], करण [इच्छादि वा स्वभाव], संप्रदान [जीवादिके भोगवास्ते वा पदार्थ मात्र सफलही हें तदर्थ], अपादान [प्रकृतिमेंसे], संबंध [जीव ओर शरीरादि संबंध इत्यादि] अधिकरण [ब्रह्म वा देश अथवा कार्योत्पत्ति ओर पूर्वमें जो काल], इस प्रकार सातही विभक्तिकी अपेक्षा हे. ओर उपादान निमित्त उभय भिन्न २ होतेहें. अतः जिस प्रकृति वा माया भागमेंसे जगत् बना, सो उपादान, ओर जो भाग क्रिया—कर्म—कर्त्ता वा निमित्तहे सो भाग, यह उभय स्वरूपसे भिन्न २ हुये. इस रीतिसे दोनोंको मिलाकरके एक नाम [माया, जड, प्रकृति] कथन मात्र वा कथन प्रकारहे. वास्तविक रीतसे अभिन्न निमित्तोपादान नहीं हे; जेसे वृक्षादिककी रचनामें पृथ्वी जल अग्नि तो उपादानहें ओर इनके संयोग वियोगका निमित्त, आकर्षण किंवा स्वभाव. किंवा अन्य सूक्ष्म प्रकृति—माया—का अंश हे. अतःभिन्न २ ही सिद्ध हुये. चेतन नहीं. ओर ईश्वरत्वका अभाव हुवा.

आपकी रीतिमें तो ओर भी दोषहें—अर्थात् माया विशिष्ट चेतन—ईश्वर हे. उस ईश्वरमें उपादानता प्राप्त होनेसे ईश्वरके एक भागके कटके कटके होंगे; क्योंके माया अंशसे

सर्व कार्य बनेहैं. एसे कटके कटके होनेवाला ईश्वर है. उसी-के मल विष्टादि अंशहैं, यह कहना सर्वथा लज्जा उपजाता है. एसे ईश्वरके माननेसे लाभभी क्या होगा? जो सत्ता स्फुर्ण देने मात्रसे चेतनमें निमित्तता, ओर परिणाम पानेसे मायामें उपादानता मानोतो, अक्रिय चेतन, कर्त्ता न हुवा किंतु मायाही हुइ. परंतु सनियम कार्य, इच्छा ओर ज्ञान विना नहीं होसकते; सोतो मायामें है नहीं. केवल सत्ता देने मात्रसे कुछ नहीं होता. जेसेके, दीपक सत्ता देताहै परंतु, रोगिष्ट वा अंध चक्षू वा इच्छा ज्ञान विनाका शरीर कुछ नही करसकता. इसी प्रकार सत्ता मात्रसे माया कुछ नहीं कर सकती; किंतु इच्छा, ज्ञान, क्रियाकी आवश्यकता है, अतः वे, मायामें माननेसे—सोही कर्त्ता, धर्त्ता हर्त्ता ठेरेगी. ईश्वरत्वका अभाव होगा. जब ईश्वरकाही अभाव हुवा तो, जीवेश्वरकी एकताभी कहां? अथवा उक्त रीतिसे माया ओर जीव (अंतःकरण) की एकता होगी.

जो स्वभाववाद मानके निर्वाह करोगेः—अर्थात् "चेतन ओर मायाका परस्पर मेल तथा उस करके मायाका परिणाम स्वाभावतः है." तो चेतन ब्रह्मके माननेकीभी आवश्यकता नहीं. भूमिपर दो चंद्र क्यों न हुये? मनुष्यके दो फुफस क्यों हुये? किसीके चार आंख क्यों न हुइ? इत्यादि शंका उत्पन्न होनेसे किसी नियम पूर्वक चेतन इच्छा ज्ञानवाले कर्त्ताको मानाना पडेगा. सो, माया (उपादान) से भिन्न इच्छा ज्ञानवाला चेतन होगा. आपका निरीह, अक्रिय ब्रह्म नहीं. जब यूं हो तो नैयायिक, किरानी, कुरानी वगेरेके मतकी व्याप्ति होगी. आपका उक्त पक्ष न रहा.

जो न्याय मत समान 'व्यापक ईश्वर ओर घटादिके

संयोगरूप कार्यका निमित्तभी ईश्वर ओर उपादानभी ई-श्वर हे.' ईश्वरको अभिन्न निमित्तोपादान मानोगे तोभी आपका इष्ट सिद्ध नहीं होगा. क्योंकि अन्य पदार्थ आपके मतमें हें नहीं, अतः संयोगका दृष्टांतही नहीं बनता. किंतु अपने परिणामांशमें [कनक कुंडल समान] आपका आपही संयोगी होगा, अर्थात् ब्रह्म सावयव ठेरेगा. किंवा संयोग कोई कार्यरूप-पदार्थ नहीं किंतु, दो पदार्थोंकी अवस्था विशेष हे. ओर दृश्यतो संयोगी पदार्थ हें; अतः विषम दृष्टांत हे. निदान सूक्ष्म विचारसे देखाजावे तो अभिन्न निमित्तोपादानका उदाहरणही अप्रसिद्ध हे. तब निरवयव अपरिणामी ब्रह्म विषे, तो अभिन्ननिमित्तोपादानताकी कल्पना स्वप्नमेंभी नहीं बनसकती. दृष्ट प्रमाण तथा युक्ति विरुद्ध, शब्द मात्रपर आधार नहीं होसकता.

अज्ञान-दर्शन-१५.

जगत्का उपादान अनादि भावरूप अज्ञान-मायानामा (वस्तु)-पदार्थ हे वा नहीं? जो हे तो वोह एक हे वा अनेक? इन प्रश्नों के निर्णयसे वेदांत सिद्धांतकी अयथार्थता प्रतीत होती हे.* अर्थात्:—

पूर्व प्रकारवत् ब्रह्म एक होनेसे स्व (ब्रह्म) स्वरूपका अज्ञानभी एकही होना चाहिये. क्योंकि ब्रह्मेतर अन्य पदार्थ होंतो, ब्रह्मके नाना अज्ञान माने जावें. परंतु अन्य नहीं मानते हें; अतएव अज्ञान एक हे. जब मूळ अज्ञान एक हे तो, उसका एक काल विषे एकही परिणाम होने योग्य

* इस दर्शनको संपूर्ण अवलोकन करनेसे ज्ञात होगी. भाग मात्र देखनेसे नहीं.

हे.—नाना नहीं. अर्थात् जिस कालमें अंतःकरणरूप परिणाम हुवा हो उसी काल विषे अन्य सूर्यादिरुप परिणाम नहीं होसकता. इसी प्रकार तमाम—द्रव्य गुण [ईश्वर—जीव—इत्यादि] के संबंधमें जान्ना योग्य हे.—एक परिणाम कालमें अन्य पदार्थोंका मान्ना वा कथन अर्थशून्य होगा. जेसे मृत्तिकाजन्य घटकालमें शरावकादि वा रज्जु सर्प परिणाम कालमें जलधारा इत्यादिका कथन, मंतव्य—अर्थशून्य हे. जो अज्ञानके कार्य अंतःकरणादिके उपाधि भेदसे जीवादि (जीव, ईश्वरादि) के नानात्व मानें तो, १ क्या तो ब्रह्मके स्वरुपमेंही नानात्व—[सावयवत्व] प्राप्त होगा. जेसेकि समुद्रके जलमें शीतत्व सावयव—नाना सजातीय स्वरुप हे.—ज्यूं ज्यूं जलके विभाग हों वा करें, त्यूं त्यूं भिन्न २ ज्ञात होता हे; एसेही ब्रह्मस्वरुपमें उपाधि बलसे नानात्व मानलेना पडेगा. अन्यथा नानारुप जगत्का दर्शन असंभव. २ क्या तो " एसा मानें कि, महाकाश घटाकाशवत् ब्रह्म, स्वरुपसे एकही हे—अखंड हे—अछेद्य हे, परंतु घटाकाशवत् घटादिकी उपाधिसे नानारुप—सावयव समान प्रतीत होताहे. " तो, ब्रह्मस्वरुपकी दृष्टिसे, अज्ञान एकही पदार्थ हे; एसा सिद्ध होगा. इसलिये अंतःकरण विशिष्ठ की दृष्टिसे वा उसमें नाना अज्ञान—नाना अज्ञानजन्य नाना जीव—जीवभाव—नाना अंतःकरण—इत्यादि मान्ना अर्थ शून्य होगा. जोकि वेदांत पक्षमें ब्रह्म छेद्य—भेद्य, परिणामी वा सावयव होनेका अस्वीकार हे; इसलिये उत्तर पक्षपर दृष्टि डालें तो, अज्ञानके कार्य—उपादेयही सिद्ध नहीं होते. क्योंकि जबकि ' मूल अज्ञान एक हे ' एसा मानलिया तो, वोह स्वरुपसे निरवयव मान्ना पडेगा. निरवयव एक

पदार्थका, परिणाम नहीं होसक्ता.—नित्य जेसाका तेसा रहता हे. ओर अपरिणामीसे कोई उपादेय—परिणामी-नाना कार्य नहीं होसकते. परंतु (वेदांत रीतिसे अज्ञानका कार्य—) नाना नामरूप—विचित्र जगत् प्रसिद्ध हे. एतद्दृष्टि विचार करें तो, उक्त लेखसे निम्न लिखित परिणाम निकलता हे.—१, दृश्य जगत्का उपादान मान्ने—होनेसे, अज्ञान सावयव पदार्थ हे.—सजातीय विजातीय—अवयव समुदायका नाम अज्ञान हे.—'में नहीं जानता' इस प्रतीतिका विषय भावरूप (वस्तुशून्य) पदार्थ नहीं किंतु, अन्य कुछ हे. २, अथवातो, यह जगत् वेदांतपक्ष स्वीकृत अज्ञानका उपादेय नहीं.—जेसे रज्जु विषे जो सर्प सो, वेदांत रीतिसे अविद्या-अज्ञानका परिणाम हे. वेसे, यह जगत, मूल अज्ञानका परिणाम नहीं ठेरेगा.-सिद्ध नहीं होता. ३, किंवा मूल एक अज्ञानसे भिन्न समग्र प्रपंच-जगत्का अन्य उपादानभी मान्ना पडेगा; (सो, स्वाभावतः वा अज्ञान करके वा ब्रह्म करके जगत्रूप परिणामको पाता हो). जब यूं हे तो यदि उत्तर-तीसरा परिणाम स्वीकारो तो, तीन वस्तु-पदार्थ माननेसे वेदांतका पक्ष त्यागना पडेगा. क्योंकि ब्रह्म, अज्ञान—इन दो वस्तु मान्नेसे उनका संबंध ओर भेद—यह चार पदार्थ स्वयं सिद्ध होजाते हें. उनमेंसे ब्रह्म ओर अज्ञान, स्वरूपसे एक एक पदार्थ हें, अतः उपादानरूप नहीं होसकते. ओर संबंध भेद-भी जगतके उपादान सिद्ध नहीं होते; क्योंकि द्रव्य, गुण, संबंधी, घट, आकाशादि उनसे विलक्षण देख पडतेहें.—संबंधरूप नहीं हें.—' उपादानवत् उपादेय ' इस प्रसिद्ध नियम समान, नहीं प्रतीत होते. यद्यपि प्रपंचके पदार्थोंमें परस्पर संबंध ओर भेद हे, उनका उपादान कारण मूल संबंध

ओर भेद हो; तथापि वे अंतःकरण, मन ओर पृथ्
उपादान नहीं. अतः पूर्वोक्त प्रकारसे तीसरे सावय
र्थकी कल्पना अवश्य हे. उसके विना, नाना
सृष्टि उत्पत्ति स्थितिका निर्वाह नहीं होसकता. अब इ
सरे पदार्थ–जगत्के उपादानको मिथ्या–अनिर्वचनी
वा सत्य मानो तथा कुछभी नाम दो; परंतु एक नि
अनादि अनंत ब्रह्म तथा [उक्त एक] अज्ञान–माय
उभयके संबंध भेदसे भिन्न मानना पडेगा. सो आप
द्धांतके विरुद्ध हे. इसी प्रकार पूर्वोक्त दो शेष परि
वेदांतके पक्षको सिद्ध नहीं करते (आगे वांचोगे).

तथा वेदांत संप्रदायमें अज्ञान पक्ष विषे
वाचस्पति आदियोंके अनेक [1] भिन्न २ पक्ष हैं.
सिद्ध होजाता हे कि अज्ञानके स्वरुपमें अव्यवस्था वा सं
क्योंकि, सत्य वस्तु एक ओर हरेकप्रकार–रीति प्र
से जब तब वही वेसीही सिद्ध होती हे–हे.न यो
नाना प्रकाररूप नहीं; इसलिये नाना पक्ष होनेसे
कल्पनामात्र ठेरता हे; यह बात सहजमेंही मान–ज
कते हैं. जो वेदांतपक्षकार स्वसंप्रदायिओंके नाना
काभी निर्वाह करेगा तो, अन्य संप्रदायवालोंका
व्यभी, स्वीकारना पडेगा; क्योंकि जेसे वेदांतके मू
क्षमें सर्व वेदांतियोंका यह सिद्धांत हेः–"ब्रह्म सत्यं
न्मिथ्या जीवोब्रह्मैवनापरः"–ओर निर्णय करनेमें
पक्ष हैं. वेसेही, अन्य मतवालोंमें 'कुछ हे' एसा
मानके निर्णय करनेमें नाना प्रकार नाना [2] पक्ष

1 ईश्वर प्रसंग–दर्शन ४ गत टिप्पण वांचो. २
४ पक्ष देखो.

तमाम लेखका सार यहहै कि, वेदांत संप्रदायमें अज्ञानका यथावत्–संशय रहित निर्णय नहीं है. (अन्यथा नाना पक्ष नहीं होते), पक्षकारोंने स्व स्व कल्पनासे लिखमारा है. ३

जो यह कहोकि "अज्ञान भावरूप वस्तु, अनिर्वचनीय है; अर्थात् (रज्जु सर्पवत्) सावयव निरवयव लक्षणसे विलक्षण है." तो, एसे सदोष–असंभव पक्ष मान्नेसे, इस प्रकार क्यों नहीं मानाजाय कि, "(रज्जुवत्) ब्रह्म, एक अद्भुत पदार्थ है, स्व स्वरूपको न त्यागके [रज्जु सर्पवत्] नाना–विरोधि सजातीय विजातीय* रुपवाला होके जगत्‌रुप होता है ओर फेर स्व स्वरुपमें आजाता है. शंका विवाद करना व्यर्थ है.–अर्थात् परमाणुवादीवत् समूहात्मक सावयव परिणामी ब्रह्म है." इस रीतिसे अद्वैत पक्षकाभी बाध नहीं होगा. ओर ब्रह्म भिन्न, अज्ञान ओर पूर्व पूर्व संस्कार तथा इनका संबंध ओर भेद माननेका गौरवभी नहीं होगा. यद्यपि यहभी सदोष मत है, तथापि जीवेश्वर मिथ्या कत्थक वेदांतियोंके मतसे कुछ अच्छा है. जो एसा मानोगे तो, जेसेके इस पक्षको वर्त्तमानमें एक वेदांती मानता है ओर उसको दोषोंके परिहारसे वार नहीं आता, एसाही आपको लांछन लगेगा. तथाहि अनिर्वचनीय मान्नेसे (वक्ष्यमाण) माया अनिर्वचनीय असिद्धि प्रसंगवाले दोष प्राप्त होंगे.

ओरभी, उक्त विलक्षण (निरवयव सावयवसे अ-

---

३ कोईभी पक्ष–प्रक्रिया–रीति–प्रकारसे मूल सिद्धांतमें जावें, अतएव नाना पक्ष इष्ट हैं, एसा वेदांतियोंका कहना–मान्ना योग्य नहीं है (आगे वांचोगे.)

* तम प्रकाश, अग्नि शीत, भाव अभाव, इत्यादि. शुद्धाद्वैतवालों समान.

न्य प्रकारका) अज्ञान, व्यापक-निरवय देशकालका उ
दान हो, एसा सिद्ध नहीं होता. क्योंकि उपादेय परिण
जन्य होता है, व्यापक परिणामित नहीं होता-किसी
जन्य नहीं होता. विलक्षण उपादानका विलक्षण उपादे
होने योग्य है; यह वात प्रसिद्ध है. अतः (इन तीनों क
रणको लेके) व्यापक निरवयव देशकाल किसीकेभी पां
णाम-उपादेय -कार्य नहीं मान सकते-आसिद्ध है. जो ए
कहोगेकि वे ब्रह्मकी दृष्टिसे परिच्छिन्न हैं वैसे, माया
दृष्टिसेभी परिच्छिन्न हैं, तोभी अनादि अज्ञानसे देशका
उत्पन्न हुये, यह कथन असंगत है; क्योंके जब देशका
उत्पन्न हुये एसा कहोगे, उसी कालमें तिस पूर्व देशकाल
एसा मानना पडेगा. तथा जब माया-अज्ञान सांत हुये म
नोगे, उस उत्तर, देशकालकी सिद्धि सहजसे ज्ञात होज
ती है; क्योंके देशकाल विना, कोईभी कार्य-परिणाम न
होसक्ता. माया-अज्ञानको अनादिकालके बतानेसे यही परिण
निकलता है. इस रीतीसे माया-अज्ञानवत् देशकालभी अ
उपादान न होनेसे अनादि हैं ओर ब्रह्मवत् अनादि अ
होनेसे द्वैत सिद्ध है.

जो एसा कहोगे कि " जेसे, स्वप्न विषे य
न्य देशकाल (सामग्री) विना, स्वप्नसृष्टि [देशकाल, सू
चंद्र, हस्ति, पहाड, पुत्र, स्त्री, पौत्रोत्पत्ति-इत्यादि] हो
है; तोभी, देशकालमें कारणता ओर अन्यमें कार्यता प्रत
होती है. निदान स्वप्नवाले देशकाल, माया-अज्ञान-अ
विद्या वा मन वृत्तिके कार्य हैं; किसीके कारण नहीं, त
ब्रह्म वा मायाकी कारणता, देशकालमें प्रतीत होती
वे स्वयं किसीके कारण नहीं; किंतु मायाके कार्य हैं.

तः मायाके परिणाम पानेमें उपयोगी नहीं; उनमें संसर्ग करके अन्यथा कारणता प्रतीत होती है." यह कल्पना भी समीचीन नहीं; क्योंकि 'किसी (ब्रह्म वा माया) का धर्म [कारणता] किसी (अन्य देशकाल) में प्रतीत होना' यह न्यायमत है. अर्थात् आप जो अन्यथाख्याति स्वीकारोगे तो, उभय (रज्जु, सर्पत्व-संसर्ग-संसर्गी-धर्म-धर्मी) सत्य होनेंसे द्वैतवाद स्वीकारना पडेगा. ओर जो वेदांतकी मानी हुई अनिर्वचनीयख्यातिसे निर्वाह करोगे, तो वक्ष्यमाण अनिर्वचनीय प्रसंगवाले दोष प्राप्त होके द्वैतापत्ति होगी. ओर उपर जो स्वप्नका दृष्टांत कहा सो, मूल प्रसंगमें मान्य नहीं होसकता. किंवा, इदमत्वादि विशिष्ट जाग्रतके संस्कारानुसार मनकी रचनासे स्वप्नसृष्टि है. अतएव दृष्टांत देने योग्य नहीं-वा साध्य है-वक्ष्यमाण अध्यास प्रसंगवत् दोष आते हैं. तथाहि जबकि सर्वथा असंभव बात-["माया वा ब्रह्म जबकि देशकालादि पदार्थरूप परिणाम धारे तब, अनहुये-अनुत्पन्न देशकालकी कारणता ब्रह्म वा मायाके परिणाममें किंवा कारण-माया वा ब्रह्मकी कारणता उसके कार्य-देशकालमें प्रतीत होना-एसा माने "] का स्वीकार है तो, ब्रह्मभी एसाही-भ्रमज्ञान-अयथार्थ ज्ञानका विषय क्यों न मान लिया जाय? सदोष बौद्धमत समान "समकाल दृष्टा दृश्य न हुयेभी, एक निरवयव परिणामीके दृष्टा दृश्यरुप परिणामकी समकाल प्रतीति" क्यों न स्वीकारी जाय? वंध्यापुत्रकी प्रतीति क्यों न मानी जाय?. जो यह कहोकि "स्वप्नवत् दृष्टि मात्रही सृष्टि है. कोई किसीका कार्य कारण नहीं" तो आपका तमाम सिद्धांत-"ब्रह्म सत्यं जगत् मिथ्या"

सिद्ध नहीं होगा. ब्रह्म नहीं है, एसा मान लेना पडेग अर्थात् त्रिपुटी मात्र—स्मृति, कल्पना, सद्, असद्, इत्य दि तमाम ओर तिनका अस्ति भाति प्रियरूप प्रकाशक स क्षी—यह सर्व समकाल उत्पन्न नष्ट होते हैं; एसा अना अनंत प्रवाह हे. बंध मोक्षादि कुछभी नहीं है. उलटा, क लतो सत्य हे. अन्य ब्रह्मादि दृष्टि मात्र हैं; अनादि अ अध्यास स्वरूप हे किंवा यह जो कुछ कहा-माना-कह हैं सोभी तद्वत् हे-अर्थात् 'शून्य है. वा अनिश्चित है. वा कु छभी नहीं कहसकते' एसा, मानना पडेगा. उससे अव्य स्था [१] रहेगी. आपको चुप रहना पडेगा. जो इस पक्ष वि "अधिष्ठान, साक्षी, प्रकाशकको मनाने वास्ते तत्पर हो ओर उसके न स्वीकारनेपर नाना दोष लाओगे किंवा, अ दोष कल्पोगे" तो, पूर्वोक्त वा अन्य दोष आपके पक्ष आजावेंगे-उपस्थित होंगे. ओर देशकालादि को अनादि अ नंत माने विना छुटकारा नहीं होगा. इत्यादि रीतिसे देशका किसीके कार्य नहीं.

अज्ञान ओर ब्रह्मका अन्योऽन्य अभाव-भेद हे ओ घट पटादिकाभी भेद हे; तथा आपके पक्षानुसार माया स होने पीछे उसका अभाव होना चाहिये; इससे यह सि हुवा कि भेद-(ब्रह्मका भेद)-अभाव, अज्ञान-माया कार्य नहीं; क्योंकि अज्ञान-माया-भावरूप पदार्थ है. इ ससे अभावरूप कार्य सिद्ध नहीं होसकते-नहीं बनते. त

१ अध्यासकी सामग्री तद्भिन्न न कहसकोगे. अपना अ नेका अध्यास असिद्ध. इस मंतव्यके साक्षीकी आवश्यकता.-अन्य बालगाली समान अंध परंपरा, पुरुषार्थ ओर साधनका अभाव-इ त्यादि अव्यवस्था.

माया-अज्ञान अनादि, और ब्रह्म अनादि तथा उनका भेद-अन्योऽन्याभाव अनादि है; अतएव भेद-अभाव, ब्रह्म वा मायाका कार्य नहीं. किंतु उसके अनादि अनंत होनेसे द्वैतापत्ति है.-माया सबका उपादान नहीं. जो यह कहोकि "जैसे घटके उपादान परमाणु, वा मृत्तिका पिंडमें घटत्व नहीं, जलाधार होनेकी सामर्थ्य नहीं, परमाणु, गोचर नहीं; परंतु उसके कार्य घट शरावादिमें यह सब कुछ हैं. तद्वत्, भावरूप माया-अज्ञान, अभावादिका उपादान बनसकता है." यह मंतव्यभी समीचीन नहीं; क्योंकि परमाणुकी रचनाविशेषसे घट, घटत्वादि नाम ओर कार्यविशेष है. उनसे भिन्न नहीं. जलादिमें सूक्ष्म भाग मिलने-घट्ट होनेसे बरफ-हिम होके विशेष शीत होताहै. सो, मूल उपादानसे नवीन वा भिन्न नहीं. उक्त कारण कार्य विरोधीभी नहीं हैं (विचारवानको विवेक-पृथकरण करके ध्यानमें लेलेना चाहिये. अयोग्य कल्पना समझके विस्तारसे उपराम होतेहैं). तद्वत् भावरूप पदार्थसे, उपादेय अभावकी उत्पत्ति संभव नहीं-असंभव है. क्योंकि घट, घटाभाववत् वे उभय तदन्न भिन्न २ हैं. उनका उपादान उपादेयभाव नहीं बनता. हां, जो जड परिच्छिन्न मृत्तिका पिंडसे ब्रह्म चेतन* वा आकाश किंवा तमसे प्रकाश, प्रकाशसे तम नामा उपादेय* बनजाते तो, आपका मंतव्य-कल्पना मानलेते. परंतु वैसा* नहीं होता. अतएव आपकी कल्पना अमान्य-त्याज्य है.

-स्वप्नवत्.* स्वप्नमेंभी एकही वस्तु(आविद्यादि)एक कालमें भाव अभावरूप नहीं होती. तथा उस स्वप्न अभाव, जाग्रत अभावरूप नहीं धारती किजिस अभावका यहां प्रसंग है. और जो भिन्न २ कालमेंआकाशादि-भाव अभाव आकार धारती है सो नाना प्रकारी संस्कार-भावनारूप

जो यह कहो के " माया-अज्ञान-एक पदार्थ है
अद्भुत् पदार्थ है. जेसेके स्वप्नमें देशकाल विना, देशका
भाव-अभावरुप पदार्थ उत्पन्न होतेहैं, उस कालमें सत्य
अनादि अनंत तथा एक उपादानजन्य परस्पर कारण
र्यभाव रहित, नाना परस्पर कारण कार्यभावसे प्रतीत
तेहैं, ओर जाग्रतमें सर्व शून्यरूप हैं; वहां अविद्या
उपादान है. वेसें ब्रह्ममें अज्ञान वा मायाजन्य समझ
चाहिये. " यह कहनाभी अयुक्त है; क्योंके स्वप्नमें आ
रीतिसेभी अविद्या ओर (अदृष्ट) संस्कार तथा अधि
यह तीन हैं. वेसेही मूलमें अज्ञान, पूर्व पूर्व संस्कार
अधिष्ठान यह तीन मानने पडेंगे. इससे यह सिद्ध हुवा
दृष्टि मात्रही सृष्टि नहीं, किंतु सृष्टिका मूल पूर्व २ संस्क
अनादिसे हैं, वे परस्पर संबंध पातेहैं, तदाकार माया
अज्ञान, कार्य स्वरूप होता रहता है. अतः उपादान, अ
न-अविद्या ओर निमित्त, संस्कार हुये. परंतु एसा मान
अव्यवस्था होतीहै, कारणके प्रथम वोह वस्तु है के, जि
संस्कार पडे ओर उत्तरमें अज्ञान-माया-ने तदाकार रुप ध
किंवा जो, संस्काराकार अज्ञानने रुप धरा उस वस्तु
उत्तरमें संस्कार हुये सो है? निदान किसीकाभी पूर्व उत्तर
नहीं कहसकोगे. ओर जो कहोगे तो, नाना दोष प्राप्त हों
[इस रीतिसे] अन्योऽन्याश्रय दोष प्राप्त होनेसे कोइभी
वस्था नहीं होगी. जेसे स्वप्न सृष्टि रचनामें उससे पूर्व

है. वस्तुतः नहीं. इस उपरांत जो पक्षकार हठ करे तो, यह स
धान है कि दृष्टारुपभी होतीहै-साक्षी स्वरुपभी धारती है; अथ
जिसे आप ब्रह्म चेतन कहतेहैं सोभी, वृत्ति-मायाका कार्य मान
पडेगा. ओर पूर्व टिप्पणमें सूचने समान अव्यवस्था होगी,

विद्या ओर संस्कार विद्यमान हैं. वेसे, जाग्रतके पदार्थ (जिनके संस्कार हैं) 'आपकी रीति वा दृष्टिसृष्टि वादसे' अज्ञानके उपादेय हैं,-जोके जाग्रत पूर्वके संस्कार आकार रचे गये हैं; इस पूर्व पूर्व संकलासे उक्त दोषकी सिद्धि होती हे. निदान अज्ञानजन्य वस्तु वा उसके संस्कार वा संस्काराकार अज्ञानजन्य वस्तु हे, इनका निर्णय न होनेसे मत असमीचीन रहेगा. ओर अज्ञानकी सावयवता निरवयवताका दोष पूर्ववत् प्राप्त होगा. इस रीतिसे अज्ञान ओर तज्जन्य जगत्को माननेसे वेदांत सिद्धांतकी अयथार्थता प्रसिद्ध हे.

अज्ञान कोइ पदार्थही सिद्ध नहीं होता, कि जिसको अध्यासका निमित्त वा उसको मानके सृष्टिके उपादानको मिथ्या मानें; क्योंके आपके मतमें "त्रिगुणात्मक-सदसद्विलक्षण-में नहीं जानता हुं-इस अनुभव बलकर कथने योग्य भावरुप", अज्ञान नामक पदार्थका लक्षण हे. तहां अज्ञान नाम अप्रतीतिका हे. पूर्व यह सिद्ध किया हैं के स्व स्वरुपको कोइभी नहीं जानता, तब स्व स्वरुपकी अप्रतीति स्वाभावतः हे. न कि अज्ञान नाम आवरण वा निमित्त करके. जो अज्ञान पदके वाच्य करके होतो, ज्ञानसे उसका बाध होके स्व स्वरुपकी प्रतीति होजावे; तब 'में नहीं जानता,' इस अनुभवकर कथन योग्य, अज्ञान नामा पदार्थ सिद्ध होवे; सो तो हे नहीं. अतः में नहीं जानता, यह स्वभावमात्र वा अध्यासरुप कथन हे.-किसी पदार्थका वाची नहीं. जेसे जब आकाशमें धूम वा वर्षा आवृत्त हो, तब कोई कहता हे के, आकाश गोचर नहीं होता. इसकी अर्थापत्ति यह हुइ के निरुप व्यापक आकाशको पूर्वमें चक्षु गोचर करता होगा? नहीं, नहीं; किंतु व्यावहारिक अनेक कारणोंको लेके बुद्धि

गोचरको अन्य रूपसे कहता है. जैसेके धुम्रादि आवरण हैं, वैसेही स्व भिन्न अन्य पदार्थोंकी अप्रतीतिमें अज्ञान नामा पदार्थ नहीं; किंतु दूर, समीप, तिरोधान, सूक्ष्मत्व, कारण दोष, अयोग्यता, विषय विषयीके योग्य संबधका अभाव—ज्ञाता न ज्ञेयका योग्य संबंध वा स्वाभावादि कारण हैं. जहां कोइ गुप्त कारण नहीं जान पडता वहां, अज्ञान—अविद्या—नामा पदार्थकी कल्पना करलेते हैं, जैसेके शीतको चक्षु विषय नहीं करसकती, वहां अयोग्यताहै वा स्वभाव है, ऐसे स्व स्वरुप न जाननेमें स्वाभाविक अयोग्यताहै. जो एसा नहीं मानोगे और अपनको अपना ज्ञान—साक्षात्—अपरोक्षत्व मानोगे तो, उक्त ज्ञाता ज्ञेय भिन्न, अपरोक्षत्व क्या ? इस प्रसंगवाले) दोष प्राप्त होंगे. इस रीतिसे ' मैं अपनेको नहीं जानता ' एसा, स्वाभाविक वा अयोग्यताको लेके कथन है, अज्ञान करके नहीं. किंवा किसी मिश्रणमेंसे संस्कार वा अभ्यासबलसे कुंभ वायुवत् निकलता है वा कहता है.

गुण गुणी स्वरुपसे भिन्न २ होतेहैं. जब उस [अज्ञान] को त्रिगुणात्मक (सत्व रज तम—आवरण—विक्षेपादि अंशवाला) कहा तो, अज्ञान और गुण-इतने पदार्थ मानने पडेंगे—सावयव और द्वैत माने विना छुटकारा नहीं होनेका; कारणकि गुण गुणीका तादात्म्य वा समवाय वा भेदाभेद संबंध कहना नहीं होसकता* क्योंके स्वरुपसे भिन्न२ हैं.* जो संयोग संबंधसे मानोगे तो, अज्ञानवत् वे भी पदार्थ कल्पने पडेंगे. जो भेदाभेद संबंध मानोगे तो, विरोध दोष आवेगा. और जो अनिर्वचनीय तादात्म्य संबंध मानोगे तो, मिथ्याका मिथ्या साथ संबंध माने विना छूटकारा

* स्वरुप अप्रवेश वाला प्रसंग-दर्शन ४ का याद कीजिये

नहीं होगा. अर्थात् मायाका स्वरुप ओर गुण उभय अनिर्वचनीय हैं, अतः उभयका संबंधभी वेसाही हे. इससे यह सिद्ध हुवा के ब्रह्मका माया साथ, मायाका ब्रह्मके साथ अनिर्वचनीय संबंध नहीं.–यदि ब्रह्मभी मिथ्या होतो, अनिर्वचनीय संबंध मानना ठीक हे. किंवा माया सत्य हो तो, उभयका तादात्म्य संयोग संबंध मानना पडे. परंतु आपकी रीतिसे एसा मानना अयुक्त हे. अतः ब्रह्म ओर माया उभय विलक्षण सत्ता होनेसे इनका संबंधभी सत्य ओर अनिर्वचनीयसे विलक्षण अज्ञानसे भिन्न कहना चाहिये. जो स्वप्नद्रष्टा ओर स्वप्न पदार्थोंके संबंधवत् कहोगे तो, सोभी नहीं बनता, क्योंके "किसी पक्षकारके मंतव्य अनुसार यह कहसकतेहेंके जेसे, जाग्रतमें उदासीन पुरुष अंतरमें कोइ आकृति रचके देखता हे. वहां, उपादान अंतःकरण–मन–वृत्ति हे. अतः उभय सम सत्तावाले होनेसे उस द्रष्टा दृश्यका सम सत्तावान संबंध हे. वेसेही स्वप्नमें समझलेना. केवल इतनाही अंतर हे के "वहां, निद्रा दोष करके स्व अंतःकरणादिकी रचना हे" इतना भान नहीं होता; तदाकारही हुवा रहता हे. अर्थात् जेसेके, सो उदासीन वा भंग पीया हुवा पुरुष संकल्प करता हुवा आकृति रचके तदाकार होके उसको देखता हे, उसके उत्तर क्षणमें स्वत्व वा यह मनोरथ मात्र हे एसा जानता हे. परंतु रचना ओर निरखने कालमें कल्पना वा सत्यासत्यभाव प्रतीत गोचर नहीं होता. वेसेही, स्वप्न क्षणमें समझलेना. जेसेके जाग्रतमें "स्वप्न देखा" एसा कहता हे, परंतु मेंने रचे वा मेरे अंतःकरणके परिणाम थे, एसा नहीं कहता; कारणके निद्राविशेषदोष हे. जब विचार करेगा तो, स्वप्न मनोरथ मात्र (संस्कार, वासना जन्य)

प्रतीत होजायगा. जो एसा नहीं मानोगे तो, स्वप्नवाली स्त्री के भोगसे जाग्रतकी इंद्रियद्वारा वीर्यपात नहीं होना चाहिये और होजाताहे. तथाही जन्मांधको रुपका स्वप्न होना चाहिये (क्योंके आपकी अनिर्वचनीय अविद्या–स्वप्नकी उपादान, ओर रुपके पूर्व जन्मवाले संस्कार तो उसके पास भी हें). परंतु नहीं होता इस रीतिसे स्वप्नद्रष्टा ओर मन रचित स्वप्न पदार्थ समसत्तावाले होनेसे उभयकी समसत्तारुप कोइ संबंध हे, विलक्षण नहीं.–संस्काररुप होनेके कारण जाग्रतसे विलक्षण प्रतीत होताहे; क्योंके जाग्रतके पदार्थ, भिन्न २ के संयोग वियोगजन्य हें; ओर स्वप्नके वास्तविक संस्कार मात्र परिणाम हें. ओर अभ्यास रचित हें. इत्यादि रीतिसे मूल माया ओर ब्रह्मका संबंधभी समझलेना चाहिये जो आपके सिद्धांतानुकूल विषम सत्ता मानोगे तो, जेसेवि स्वप्नगत पदार्थोंका अनिर्वचनीय तादात्म्य मानते हो उस विलक्षण द्रष्टा ओर जाग्रतके पदार्थों के साथ मानना पडेगा अनिर्वचनीय नहीं. ओर वही ब्रह्म माया विषे कहनेक हमारा प्रयोजन हे. अतः मायाका ब्रह्म ओर ब्रह्मका माय साथ–यह दो संबंध, परस्पर विलक्षण तथा माया–अज्ञा न–ओर उसके गुणादिका जो संबंध सो तीसरी प्रकारव मानना पडेगा. जब यूं हे तो, अनेक अव्यवस्था अनवस्थ दि दोष सूचक एक अनिर्वचनीय अज्ञाननामा पदार्थ, न होना चाहिये; क्योंके व्यवस्थादितो देखतेहें. अतएव नाना

तथाही जेसे, माया ओर उसके गुणका स्वरूप द अनिर्वचनीय हे, उससे विलक्षण माया–ब्रह्मका भेद(न्योऽन्याभाव) कहा चाहिये, सोदोनों बातें आपके मत नहीं हें. जो अब मान लोगे तो, पुनः संबंधका संबंध, भे

का भेद–इत्यादि नाना सत्ता वाले कल्पन करनेसे अव्यवस्थाही रहेगी. अतः अज्ञान–मायाको वातो पदार्थ माननाही असंगत हे; ओर जो पदार्थ मानें तो, ब्रह्मके साथ उसका सत्य संबंध होनेसे माया–अज्ञान सत्य हे, एसा मानना ठीक होगा. परंतु जो अज्ञान पदार्थ होतो, उसका ब्रह्म साथ कोइ संबंधभी सिद्धहो. किंतु अज्ञान पदार्थ असिद्ध हे; क्योंके जो पदार्थ मानें तो, व्यापकके स्वरुपमें तो उसका प्रवेश नहीं, अतः परस्पर तादात्म्य संबंधभी नहीं. जेसेके, पृथ्वी, जल यदि स्वरूपसे पदार्थ होंतो; गंध शीत उसके स्वरूपसे भिन्न होते और स्वरूपमें अप्रवेश होनेसे परस्पर तादात्म्य संबंधवाले नहीं, किंतु संयोग वा व्यवहार कल्पित तादात्म्य संबंधवाले होंगे. इसी प्रकार ब्रह्म स्वरूपमें अप्रवेश होने, ब्रह्मस्वरूपेतर देश न होनेसे संबंध सहित उसकी सिद्धिही नहीं होती; जो कहोके परस्परमें समवाय हें; तो यह कथनभी समीचीन नहीं. क्योंकि ब्रह्मेतर कोइ देश होवे तो, समवाय (नित्य), संयोग संबंध बने, परंतु ब्रह्ममें परिच्छिन्नता, छेद्यता, भेद्यताका बाध हे; अतः अज्ञान वा मायाकी असिद्धि हे. इस प्रकार सत्य मायाका अभाव हे. परंतु जगतके पदार्थ तो सर्वको प्रत्यक्ष प्रतीत होतेहें; अतः इनके उपादान सावयव वा समूहात्मक परमाण्वादिकी सिद्धिहे. किसी एक माया वा अज्ञान रुपकी सिद्धि नहीं होती हे. इस रीतिसे पूर्वोक्त (ईश्वर सिद्धि) प्रसंगवत् ब्रह्मनामा पदार्थ नहीं, किंतु कार्यरुप जगतका उपादान, तद्वत् (जड चेतन सत्य जगतवत्) चेतन अणु ओर अणु जड हें, ओर आकाशादि स्वरुपसे हें; परंतु ब्रह्म वा अज्ञान नहीं. इस प्रकार माननेसे जो विलक्षण संबंध मान-

नेमें पूर्व दोष कहे सो नहीं आते.

यदि हठसे अज्ञानको पदार्थ मानोगे तो, सो, ३
सर्व देशमें है वा एक देशमें ? तहां जेसेकि, ' में नहीं
नता '–एसे प्रत्यक्षका विषय, जितने देशमें अहमत्व है
ने देशमें अज्ञानको जानता है. वेसेही " ब्रह्मके सर्व
एक व्यापक है " एसा सिद्ध होगा. अतः सो विभु
णामवाला अक्रिय किसीका उपादान न होगा. इस
से जगत्का उपादान न होगा. इस रीतिसे या तो, अ
माव ठरेगा वा अज्ञान-उपादानरुपका, अभाव होगा.
पक्षमें आपके सिद्धांतकी हानी होगी. ओर जो हठ
कहोगे के, ' ब्रह्म स्वरुपके एक देशमें अज्ञान है ' त
स्वरुपमें अपनी अप्रतीति नहीं अर्थात् ' ब्रह्म वहां तो अ
जानता है, ओर जहां अज्ञान है वहां अपनेको न
नता; ' एसा सिद्ध होगा, परंतु एसा माननेसे ब्रह्मके
भवमेंही अपनी सावयवता माननी होगी. जो ब्रह्म नि
एक हो तो, उसको अपना सर्वथा ज्ञान है, एसाहीं
बनेगा. अज्ञान नहीं. इत्यादि रीतिसेभी ब्रह्मके अज्ञ
अज्ञान पदार्थकी असिद्धि है.

कदाचित् दुराग्रहसे अज्ञान किसीका अज्ञा
किंतु अज्ञाननामा परिच्छिन्न पदार्थ है, एसा मान
सावयव होगा वा अणु होगा. परंतु एक निरवय
होगा.–ओर असंभव दोष आनेसे सावयव नि
विलक्षण अनिर्वचनीय नहीं मानना पडेगा. ज
तो, सत्य ओर ब्रह्मकी समसत्तावाला नित्य
ओर विचित्र जगत्का उपादान माननेसे नानारुप
ववाला होगा. अर्थात् " में नहीं जानता " एसे

करके जो स्वरुप कल्पन करते हो वा कथन योग्य समझते हो, वेसी लक्षणतावाला नहीं; किंतु परमाणुका समूहात्मक मानना पडेगा.

जो एसा कहोगेकि "कोइ पुरुष एसा प्रयोग करेंकि 'मेरामन अन्य विचार वा स्थलमें था'–(यहां मन ओर वक्ता भिन्न २ ठेरे) तहां, वेसा कहनेवाला पुरुष ओर जाननेवाला वृत्ति उपहित चेतन साक्षी हे–इस प्रयोगमें अज्ञानी पुरुष, 'मनकोतो जान्ना तथा 'में हूं' इतने करके स्व सामान्य स्वरुपको कहता हे, परंतु में केसा हुं, एसा विशेष स्वरूप नहीं जानता इस (न जान्ने–अप्रतीति) का नामही अज्ञान हे; इस रीतिसे 'अज्ञान भावरुप पदार्थ हे' एसा सिद्ध होता हे" यह मान्नाभी कथन मात्र हे; क्योंकि जेसे मनका कोई [वक्ता] ज्ञाता हे वेसे "में हुं" इस प्रयोगमेंभी, में वक्तासे भिन्न इस–[में हुं] का ज्ञात होना चाहिये; क्योंकि में का वाच्य–में वक्ताका विषय कर्त्ता, प्रयोगकाल विषे, तद्भिन्न [वक्तासे भिन्न] अन्य मानोगे तबही, स्व सामान्यत्व [में का वाच्य] को साक्षी वा अनुभव प्रतीतिका विषय मान सकते हें. (कारणकि वक्तातो बकता हे. अभिमान, संकल्प वा बकने कालमें ज्ञान परिणाम नहीं धर सकता). अन्यथा नहीं. तेसेही जब में 'ब्रह्म चेतन हुं' वा 'अणु चेतन हुं' वा 'में मध्यम हुं' एसा विशेष स्वरुप वक्ता पुरुष कहेगा वा कहता हे, तब पूर्वोक्त सामान्यांश विषयवत्, इस विशेषका अनुभव कर्त्ता वा जिसकी प्रतीतिका विषय सो हे, वोहभी, वक्तासे भिन्न होगा वा हे. इस (पूर्वोक्त) लेखसे यह सिद्ध हुवाकि "में एसा हुं" एसा ज्ञाता वक्ता, उस विशेष स्वरुपसे भिन्न

हे. जब एसा मानलोगे तब, ज्ञान प्राप्ति पश्चात् 'अज्ञान पदार्थथा–उसका नाश होगया;' एसा कह सकोगे–वा ज्यूं त्यूं मान लेंगे. परंतु आपको अपना पक्ष छोड देना पडेगा; क्योंकि ज्ञेय–आत्मा–ब्रह्म ओर तद्भिन्न ज्ञाता, यह दोनों अनादि अनंत मानलेने पडेगें. [जो ज्ञेयका ज्ञान नहीं मानोगे तो, अज्ञान सिद्ध नहीं होनेका]. पुनः उन विषे तिनके संबंधमेंभी पक्षापत्ति होगी. जो कोइ ब्रह्मको जानता हे वा अपने स्वरुपको जानता हे सो [व्यक्ति], अपनेको १ अपने ज्ञाताको २ ओर वे [दोनों ज्ञेय]३-४ स्वरूप, अपनेको जानते हें वा नहीं? इस अव्यवस्थाका निर्दोष उत्तर नहीं बन्नेसे यही निकलेगाकि जडवत्, ब्रह्म वा जीव किंवा कोईभी अपने स्वरुप–आपको नहीं जान सक्ता. [हां, वे चारूं जड हों वा अपनेसे भिन्न–अन्यको साधन द्वारा जानते–जानसकते हों वा प्रकाशते हों, किंवा नहीं; यह जुदा प्रसंग हे. इस प्रसंगका विषय नहीं]. जब यूं हे तो "में मेरे मनके संकल्पको जानताहुं" 'में संकल्प करताहुं' 'में नकटा' 'मेरी नाक' 'में काना' 'मेरी आंख' इत्यादि*

* इदम, अयंको, में वा तूं नहीं कहता. परंतु में (केवाच्य) को तूं ओर तूं (वाच्य) को में कहता वा मानलेता हे; यह कैसा स्वाभावतः अभ्यास–अध्यास! तद्वत् जीव सृष्टि–[यह मेरा, यह तेरा, यह उसका, यह पुत्र–पुत्री–स्त्री–काका–काकी–मित्र–शत्रु–अच्छा–बुरा–सुखकारी–दुखकारी; इन्हीं–मेरा आदिको दूसरा अन्य रुप–प्रकार–दृष्टिसे देखता वा मानता हे. यथा जिसको एक पुत्री कहता हे, उसको दूसरा पत्नी कहता हे–मानता हे. सर्प, मनुष्यको अप्रिय–दुःखद हे, परंतु सर्पनीको सर्प प्रिय सुखद हे. मुसलमान लोक काकाकी लडकीको भगनी कहते हें, पुनः उसीको अपनी पत्नी बनालेते–मानते हें. ग-

विरुद्ध प्रयोग, केवल अभ्यास मात्र, स्वाभाविक और परस्परके संस्कार (छाप-फोटो) द्वारा कुंभ वायुके शद्ध वा कटपुतली वाक्य-वा पोपट छंद कथन वा फोनोग्राफी यंत्र समान होते हैं. ओर सर्वमें एसा होनेसे, उसकी अहंकार वा जीव इत्यादि नाम-संज्ञा रखली हे" एसा सिद्ध होगा. नकि आपका अज्ञान सिद्धक उक्त विकल्प. जो संकल्प कर्त्तासे भिन्न कोई जीव वा साक्षी हो,-तो अपने अंतरमें जरा विचारीये?-अर्थात् जिस क्षणमें संकल्प होरहाहे उसी क्षणमें द्रष्टा, श्रोता नहीं हे. किंतु जो संकल्पक हे वही उत्तर क्षणमें "मैं संकल्प-विचार करताथा-मनके शब्द सुनताथा-आकृति रचता वा देखताथा, सो में जानता हूं, मेरा मन संकल्प करताथा-आकृति रचताथा, सो में जानता हूं" एसे परस्पर विरोध सूचक वाक्य बोलता हे. इसीसेही सिद्धहोताहेके 'मैं हूं' "मैं अपनेको नहीं जानता" एसा

भेवती स्व स्त्रीको छोडके, कोई विदेशमें गया हो-पीछेसे उस स्त्री के पुत्र ओर पुत्री उत्पन्न हों ओर वे युवा हुये कहीं जाते हों, उधर उनका जनक मार्गमें मिले. इस प्रसंगमें वे परस्परको नहीं जानते. जनक, पुत्रको पीडित देखना हे परंतु, द्वेष करता हे. किंवा पुत्रीको रूपवान देखके कुदृष्टि करता हे. जब परस्परमें जानजाते हें तो, उसी पुत्रमें पुत्रदृष्टि करलेता हे ओर पुत्रीमें पुत्रीभाव करलेता हे. पूर्वकी दृष्टिसे मनमें पछताता हे. किंवा विदेशमें गये हुये, विभूती प्राप्त सुखी पुत्रको, दुष्टके मुखसे मरा हुवा सुनके पिता रुदन करता हे-अर्थात् कुदरती पुत्र विदेशमें विद्यमान हे, परंतु मानासिक-जीवरचित-कल्पित पुत्र मरनेसे रुदन करता हे. एकही पुत्रको किसी कालमें सुखद मानता हे किसी कालमें दुःखद मानता हें इत्यादि] हे. निदान संस्कार बलसे विलक्षण अध्यास-अभ्यास हे.

प्रयोग वा मंतव्य-अभिमान (में काना, मेरी चक्षु, मे
नाक, में नकटा, में सुखसे सोया, मुझे कुछभी खबर ना
इत्यादि समान) संस्कार, तंतुरचना, स्वभाव, आकर्ष
शब्द, विद्युत, ओर ओराके मेलसे स्वाभावतः होता हे;
ज्ञानके आवरण होनेसे नहीं होता हे. अर्थात् अज्ञान
दार्थ नहीं हे, यह सिद्ध हुवा. जो यह कहोगेके संस्कारादि
पकी अप्रतीति अर्थात् पूर्वोक्त प्रकारसे[१] जो अहंअज्ञ
होता हे; इसको में नहीं जानता, तथा संस्कारादि [ज
पदार्थ][२] को में नहीं जानता-इस प्रतीतिका विषयही अ
हे. इसका समाधान यह हे के, जिस समूहात्मकमें अहं
[भाव] होता हे तद्गत तादात्म्य वा संयोग संबंधवाले
दार्थोंको सो नहीं जानता. परंतु तेसे, तद्भिन्न अन्योंको
षय करनेकी उसमें योग्यता हे, स्वांशके विषय करने
उसमें योग्यता नहीं. इस प्रकार, "अज्ञाननामा पदार्थ
रके नहीं जानता वा अज्ञाननामा पदार्थकी आवरण श
शक्ति करके नहीं जानता," एसा नहीं हे. ओर "पूर्व
प्रकारको * में नहीं जानता" यहां उस समूहात्मक पुंजमें
क्त प्रकारकी सामग्री वा विषयका सृष्टिनियमानुसार य
संबंध-विषय करनेरूप संबंध-नहीं हे; जब गुरु, पदार्थ
ओर योगादि साधन हों तब, उसमें, विषयकारी संबंध
प्त होनेसे, अन्य-स्व अतिरिक्त पदार्थों समान स्वाभावत
विषय होतेहें. १ जिसको लोकमें ज्ञान-प्रतीति-इत्यादि

१ [स्वाभावतः]. २ पूर्वोक्त संस्कार तंतु रचना वगे

* स्व समूहात्मक-पुंजगत संस्कारादिका अनुमान, पर संस्
ादिका चीरफाडसे ज्ञान ओर अनुमान तथा पूर्वोक्त प्रकार-सिद्ध
ज्ञान होता हे-विषय होतेहें.-अभ्यास-प्रयोगमें आतेहें.

दसे व्यवहारतेहैं. तथा अमुकका अमुकको (समुहात्मकको) ज्ञान हुवा, इसी संज्ञासे कहतेहैं. इस पूर्वोक्त जडवादकी रीतिसे "अज्ञान पदार्थ हे" इस सिद्धांतका अभाव हो-जाता हे. यद्यपि पूर्वोक्त जड प्रकारमें उनकी रीतिसे अन्य दोष आतेहों, तथापि अज्ञान प्रसंगाभाव भागमें वेदांती लोक दोष नहीं देसकते. क्योंकि वेभी सत्व रज तमादि मिश्रित समूहात्मक मध्यम परिणामवाले अंतःकरणमें उक्त वातें मानतेहैं. कोइ आभासको विशेष बढाता हे. जडवादसे इतनाही अंतर हेके, वेदांती उक्त व्यवहारका प्रकाशक चेतनभी मानते हैं. ओर जड वादमें सर्व विषे एसाही अभ्यास होनेसे पृथक संज्ञा रखी हे, अन्य अंतर नहीं. इस रीतिसे उक्त दृष्टांत वा अनुभवसे अज्ञान पदार्थकी सिद्धि नहीं होती.

जो त्रिगुणरूपही अज्ञान वा मायाका स्वरुप हे, एसा मानोगे तो, जगत्प्रसिद्ध सगुण द्रव्योंकी उत्पत्ति नहीं होनी चाहिये. क्योंके गुणसे, गुणोत्पत्ति होसकती हे-द्रव्यकी नहीं.

जो सांख्य मत समान त्रिगुणकोही परिभाषाके अंतरसे द्रव्य नाम मानते हो तो, शीतादि गुणोंकी उत्पत्ति नहीं होनी चाहिये. क्योंके द्रव्योंसे द्रव्यकीही उत्पत्ति होती हे,-गुणकी नहीं. ओर जो उसका द्रव्य-गुण-कर्म अर्थ लेके निर्वाह करोगे तो, पूर्वोक्त सावयवतादि दोष प्राप्त होंगे. जो द्रव्य गुणात्मक [सगुण पंचभूतात्मक] अज्ञानको मानोगे तोभी, पूर्वोक्त दोष आवेंगे. ओर स्व सिद्धांत त्यागना पडेगा; तथाहि अज्ञान-माया-अव्यक्त ओर अव्याकृत हैं तो, उसके कार्य व्यक्त नहीं होने चाहियें; ओर उपादेय तो आकृतिवाले प्रसिद्ध हैं.

जो माया-अज्ञान-ही सर्वका मूल कारण हो तो, अंतःकरणादि उसका निर्णय वा मंतव्यत्व नहीं करसकता. जैसे संतान "मैं इस माता पिताके इस रज वीर्यका हूं" एसा साक्षात्-यथार्थ-नहीं जानसकता वेसे 'जीवेश्वर, माया-अज्ञान हे-केसें हें,' इसके निर्णय करनेमें असमर्थ हें.

जो यह कहोके चेतनकी सहायताको लेकर उसका मंतव्यत्व-निर्णय वा ज्ञान करता है; सोभी नहीं बनता, क्योंके जेसे, स्व प्रकाश स्वरुप, दीपक-पदार्थोंका प्रकाशक मात्र हे; परंतु यह इसका, यह उसका, यह एसा, यह उससे बना, यह स्व मंतव्य हे, यह कार्यरुप हे, इत्यादि निर्णय कारक वा-निर्णयमें सहायभूत नहीं; किंतु यह सर्व काम चक्षुबुद्धि आदिके हें; वेसेही दार्ष्टांतमें समझलेना. इस प्रकार मायाको उपादान मानके जो जो माया-अज्ञान-विषे कथन करोगे, वोह मान्य नहीं होसकता. ओर प्रत्यक्ष, अनुमान, युक्ति आदिका आश्रय लेके निर्णय करोगे तो, अज्ञानकी असिद्धि ओर मायाकी सावयवता तथा अनादि अनंतता ओर निर्णय कारक, उससे भिन्न सिद्ध होगा. क्योंके कार्यसे कारणका कुछ न कुछ स्वरुप अवश्य जान पडता हे. प्रपंच सावयव ओर नानाहे, अतः उसका उपादान सावयव ओर नाना स्वरुपात्मक-समूहात्मक-कहने योग्य हे.

'अज्ञान-माया अभावरुप हे' एसा तो आप नहीं मानते हो. जो कदाचित् मानोगे तो, दृष्ट विरुद्ध दोष (ओर वक्ष्यमाण अजातवाद प्रसंगवाले दोषों) को प्राप्त होगे. निदान उसको भावरुप कहना पडेगा. जब यूं हे तो, ब्रह्मभी-भावरुप हे, अतः ब्रह्मभी अज्ञान जेसा हुवा. इस व्याप्तिके निवारणार्थ अज्ञानको भाव अभावसे विलक्षण-अनिर्वचनीय

कहना पडेगा–कहोगे–कहते हो; परंतु एसा मान्नेसे आपको व्याघात, असंभव दोष होनेका है; क्योंकि भाव अभावसे विलक्षण कहके भावरुप कहना व्याघात. भाव वा अभावरुप नहीं मानके भावरुप कहना–मानना असंभव दोष. पुनः भावाभावको विलक्षण भावरुप कहना–मानना अनवस्था है. इसलिये अज्ञानका अनिर्वचनीयत्वादिरुप निर्णय, सर्वथा–सर्वांश अलीक है–नहींमानसकते. जब यूं है तो, आपकी मानीहुई रीतिसेही उसके पदार्थत्वका बाध होगा. और हठ करोगे तो, भावरुप ब्रह्मभी है, अतः वोहभी अनिर्वचनीय–मिथ्या ठेरेगा.

आपकी रीतिसे ब्रह्मज्ञानकालमें अज्ञान और तत्कार्यका नाश मानना पडता है–तहां, शरीर वृत्त्यादिकी प्रतीति ज्ञान पश्चात्भी ज्ञानीको स्पष्ट है. मानोकि " ज्ञान पूर्व स्व स्वरुप अज्ञान और अध्यासरुपसे जगत्का अज्ञान तथा सत्य रुपसे जगत्का ज्ञान तथा, ज्ञान पीछे इन तीनों (स्व स्वरुप अप्रतीति, अध्यास रुपसे जगत्की अप्रतीति और वृत्ति ब्रह्मांडका सत्यत्व) का बाध हुवा. " तोभी शरीर, वृत्ति वा ब्रह्मांडकी प्रतीति है. अतः यह ब्रह्मांड, अज्ञानका कार्य–अज्ञान रचित नहीं. किंतु अज्ञानके नाशसे जिनका नाश हुवा वेही अज्ञानके कार्य थे, यह सिद्ध हुवा.

आश्चर्य है कि आप लोक योग्य वृत्ति चेतनका योग्य विषय साथ अभेद संबंध, ' सो प्रत्यक्ष ज्ञान '–(ज्ञानका स्वरुप) मानते हो. (वृत्ति उसकी साधक होनेसे उसकोभी ज्ञान कहते हो.–ब्रह्म चिन्मात्र है, वृत्तिकी उपाधिसे उसको ज्ञान कहते हो); परंतु वस्तुतः स्वरुपसे ज्ञान, कोइ पदार्थ नहीं मानते, किंतु अभेद संबंधको ज्ञान कहते हो–सो अवस्था

विशेष है. इसका परिणाम सहजमें यह निकल आता है कि:-योग्य असंबंध [' वृत्ति उपहित चेतनका विषय साथ न योग्य संबंध ' सो अज्ञान].-अवस्था विशेष अज्ञान है-पदार्थ नहीं. जो, " ज्ञाता वा प्रकाशक [साक्षी] का विषय [ज्ञेय] साथ असंबंध-[योग्य न संबंध वा योग्य संबंधाभाव] सोही अज्ञान; " एसा मानोगे तो. उसे जगत्का उपादान नहीं कहसकोगे.-द्वैतापत्ति होगी.-ज्ञेय ज्ञाता विना अज्ञानकी सिद्धि नहीं होगी.-अज्ञान. सादि सांत ठेरेगा.-अपना अपनेसे असंबंध कभी नहीं होता; इसलिये ' मैं नहीं जानता ' इस प्रतीतिका विषय अज्ञान नहीं होगा.-वृत्ति, ब्रह्मको विषय नहीं करसकती, इसलिये सर्वदा असंबंधी माननी पडेगी; परंतु ब्रह्मको तो सर्वके साथ सर्वोप संबंध है: अतएव असंबंधभी अज्ञानका स्वरूप नहीं; किंतु असंबंध, अवस्था विशेष है-पदार्थ नहीं. तद्वत् ' ज्ञानाभाव-अज्ञान ' माननेमेंभी दोष हैं.[1]

---

१ जो कहोकि " ज्ञान अभाव, अज्ञानका स्वरूप है, अतः सावयव नहीं. " तो, वोह अभाव, अभावरूप है वा भावरूप है ?. प्रथम पक्षकी असिद्धि है; क्योंकि, १ अपने प्रतियोगी [भाव] के आश्रय और उनका आवरक नहीं होगा. अपने इतर देशमें होना चाहिये, सो असिद्ध है. २ प्रथम ज्ञान होके ज्ञानका अभाव हो तब उसकी सिद्धि होगी. तिस विना " ज्ञानाभाव " पदका प्रयोग नहीं बनेगा. ३ ज्ञानका विरोधि होनेसे उसकी निवृत्ति नहीं होगी; क्योंकि उन [अज्ञान, ज्ञान] का संबंध होवे तब तो, एक दूसरेके नाशक हों, परंतु घटका घटाभावके साथ संबंध नहोने समान ज्ञान, ज्ञानाभावका असंबंध (अस्पर्श) है; अतः नाश होना असंभव. ४ जो, ज्ञान, ज्ञान अभाव [अज्ञान] को विरोधी नहीं मानोगे तो-

इत्यादि प्रकारसे अज्ञाननामा कोई प्रकारका तत्व प-
दार्थ सिद्ध नहीं होता. और जो मानते हैं तो, अनेक दोष

भी, नाश नहीं होगा. ६ वृत्ति ज्ञान, जीव आत्माके अज्ञानकी वि-
रोधि हो, नकि अपने अज्ञानकी; तद्वत् जीव आत्मा स्व अज्ञानका नाशक नहो सकेगा. और अन्यद्वारा नाश होनेसे उस [जीव] को लाभभी नहीं होसकता. व्यापक ब्रह्मको आवृत्त नहीं करसकेगा; क्योंकि अभावमें आवृत्तपना नहींहे और ब्रह्म-ईश्वर व्यापक है उसके ज्ञानका अभाव कहना असंभव हे. जो मानोगे तो, व्यापक न होगा. वा आवृत्त होगा. उभयथा स्वपक्षकी हानी स्वीकारनी पडेगी. ७ ज्ञान स्वरुप [जीव वा] ब्रह्ममें तदभावकी असिद्धि होगी. ८ सावयव भाव- रुप जगत्का, उसे उपादान नहीं कहसकोगे. ९ अभावरूपकी निवृ- त्तिही क्या ? १० साधनकी निष्फलता होगी.

और जो दूसरा पक्ष [भावरूप] मानोगे तो, व्याघात दोष होगा.—अभावको भावरूप कहना अग्निको शीतल कहने स- मान हे. तथाहि उक्त दोषका परिहार न होगा; क्योंकि घटाभाव अपने स्वरूपसे भावरूप हे तोभी, प्रतियोगी अनुयोगी आदिकी अपेक्षा रखता हे. उसे पंच प्रकारके अभावोंमेंसे जोनसा मानोगे, उ- सीमें दोष आवेगा.—अत्यंताभाव, अन्योऽन्याभाव वा प्रध्वंसाभावरूप माननेसे, द्वैतापत्ति होगी. प्रध्वंस वा साम्यकाभाव माननेसे अज्ञान, अनादि नहीं ठेरेगा. प्रागभावरुप माननेसे, ज्ञानाभाव नहीं कह- सकोगे. किंतु, ज्ञानोत्पत्ति पूर्व मान्ना पडेगा; परंतु ज्ञानोत्पत्ति आ- पके मतमें नहीं हे.—उलटा ज्ञान होनेपर अज्ञानका नाश माना हे. प्रागभावका अभाव प्रतियोगी स्वरुप होता हे; अतः ज्ञानका प्रागभाव, ज्ञानस्वरुप हुवा, नकि विरोधी. अभावरूपकी सिद्धि करनेमें द्वैतापत्तिका निवारण नहीं होसकता; इत्यादि रीति और दोषापत्तिसे अज्ञान, ज्ञानाभावरुप नहीं.

आतेहें; अतएव अज्ञान प्रतिपादक और तिसबलकर जगत् को मिथ्या सूचक प्रचलित वेदांत सिद्धांत समीचीन नहीं हे.

अध्यारोप–दर्शन–१६.

वेदांत पक्षमें जो, अध्यारोपापवाद नामक प्रक्रिया मानके जगत्के व्यवहारका निर्वाह और मिथ्यात्व सिद्ध किया हे.–सोभी, समीचीन नहीं हे; क्योंके अध्यारोप किसने किया ? आरोपितसे आरोपक भिन्न कहा चाहिये. तहां, आरोपित जो सव्यवहार जगत् सो सर्व. उपादान अविद्या–मायासे पृथक् नहीं; अतः माया और उसके कार्य मन–जीवेश्वरादिमें तो आरोपकत्वका अभाव हे. जो मानोंगे तो, आत्माश्रय दोष प्राप्त होगा. तथा आरोपितसे पूर्व आरोपक होना चाहिये; तहां, आरोपित माया और ब्रह्मसे इतरका स्वीकार नहीं हे; अतएव आरोप मानना संयुक्त नहीं. यदि माया–ब्रह्मसे इतर, तीसरा आरोपक मानोगे तो, द्वैतापत्ति होगी. स्व सिद्धांतका त्याग होगा. क्योंके अनादि माया और उसके कार्यका आरोपक भी अनादि होगा. जो अनादि सो अनंत होता हे, इस लिये नित्य होनेसे द्वैत होगा.

यदि मनादि करके आरोप मानोगे तो, कार्य स्व कारणके आरोप करनेमें असमर्थ, किंवा अनारोपित मनादि अनादि अनंत होनेसे द्वैतापत्ति. जो यह कहो के ' आरोपक, ' आरोप करके सांत होगया. ' तो, यह कहना भी अयुक्त हे; क्योंके अनादि सांत नहीं होता. जो उसे सादि सांत मानोगे तो, आरोपकके स्वरूपकीही असिद्धि होगी. और आरोपित माया और उसके कार्य प्रपंच–समष्टि स्थूल

ीवेश्वरादिभी सादि सांत होनेसे साधन और मोक्ष मंत-
य निष्फल होजायंगे. किंवा आरोपित वस्तु आरोपकके अ-
ावसे सकार्य स्वयं नाश होजायगी; अतः अज्ञान-माया-
अविद्याको ज्ञाननिवर्त्तनीयमानना उचित नहीं; और जो
आरोपक अनादि विद्यमान मानें तो, उसकी आरोपित, उसके
रहनेसे नित्य रहेगी. यदि स्व आरोपितका अभाव करेगा
तोभी, स्वयं रहेगा; अतः द्वैतापत्ति होगी. तथाही उसके
नित्य होनेसे उसके गुण स्वभाव-आरोपकत्वादि-रहनेसे
पुनः पुनः कल्पना करेगा; इस लिये ज्ञाननिवर्त्तनीय न हो-
नेसे आपका ज्ञान और मोक्ष व्यर्थ होगा. और द्वैताप-
त्ति रहेगी.

जो कहोके 'ब्रह्म करके आरोपित हे' तोभी, पू-
र्वोक्त[1] कल्पना प्रसंगवाले दोष आनेस ब्रह्म सगुण ठेरेगा.
और उसके कार्य सत्य होनेकरके सकार्य माया सत्य होने-
से द्वैतापत्ति होके स्व सिद्धांत त्याग होगा.

जो माया-अज्ञान-विशिष्ट चेतन-मिश्रितको अ-
ध्यारोपक मानो, सोभी नहीं बनता; क्योंके 'वस्तु (ब्रह्म) में
अवस्तु (माया और उसका कार्य प्रपंच) का आरोप'
अध्यारोपका अर्थ हे; अतः विशिष्टगत मायांशमें तो, आ-
रोपकत्व नहीं बनता. शेष रहा चेतनांश, उसमें आरोपकत्व
कहनेसे पूर्व दोष प्राप्त होंगे. जो विशिष्टजन्य तीसरा न-
वीनोत्पन्न पदार्थ, आरोपक मानोगे तो, पूर्वोक्त* (ज्ञातृत्वादि
नवीनोत्पन्न) प्रसंगानुसार दोष आवेंगे. इत्यादि दोषापत्ति कर-
के अध्यारोप कथन असंगत होनेसे अपवादकाभी निषेध हुवा.

जो यह कहोकि 'सृष्टिको देखके बुद्धि, नाना प्रका

1 दर्शन ८ * दर्शन ६

रकी कल्पना (मत) आरोप करने पीछे अपवादमें "ब्रह्म सत्य तदेतर मिथ्या" एसा परिणाम निकालनी हे.' तो में यह कहूंगाकि, जगत् किसीकी आरोपित न हुई; किंतु "मत" (जड, चेतन, द्वैत, अद्वैतादि) आरोपित हें; यह आपके कथनका परिणाम–फल हे. जब यूं हे तो, अध्यारोपके लक्षण न रहे.–आपने स्व पक्ष त्याग किया. ओर आपका निकाला हुवा अपवाद ठीक हे वा अन्य पक्षकारोंका ठीक हे, इसका निर्णय होना शेष रहा.

अध्यास–दर्शन–१७.

जेसे अध्यारोप माननेमें दोष कहे गये हें वेसे, अध्यास (न तिसमें तिसकी बुद्धि वा प्रतीति. किंतु अन्यथा रुप अवभास सो, अध्यासका लक्षण हे[1]) वादमंभी समझलेना; क्योंके ब्रह्म विषे अध्यास कथन आपके सिद्धांतसेही बाधित हे. किंतु चेतन तो, तिसका प्रकाशक वा साक्षी हे, ओर अज्ञान, स्वयं अध्यासका कारण हे, अतः अज्ञान, अध्यासरुप नहीं. जीवेश्वर, बंधादिका अध्यास हो परंतु, सो अध्यास किसको हे ? यह बताना चाहिये; जीवादि तो अध्यासरुप हें, अतः उनको अध्यास हे, एसा कहना नहीं बनता; ओर जो, 'जीवेश्वरको अध्यास हे' एसा, मानभी लोगे, तो जीवेश्वरभी अज्ञान समान अध्यासके पूर्वकालमें हुये, एसा सिद्ध होजायगा. यदि अनध्यासरुप अनादि जीवको, अनादि अध्यास हे,[2] एसा मानोगे, तो जीवेश्वरको पूर्वोक्त नियमानु-

१ ज्ञानाध्यास, अर्थाध्यासके अनेक भेद ओर विशेष लक्षण देखो वेदांतादर्श ओर वेदांत पदार्थ मंजूषा ग्रंथमें.

२ अध्यास उत्तर क्षणमें होता हे. अध्यासी, अध्यासरुप नहीं होता.

सार अनादि अनंत[२] मानना पडेगा ओर उसी नियमकी अर्थापत्तिसे अध्यासको स्व स्वरूपसे सादि सांत[२] ओर प्रवाहसे अनादि[२] अनंत कहना पडेगा. तथा द्वैतापत्ति होगी. स्व पक्ष त्याग होगा. ओर जीवेश्वरको अध्यास (मिथ्या) रूप माननेसे परिशेष प्रकार अनुसार ब्रह्मको अध्यास हे, एसा सिद्ध होगा; जोके[३] सदोष मत हे.

तथाही पूर्व (सत्य वा मिथ्या) वस्तुके संस्कार विना, अध्यास नहीं होसक्ता (यह सामग्री वेदांत पक्षकोभी स्वीकार हे); अतः प्रवाहसे पूर्व पूर्व वस्तुके होनेसे, ब्रह्म ओर अध्यासकी सामग्री,-अज्ञान, तथा वस्तु संस्कार-यह तीन अनादि माननेसेभी द्वैतापत्ति होती हे. अर्थात् इनमेंसे (वर्त्तमान) अध्यास [बंधादि] मिथ्या होगा; परंतु, अध्यासरूप नहीं एसा जो अज्ञान, ओर संस्कार सो, अनादि सिद्ध होनेसे स्वरूप ओर प्रवाहसे अनंत ठेरेंगे; क्योंके अधिष्ठान ज्ञानसे उस अधिष्ठान अज्ञानकी निवृत्ति होगी जोकि पूर्व पूर्व वस्तु संस्कारका आकार धारता हे-सो अध्यास हे. परंतु संस्कारोंकी निवृत्तिमें सो हेतु नहीं होगा. यद्यपि अज्ञान निवृत्तिसे उसके वर्त्तमान कार्य निवृत्त होंगे, तथापि पूर्व संस्कारकी निवृत्ति नहीं होनेसे स्व सिद्धांत त्यागना पडेगा. जेसेके, रज्जुके ज्ञानसे उस रज्जुके अज्ञानका अभाव हुवा, जोके पूर्व सर्प संस्काराकार हुवाथा; परंतु पूर्व सर्प संस्कारका अभाव नहीं हुवा; वेसे, ब्रह्म विषे पूर्व पूर्व संस्कार आकार अज्ञान होता हे, उसके अभावसे वर्त्तमानका अभाव हुवा, परंतु अनादि पूर्व पूर्व संस्कार रहे; अतः द्वैतापत्ति रही. जो यह कहोगेके 'संस्कारका आधार जीव (अंतःकरण), अज्ञान

---

३ एक जीव वाद ओर उत्तर प्रसंगोंसे दोष प्रसिद्ध हें.

रचित है, अज्ञानके अभावसे संस्कार मात्रका अभाव होजा-यगा, अतः द्वैत नहीं. ' सोभी समीचीन नहीं. क्योंकि पूर्व पूर्व संस्कारवत् जीवाकारभी अज्ञान है; अतः स्वपक्ष विरुद्ध जीव सादि सांत मानना होगा. ओर यह निर्णय नहीं हुवा के, अनादि अज्ञान ओर संस्कार तथा जीवमेंसे कोन किसके आधीन है ? अतः अज्ञान स्वरुपसे ओर दोनों [जीव, संस्कार] प्रवाहसे अनादि मानने पडेंगे. जब तीनों अनादि हूये तो जीवन कालमें यद्यपि संस्कार समान आकारधारी अज्ञानका अभाव मानसकोगे इसलिये, वर्त्तमान जीव-उसका उपादेय-भी नहीं रहेगा; परंतु जिस संस्कारके आकार हुवा सो संस्कार, जीवके नहीं रहतेभी उस उपादानसे भिन्न रहनेसे शेष रहेगा.-उसका अधिष्ठान, ब्रह्म होगा. जब यूं है तो, पूर्वोक्त प्रकारवत् स्वरुपसे वा प्रवाहसे अनादि अनंत द्वैतापत्ति होगी. जो कहोके ' संस्कार कोई वस्तु नहीं ' तो, उसके अनुसार आकार धारनाभी, नहीं मानना पडेगा. जो जीव वृत्तिका अभ्यासही, संस्कारका स्वरूप मानोगे, तो, सो (अंतःकरण-जीव-वृत्ति) अध्यासका निमित्त, अज्ञानका कार्य नहीं ठेरेगा; किंतु भिन्न होगा, अथवा " अज्ञान स्वाभावतः रचता है-नाना रूप होता है, संस्कार मानना जरुर नहीं, " एसा मानो, तो रज्जुमें सर्पके बदले हस्तिभी प्रतीत होना चाहिये.-शुक्तिमें वृक्षका अध्यास होजाना चाहिये. सोतो नहीं होता; अतः अज्ञान समान अन्य सामग्री [जिसको अध्यास हुवा सो, वस्तुके संस्कार, सामान्य ज्ञान विशेषाज्ञानादि] भी माननेसे द्वैतापत्ति होगी, ओर पूर्वोक्त दोष आवेंगे. यदि अध्यासका (सर्पादिवत्) उपादान कारण होनेसे स्वात्माश्रय दोष ग्रस्त अज्ञानकोभी, अध्यासरूप

मानोगे तो, जिन (वा जिस)को अध्यास हे वे, अध्यासके कार्य-अध्यासरूप-नहीं होनेसे-वे अध्यास भिन्न, सत्‌रूप सिद्ध हो· जानेसे द्वैतापत्ति होगी. ओर जो अज्ञान, जीव, ईश्वर ओर प्रपंच-यह सर्व अध्यासरुप मानोगे, तो ब्रह्म तथा अध्यास-रूपसे इतर-जिसको अध्यास हुवा हे उसको, उससे भिन्न मा· ननेपर पूर्वोक्त दोष निवृत्त नहीं होगा. यदि ब्रह्मकोही ब्रह्ममें (अपनेमें) अध्यास हे, एसा मानोगे, तो अध्यस्त [अज्ञान जीवेश्वरादि प्रपंच] के अधिष्ठान [ब्रह्म] को स्व स्वरुपका सामान्य ज्ञान ओर विशेष स्वरुपका अज्ञान होना चाहिये, तथा उस वस्तुके [प्रपंच, बंध, मोक्ष] पूर्व पूर्व संस्कार होंगे के जिसका अध्यास होनाहे, तब अध्यास होगा.-जेसेके रज्जुमें सर्प जब भासेगा के, रज्जुका सामान्य ज्ञान ओर विशेष अ, ज्ञान तथा पूर्व दृष्ट सर्प संस्कार ओर तिमिरादि होंगे; अन्यथा अध्यास नहीं होता.-प्रसंगमें ब्रह्मको स्वस्वरुपका ज्ञान वा अज्ञान कहना नहीं बनसकता; क्योंके स्व स्वरुपको कोइ नहीं जानसकता; कारणके " ज्ञाता ज्ञेय वा दृष्टा दृश्य भिन्न २ होते हें " अतः ब्रह्म ज्ञाता ओर ज्ञेय यह दो स्वरूप सिद्ध हो· नेसे द्वैतापत्ति होगी. ओर जो स्वरूपकाही [केवल] अज्ञान मानोगे तो, सो अज्ञान सर्वदा बना रहना चाहिये. क्योंके स्व स्वरूपके ज्ञान होनेका पूर्वोक्त रीतिसे अभाव-असंभव-बाध हे. जब यूं हे तो, उसका कार्य प्रपंच अध्यासरूप नहीं, अर्थात् "बाध हुये विना,[1]-अध्यास हे" एसा व्यपदेश सयुक्त नहीं.

कदाचित् अज्ञानको अनादि अनंत मानलोगे, तो उसका कार्य अध्यासभी, स्वरूप वा प्रवाहसे अनादि अ-

1 रज्जु सर्पादिके बाध हुये पश्चात्, सर्पकी अध्यासरुपना सिद्ध होती हे. तिस विना अध्यास पदवी नहीं कह सकते.

नंत भावको प्राप्त हुवा सत्य है; एसा मानना पडेगा. उससे द्वैतापत्ति ओर स्व पक्ष त्याग होगा.

जो अन्य सामग्री विना, केवल अज्ञान [अविद्या] मात्रसेभी अध्यास मानलोगे तो, घोर तमस्थ रज्जुमेंभी सर्पाध्यास होना चाहिये, परंतु एसा नहीं होता है; अतः ब्रह्म ओर अज्ञानसे भिन्न तिमिरादिवत् प्रपंच भासनेमें अन्य सामग्रीभी बतानी चाहिये जोकि, अध्यासरूप नहीं ठेरेगी. यद्यपि वस्तुके संस्कार, अध्यासरूप वस्तुके हों, और अस्तित्वका सादृश्यभी हो; परंतु जेसे, रज्जु सर्प अवभासमें संस्कार ओर रज्जुका अस्तित्व तथा संस्कारोंके अस्तित्वसे भिन्न तिमिरादि निमित्त हैं वेसे, अध्यासरूप संस्कारादिसे भिन्न दार्ष्टांतमें अन्य सामग्री माननेसे द्वैतापत्ति होगी. *

जो यह कहोकि 'जेसे नभमें नीलताका अध्यास सामग्री विना, सर्वको होता है, वेसे ब्रह्मको अज्ञान–अविद्यादि सामग्री विना, अध्यास बनता है.' सोभी ठीक नहीं. नभके अज्ञान ओर दूर दोष सामग्रीसे नभमें नीलता प्रतीत होती है [नीलता यद्यपि अध्यासरूप नहीं है. तथापि यहां वदांतियोंकी रीति मानके लिखा है], अतः जेसेकि, स्व

---

* वेदांतके एक पक्षकारने जगताध्यासकी सामग्री, ब्रह्म मायाका अस्तित्व विलक्षणत्वादि बताये हैं. ओर अंतमें सब वेदांति यह कहतेहैंकि, जहां कोइभी दोष नहो वहां (नभनीलता समान) केवल अविद्या दोषसेही अध्यास बन सक्ता है. परंतु विचार दृष्टिसे द्वैतापत्ति सिवाय उनको छूटकारा नहीं. जहां ब्रह्म अज्ञानी नहीं ओर अज्ञान–माया–अविद्याको अनादि कहा, वहांही उसकी अनंततासे द्वैतापत्ति होती है. जेमाके प्रसंगमें सिद्ध किया ओर करेंगे.

स्वरूपका अज्ञान सामग्री माना है वेसे, अन्य कारणभी कहने पडेंगे. किंवा केवल अज्ञान मात्र माननेसे पूर्व प्रकारवत् प्रबल दोष आनेसे अध्यासकी सिद्धि नहीं होती. ओर अज्ञान, संस्कारादि सामग्री विना, जो अध्यास मानोगे तो, उसकी निवृत्तिभी सामग्रीके विना होनी चाहिये.–तत्वमस्यादि उपदेशकी आवश्यकता नहीं.–तद्भिन्न निवृत्तिकी सामग्री सिद्ध नहीं होने वा अकारण स्वाभावतः होनेसे कभीभी, निवृत्त नहीं होगा. उसका परिणाम यह सिद्ध होगाकि प्रपंच अध्यासरुप नहीं किंतु सत्य है. [विशेष दोष अध्यारोप ओर कल्पित प्रसंगवत् जान लेना.]

जो अज्ञान मानकेभी अध्यास मानोगे तो, ब्रह्म एक है उसको स्व स्वरुपकाही अर्थात् एक अज्ञान होगा. अतः अद्यापि किसी एकको स्वरूप ज्ञान होनेसे सर्वकी निवृत्ति होजानी चाहियेथी. किंवा पूर्वोक्त नियम (ज्ञाता ज्ञेय भिन्न, स्व स्वरूप ज्ञानाभाव) से अद्यापि किसीको ज्ञान हुवा नहीं ओर न होगा. अतः अज्ञानमें, अध्याससामग्रीका अभाव सिद्ध होजाने वा अध्यासका कारण अज्ञान नित्य रहनेसे जीवेश्वर माया ओर प्रपंच अध्यासरुप नहीं, किंतु सत्य हैं, यह सिद्ध होगा.

पुनः अनादि, अनिर्वचनीय, स्वात्माश्रय दोषवाला, स्वतंत्र वा परतंत्र] रुप अज्ञान करके, असामग्री अनियत, अध्यासरुप वस्तुशून्य प्रपंच, प्रतीतिका विषय होता हो तो, वंध्याके पुत्रभी प्रतीत होना चाहिये १. उक्त अज्ञान, अखंड निर्विकार कूटस्थ–ब्रह्म रुपमें, प्रपंचको, जललकीर समान कोतरता हो–ब्रह्म परिणामी सक्रिय होता हो तो, व्याघात दोष होगा. अज्ञानाधीन ब्रह्म होनेसे अज्ञानप्राप्ति. श्रेय होगा;

जोकि, वेदांत पक्षके विरुद्ध हे २. उक्त अज्ञान, स्वाभावतः अपने अंशमें त्रिपुटि-प्रपंच-कोतरता हो तो, सावयव ठेरेगा. स्वात्माश्रय दोष होगा. गौरव दोष आवेगा ३. 'अज्ञान आपही नाना परिणाम हुवा अस्पर्श्य अधिष्ठान ब्रह्म विषे [आश्रित] अध्यासरूप प्रपंचस्वरुप बनता हो,-त्रिपुटीरूप होताहो,-ब्रह्मका विवर्त्त (आगे वांचोगे) होताहो, ब्रह्ममें बंध, मोक्ष, द्वैताद्वैत इत्यादि अन्यथा प्रतीत कराता हो-अर्थात् न किसीको अध्यास, न किसीका अध्यास, न कोइ अध्यासकी सामग्री, न अध्यासको अध्यास रूपसे ज्ञाता, न कोइ द्रष्टा-दृश्य-इत्यादि मानें तो,' यह सिद्धांत किसी निमित्तका आश्रय लेता हे, वा नहीं? अज्ञानको एसा करनेमें कोइ निमित्त हे वा स्वाभावतः करता हे? यह दो प्रश्न उठते हें. उभय पक्षके उत्तर मिलने समय पूर्वोक्त दर्शन (८, १०, १२, १३, १५, १७, १८) ओर वक्ष्यमाण [२० वगेरे] प्रसंगगत सूचित दोष प्राप्त होंगे (दोहराके देख लेना चाहिये). प्रधानवाद (सांख्यमत) मानना पड जायगा. स्वभाववान अज्ञान अनादि अनंत मानना पडेगा. ओर इस दोषका परिहार न होगा; वोह यह हे:-अपना आप [ब्रह्म, अज्ञान, माया, अविद्या, अंतःकरण, वृत्ति, वा हरकोइ] को अध्यास होना असंभव; क्योंकि अपने समान-सजातीय पूर्व वस्तुके संस्कार हों तो, अध्यास हो, तिस विना. अध्यास होवे नहीं. प्रसंगमें अपने समान ओर संस्कार वा तिसका आधार अभिमानी, तद्भिन्न (अध्यासीसे भिन्न) नहीं; अतएव अपना अपनेको अध्यास हे, एसा कहनाही नहीं बनता. इस रीतिसे अज्ञान स्वयं तो, अध्यासरूप नहीं ठेरता. ओर उसको अध्यासका

निमित्त मानें तो, पूर्वोक्त प्रकार समान संस्कारादि मान्नेसे द्वैतापत्ति होगी–अनेक दोष आवेंगे. इसलिये अज्ञान और तिसका परिणाम (त्रिपुटि प्रपंच, प्रधानवादवत्) अध्यासरूप–ज्ञान निवर्तनीय नहीं; किंतु सत्य हे, एसा सिद्ध होगा. और जब उस [अज्ञान–अध्यास] का अध्यासी द्रष्टा–ज्ञाता–उपदेष्टा–सिद्धकर्ता, अज्ञान (अध्यास)से भिन्न मानोंगे तो, पूर्वोक्त दोष प्राप्त होवेंगे ४. इसलिये प्रपंच–अज्ञान, अध्यासरूप नहीं.

इस रीतिसे विसंवादि भ्रम[1] समान, माया–अज्ञान–और उसके कार्य [जीव–ईश्वर–जगत् और उनका ज्ञान] को संवादि भ्रमरूप[2] नहीं मानसकते; किंतु ब्रह्मवत् सत्य मान्ने पडेंगे.–अध्यासरूप नहीं. जब यूं हे तो, नवीन वेदांतियोंका तमाम पक्ष–मत–मंतव्य त्याज्य होगा.

---

१ निष्फल प्रवृत्तिका जनक भ्रान्तिज्ञान और उसका विषय, विसंवादि भ्रम कहिये हे. यथा छिद्रमेंसे दीपककी प्रभा देखके मणि जानके प्रवृत्ति होती हे. तहां, मणि और उसका ज्ञान यह भ्रम हे.

२ सफल प्रवृत्तिका जनक भ्रांतिज्ञान और तिसका विषय सो संवादि भ्रम कहियेहे. यथा मणिकी प्रभा देखके मणिकी बुद्धि और प्रवृत्ति. यहां मणि प्रभा, मणि नहीं; किंतु अयथार्थ वस्तुके ज्ञानसेभी [काकतालीय न्यायवत्] वांच्छित फलकी प्राप्ति हुई. अर्थात् मणिप्रभाद्वारा मणिकी प्राप्ति हुइ हे. इसी प्रकार ब्रह्मतत्वकी उपासना फलप्रद होजाती हे.

. वाचक महाशय ! यहां प्रसंगमें " अधिकारी [अंतःकरण–जीव वा ईश्वर] स्वयं अध्यासरुप–अज्ञानके कार्य हें " एसा वेदांती भाइ मानते हें. तो उनको ब्रह्म नामक मणिकी प्राप्ति केसे होगी ? नहीं. जेसे अक्रिय ब्रह्म वा आकाशादिसे वायवादिकी उत्पत्ति मान्ना

अनिर्वचनीय-दर्शन-१८.

आपके मंतव्यानुसार स्थूल सूक्ष्म व्यष्टि समष्टि प्रपंच [जगत्] का उपादान माया-अज्ञान-अविद्या किंवा माया विशिष्ट चेतन ईश्वर, अनिर्वचनीय-मिथ्या-सिद्ध नहीं होते; क्योंके जो केवल रज्जु सर्प वा स्वप्नादिके दृष्टांतमात्रसेही ब्रह्म विषे अनादि माया मिथ्या और सांत मानते हो तो, रज्जु सर्पादिमें जेसे अनिर्वचनीय सर्पादि और तिनके ज्ञानका अनिर्वचनीय अज्ञान-अविद्या-उपादान हे, उससे भिन्न, विलक्षण (न, अनिर्वचनीय-रज्जु समान सत्तावाले) तिमिर-निद्रा-संस्कारादि अन्य निमित्तभी हें, तद्वत् शुद्ध व्यापक ब्रह्ममें जगत्के उपादान अनिर्वचनीय माया-अज्ञानसे भिन्न, अन्य-[न-अनिर्वचनीय] निमित्तभी कहने पडेंगे. और जब अन्य निमित्त मानें, तो वे, अनिर्वचनीय न होनेसे द्वैतापत्ति होगी. उनकोभी अनिर्वचनीयरूप मानों तो, अव्यवस्था होजायगी. रज्जु सर्प और पूर्व दृष्ट सर्प तथातिमिर रज्जु आदिवत् विलक्षणता-सत्ताभेद-सिद्ध न होगा. ब्रह्म भी वेसा (रज्जुवत्) मान्ना पडेगा.

असंभव हे, वेसेही, अयथार्थ-मिथ्या-अंतःकरणादिको ब्रह्मकी प्राप्ति मानना असंभव हे. अन्यथा स्थाणुपुरुषकोभी दृष्टा (स्थाणुदृष्टा मनुष्य)की प्राप्ति होजानी चाहिये. परंतु एसा नहीं होता. अतः उक्त दृष्टांत विषम हे.

जोकि प्रस्तुत प्रसंगसे इतर अज्ञान, अनिर्वचनीयख्याति वगेरे प्रसंगोंमें इस संवादि, विसंवादि भ्रमके मूल पर तकरार की गई हे, उससे इन दृष्टांतोंका बाध होजाता हे; अतः विशेष खंडन नहीं लिखा हे. स्वयं जानलेने योग्य हो

रज्जु सर्प, स्वप्न, शुक्ति रजत, नभनीलता, शंखपीतता, मृगतृष्णा, इत्यादि वेदांतसंप्रदाय प्रचलित दृष्टांत साध्य हैं; इसलिये साध्यरूप दार्ष्टांत,-इनसे सिद्ध करना योग्य नहीं है, और इन दृष्टांतोंद्वारा मान्य नहीं होसकता. अतः सर्वमान्य सिद्ध वा अनुभवगम्य हो. एसी प्रकारसे मिथ्यात्व-अनिर्वचनीयत्व-सिद्ध करदेना चाहिये. रज्जु सर्पादि अनिर्वचनीय नहीं हैं-सर्व मत वा शास्त्रकारोंका उस विषे विवाद तथा भिन्न २ मत है, तथा शुक्ति अनुभवसेभी अनिर्वचनीयत्व सिद्ध नहीं होता है, सो संक्षेपसे जनाते हैं:-जहां रज्जु [सर्प] वाले स्थानमें रज्जुविषे सर्प भासे और रज्जु समीपही श्याम सर्पभी हो; किंवा जहां शुक्तिमें रजत भासे और शुक्ति पास वेसाही रजतका टुकडाभी पडा हो; तहां, रज्जुमें सर्प और सर्पमें रज्जु, किंवा रज्जुमें सर्प और सर्पमें सर्प किंवा, सर्पमें रज्जु और रज्जुमें रज्जु भासे;-[एसेही शुक्तिमें रजत, और रजतमें शुक्ति, किंवा शुक्तिमें रजत और रजतमें रजत, किंवा रजतमें शुक्ति और शुक्तिमें शुक्ति भासे]-वहां भ्रमविषयक पदार्थ-सर्पादि और उनका ज्ञान, अज्ञान-अविद्या-का परिणाम तथा अनिर्वचनीय सिद्ध नहीं होते; क्योंके जिस क्षणमें रज्जुविषे सर्प और सर्पमें सर्प भासता है, वहां पूर्वोत्तर दो क्षण हैं.-प्रथम क्षणमें रज्जुके सामान्यांशको, अंतःकरणकी वृत्ति विषय करती है, पश्चात् वहां अविद्यामें क्षोभ होके संस्कारानुसार अविद्याके तमांशका सर्पाकार और सत्वांशका सर्प-ज्ञानाकार परिणाम होता है. [यह वेदांत पक्षको संमत है], दूसरी क्षणमें इन उभय परिणामी अविद्याका तिरोधान होके समीपस्थ सर्पमें सर्प भासता है. अर्थात् अंतःकरणकी वृत्तिका सर्पाकार और सर्प-ज्ञानाकार परिणाम

होता है. पुनः जो रज्जु सर्पको देखें तो, पूर्ववत् होता है. इस प्रकार वारंवार देखनेसे अनिर्वचनीय ख्यातिकी रीतिसे विलक्षण वृत्ति उत्पन्न-नष्ट होती है; परंतु उसमें विलक्षणता ज्ञात नहीं होती, और न किसीके अनुभवमें आती है. केवल शब्दमात्र मारामारी करते हैं. जिस काल उनको देखकर अन्य समीप स्थलमें जाके द्दष्टा पुरुष, अन्यसे कहता है के, वहां दो सर्प हैं, मैंने देखे हैं. इस वृत्तिके विषय, पूर्वद्दष्ट उभय सर्पका ज्ञान और आकार है. तथापि इनमें विलक्षणता प्रतीत नहीं होती. अर्थात् भिन्न २ विलक्षण वृत्तिके विषय, उभय सर्प, यहां एक अंतःकरणकी वृत्तिके विषय होते हैं. तथाही दीपक लाके जब देखते हैं तो भी, वृत्तिका भेद नहीं जान पडता. किंतु एसा कहता है के रज्जुमें मुझको सर्प भासा, वोह अन्यथा-अयथार्थ-कल्पना थी. अब यदि द्दष्ट कालमें वा कथनकालमें वा दीपक कालमें स्वप्न जागृतकी वृत्तिके भेद समान, किंवा समानकाली दो वृत्तिरुप प्रत्यभिज्ञा, अथवा मादक अमादक वृत्ति वा रोगी निरोगीवृत्तिके व्यवहार* भेद समान किंचितभी विलक्षणता प्रतीत होती, तब तो अविद्याका परिणाम और अविद्याकी वृत्ति होगी, एसा अनुभवगम्य सिद्ध होजाता, वा विश्वासरुपही मानलेते; परंतु एसी वि-

* स्वप्नमें जाग्रतके शरीरसे अज्ञात बकना. हिस्टरिया रोगग्रानसे कालमें अंतःकरण वृत्तिका अपनेको, वा अपनेको चांडाल कहना-उसके निवृत्त हुये वेसा स्मरण वा व्यवहार न होना-उभय वृत्ति व्यवहारकी स्व परको विलक्षणाता ज्ञात होना. निदान जब एक अंतःकरणकी वृत्तिके व्यवहारादिकी विलक्षणता है; तो स्वरुपसे तदन्न-भिन्न अविद्या और अंतःकरणकी वृत्तिकी विलक्षणता केसे ज्ञात न हो? अर्थात् जो वहां दो वृत्ति होती तो विलक्षणता प्रतीत होनी चाहिये.

लक्षणता प्रतीत न होनेसे विश्वास वा शब्द सिवाय अन्य पुरावा नहीं.

यद्यपि जब, रज्जुमें सर्प देखते हें तबभी, रज्जुका सामान्यांश यथार्थ वृत्तिका विषय, ओर सर्प अयथार्थ वृत्तिका विषय हे, एसा मानते हो. इसी प्रकार पूर्वोक्त रज्जु सर्प ओर सर्प सर्पमें दो विलक्षण वृत्तिका कथन संभव हे; तथापि वहां, रज्जुके ज्ञान पश्चात् ओर उस कालमें विलक्षणता ज्ञात नहीं होती. ओर यहां तो, अतादात्म्य दृष्टांत हे. प्रसंगमें रज्जुकी श्यामता, लंबाइ–सामान्यांश, इदमत्वका विषय हे; वेसे सर्पकी श्यामता, लंबाई–सामान्यांश हे.–इदंत्व उभयमें सामान्य हे. आवरणके निमित्त तिमिरादि तथा चक्षु अंतःकरणादि समान हें एसी व्यवस्था हुये, एकविषे सर्पके संस्कार–आकार, अन्यमें वेसेके वेसे होनेमें, कोइ हेतु नहीं; अर्थात् अविद्याका विलक्षण क्षोभ होनेमें कोइ विशेष कारण नहीं सिद्ध होता. यदि रज्जुमें सर्प ओर सर्पमें रज्जु भान होता, तब तो समष्टिका एक कारण मान लेते; परंतु वहां एसा नहीं हे. अतः एक वा नाना पुरुष देखें तोभी, वहां प्रत्येककी वृत्तिमें स्व स्व संस्कारद्वारा उभय पदार्थमें एक सर्प ओर एक रज्जु–(अर्थात्) अन्यथा प्रतीत होने चाहियें, यथार्थ नहीं. जो भ्रमसामग्री न होवे तो, यथार्थ प्रतीत होने चाहियें जेसाकि होताही हे. इसी हेतुसे पूर्वोक्त भ्रमविषयक वृत्तिमें समानता होने योग्य हे; परंतु नहीं हे.

यद्यपि वृत्तिका प्रथम रज्जुआदि (अधिष्ठान) के सामान्यअंशआकार परिणाम, उत्तर क्षणमें तद्ज्ञानाकार परिणाम, ओर उसी वृत्तिका संस्कारानुसार (अध्या-

स) सर्पादि आकार तथा (उत्तर क्षणमें) सर्पादि ज्ञानाकार परिणाम, होना मानके, परिणामकी विलक्षणता ज्ञात होती हे. तथापि उक्त सर्व परिणामोंका उपादान एक हे, उसमें विलक्षणता नहीं हे. अर्थात् भ्रम प्रसंगमें अविद्या वृत्ति, अधिष्ठानवृत्ति दो भिन्न २ नहीं हें. जो कदाचित् वृत्तिकोंही अविद्याविशेष कहोगे, तो अधिष्ठान इदमत्वाकार [यथार्थ वृत्ति] ओर सर्प, सर्पज्ञान (अयथार्थवृत्ति), उभय समान हुइ; परंतु यह बात कहना, 'अग्नि शीतल' कथन समान हे. अतः उभय वृत्ति समान (मिथ्या वा सत्य) ही माननी पडेंगी. विलक्षण नहीं. (तद्वत् दार्ष्टांतमें ब्रह्मवृत्ति, मायावृत्ति, समान होगी, अर्थात् ब्रह्म सत्य ओर माया सर्पवत् मिथ्या न कह सकोगे. किंतु उभय सत्य वा उभय मिथ्या मानने पडेंगे.) शंकाः—यद्यपि पूर्व विद्यमान अधिष्ठानके इदमाकार जो वृत्ति हुइ, उससे उत्तर क्षणमें तिसके ज्ञानाकार वृत्ति होना संभव हे; क्योंके एकही-वृत्तिका ज्ञेय ओर तद्ज्ञानाकार समकाली परिणाम होना असंभव हे. तेसेही सर्पाकार ओर तद्ज्ञानाकार एक कालमें वृत्तिका परिणाम नहीं होसकता. क्योंकि; ज्ञेयके विना, ज्ञेयाकार परिणाम होना असंभव हे. तथापि तुम्हारी रीतिसे पूर्व कालमें ज्ञेय सर्प तो हे नहीं, तो तदाकार केसे परिणाम होगा? ओर जिस कालमें सर्पज्ञानाकार परिणाम हुइ, उस कालमें जो वृत्तिका परिणाम सर्प मानें, सो तो वहां हे नहीं; क्योंके जिस वृत्तिका सर्पपरिणाम हुवाथा वोही वृत्ति, रूपको बदलके तिसके ज्ञानाकारपरिणाम हे, अतः भ्रमस्थल विषे अंतःकरणवृत्तिसे भिन्न, अविद्याको न मानना ठीक नहीं-व्यवस्था नहीं होती. एतदृष्टि अ-

विद्याका स्वीकार है. उसमेंभी दो प्रकार हैं:-जिस कालमें सर्प उत्पन्न हुवा उसी कालमें, अर्थाध्यास मानने वालोंकी रीतिसे तो, उस अविद्याजन्य सर्पाकार और अंतःकरण वृत्तिका सर्पज्ञान परिणाम समकाल होता है. और अर्थाध्यास ज्ञानाध्यास मानने वालोंकी रीतिसे एकही अविद्याके दो अंशके सर्प और सर्पज्ञानाकार समकाल परिणाम होता है. इन उभय रीतिसे सर्प-अविद्याका परिणाम, अंतःकरणकी वृत्तिसे भिन्न है. इसी वास्ते अनिर्वचनीयत्वकी सिद्धि है. अन्यथा प्राक्सिद्ध सर्पकी उत्पत्ति प्रतीति और बाध नहीं सिद्ध होता. जब यूं है तो विलक्षणता. अर्थापत्तिसे मान सकते हैं. समाधानः-उक्त शंकाका यह उत्तर है किः-जहां वृत्तिको भिन्न विषयकी प्रतीति हो वहां, रज्जुआदिके साथ वृत्तिका संबंध, तदाकारता, तिसकी प्रतीति (अपरोक्षता [१]) तद्ज्ञान(प्रतीति आकार परिणाम, यह तमाम कार्य, क्रमशः होकर, यह रज्जुआदि है, एसा व्यवहार होता है. भ्रम स्थलमें अधिष्ठानके सामान्यांश साथ वृत्तिका संबंध, तिसके सामान्यांशके आकार वृत्तिका होना, सामान्यांशकी प्रतीति (अपरोक्षता [१])-तद्ज्ञानाकार परिणाम (इस कालमें वृत्तिका तदाकार-ज्ञेयाकार-परिणाम नहीं), यह तमाम कार्य. वृत्तिकी अद्भुत योग्यतासे अत्यंत (अकथ) समीप कालमें होकर "यह कुछ है" एसा अप

---

१. अपरोक्षत्व, प्रतीतिके निर्णयका यहां प्रसंग नहीं है, अतः विस्तार नहीं करते. तद्रूप वृत्ति बाहिर, जाती है वा नहीं, इसका विस्तार नहीं लिखते. वास्तवमें वृत्ति बाहिर नहीं जाती. यह प्रत्यक्ष परीक्षासे सिद्ध है. (तत्वदर्शन नामक ग्रंथमें खंडन मंडन सहित परीक्षा प्रकार है. जिसको इच्छा हो सो वोह ग्रंथ वांचे.)

रोक्ष वा परोक्ष व्यवहार होता है. (और कभी नहींभी होता; किंतु,) तिस पीछे विशेष ज्ञानकी सामग्रीके अभावसे ["जैसाकि कभी शरीरांतर मकान सर्पादिका आकार, वृत्ति रखती है, किंवा वे प्रकृतिमें जललकीर समान वृत्ति करके अंकित होते हैं[1] और मकानादि हुयेविना उनकी प्रतीति होती है–अर्थात् तदाकारवान वृत्तिही विषय होती है, एसे एक बार वा वारंवार परिणाम हों, वेसेही"] सर्पसंस्कारवाली वृत्तिका. सर्पाकार परिणाम, उसकी प्रतीति (सर्पकी अपरोक्षता) और पीछे उसी वृत्तिका सर्पवत् ज्ञानाकार परिणाम–यह कार्य क्रमशः होके 'सर्प है' वा 'यह सर्प है' एसा. व्यवहार होता है. जेसे शरीर अंतर वृत्तिमें प्रथम सर्पादि आकार परिणाम और उसकी प्रतीति और सर्पज्ञान परिणाम–वृत्ति होती है; और पीछे मैंने सर्पाकार किया–इत्यादि व्यवहार होता है [यहां, घटादि विषयप्रकार समान अर्थात् विषय, विषयवृत्तिसंबंध, विषयाकारता, इन सर्वका अपरोक्षत्व और विषयज्ञानप्रकार जेसे, होता है वेसा प्रकार नहीं है]. तद्वत् भ्रमस्थलमेंभी समझ लेना. अब,[1] जो वृत्तिका रज्जुदेशमें गमन मानो, तब तो, जेसे आकाशादि बाह्य स्थलमें वृत्ति आकार धरके (कोतराके) ज्ञेय, क्रमशः ज्ञानका विषय होता है; वेसे, मान लेना. और जो विषय पास नहीं जाती किंतु, शरीर इंद्रियस्थ रहना मानो तो, पूर्वोक्त आंतरीय दृष्टांतवत् घटा लेना.[1] "भ्रमस्थल [स्वप्नादि] में संस्काराभ्यासबलसे अज्ञाताकार कार्य होते हैं और उक्त [मनरचित] दृष्टांतोंमें ज्ञात परिणाम होते हैं. भ्रमस्थलमें विषय, नहीं और वृत्ति-

१ यहां वेदांत विलक्षण दो पक्ष हैं दोनोंका फल एकही है.

ही विषयरूप विषय होती है. अन्य स्थलमें विषय वा विषयकी किरणो–आकारसहित विषय. वृत्तिके विषय होते हें;" [वृत्तिका अपरोक्षत्व सूक्ष्मदर्शीविना प्रतीत नहीं होता] इतनी विलक्षणता है. ओर पूर्ववत् असमकाली परिणाम होना¹ संभव है. तथाही जहां वृत्ति मात्र [साक्षीका], विषय हो वहांभी करण [वृत्ति, वृत्तिके आकार हुये विना] प्रतीतिका विषय होती है, यह आपकाभी सिद्धांत है; ओर उसका व्यवहारभी स्वगम्य मानते हो. तब भसंसर्गाध्यासमें एसा क्यों न मान लिया जावे ? इत्यादि अनेकी रीतिसे प्रकृति, वृत्तिसे भिन्न, सर्पका उपादान मानना असमीचीन है. आपकी रीति, उपादानकी विलक्षणता दरसाये ओर भिन्न परीक्षा कराये विना, शब्दोंके* दवाव मात्रसे नहीं मान सकते ओर उसकी असमीचीनता उपर कहआये हें. इस रीतिसे रज्जु आदिमें सर्पादि ओर उनका ज्ञान, अंतःकरणकी वृत्तिसे भिन्न नहीं. अतः वृत्तिवत् सत्व है; वृत्तिसे विलक्षण नहीं; ओर आपका उक्त नियम [" भ्रमस्थलमें परस्पर भिन्न ज्ञेय ज्ञान परिणाम वाले समकाली हुये विना भ्रम नहीं होसक्ता"] सर्व स्थलमें नहीं लगता.

ओर जो आपकी रीति मानलेवें तो, दोष आतेहें; क्योंकि जहां विषयका ज्ञान होता है वहां, विषय. विषय साथ संबंध ओर वृत्तिकी तदाकारता हो, तब प्रतीत हो. आपकी रीतिसे तो अविद्याके तम भागने सर्परूप रखा ओर

1 यह समाधान अद्वैतमतके ज्ञान योग प्रसंगानुसार किया गया है. इसका विस्तार तत्वदर्शन नामक ग्रंथमें है.

* ख्याति माननें वालोंमें वा वैसे ग्रंथोंमें शब्द भंडोल विशेष होता है. अनुभव वा सार ' शून्य '.

सत्व भागने तिस सर्पका ज्ञानभाग परिणाम किया है; इस प्रकार विषय–सर्प और तद्ज्ञान परिणाम समकाली [एक कालमें] हैं. इससे क्या आयाकि सर्प विषयकारक अविद्याकी सत्व वृत्ति, सर्पाकार नहीं हुई. और असंबंध–विषय किये विना, सर्प ज्ञानाकार होगई. अब यह विचारनेका है कि, जो विषयके संबंध और वृत्तिके तदाकारता विनाभी ज्ञान हो तो: सर्प के बदले माला वा जलधाराका ज्ञान क्यों न हो ? अर्थात् संस्कारवत् अविद्याका परिणाम हो; परंतु असंबंध माननेसे अविद्याके सत्वांशका अन्य ज्ञानाकार क्यों न परिणाम हो ? सर्पविना, सर्पज्ञानाकार क्यों न परिणाम हो ? आपकी रीतिसेभी, ज्ञेयवत् ज्ञान तो जबही होगा कि ज्ञेय, प्रतीतिका विषय होजावे; और विषयप्रतीति. विषय साथ वृत्ति और साक्षीके संबंध तथा वृत्तिके तदाकार हुयेविना, नहीं होती. अतः समकाल ज्ञेय और ज्ञानोत्पत्तिके अभाव [असंभव होने]से आपकी रीति ठीक नहीं है. जो यह कहोगे कि, ‘ अविद्याका एसाही स्वभाव है कि, कहेहुये प्रकार समान रचना करे ’ तो, दार्ष्टांतमें गडबड होगी.–मायामेंसे जगत्कर्त्ता जो ईश्वर–उस ईश्वरको उडादेना पडेगा.–सांख्यमत स्वीकारना पडेगा.–वा जडवाद लेना होगा.–अव्यवस्थावाला स्वभाववाद ग्रहण होगा.–यथार्थ, अयथार्थका यथावत् भेद, सिद्ध न होगा.–स्वपक्ष सागना होगा. इत्यादि.—जो एसा कहोगे कि “ अविद्या जिस क्षणमें सर्पाकार हुई, उसीक्षण [वा उससे उत्तर क्षण]में ‘ उस सर्पको विषय करेगी एसी ’ वृत्तिरूप हुई; उसके पीछे उत्तर क्षणविषे. इस वृत्तिने सर्पको [घटादि प्रकारवत्] विषय किया है; इस लिये उक्त दोष नहीं आता. ” तहां,

ज्ञानरूप अंतःकरणकी ओर अविद्याकी वृत्तिमें कुछ अंतर–विलक्षणता–भेद नहीं मालूम होता, यह उपर कहा है.–अर्थात् उक्त तमाम दोष प्राप्त होंगे. गौरव दोष होगा. पूर्व पक्षी वाले मतको अवसर मिलेगा (व्यर्थ विस्तार करना ठीक नहीं, इस लिये नहीं लिखा). *इत्यादि कारणसे उक्त मंतव्य सयुक्त नहीं.

तथाहि जब कहीं भ्रमस्थल विषे--रज्जुमें सर्प भान हो ओर अन्य स्थलमें कहें के 'वहां सर्प है.' यह कथन यथार्थ वृत्तिका विषय है. परंतु सर्पभान कालमें तो, अंतःकरणकी वृत्ति [यथार्थ वृत्ति] नहीं है; किंतु अविद्याकी वृत्तिने विषय किया है; ओर साक्षीभास्य हुइ है तब अंतःकरणकी वृत्ति उसकी चर्चा कैसे करेगी ? यदि कहो के "अविद्याका साक्षी में लय होता है ओर साक्षीमें अंतःकरणकी वृत्ति है,

* प्रचलित शंका समाधानमें अपरोक्षत्व [विषयकी प्रतीतता] वृत्तिका विषयके साथ संबंध, तदाकार परिणाम, वृत्तिका पहिले विषयके आकार, उत्तर क्षणमें ज्ञानाकार परिणाम होना, इन सबका ज्ञान [ओर अपरोक्षत्व], वृत्ति शरीरसे बाहिर जाती है वा नहीं; ओर बाहिर नहीं जाती तो, रूपादि विषयकी कैसे प्रतीति होती है; भ्रमज्ञान ओर उसके विषय सर्पादिकी उत्पत्ति [प्राकसिद्ध ओर] नाशकी अप्रतीति–प्रतीति, तथा उनका आश्रय, वृत्तिउपहित चेतन साक्षी अधिष्ठान आधार है वा क्या ?–इत्यादि प्राप्त विषयोंका निर्णय, इस लिये नहीं दिखायाकि, आगे यह वांचलोगे कि, यदि वेदांतकी रीति समान भ्रम प्रसंग मानलेवें तोभी, दृष्टांत मानने मात्रसे दार्ष्टांतकी सिद्धि नहीं होती. अतः ग्रंथका व्यर्थ विस्तार करना सफल नहीं. जिस किसीको उक्त विषय देखनेकी इच्छा हो सो, तत्वदर्शन नामक ग्रंथगत अदृष्टमत प्रसंग ओर भ्रमनिर्णयादि विषय देखलेवे.

अतः [स्वप्न जाग्रत वा सुषुप्ति जाग्रतवत्] उसके संस्कार अंतःकरणमें अंकित होके उद्भव होते हैं;" तो [जबके कार्यरूप अंतःकरणमें एसा होता हो तो], अंतःकरण वृत्तिवाले ज्ञानजन्य संस्कारभी उसके कारण अविद्यामें (भी) होने चाहियें. अर्थात् जहां सर्पमें सर्प देखके उत्तर क्षण विषे, रज्जुमें सर्प देखा वहां, "पूर्वोक्त सर्प देखा" इसको अविद्याकी वृत्तिका विषय कहना पडेगा. जेसेके, प्रथम क्षणमें रज्जुमें सर्प, दूसरी क्षणमें सर्पमें सर्प, तीसरी क्षणमें उसी रज्जुमें सर्प देखके उपराम हुये. तब पूर्व सर्पमें सर्पभास कथन वा मनमें गृहण, अविद्याकी वृत्तिसे हुवा हे, ऐसा [क्युं न माना जाय ? अर्थात् मानना], सिद्ध होजायगा; क्योंके अविद्याउपहित साक्षीके सन्मुख उस काल कार्य होनेसे अंतःकरणउपहित साक्षीका विषय मानना पडेगा. ओर इससे विपरीतता आवेगी. अर्थात् भ्रम वृत्तिभी, उसी प्रकार यथार्थका स्मरण वा कथन करके उपदेश करने योग्य हे, जेसेके यथार्थ वृत्ति, भ्रमका स्मरण कथन ओर उपदेश करती हे. जेसे, भ्रमका विषय, भ्रम निवृत्ति पश्चात् कथन हे. वेसे वहांभी अंतःकरणकी वृत्ति, निवृत्ति–तिरोधान–पश्चात् अविद्याकी वृत्ति उद्भव हुये कथन हे. एसा होनेसे यथार्थ अयथार्थ, अयथार्थ यथार्थ मानसकेंगे. परंतु एसा मानना अयुक्त हे.

वेसेही जहां ब्रह्ममें, जगत् सत्य वा अन्य प्रकारसे भासमान होवे, किंवा जगत् सत्य. ब्रह्म नहीं वा ब्रह्म मिथ्या, एसा प्रतीत होवे. वहां उक्त दृष्टांतसे कोइ निर्णय नहीं होता; अर्थात् जो त्रिपुटि मात्र, अध्यास मानोगे तब तो, ब्रह्म प्रतीति वा मंतव्यभी अध्यास–मिथ्या वा नहीं, मानना पडेगा, अनिश्चितरूपसे बौधमत स्वीकार होगा. ओर जो पूर्वोक्त

अर्थाध्यास मात्र मानोगे तो, दार्ष्टांतमें निरभिमानी, ज्ञातृत्व-धर्म रहित ब्रह्म तथा सर्पवत् अध्यास मिथ्या मायासे भिन्न ' माया मिथ्या—अनिर्वचनीय हे ' एसे अभिमानवाला (सर्प ज्ञाता—अंतःकरण वृत्तिवत्), तीसरा मान्ना पडेगा. जोकि आपको अनुकुल नहीं. अतः जेसे भ्रम प्रसंगमें दीपकादिसे विलक्षणता सहित प्रतितीका विषय हुवा. वेसेही पदार्थ निर्णय ओर योगादि तथा अन्य परीक्षारूप दीपकसे यथार्थ निर्णय करने योग्य हो. वर्त्तमानवत् पर, शब्द कथन मात्र वा विश्वास मात्रसे मान्ने योग्य यह विषय नहीं.

इत्यादि रीतिसे उक्त दृष्टांतों विषे अनेक प्रकारकी तकरार ओर शंका समाधान पक्षकारोंने कियेहें. तोभी, अंतमें साध्य रहे हें; इतनाही नहीं किंतु, अनिर्वचनीय ख्याति माननेवालोंमेंभी उसके निर्णयमें मतभेद हें; [देखो ख्यातिवाद ओर वृत्तिप्रभाकर ग्रंथ].

कदाचित् आपकी हठसे रज्जु सर्पादिके दृष्टांतमें सर्प ओर सर्प ज्ञान, अज्ञानका परिणाम ओर अनिर्वचनीय मानभी लेवें तोभी [दृष्टांतसे], " दार्ष्टांत वेसाही हे, जेसाकि हमनें दृष्टांत कहा वा प्रतिज्ञा की ", एसा नियम नहीं कहा जासकता. जेसे कोइ कहेके श्वान (कुत्ता), महात्मा वा महात्मा जेसा होता हे; क्योंके जेसे महात्मा, अज्ञान निद्रामें सोये हुये मनुष्योंको जगाते हें,—जिज्ञासुओंके विवेक वैराग्यरुपी धनको काम क्रोध लोभादि चोर न लेजावें, इस लिये भुसते रहते हें, संतोषी, हितेच्छु, स्वस्वामी [परमेश्वर] सिवाय अन्यके द्वारपर याचना न करने वा भीख नहीं मागनेवाले, अज्ञान रात्रिमें न सोनेवाले होतेहें. वेसेही, श्वान रातको सोये हुये मनुष्यको जगाता हे,—चोर मनुष्यका धन चोरी करके

न लेजावें, इसलिये चोरोंको देखकर भुसता है, संतोषी है-जितना मिले उसीमें संतुष्ट रहता है, हितेच्छु है, स्व स्वामीके गृह सिवाय अन्यके द्वारपर नहीं जाता, रात्रिको नहीं सोता है; अतः महात्मा जेसा है वा महात्मा है. भोवाचक ! अब जो उलटा दृष्टांत (महात्मा, श्वान जेसा है) लेवें तोभी, बनता है. परंतु विचारना चाहिये कि इस उभय दृष्टांत दार्ष्टांतसे श्वान, महात्मा वा महात्मा जेसा, वा महात्मा, श्वान वा श्वान जेसा है वा होगया ? नहीं. किंवा, संत, दुष्ट, वा दुष्ट संत जेसा है वा संत दुष्ट और दुष्ट संत है, एसा कहसकते हैं; क्योंकि संत, मिलने समय आनंददा और बिछडने कालमें दुःखदा होता है. तद्वत् दुष्ट, मिलने काल दुःखदा और अपने वियोग कालमें सुखदा होजाता है. अतः दोनों सम हैं. यहां विचारो ! क्या संत, दुष्ट वा दुष्ट समान होगया ? वा दुष्ट, संत वा संत समान होगया ? नहीं.

निदान दृष्टांतवत दार्ष्टांत हो, एसा नियम नहीं है. किंतु, अपनी प्रतिज्ञा अनुसार दार्ष्टांतको सिद्ध किये विना, प्रतिज्ञाका स्वीकार नहीं होसक्ता.-केवल दृष्टांतके धर्म मात्रसे काम नहीं चलता, वा नहीं माना जाता, एसा सिद्ध होता है. अर्थात् दृष्टांत मात्रसे दार्ष्टांतमें, दृष्टांतवत् सर्वथा घटना हो, एसा नियम नहीं है, किंतु जो प्रतिज्ञा है उसे सिद्ध करना चाहिये. एतद्दृष्टि रज्जुमें सर्प मिथ्या हो वा न हो परंतु, तद्वत् वा अन्यथा, माया मिथ्या (अनिर्वचनीय) है वा नहीं, यह वात, सिद्ध वा अनुभवगम्य कराना चाहिये. रज्जुका सर्प वा मृगतृष्णा वा स्वप्न इत्यादि मिथ्या मानेभी, तिस. स्वतंत्र अनुभव समान माया-अज्ञान-मिथ्या है, एसा नहीं मानसकते. अतः रज्जु सर्पादिके दृष्टांतसे मूलमें प्रयोजन नहीं.

तथाहि रज्जु सर्पादि किंवा जो जो दृष्टांत दोगे सो सर्व, मायाके कार्य हैं; अतः स्वकारणकी सिद्धिमें उपयोगी वा दृष्टांतरूप नहीं होसकते. जेसेकि स्वप्नगत (श्रुतसंस्कार बलजन्य) सींग पूंछवाले मनुष्य वा काशीसे द्वारका पूर्वमें वा काशी समान भुजनगर देखके जागृत सृष्टिमें वे वेसेही हैं एसा, नहीं मानसकते, किंवा जेसे स्वप्नदृष्ट पदार्थोंके दृष्टांतों से, स्वप्नके पदार्थमें मिथ्यात्व सिद्ध नहीं होसकता. किंवा स्वप्नगत पदार्थोंके दृष्टांतसे उसके कारण [संस्कारादि] जाग्रतके पदार्थ मिथ्या नहीं मानसकते. इसी प्रकार अज्ञान वा माया कृत, जो जो [जाग्रतादि ब्रह्मांडके] पदार्थ हैं उनके दृष्टांतसे, मायामें अनिर्वचनीयत्व [मिथ्यात्व] प्रतिपादन नहीं होसकता. किंतु तद्भिन्न दृष्टांत कहा चाहिये, सो तो आपके सिद्धांतमें नहीं मिलता. अतः अनिर्वचनीयत्व सिद्धिका अभाव है. इसी वास्ते रज्जु सर्पादिके निर्णयके झगडेमें नहीं पडते वा नहीं लिखे.

जो कहोकि "कार्यसे कारणकी परीक्षा होजाती है; अतः मायाके कार्य रज्जु सर्पादिके दृष्टांतसे मायाका मिथ्यात्व सिद्ध होजाता है." तो, उसके अन्य अंशभी मानने चाहियें. क्योंके उपादानसे भिन्न, उपादेयमें गुण स्वभाव नहीं आते. जेसेके प्रपंचके द्रव्य गुण नाना प्रकारके हैं, (परस्पर विरोधी—तम प्रकाश, शीताग्नि, सावयव, परिच्छिन्न, परमाणु स्वरूपसे अनाशवान, भाव अभाव इत्यादि.) वेसे, उनका उपादान [निरवयव, एक, अपरिच्छिन्न, नाशवान, विरोधी धर्मवान नहीं किंतु] सावयव परिच्छिन्न, नाना [विरोधी अविरोधीसे] समूहात्मक व्यवहार मात्र एक संज्ञाकर कहने योग्य—परंतु एक स्वरूप नहीं, अविनाशी,

परस्पर विरोधी धर्म-स्वभाववान नहीं, इत्यादि प्रकारवाला होना चाहिये. जब यूं है तो, माया-अज्ञानमें सावयवता ओर समूहात्मकता तथा अनादि अनंतपना आजायगा. ओर केवल ब्रह्मसे इतर प्रकारकी विलक्षण* है, इतनाही सिद्ध होगा. शेष सांख्य वा न्याय वा आर्यसमाजके सिद्धांतानुसार मानना पडेगा; क्योंके जड मायाके अवयवोंका संयोग वियोग कर्त्ता, तद्भिन्न अन्य [ईश्वर] मानना पडेगा. वैसे उसका भोक्ता जीवभी. कदाचित् स्व सिद्धांतमें इन सर्वको मिथ्या संज्ञा रखोतो, भलेही रखो; परंतु ज्ञान निवर्त्तनीय वा अनादिसांत सिद्ध न होगा, जोकि आपको अनुकुल नहीं है.

सत्ता-दर्शन-१९.

ब्रह्मकी परमार्थ सत्ता ओर तद्देतरकी प्रातिभासिक सत्ता वा अपरमार्थरुप सत्ता [इस प्रातिभासिक अंतर जागृतादि प्रपंचकी व्यवहारिक ओर रज्जु सर्प स्वप्नादिकोंकी प्रातिभासिक सत्ता] है; यह वेदांतका मंतव्य है. इस विषे यह प्रश्न उठता है के सत्ता, स्वरुपसे कोइ भिन्न पदार्थ है अथ-

---

* जो ब्रह्मको सत् मानाजाय तो, सत् [भाव] विलक्षण अज्ञान-माया, एसा कहना पडेगा; क्योंकि सत् विलक्षण असत् (शून्य-अभावरूप) कोई वस्तुतः वस्तु हो तो, उसको असत् कहना नहीं बनता. ओर जब असत् कोइ वस्तु नहीं तो, 'सत् विलक्षण असत्' एसा बोध नहीं होसकता. अतः सत् विलक्षण माया है. ओर जो मायाको सत् कहेंतो, ब्रह्म तदेतर विलक्षण मान्ना पडेगा. इतनाही अंतर है; परंतु इससे ज्ञान बाध्य सिद्ध नहीं होसकता-ओर न माया, ओर न उसका कार्य ज्ञान बाध्य हैं, एसा मान्ना होगा.

वा जिसकी सत्ता, उसीके स्वरूपका नाम मात्र है? जो आद्यपक्ष स्वीकारोगे तो, द्वैतापत्ति होगी; क्योंके सत्तावान ब्रह्मकी सत्ता, परमार्थरूप होनेसे अनादि अनंत ब्रह्मवत् सत् माननी पडेगी. ओर जो उत्तर पक्ष मानोगे तो, स्वप्न जाग्रत समान, माया ब्रह्मकी सत्ताका भेद सिद्ध नहीं करसकोगे; किंतु " परिभाषा कथन मात्र–विकल्प है, वास्तविकरीते स्वरुप दृष्टिसे उभय सम हैं, सत्तापना कुछ नहीं, " एसा सिद्ध होगा. जब यूं है तो, आपके सिद्धांतका उच्छेद, तथा ब्रह्मवत् माया ओर तत् कार्य जगत् बंध मोक्ष सत्य होनेसे ज्ञान बाध्य नहीं ठेरेंगे. जो अस्ति मात्र, सत्ताका स्वरुप कहोगे, तो ब्रह्म माया–उभय भावरूप हैं; अतः उभय समान हुये. जो भातिरूपका नाम, सत्ता कहोगे तोभी, पूर्ववत् समानता होगी. जो परस्परके स्वरूप धर्मकी विलक्षणताका नाम सत्ता कहोगे तो, जाग्रत स्वप्न समान मानके ब्रह्म मायाकोंभी समान मानना पडेगा. क्योंके स्वरुपत्व, उभयमें समान है. केवळ इतना अंतर है के वोह [ब्रह्म] चेतन, ओर माया जड है. जो परस्परके संबंध वा भेदको सत्ता मानोगे तोभी, समसत्ताका परिहार ओर विषमकी सिद्धि नहीं होगी; क्योंके परस्परमें भेद ओर संबंध है. अतः ब्रह्मको लेके सत्ताके नित्यत्वसे द्वैतापत्ति होगी. ओर उसीसे मायाका अनादि अनंतत्व मानना पडेगा. निदान उभयके स्वरुपसे भिन्न सत्तानामा कोइ भिन्न पदार्थ बलात्कारसे कहना पडेगा. तब यह शंका होगी के सो सत्ता सत्य वा मिथ्या? जो कहोगेके सत्य, तो ब्रह्म समान सत्य होनेसे द्वैतापत्ति होगी. जो कहोगेके मिथ्या. तो ब्रह्मभी मायावत् मिथ्या ठेरेगा. निदान सत्ताकी आपत्तिसे अद्वैत भावनाका अभाव है. समसत्ता साधक बाधक माननेसे

ब्रह्म मायाका, अधिष्ठान अध्यस्तभाव न होसकेगा. विषम सत्ता साधक बाधक माननेसेभी यही दोष आवेगा. निदान ब्रह्म मायाकी समान सत्ता वा विषम सत्ता मानो; परंतु अधिष्ठान अध्यस्तभाव नहीं बनता. किंतु आप आप स्वयंभु, स्वतंत्र माननें पडेंगे. उससे द्वैत सिद्ध ओर स्वपक्ष त्याग होगा.

विवर्त्त-दर्शन-२०.

वेदांतपक्ष विषे माया-(अज्ञान ओर उसके कार्य) को ब्रह्मका विवर्त्त माना हे; सोभी असंगत हे; क्योंकि, अधिष्ठानसें विषम सत्तावाला अन्यथा स्वरूप [परिणाम] विवर्त्त कहाता हे; इससे यह सिद्ध होताहे कि, ब्रह्म स्वरुपसे भिन्न सत्तावाला, कोई पदार्थ हे. जैसेकि जहां, रज्जुमें सर्प भासता हे वहां, रज्जु स्वरूपसे भिन्न, सर्प स्वरुप अनिर्वचनीय[1] उत्पन्न होता हे. तहां, रज्जुका सर्प विवर्त्त कहिये हे-रज्जुसे भिन्न विषम सत्तावाला अन्यथा स्वरुप [परिणाम] हे-(अर्थात् सर्प, स्वरुपसे कुछ हे.); अब यहां, यह विवेक करना योग्य हे कि, दृश्य सर्पगत इदंता-श्यामता-लंबाइ रज्जुकी विषय होती हे वा सर्पकी ?. जो प्रथम पक्ष मानो तो सर्पके नामरुप[2]-आकार मात्र रज्जुके विवर्त्त ठेरेंगे. ओर शेष तमाम-रज्जुके अंश प्रदर्शित-विषय होतेहें. निदान उभय प्रतितीयमान् होते हें.-अध्यस्त सर्प एक अंश [विशेषांश]का विवर्त्त हे, एकका [सामान्यका] नहीं. जब यूं हे तो, नाम रुपवाली (-सर्प) कुछ वस्तु हे वा नहीं ? जो वोह स्वरूपसे कुछ वस्तु हे, तबतो-रज्जुकी व्याप्य होगी. व्यापक नहीं;

1 वेदांतकी रीतिसे कहा हे.

२ नाम-शब्दभी, एक प्रकारका रूप-आकार-स्वरुप हे. प्रचलित रूढीसे तद्भिनरूप अर्थात् नामरुप करके व्यवहार हे.

क्योंकि अध्यस्त हे, विवर्त नहीं; कारणकि रज्जु व्यापक हे—व्यापक वस्तु किसि करके आवृत्त—आच्छादित नहीं हो सकती. प्रत्युत व्याप्यको चारों ओरसे आच्छादित करने योग्य होती हे. यथा लोकमान्य आकाश हे. यद्यपि, रज्जु दृष्टांत विषे तो—सर्पाकारको, रज्जुके उपर उपर भाग विषे रज्जुका आवृत्त—अध्यस्त मानसकतेहें; तथापि ब्रह्मरूप अधिष्ठानमें यह बात घटित नहीं होसकती; क्योंकि "ब्रह्म, मायाके चारों ओर, ओर बाह्यांतर व्यापक हे, माया अवर हे—पर नहीं." एसा आप मानते हो; इसलिये ब्रह्मसे 'माया आवृत्त हे' एसा कहना मान्या चाहिये. ओर पूर्वोक्त माने हुये दृष्टांत समान उभय [माया, ब्रह्म] की प्रतीति होनी चाहिये. तहां, मायाका अंश (प्रपंच) तो प्रतीत होता हे—अनावृत्त हे; परंतु ब्रह्मका कोई अंशभी प्रतीत नहीं होता. मायासे "आवृत्त होनेसे प्रतीतिका विषय नहीं," एसा मानें, तो व्यापक न होगा—परिच्छिन्न ठेरेगा. ओर जो (अहं अहं—इत्यादि सामान्य रूपसे) प्रतीत होना मानोगे, तो पूर्वोक्त प्रसंगवाले दोष (किसको प्रतीत होता हे ? मन—वृत्ति—बुद्धि वा माया वा त्रिशिष्टका विषय नहीं, इत्यादि दोष) प्राप्त होंगे. अब जो दृष्ट विरुद्ध, माया—अविद्याको सर्वथा विवर्त्त मानलेवे तो, घोर तममेंभी, रज्जु विषे सर्पकी प्रतीति होनी चाहिये. तथा आपके अध्यासकाही उच्छेद होजायगा. क्योंके अधिष्ठान [रज्जु ब्रह्म] के सामान्य (इदं) ज्ञान विना, अध्यास नहीं होसकता. इसरीतिसे वेदांतका विवर्त्तवाद अयुक्त हे.

जो कहोके "अहमत्व अस्ति—भाति—प्रिय—यह ब्रह्मके अंश हें, तद्गत अहमत्व वा अस्तित्व ब्रह्मका सामान्यांश

गोचर है. विशेष नहीं. अतः अध्यास, विवर्त बने है " सो-भी, समीचीन नहीं.-तहां, अहमंस्वका संक्षेपसे पूर्व प्रसंगों में कथन होचुका है. शेष-पृथ्व्यादि नामरूप और अस्ति-भाति प्रियका विवेक करें-तो, गोचर नामरूप व्यभिचारी होते हुये स्व कारण परमाणु वा मायामय होकर अप्रतीत रूप होंगे.-वहां कारण (माया वा अज्ञान) परमाण्वादिका नाम तो जीव कल्पित हो; तथापि जो उसका मूलाकार* है-वोह कहां नष्ट होगा? अर्थात् अस्ति भाति प्रियांशके साथ रहेगा. यद्यपि उस मूल कारणके आकारमेंभी अस्ति भाति प्रियता सिद्ध है; तथापि सो आकार उसका व्याप्य हो, व्यापक नहीं.-यदि आकारमें अस्ति भाति प्रियता प्रतीत नहीं होती; तब तो उसे अस्ति भाति प्रियरूप ब्रह्मका विवर्त कहना योग्यथा. परंतु, आकारकी प्रतीति, अस्तित्वादि रहित प्रतीत नहीं होती; अतः व्याप्य हो, आवर्त्तक नहीं मानसकते. यद्यपि अस्ति भाति आदि स्वरूपमेंभी अस्तित्वादि वा आकारकी अनवस्था होनेसे यह सिद्धांत असंगत है, इसलिये उसको मानके उक्त व्याख्यान व्यर्थ है; तथापि यहां वेदांतियोंकी रीतिको मानके कथन है, अतः व्यर्थ नहीं. निदान यदि माया कुछभी (सदा सद्विलक्षण) वस्तु है तो, उसको व्याप्य मानीजासकती है, विवर्त्त नहीं. दृश्य मात्रमें नामरूप आकारसे भिन्न, जो स्वरूप है सो, आपकी उक्त रीतिसे [जेसे सर्पके नामाकारसे इतर इदंतादि सर्प, रज्जुही है वेसे] ब्रह्म है. जेसेके पृथ्वीके परमाणुका नाम और आकार तो मायांश है, शेष जो अच्छेद्य स्वरूप सो, ब्रह्मस्वरूप है; उस अच्छेद्य स्वरूपकी जो भाति-

* आकृति-स्वरुप-रूप.

प्रतीति उस नामरुपकी भाति जेसी हे; इन उभयमें भाति भाव तो समान हे; परंतु भातिनामा व्यापकांश, नामरुप ओर जिसकाके नामरुप हे, उस स्वरुप (मेटर में व्यापक. हे. एसेही मायाके स्वरुप ओर नामरुपमें अस्ति भाति समान व्यापक हें. जब यूं हे तो, माया-अज्ञान स्वरुपनामा विवर्त्त नहीं होगा; किंतु परिच्छिन्न होनेसे व्याप्य होगा. जो यह कहोके "अस्ति भाति प्रियसे भिन्न, जितना नामरुप हे उसके सिवाय, स्वरुप वस्तुही नहीं; केवल नामरुप मात्र हे." वहां, यह शंका होतीहे कि जब माया वा अभाव वा अन्य, भावरुप पदार्थ हे, तबही, अस्तित्वादिसे उसका कथन होता हे. (अन्यथा नहीं). वेसेंही ब्रह्मस्वरुप कुछ वस्तु हे, तबही, उसको हे-[अस्ति], प्रतीत होता हे-[भाति], इष्ट, सुखद [प्रिय] हे, एसा कहते हें यहां जिसके प्रति अस्तिआदिका प्रयोग हे, सो स्वरुप हे. जो कहोगेके 'अस्ति आदिही स्वरुप हें, तद्भिन्न, स्वरुप कोइ वस्तु नहीं हे' तो, आपको एसेही माया-अज्ञान-वास्ते समझ लेना चाहिये. अर्थात् जिसका नामरुप कहते हो सो, वा जिसमें अस्ति आदि व्यापक कहते हो सो, स्वरुप हे, अतः नामरुप मात्रही नहीं. किंतु माया, स्वरुपसे वस्तु हे. ओर जो यह कहोके "ब्रह्मका अस्तिआदिही स्वरुप हे, तद्भिन्न स्वरुप, अन्य कोइ वस्तु नहीं. वेसे नामरुप मात्र मायाका स्वरुप हे, तद्भिन्न अन्य वस्तु नहीं; अतः हमारा पक्ष यथार्थ हे" सोभी नहीं बनता:-विचारना चाहियेके अस्तित्व कोइ वस्तु नहीं, किंतु किसी स्वरुपके होनेसे अस्तित्व कल्पा जाता हे. सो, किसी वा किसीके रुपमेंभी कल्पा जाता हे. वेसे किसी स्वरुपकी प्रतीति हो तब, भातिका

प्रयोग होता है; प्रतीति मात्र कोइ स्वरुप नहीं. (प्रतीतिकी भाति कहना वा उसको नाम देना अनवस्था है). जेसे भ्रमस्वरुपकी प्रतीतिसे, स्वरुपमें भाति कही जाती है, वेसे किसी वा किसीकेरुप–आकारमेंभी कल्पा जाता है. [किंवा ब्रह्म प्रतीत स्वरुप है, तो किसीका आकारभी प्रतीत स्वरुप है.] तेसेही प्रियता भागभी है. अर्थात् जो वस्तु–स्वरुप–इष्ट हो–अनुकूल हो, सुखद हो, उसको प्रियपद करके कथन होता है. ब्रह्म विश्वासु, ब्रह्मके स्वरूपको ओर जडवादी, मायाके स्वरुपको प्रिय कहते हैं; इसलिये किसी वा किसीके रुप–आकार–में प्रियताका प्रयोग होता है इसरीतिसे अस्ति भाति प्रिय कोइ स्वरुप नहीं; परंतु जिसके वास्ते प्रयोग है सो स्वरुप है; वेसे नामरुप कोइ स्वरुप नहीं, किंतु जिसके वास्ते उनका प्रयोग है सो स्वरुप है. जो यह कहोगेके ‘ब्रह्म, प्रिय–आनंद स्वरुप है, उसमें अस्ति भातिका प्रयोग है.’ तो, यद्यपि आनंद कोइ अभिप्रेत तत्व–पदार्थ–सिद्ध नहीं होता.–विक्षेप रहित मनकी स्थिरता विशेषरुप वा अन्य अवस्थाका नाम है, तथापि जो आनंदको वस्तुभी मानें तो, वोह द्रव्य है वा गुण है? जो पहिला पक्ष मानोगे तो, चेतन स्वरुपभी द्रव्य वा व्यक्ति होगा, अर्थात् दो स्वरुप–चेतन आनंद–मिलके ब्रह्म कहाता है. एसा माननेसे द्वैतापत्ति हुइ; द्रव्य माननेसे ब्रह्म सगुण मान्ना पडेगा, उससेभी द्वैतापत्ति होगी, जोके आपके सिद्धांतके विरुद्ध है; ओर आनंद’ भोगने योग्य वस्तु होती है; अतः उसका भोक्ता, उससे भिन्न, नित्य मानना पडेगा. जो नहीं मानोगे तो, उस आनंद वस्तुका अस्तित्व निरर्थक होगा. वा असिद्ध होगा. ओर जो गुण मानोगे तो, सो आगमापायि [नाशवान]

हे वा नित्य हे? जो नाशवान मानोगे, तो चेतन मात्र व्यक्ति रही. उसमें, अस्तित्वादिका प्रयोग होगा; यह सिद्ध हुवा. ओर जो नित्य मानोगे तो, गुण गुणी स्वरुपसे भिन्न होते हैं; अतः उभयके स्वरुपमें अस्तित्वादिका प्रयोग लगेगा.—आनंदको प्रिय कहना पडेगा.—ओर चेतन प्रकाशकोभी प्रिय कहना पडेगा.—तथा ब्रह्म सगुण होगा.—ओर द्वैतापत्ति होगी; जोके आपको संमत नहीं* हे. इसरीतिसे ब्रह्म चेतन स्वरुप व्यापक हे, उसमें अस्तित्वादिका प्रयोग हे ओर माया, स्वरुपका नाना नामरुपात्मक हे, उसमें अस्तित्वादिका जडवादी प्रयोग करते हें ओर अस्ति भाति ओर दुःखका चेतन वादीभी प्रयोग करते हें. जेसे ब्रह्ममें रुप—आकार, जडता ओर दुःख नहीं, वेसे मायामें चेतनता, व्यापकता, प्रियता नहीं, परंतु अस्ति भातिका प्रयोग उभयमें समान हे. प्रिय अप्रियका प्रयोग अपनी २ शैलीसे हे. यद्यपि ब्रह्म, माया ओर उसके कार्य (अंतःकरणादि) का विषय नहीं, अतः भातिका ब्रह्मनें प्रयोग असंभव हे; तथापि आपकी रीतिसे मानके विवेचन किया हे. जेसे रज्जुमें सर्पाकार भासता हे, उस आकारका उपादान, अविद्याका स्वरुप हे, सो सर्पाकार

* तद्वत् ब्रह्मके सत्य—ज्ञान—आनंद नामस्वरुप लक्षण विषे कल्पना कर्तव्य हे. जो वे लक्ष्य (ब्रह्म) के लक्षण हें तो, लक्ष्यमें तादात्म्य हुयेभी लक्ष्य स्वरूपसे भिन्न होंगे, ओर जो ब्रह्म स्वरूप हें, तो लक्षण नहीं ठेरेंगे. जो उपाधि वा कोई अपेक्षा दृष्टि, न लक्षणको लक्षण स्वरूप मानोगे, तो मिथ्यावादी ठेरोगे. जो लक्षणासे मानोगे तो, पूर्वोक्त दोष आवेंगे. जेसे 'सत्यादि विशेषण हें, स्वरूप नहीं' एसा मानोगे तो, ब्रह्मका स्वरूप सिद्ध न करसकोगे, स्व पक्ष त्र होगा. सत्यंज्ञानमानंद, श्रुतिका बाध होगा.

परिणाम हुई, एसा मानते हो–उसका स्वरूप, आकार
है, एसा नहीं मानते; किंतु नाना आकार धरनेवाला
स्वरूप है, एसा सिद्ध होता है. वेसेही मायाको आकार
मानोगे तो, उसका उपादान अन्य कहना पडेगा. एसी
नवस्थासे अंतमें कोइ स्वरूप मानना पडेगा, जोके नाना
कार रखनेको योग्य हैं.

जो यह कहोगेके " आकार दृश्य मात्र वा ब्रह्मा
ब्रह्मको अन्यथा रुपकरके देखानेसे वा उस करके अन
दीखनेसे मायाको विवर्त्त कहतेहैं अर्थात् नाम रुपाकारवा
स्वरुपसे कोइ वस्तु नहीं." तो, बंध्याके पुत्रकीभी प्रतीति
नी चाहिये.–शशशृंगाकारभी भान होना चाहिये. परंतु ए
होता तो नहीं है और जो कहोके ' भ्रम बलसे होना सं
है.' तो प्रतीतिका जो विषय है सो स्वरूपसे कुछ वस्तु है,
सा मानना पडेगा. क्योंके ' न हो और प्रतीत हो ' यह स
नियमके विरुद्ध है. यहां, यह प्रसंग नहीं है के, जो वि
हुआ सो, समूहात्मक वा संस्कारात्मक वा वृत्तिके आव
रात्मक है वा अन्य है, परंतु " है " एसा तो मान
पडेगा. जेसेके कोई स्व अंतःकरणमें, कल्पनासे सि
वा सर्प, अंतरमें कल्पे; वहां, सिंह वा सर्पाकार है, प
इतना अंतर है के, यहां वृत्तिका जो स्वरूप है उसी
सिंहाकार स्वरूप हुवा है, और वनस्थ सिंह व्यक्ति
अन्य परमाणुओंका समूहात्मक आकार है. इसीप्रकार ज
विवर्त्तवाद और नामरुप अस्ति भाति प्रियवाला पक्ष लें
गे, उसी समय ' स्वरुपसे माया वस्तु नहीं, ' इस बालवत्
तव्यका त्याग होगा. और विवर्त्तवादको छोडना पडेगा.

१ परंतु जिनका एसा विरोध धर्मवाला मंतव्य होकि " f

ओर जो उत्तर पक्ष (–इदंतादि सर्पकी हे) लोगे; तब तो, आकार मात्रही नहीं किंतु मायाका स्वरुप स्पष्टही मानना पडेगा. जेसेकि स्वप्नमें जो नामरूपात्मक पदार्थ भासते हें उनका मूल स्वरुप वृत्ति, अंतःकरण वा अविद्या हे; जिनका के संस्कारबल वा निमित्तसें आकार प्रतीत होता हे. परंतु जेसे जलपर लकडी मारें ओर कुछ आकार होताहे वेसा, स्वप्नके अधिष्ठानका [विकारी, छेद्य] स्वरुप नहीं हे. जो आकार भासता हे वोह, किसी स्वरुपका नहीं मानोगे, किंतु [जेसेके जल उपर लकडी लगनेसे जलका आकार विशेष प्रतीत हुवा, वा वायु करके जलमें तरंग हुये, वेसे], ब्रह्मका मानोगे, तो, ब्रह्म जलवत् सावयव ठेरेगा. उसके विना उसके स्वरुपसे तरंगादिवत् जगत् स्वरुप नहीं होसकता. जेसेके कनकका कुंडल, जलका बरफ, दूधका दही स्वरुप, कनकादिके सावयव स्वरूप विना नहीं होता, यह प्रसिद्ध हे. कनकका कुंडल नाम ओर आकार जो ज्ञात होता हे, उसमें नामतो कल्पित हे; परंतु आकार कनककाही हे. अर्थात् सावयव समूहात्मक जो कनक नामा पदार्थ हे, उसके अवयवोंमें कोइ कारणसे क्रिया हुइ, वा निमित्तसे समूहात्मकका परिणामविशेष हुवा; अतः उस समूहात्मकका आकारविशेष हे. तद्भिन्न आकारनामा, कोइ पदार्थ नहीं हे, के जिसको कनकादिका विवर्त कहा जाय. ओर जो कनकादिकी दृष्टि नहीं रहती, उसका हेतु अभ्यास वा अध्यास हे. अन्य नहीं. इस

विकार–शुद्ध ब्रह्मका आद्य विकार आकाश, सो अस्ति–भाति–प्रिय रूप, ओर अवकाश [जो आकाशका स्वरुप सो] मिथ्या हे " [यथा पंचदशीकारका मंतव्य हे] उनको पूर्वोक्त सूक्ष्म रहस्य, केसे समझमें आवेगा !–आशा नहीं हे.

प्रकार जो माया करके जगतको ब्रह्मका आकार मानो तो दूषित पौराणिकमतसमान ब्रह्म, सक्रिय-परिणामी ओर सावयव होगा. ओर जो [जगत्] मायाका आकार मानो तो माया, कोइ परिच्छिन्न-आकार-स्वरुपवाली, एसी सावयव वस्तु-पदार्थ हे के, जिसके नाना आकार हें. परंतु 'व्यापक ब्रह्ममें आकारमात्र मायानामा विवर्त्त हे, यह कथन असंगत हे. किंतु व्यापकविषे कोइ व्याप्य स्वरुप हे वा नहीं, यूं मानना पडेगा. अथवा सर्व जगत् सावयव ब्रह्मका परिणाम वा विकार हे, एसा (जडवाद समान) कहना होगा; क्योंकि अधिष्ठान वस्तुका जो अवास्तवसे अन्यथा भाव, उसका नाम विवर्त्त हें, एसा आपका सिद्धांत हे. तहां वेदांतीभाइ, आरंभक वा परिणामी उपादान [न्याय, सांख्य समान] नहीं मानते; किंतु विवर्त्त अधिष्ठानस्वरूप माया हे, एसा कहते हें. अतः या तो मागानामा पदार्थ परिणामी ओर आवर्त्तक मानना पडेगा, वा तो ब्रह्मकाही अन्यथा भाव कहना पडेगा. उभय पक्षमें पूर्वोक्त दोष प्राप्त होंगे.—मायाविना अन्यथा भाव मानें, ब्रह्मको परिणामी वा सावयव कहनेसे, जडवादकी प्रतिपत्ति होगी. ओर मायाविना तथा ब्रह्मके परिणामी स्वभाव पायेविना, अन्यथा भाव मानें, वंध्या पुत्र, शशशृंगभी देख पडनेका अवसर मिलेगा; जोकि असंभव हे. तथा ब्रह्मज्ञानस्वरुपको, अपनेको अन्यथा स्वरुप देखनेमें, कोइ हेतु नहीं—ओर न संभव. जो मायाको लेके अन्यथा भाव कहोगे तो, निर्विकार ब्रह्मविषे उसका अभाव होनेसे, मायाकोही उसका उपादान (अन्यथा देखानेका निमित्तोपादान) मान्ना पडेगा. तब पूर्वोक्त तमाम दोष आवेंगे. विवर्त्तवादका उच्छेद होगा. ब्रह्म अभिन्न निमित्तोपादान हे, इस पक्षका

बाध होगा. अन्यथा [माया वस्तु नहीं एसा मानें] जडवाद स्वीकार होगा, जोकि आपको असंमत हे. ब्रह्म अधिष्ठान हे, इस मंतव्यका बाध होजायगा. क्यों? अध्यस्त माया वस्तुतः वस्तु नहीं,—अवस्तु हे. एसा माननेसे.

जो कहोके "जेसे नभमें मोतियोंकी माला देख पडती हे, ओर वोह आकाशको भिन्नाकारसे प्रतीत करानेका हेतु होपडती हे; उस मालाका आकाशके स्वरूपमें प्रवेश नहीं—आकाशकी व्याप्य नहीं—आकाशको छूती नहीं ओर अपना कुछ स्वरुप नहीं रखती, किंतु मोती आकारमात्र हे, सो माला नभसे विषम ओर अन्य प्रकारकी—नभकी विवर्त्त हे. वेसे, माया ओर उसके कार्यरूप मात्र ब्रह्मके विवर्त्त समझो—यह वेदांतका गुह्य रहस्य हे" सो वार्ताभी समीचीन नहीं; नभगत माला स्वरूपसे हे, उस स्वरुपका माला—मोती–आकार हे, नभसे सम सत्तावाली हे; कारणके कभी तो, संस्कारबलसे वृत्तिही मोती–मालाकार होती हे; कभी चक्षुके बालोंमेंसे रोशनी—किरण–स्वरुपका मोती–मालाकार वनता हे; कभी चक्षुकी कीकीमें विकार होता हे, तब सूक्ष्म परमाणुओं वा बालोंके छिद्रोंका चक्षुमें प्रतिबिंब होके बाह्य प्रत्यक्ष प्रकारवत् मोती—माला–प्रतीत होता हे. अर्थात् जेसेके दो चंद्रमा दर्शन कालमें[1]

[1] बल करके देखने, उभय चक्षुके मध्य भागमें आडआनें वा चक्षुकी कीकी फटने इत्यादि कारणसे चक्षुमें किरणे पडके जितने स्वरूप बनें वे प्रतीत होते हैं. अर्थात् किरण स्वरूपही चंद्राकार होती हे–वृत्ति चंद्र पास नहीं जाती वा स्पर्श नहीं करती. हां, शीत–आह्लादजनक तो एकही चंद्र हे, एसा समझना चाहिये. नाना जो प्रतीत होते हें वा एक जो प्रतीत होता हे सोतो किरणोंका स्वरूप हे.

दो चंद्रके स्वरुप हैं वा प्रतिबिंबका स्वरुप है, वेसे नभगत मोती-माला, स्वरुपसे है,-उस स्वरूप [वृत्तिके स्वरुप] का आकारविशेष है. (उसका उपयोग कल्पना वा वृत्तिवत् समझ लेना. अतएव उपयोगकी शंका नहीं होसक्ति). इस लिये आपका कथन असंगत है. (इसी प्रकार अन्य दृष्टांतोंमें यथोचित विवेक कर्तव्य है). अतः जेसेके परमाणु आकाशके विवर्त्त नहीं, किंतु व्याप्य हैं. वेसे, सावयव वस्तु, मायाभी व्याप्य हे, विवर्त्त नहीं. इतने कथनका प्रयोजन यह है के, माया, दृष्ट जगत्, ब्रह्मस्वरुप नहीं, ब्रह्मका उपादेय नहीं, किंतु माया, सावयव संमूहात्मक स्वरुपसे कोइ प्रकार वा कोइ प्रकारकी सत्ता वाली [ब्रह्म भिन्न] स्वरुपसे वस्तु होनी चाहिये. वेदांत पक्ष समान 'अन हुये आकार मात्ररुप माया, चेतनकी विवर्त्त है,' एसा नहीं है. किंवा "माया ओर उसके कार्यनामा कुछभी नहीं है" एसा मानके विवर्त्त माननेका उछेद जानना योग्य है. हां, मायाको स्वरुपवान पदार्थ मानके व्याप्य मायाको नभ परमाणु वा नभ वर्षासमान, व्यापक ब्रह्मका विवर्त्त समझो तो, हमको दुराग्रह नहीं है परंतु पूर्वोक्त स्वरूप[२] अप्रवेश विषय समान जो दोष आवेंगे, उनके निवारणका भार आपको अपने पर समझ लेना चाहिये. फलद्दष्टि " उपादान कारणकाही स्व स्वरुपको न छोडके विषम सत्ताकार. कार्य रूप रूपांतरसे जो होना वा भान होना सो विवर्त्तवाद" तिस विवर्त्तवादकी असिद्धि है.[३]

---

२ ईश्वर, ब्रह्म असिद्धिका विषय ध्यानमें लेना चाहिये.

३ यहां, अभिन्न निमित्तोपादान (दर्शन १४) का प्रसंगभी याद करना चाहिये. ओरभी "परिणामीका, परिणामपीछे

निवृत्ति-दर्शन-२१.

(कल्पितकी निवृत्ति)

वेदांतीबंधु, माया-अज्ञान-को मिथ्या स्वरुप और ज्ञाननिवर्त्तनीय कहके-(उसकी निवृत्ति मानके)-उसकी निवृत्ति अधिष्ठान-ब्रह्म-स्वरूप मानते हैं; सोभी समीचीन नहीं है. क्योंके "यदि माया-अज्ञान-कल्पित, मिथ्या, अध्यस्त है तो, अधिष्ठान-ब्रह्म-के ज्ञानबिना उसकी निवृत्ति नहीं होसक्ती, और ब्रह्मका ज्ञान, जीवादि (माया, आभास, अंतःकरणादि जड) कोइकोभी नहीं होसक्ता, और विशिष्ट [जड-चेतन मिले हुये] मेंभी उसके ज्ञानका अभाव है, और प्रकाशस्वरूप स्वयंब्रह्मकोभी अपना ज्ञान नहीं होसकता, और जिसको ज्ञान होगा, उसकी निवृत्ति नहीं;-इत्यादि" उपर सिद्ध कर आये हैं इससे वह माया के मूलाधिष्ठानके ज्ञानाभावसे सकार्य अध्यस्त-माया-अज्ञानकी (ज्ञान वा अन्यथा प्रकारसे) निवृत्ति न होसकनेसे, सो व्याप्य माया, नित्य सत्य होगी; ऐसा होनेसे अद्वैत पक्षका उत्थान हुवा.

किसी अनादि जीवको ज्ञान होनेसे उस जीवके ईश्वर, किंवा समष्टिरूप ईश्वरकी, किंवा असपष्टि ईश्वरकी, निवृत्ति होती है वा नहीं? तहां, जो एक एक जीवका भिन्न २ ईश्वर

पूर्वरूपमें न आना, यह कार्य-पदार्थ (दूध-दही आदि) में व्यवहारमात्र कथन है. परंतु वस्तुतः मूल पदार्थ (दूध दही, जल, बरफ, कनक-कुंडलादिके मूल तत्व-परमाणु) में तो " परिणामीका परिणामके पूर्वोत्तर [वा वर्त्तमान] स्व स्वरूपको न छोडना " ही मान्ना पडेगा. तथापि सो परिणामी सक्रिय,परिछिन्न वा सावयव अवश्य मान्ना होगा. " यह नियम याद रहे.

(और भिन्न सृष्टि) मानें तो उनकी भिन्न २ निवृत्ति चाहिये. परंतु अनादि जीवकी संख्या नहीं, इस लिये अनंत जीवोंका अंत न आनेसे, नित्य रहेंगे; अतः निवृ अभाव है. और जो संख्यावाले मानोगे, तो उसका हेतु और हठसे मानें तो, उनका उपादान रहनेसे अत्यंत नि न होसकेगी. तथाहि बद्ध जीवका कल्पा हुवा (अर्थ शु मुक्त ईश्वर माना, बडे हास्यकी बात है. उसने दंड देना है. तथाहि उन अनंत जीवोंके अज्ञानभी अनंत तिससेभी आत्यंतिक निवृत्तिका असंभव होगा.

जो ईश्वर मानके जीवको ज्ञान होना मानें, तो के ज्ञानसे उस जीव (वा उसके जीवत्वभाव) की नि हो; परंतु ईश्वरकी निवृत्ति नहीं होगी. जब यूं है तो (य अनादि संख्यासे अनंत जीवोंकी निवृत्ति असंभव-क्य अनादिसे उनकी संख्याका अभाव है, परंतु मानलोकि) ज की निवृत्ति हो, तोभी ईश्वरकी अत्यंत निवृत्ति न होगी. न उस नित्यमुक्त ईश्वरकी निवृत्तिका हेतु है. और न जीवकल्पित है; किंतु शुद्ध माया विशिष्टचेतन ईश्व नाम ईश्वर मानते हो; इसलिये तदंश मायाकी अत्यंत वृत्ति नहीं होगी. प्रत्युत ईश्वरके सफलार्थ जीवादिको अ दि अनंत मानना पडेगा. जो जीवोंकी समष्टिका नाम ई है, एसा मानें तो, जेसे जेसे जीवोंका अभाव होता जात वेसे वेसे ईश्वरके अंशकाभी नाश-खंडन होता जाता है. का यह परिणाम निकला कि, ईश्वर सावयव, राग-द्वेष, इत्यादि विशेषणवान् है; एसा ईश्वर जग कर्त्ता, ध न्यायी नहीं होसकता. उसकी मुक्ति जीवाधीन है. उ जीवोंको योग्य सामग्रीके अभावसे ज्ञान नहीं होगा.

तमाम जीवोंमेंसे जब ।।।) बारआना नाश होजायंगे, तो चारआने ईश्वरांश रहनेसे, शेष जीवोंका पूर्णांशवत् नियामक नहोसकेगा. तदुपरांत मूल मेटर तत्वका अभाव न सिद्ध होगा. सावयव होनेसे अज्ञानप्रसंगवाले दोष आवेंगे.

ओर जो एकजीवबाद मानके एकके अज्ञानसे निवृत्ति मानोगे [उससे निवृत्ति शेषअधिष्ठान मानोगे] तो एक जीववाद प्रसंगवाले दोष आवेंगे. तथा आजतक किसीको ज्ञान न होनेसे भविष्यमें आशा रखनेका कोइ निर्विवाद हेतु नही मिलता. आपकी श्रुतिका उच्छेद होगा.

जो मूल जीवका बाध न मानके तदंतर अंतःकरण आभासादिकी निवृत्ति मानोगे–अर्थात् जिस जिस साभास वा केवल अंतःकरणको ज्ञान हुवा, उसीकी निवृत्ति होती है, मूल जीव (मायाविशिष्ट चेतन–साधिष्ठान साभास अज्ञान वा साधिष्ठान सप्रतिबिंब माया–अज्ञान) की निवृत्ति कभीभी नहीं होती, एसा मानोगे तो, अनादि अनंत द्वैत सिद्ध होगा. जड वा आभासरुप सादि, परिणामी अंतःकरणकी मुक्तिही क्या. स्वाभावतः नाश होने योग्य हे, तदर्थ साधनकी आवश्यकता नहीं. तथा स्वपक्ष [अद्वैत वाद माया अनादिसांत] त्याग होगा.

जो कदाचित् आपका सिद्धांत क्षण वास्ते मानभी लेवें तोभी, वोह निवृत्ति अधिष्ठानसे भिन्न होगी, अधिष्ठान स्वरुप नहीं होगी. जेसे आपकी रीतिसेही रज्जुका सर्प अपने उपादान अज्ञानमें लय वा अज्ञानस्वरुप हुवा, वा रज्जु देशसे खिसके तिरोधान हुवा; परंतु, सो सर्प, रज्जुस्वरुप [वा रज्जुउपहित चेतन] वा रज्जुमें लय नहीं हुवा. ओर उसका ज्ञानभी, रज्जु ज्ञान स्वरुप [वा वृत्ति उपहित

चेतनस्वरूप] वा रज्जुमें लय नहीं हुवा; किंतु वृत्तिस्व
वा अंतःकरण-वृत्तिमें लय हुवा; किंवा अविद्या स्वरूपहु
किंवा स्वप्नसृष्टि, स्वोपादान अविद्यामें लय हुइ; वा उपादा
स्वरुप हुइ, परंतु द्रष्टा स्वरुप वा द्रष्टामें लय नहीं हु
वेसेही, सृष्टि वा अंतःकरणकी निवृत्ति, उसके उपादान
विद्या-माया-स्वरुप होगी; परंतु सर्वके अधिष्ठान (ब्रह्म
स्वरुप होवे नहीं. अब रही माया- इसकी निवृत्तिभी, ब्रा
वा ब्रह्मस्वरुप नहीं होसक्ति. क्योंके व्यापक-निरवयव-
खंड-शुद्ध-चेतन-ब्रह्म, परिच्छिन्न, सखंड, जड माया
उपादान नहीं; किंतु इससे विलक्षण हे, अतः माया
निवृत्ति ब्रह्मरूप नहीं होसक्ति. जो ब्रह्मको मायाका उ
दान मानलोगे तो, ब्रह्मभी मिथ्या-सावयव होगा.—अ
उसकी निवृत्तिभी होगी. परिणाममें शून्यवाद स्वीक
लेना पडेगा. ओर जो ब्रह्ममें स्वरुपसे तिरोधान मानो,
सका यहां प्रसंग नहीं. हां. ओर जो कहांके "वहांसे मा
खिसक गइ, शेष अधिष्ठानरूप रहा, अतः मायाकी निवृ
अधिष्ठानरूप हे" सोभी हां. अर्थात् मायाकी निवृत्ति
देशसे हुइ, अतएव उस देशका आवरण भंग होनेसे अ
ष्ठानही रहा; मायाकी निवृत्तिरूप नहीं हुवा. परंतु ब्रह्म
इतर कोइ देश नहीं हे, इसलिये ब्रह्मके अन्य देशमें र
यह सिद्ध हुवा; इतनाही नहीं, किंतु जिसकालमें निवृत्ति
ओर एकदेशसे निवृत्ति होके जिस देशमें रही, सो देश-क
लभी, [उस निवृत्ति अपेक्षासे] ब्रह्म समान शेष रहनेो,
तही सिद्ध होगा. जो यह कहोगेके "जेसे स्वप्न सृष्टिकी
त्पत्ति ओर निवृत्ति देश-काल विना होती हे; परंतु अवि
मूल करके देश-कालकी कारणता, जीव वा स्वप्नसृष्टिके प

थोंमें परस्पर ज्ञात होती है, वेसे निवृत्ति पीछे देश-कालकी प्रतीति, माया-अज्ञान-बल करके भासती है. " इसका समाधान यह हे के, जिस कालमें अज्ञानकी निवृत्ति हुइ उस पीछे, उसका कार्य-[" निवृत्तिका देश काल भासना " सो] भी नहीं रहेगा. ओर बुद्धि वा अनुमानसे प्रतीत तो होतेहें. जेसे स्वप्नकालमें स्वप्ननिवृत्तिका अनुमान, देश-काल विना करलेवें, परंतु वोह असत्य हे; क्योंके जब जागतेहें तो, स्वप्नवाले देशकालसहित स्वप्ननिवृत्तिके देश काल शेष प्रतीत होतेहें. अंतःकरण देश ओर उत्थानादि काल तथा स्वप्न निवृत्ति-अभाव ओर उसके संस्कार सर्वको अनुभवगम्य हें; वेसेही, ब्रह्मज्ञान पीछे जीवनकालमें, अज्ञान निवृत्तिके देशकाल संस्कारादि जीवनमुक्तको अनुभवगम्य हें -' नहीं हे, ' एसा हठमात्र कथन, मान्य नहीं होसकता. ओर विदेह मोक्ष हुये प्रतीत नहीं होंगे, इसकी साक्षी क्या ? अर्थात् कोइभी साक्षी नहीं मिलती-नहीं हे.-प्रत्युत् ज्ञान पश्चात् दर्शन होने, ओर स्वप्ननिवृत्ति प्रतीतरूप हेतुसे, देश-काल शेष रहनेका स्पष्ट अनुमान होता हे. अतएव द्वैतापत्तिसे अधिष्ठान शेषमात्रकी सिद्धि नहीं होती. जो एसा कहोगे कि, हमारे मतमें अनुमानका स्वीकार नहीं हे. तो, मैं यह कहूंगाकि, अत्यंत निवृत्तिभी किसीने अपरोक्ष-प्रत्यक्षकी ? वा अपनी निवृत्ति कोइ अपरोक्ष करसकता हे? इसबातकी सिद्धि नहीं करसकोगे. अर्थात् किसीनेभी अपरोक्ष नहीं की. ओर न कोइ करसकता हे. जेसे अपना अनादित्व, अनंतत्व ओर उत्पत्ति कोइभी विषय नहीं करसकता-असंभव हे, यह स्पष्ट हे-अनुमान विना नहीं मानसकते; वेसेही निवृत्ति संबंधमें जानलेना चाहिये. निदान निवृत्तिका कथन अनुमानविना

नहीं मानसकोगे. ओर जो अनुमान मानलिया तोभी, अ विनाभाव संबंधाभाव प्रसंग प्राप्तिसे* आपका पक्ष सदोषही रहेगा.–संशय, विपरीत भावना, तथा असंभावना दोष रहि त–निर्दोष न होगा. अतएव सर्व प्रकारसे द्वैत सिद्ध रहत हे–द्वैताभाव नहीं हे.–अत्यंत निवृत्ति नहीं हे. [वेदांतपक्षकी रीतिसेभी–] सार यह हे कि:–" जहां जहां जब जब स्फु रण व्यवहार हैं, वहां वहां तब तब माया हे–तबही ब्रह्मका व

---

* " कोइ प्रकारकीभी व्याप्ति (–अनुमान करनेका साध विशेष) जब, स्वीकार होती हेकि, उसके अभावके अभावकी सिद्धि हे जेसे रुप–दर्शनसे, परोक्ष चक्षू इंद्रियका अनुमान करतेहैं; क्योंकि चक्षू बंध करनेपर वा अंधको श्रोत्रादिद्वारा रूपका ज्ञान नहीं होता इसलिये चक्षू गोलकगत [रुपग्राहक–साधन विशेष–परोक्ष] इं द्रियविशेषका अनुमान मानते हैं;–यहां कारण–कार्य संबंध–व्याप्ति है वा अविनाभाव [जिसके विना जो न हो उनका] संबंधरुप व्याप्ति है परंतु इसको जब व्याप्ति कहेंगे कि, रूप ग्रहणका अन्यथा अ भाव सिद्ध हो; तहां, जो उसकी सिद्धि अनुमानसे करोगे तब तो व्याप्तकीही सिद्धि नहीं होगी. अर्थात् उस अभावकी सिद्धिकरन व्याप्तिमें पूर्वदोष आनेसे अनुमिति–ज्ञानका विषय नहीं होनेकर अनवस्था आवेगी, ओर उसके अभावसे पहिली व्याप्तिकी सिद्धि नहीं होगी. जो अन्यथारूप ग्रहणाभावमें प्रत्यक्ष प्रमाण दोगे तो पूर्वोक्त [प्रत्यक्षप्रमाण प्रसंग–ईश्वरप्रसंग] वाले दोष आवेंगे तथाहि व्याप्तिका बाधक होगा. अभाव किसी इंद्रियका विषय न होनेसे अनुमानका विषय कहोगे, तो पूर्वोक्त दोष आवेंगे. इस प्रसिद्ध दृष्टांत यह हे कि, जो मेस्मेरिझम वा योगविद्या नहीं जानते उनको तो, चक्षुइंद्रियका दृढ अनुमान होजाता हे. परंतु जिनको वोह विद्या याद हे, वोह चक्षू बंध किये–चक्षूविना, दूरस्थ रू

कथन है.—निवृत्ति, अनिवृत्तिका प्रयोग है.—व्यवहार निर्वाहक, व्यवहार प्रकाशक परिणामवाली वृत्ति—जीवके विना, कुछ

रंगका यथार्थ ज्ञान करलेते हैं. अतः वे पूर्वोक्त व्याप्तिको व्यभिचार रहित सहचारी—अविनाभाव संबंधरुप व्याप्ति नहीं मानेंगे. (तद्वत अन्यश्रोत्रादि इंद्रियसंबंधमें जानलेना.)—इस लिखनेका रहस्य यह है कि, मनुष्य अपनी बुद्धि अनुसार व्याप्ति और उसके उदाहरण मानता है, परंतु सृष्टि—कुदरतकी दृष्टिसे उसकी मानी हुई समव्याप्ति परभी विश्वास नहीं किया जासकता. मानाकि इस अविश्वासका आधारभी अनुमान है,—अर्थात् एसा क्यों न मानाजावे कि, अमुक व्याप्ति उसके अभावाभाव [नित्य—समव्याप्ति] सहित है; तथापि एसा क्यों न माना जायकि, 'यूं (मनुष्यमान्य प्रकार) ही नहींभी हो.' निदान अनुमानका विषय, निश्चयात्मक नहीं. जल, कुदरतके नियमसे स्वाभावतः बनता है.—स्कूलोंमें विद्यार्थीभी बनाते हैं—प्रसिद्ध है; विच्छुकी मैथुनी, और अमैथुनीभी सृष्टि है; श्वेत बाल, वृद्ध और बालक—किशोरकेभी हैं. शशशृंगाभाव न देखनेसे यह नहीं कहाजाताकि ब्रह्मांडमें शश, शृंगविनाकेही हों. विशेष कहांतक कहें, प्रसिद्ध धूम देखके अग्निका अनुमान करते हैं; वहांभी, व्याप्तिदोष और धोका होजाता है.—जैसेकि, ग्रामसमीप वृक्षोंमें, प्रातःकाल वा संध्यासमय, उन अग्निरहित वा सहित घन वृक्ष वा बागमें अन्यस्थानसे धूम आके रहती—फिरती है,—किसीको धूम प्रतीत होती है; परंतु वहां अग्नि नहीं मिलती.—किसीको यह 'धुंध है' एसा, निश्चय होता है तो, उन वृक्षोंमें अग्नि हुयेभी प्रवृत्ति नहीं होती.—कहीं जल कुंडोंमें उच्च उर्द्धरेखावाली धूम्र उठती है, परंतु वहां जानेसे स्वप्रयोजन सिद्ध नहीं होता. जैसेकि, गीली लकडी और आगके संयोग हुये धूम उठती है, वैसेही संभव है कि, सृष्टिमें धूम्र उठनेका अन्य प्रकारभी हो; जैसेकि मैथुनी अमै-

नहीं माना जासकता—नहीं कहा जासकता- सिद्धकार अपनी निवृत्ति सिद्ध नहीं करसकता.—माया-ब्रह्म, ब्रह्म-मायाका, एसा तो तादात्म्य हे कि, जिनका कोइ प्रकार (बुद्धिकल्पना—योग—यंत्र इत्यादि) सेभी, पृथकरण नहीं होसकता नहीं हे—कोईभी नहीं कहसकता—मायाविना ब्रह्म, ब्रह्मवि-ना मायाकी, कोइ प्रकारकी सिद्धि—खंडन मंडन नहीं बनता." जब यूं हे तो अत्यंत निवृत्ति पक्ष केसे टिक सकता

धुनी—उभयथा सृष्टि देखते हें. जो साधनमें, अव्यापक ओर आप साध्यमें तथा उस (आप) में साध्य व्यापक हो—सो, उपाधि. (इसके उदाहरण—दूषण—भूषणका विस्तार, प्रसंगमें विशेष उपयोगी न जानके, नहीं लिखे हें. विस्तार देखना हो तो चार्वाकसंग्रह, बुद्धिप्रकाश, तत्वदर्शन वा न्यायके ग्रंथ देखो) एसे नाना प्रकारके स्वानुकूल लक्षण कल्पना करके, उपाधिरहितका ग्रहण बताते हें; सोभी, अपने २ पक्षके निर्वाह वास्ते हे. तथाहि इस रीतिको लेके—जब, किसी विषयका निर्णय करते हें तो, निर्दोषता पूर्वक अभिप्राय सिद्ध नहीं होता. क्वचित् निर्दोष समव्याप्ति निकलती होतो हो—"यथा ज्ञाता, वक्ता, अनुमानकर्ता—अनुमान निषेधक जीव [किंवा सर्वज्ञ ईश्वर] अनादि अनंत होगा वा सादि सांत (अनादि सांत वा सादि अनंत असिद्ध कल्पना हे) होगा.—इससे इतर प्रकार न संभव. एसा निश्चित नियम हे; तोभी, सो [ज्ञातादि] अपना अनादिअनंतत्व, आप वा पर—हर कोई करके तथा अपना सादि [उत्पत्तित्व], सांतत्व (नाश—निवृत्ति) [अपनी उत्पत्ति विनाश दूसरेको अपरोक्ष हो तो हो परंतु] आप करके अनुमान विना सिद्ध नहीं करसकता. नहीं मानसकता. [तद्वत असिद्ध कल्पना सादि अनंत, अनादि सांत विषे जानने योग्य हे.] किंवा हलती, जलती हुइ अग्निकी ज्वालाका फोटो काचमें देखके अदृष्ट—परोक्ष

है. थूकके पकोडे हैं.

जो यह कहोके " सर्वथा निवृति होगइ उसका भाव कहींभी नहीं रहा " तोभी दोषकी प्राप्ति होती है. क्योंके जो माया वस्तुतः कुछभी नहीं वा शून्य-अभाव-रुप है; एसा मानोगे तब तो, उसकी निवृत्तिही क्या ? वंध्या पुत्रकी

अग्निका अनुमान होना. फोटो प्रकारसेही शरीरके " अंतरके कांटेका लंबाई चोडाइ सहित यथार्थ अनुमान होना. वगेरे. अन्यथा अविनाभाव, अभाव प्रसंगसे निर्दोष व्याप्तिका अभाव है. मानाकि, अनुमान प्रमाण विना, जगत्का वा जीवन व्यवहार नहीं चलता.-बहुधा उपयोगमें आता है.-यथा भोजनमेंभी प्रवृत्ति अनुमानाधार होती है; तथापि, न्याय ओर पक्ष रहित सूक्ष्म विचारसे देखें तो, उक्त सर्व व्यवहारमें विश्वास-अभ्यास [प्रधान] है. जेसेकि, पूर्व अनुभव किये हुये भोजन जन्यतृप्ति संस्कार [आद्यसंस्कार स्वाभावतः वा अन्यद्वारा वा पूर्व जन्मसे वा केसे होते हैं, इसके निर्णयका यहां प्रसंग नहीं है] से, सन्मुख आये हुये भोजनमें प्रवृत्ति होती है,-परंतु संभव है कि, अपनी धारनाके विरूद्ध उसमें किसीके कपटसे वा अजाने वा स्वाभावतः वा अन्यथा, कोई प्राणनाशक वा दुःखदायक विकार हो-होगया हो; ओर उसके उपयोगसे अन्यथा परिणाम निकले; अतः प्रवृत्तिका बाधक हो. इत्यादि प्रकारसे विश्वास, अभ्यासको प्रधानता है.

जब व्यवहारिक बाबतमें एसा है तो, जड परमाणु विशेष जन्य चेतन, जीव, ईश्वर-मोक्ष, इत्यादि सूक्ष्म-परोक्ष विषयोंमें अनुमानादिक (प्रमाणों) की क्या गति? अर्थात् वे, संशय रहित नहीं करते.-पूर्ण उपयोगी नहींभी होते. तद्वत्, ज्ञान करके वा अन्यथा होने वाली-मानी हुई-कल्पित-किसीकोभी अद्यापि अपरोक्ष नहीं हुई जो अत्यंत निवृत्ति, तिसके संबंधमेंभी जान लेना योग्य है.-

निवृत्ति कहनाही नहीं बनता. अर्थात् " कल्पितकी निवृत्ति अधिष्ठानरुप " इस कथनका अवसरही नहीं रहा. और जो सर्वथा भावरुप सत्य मानोगे तो, उसकी निवृत्ति नहीं होसक्ती. जो सत्यकी निवृत्तिभी मानलोगे तो, ब्रह्मकी निवृत्तिभी होनेसे अन्य व्यवस्था कल्पनी पडेगी, व्याघात दोष धारना पडेगा.

रज्जु ज्ञानसे सप्रकार सर्पकी निवृत्ति होती हे; भूमीज्ञानसे जल ज्ञान सिवाय अन्य मृगतृष्णा प्रकारकी निवृत्ति नहीं होती. [तद्वत् नीलतादि अनेक विषय, पूर्वोक्त उभय प्रकारके-व्यभिचार सूचक हें] इस प्रसंगमें इतना विस्तार लिखनेका यह प्रयोजन हे कि:-जीव वा मायाकी अत्यंत निवृत्तिका अनुमान मान्य नहीं होसक्ता.-संतोषकारक नहीं.-सदोष हे.-जो, " ज्ञान विना, (देशकाल सहित) मायाकी निवृत्ति होती हे, इसका अभाव " वा " अन्यथा अत्यंत निवृत्ति होती हे, इसका अभाव " वा " अत्यंत निवृत्ति नहीं होती, इसका अभाव " वा " अपनी अत्यंत निवृत्ति नहीं होती, इसका अभाव " अपरोक्ष-प्रत्यक्ष किया होता,-अनुभवमें आया होता; तो, अनुमान मान्नेमें प्रयास करते,-अनुमानको तपासते-अन्यथा नहीं-विलाप मात्र हे. अतएव इस विषय वा इस जेसे अन्य [ईश्वर, मोक्षादि] विषय संबंधमें किसीकी कल्पना-शब्द प्रमाण उपर आधार विश्वास रखने सिवाय, अन्य प्रकारसे निश्रयरुप व्यवस्था नहीं मानसक्ते. परंतु मतमतांतर कल्पकके कथन-शब्द प्रमाणोमें मतभेद-अंतर हे, अतः उसपरभी विश्वास नहीं ठेरता. अब रहा अनुमान, उसकी यह गति. निदान उक्त हेतु-रीति-प्रकार-अवस्था होने-रहनेसे जो, वेदांतीभाई अनुमानका स्वीकार नहीं करते-नहीं चाहते हों तो, उनकी इच्छा.-उनका पक्ष सिद्ध न होगा. तथापि समीक्षकके कथनका बाधक नहीं होता अर्थात् इस (अत्यंत निवृत्ति नहीं

जो यह कहोके 'निर्धार करने अयोग्य कुछ हे' तो, आपका 'निवृत्ति अधिष्ठानरुप सिद्धांतभी, अनिर्णीत रहा.

जो यह कहोगेके "निर्णितरुप हे अर्थात् सद्विलक्षण भावरुप वा भावाभाव सदासद्विलक्षण–अनिर्वचनीय भावरु-प–मिथ्या हे" तोभी इस काल्पितकी निवृत्ति अधिष्ठानरुप नहीं होसक्ती; क्योंके अधिष्ठान ओर यह विलक्षण हें. अतः अधिष्ठानरुप तो बने नहीं ओर अन्य देशमें खिसना मानके शेष अधिष्ठान स्वस्वरूपवाला रहो. ओर जो उक्त प्रातिभा-सिक कुलक्षणी वस्तुकी निवृत्ति, पारमार्थिक अधिष्ठान स्वरुप हो तो, अधिष्ठानके शेष स्वरुपमें यह कुलक्षण होंगे.–ओर मिथ्या ठरेगा तथा पुनः उत्पन्न होगी तथा भाव अभाव वि-लक्षण कहके भावरुप कहना, व्याघात ओर असंभव दोषमें वेष्ठित करता हे.

जो यह कहो के "अधिष्ठानसे भिन्न अभावरुप वा शून्यरुप हो गइ, यही निवृत्ति अधिष्ठान स्वरुप हे." तो, "कल्पितकी निवृत्ति अधिष्ठानस्वरुप" इस वाक्यका प्रयोजन सिद्ध नहीं हुवा; किंतु ब्रह्मदेशसे भिन्न, कहींभी रही वा न-

होती) विषयमें वेदांत विरोधी पक्षमें अन्य पुरावेभी हें. यथा अत्यंत निवृत्ति कत्थक कोन होगा? जो कहोकि 'होगा' तो निवृत्ति पक्षका अभाव. जो कहो कि 'नहीं' तो उसकी सिद्धिका अभाव; इत्यादि. निदान वेदांतीभाई अनुमान मानें वा न मानें–उभयथा वेदांतीके इष्टकी सिद्धि नहीं होती. ओर उनके असिद्ध शब्द प्रमा-ण वास्ते पूर्व प्रसंग याद कीजिये. जब अत्यंत निवृत्तिही सिद्ध नहीं होती, तो 'कल्पितकी निवृत्ति अधिष्ठान स्वरूप हे' इस वातकी कल्पनाभी नहीं होसकती. तथा उसके खंडन मंडनमें प्रयत्न करना व्यर्थ जैसा हे.

नके तथा शोधक करके उक्त लेखांतरगत आजानेसे विस्तार नहीं करते. किंतु वक्ष्यमाण प्रारब्ध प्रसंगसे निवृत्तिका सिद्धांत कल्पनामात्र हे, यह स्वयं सिद्ध होजायगा.

शेष-दर्शन-२२.

(अविद्या लेश, प्रारब्ध, विदेह मोक्ष)

जो अद्वैतवादी (वेदांतीभाइ) एसा कहे कि " अधिष्ठान ज्ञानसे कल्पितकी निवृत्ति अधिष्ठान स्वरुप मत हो परंतु निवृत्ति तो होती हे. अर्थात् ब्रह्म [अधिष्ठान] के ज्ञानसे उस [अज्ञान-माया] के कार्य [प्रारब्ध तद्रचित शरीरादि] सहित अध्यस्त मायाकी निवृत्ति होती हे. " सो कथनभी समीचीन नहीं हे; क्योंके ' जिस कालमें ब्रह्म ज्ञान हुवा उसी ज्ञानकाल (समकाल) विषे अज्ञान निवृत्त हुवा हे ' एसा मानना पडेगा. अज्ञान निवृत्त हुये विना, अधिष्ठानका ज्ञान हुवा, ' यह वात नहीं मानी जाती (वेदांत पक्षको यह वात संमत हे). जब यूं हे तो, वेदांत मतकी रीति अनुसारही,-जेसेके, ज्ञान होतेही, ज्ञानीके संचित वा क्रियमाण नष्ट होजाते हें (किंवा, एक पक्षकारकी रीतिसे " अवश्यमेव भोक्तव्यं " वाक्यको मानके उक्त ज्ञानीके संचित क्रियमाणका फल अन्य[1] सज्जन भक्त और पापियोंको मिलना मानलेतेहें) वेसेही, ज्ञान होतेही ज्ञानीके प्रारब्ध ओर तिसके कार्य शरीरकाभी नाश-अभाव-निवृत्तिभी होनी चाहिये. कारणके वोहभी अज्ञान-माया का रचितहे. किंवा, मूळ अज्ञानके आवरण अंशका जेसें नाश हुवा वेसे-

1 कर्ता अन्य ओर भोक्ता अन्य, यहमत सर्वथा अयुक्त हे. यहांतो पाठकगण को विकल्प नहीं उठे, इस वास्ते सहेज जनायाहे.

ही, विक्षेपांश वा शक्ति मात्रकाभी नाश होना चाहिये. क्योंके मूलाज्ञानका नाश होनेसे उसके अंश वा कार्य रहना असंभव हे. परंतु ब्रह्मज्ञानी–याज्ञवल्क्य, महाराज रामचंद्र, उद्दालक, राजा जनक, अष्टावक्र, श्री शंकराचार्यादिके[1] शरीर ओर विक्षेप ज्ञान पश्चात्‌भी रहेहें, उन्होंने अन्योंको उपदेशभी किया हे, यहबात जगत् प्रसिद्ध हे. एसेही अन्य जीव ब्रह्म एकताके वक्ता ब्रह्मनिष्ठोंकी व्यवस्था प्रसिद्ध हे. ओर वर्त्तमानमें प्रत्यक्ष देखते हो. इस पुरावेसे संशय रहित प्रत्यक्ष, यह सिद्ध होजाता हे कि, क्या तो–अज्ञान–माया– जिसको अध्यस्त–मिथ्या–वा ज्ञान बाध्य मानतेहो, उसका कार्य प्रारब्ध ओर तद्जन्य शरीर नहीं होगा; किंतु इनका निमितोपादान कोइ अन्य (अनादि परमाणु वा अन्य कोइ) होगा. अथवा तो–ब्रह्ममें वा ब्रह्म साथ उसका उपादान मिथ्या नहीं; किंतु सत्य व्याप्य हे. अथवा तो–ब्रह्मज्ञानसे उस (माया-अज्ञान–उसके कार्य–प्रारब्ध, शरिर) की निवृत्ति नहीं होती होगी.–किंतु माया प्रकृति के नियम वा जीवके कर्मानुसार उसका नाश (संयोग वियोग जन्यशरिर आकृतिका अभाव) होता होगा. यह तीनों वा इनमेंसे कोई सिद्ध–विकल्प, आपके मतके विरोधी हें.

जो, ज्ञानी प्रारब्ध ओर तद्जन्य शरीरको नहीं देखता वा, उसके दुःख सुखादि नहीं मानता [जेसेके कितनेक साधुको कोइ खुलावे तो खावे, वस्त्र उढावे तो, ओढे, अन्यथा इच्छा[2] नहीं होती. इत्यादि] वा, मिथ्या

---

[1] शंकराचार्यमहाराजजीका शरीर कर्म करके अर्थात् कापाली लोकोंने उनको विष दिया, तिस करके भगंदर नामारोगोत्पन्न होके नाश हुवा(देखो, शंकर दिग्विजय). [2] इच्छा विना खानपान निद्रा, मलत्यागादि नहीं होसकते.

मानता है वा, स्वप्न समान देखता है; इत्यादि रीति स्व संप्रदायके निर्वाह वा आचार्योंके लेख सिद्ध करने वास्ते मानोगे वा मानते होगे वा कहोगे; तो यह रीति वा मंतव्य वा कथन एसा है कि "जेसे कोइ खावे ओर पाखाना पेशाब न करे; किंवा न खावे ओर मोटा ताजा हुवा जीवे."— अर्थात् यथार्थ नहीं. किंवा जेसे प्रथम यह नियम बांधे कि, जिस शरीरमें चोर होने वा झूट बोलनेका संशय हो, उसके हाथमें अग्नितप्त लोहका गोला देवें; जो, चोर वा झूटा होगा तो हाथ जलेगा, साहूकार वा सच्चा होगा तो नहीं जलेगा. तिस पीछे परीक्षा करें, जो कि तदन अयुक्त है. अर्थात् सच्चा हो वा झूटा हो वा चोर हो वा साहूकार हो परंतु अग्नितप्त गोला लेनेपर (किसी लाग दवा वा चालाकी विना) अग्नि दाहसे नहीं बच सकेगा. क्योंके सृष्टि नियम विरुद्ध है—" (पारसी लोगोंका पूज्याग्निदेव जब तब उनके पूजारी वा सच्चे वा झूटेको स्पर्श करतेही जला देता है. इसी प्रकार उक्त गोलेकी व्यवस्था जान लेना चाहिये). इस रीतिसे जो अपनेको ब्रह्मज्ञानी वा अहंब्रह्म मानतेहें उनकोभी प्राणभाव पर्यंत विक्षेप ओर प्रारब्ध तथा क्रियमाण भोग प्रसिद्ध देखतेहैं. ज्ञान होतेही शरीरका त्याग वा अभाव नहीं होता; अतः उक्त विकल्प वा दृष्टि मठ मरदी वा शब्दमात्रसे मानना, विद्वान बुद्धिमान, पदार्थज्ञानी, सृष्टि नियम के परीक्षक ओर सज्जनोंका काम नहीं है, किंतु अज्ञानी विश्वासी, धूर्त, ढोंगी वा मिथ्याभिमानियोंका काम होगा. स्वप्न विषेभी, 'स्वप्नादिवत्' मिथ्यामंतव्यमात्रसे विक्षेपादिकी निवृत्तितो; नहींहोती अतः मिथ्यामाननाभी विश्वास वा कथनमात्रहै. ओर जो यह कहोकि "जिसकालमें ब्रह्मा-

कार वृत्ति होती है, उस समय शरीरका भान नहीं होता; अतः नहीं है वा निवृत्तिरूप है, वा मिथ्या वा स्वप्नवत् वा शून्य वा अभाव रूप है.'' यह कथन वा मंतव्यभी वेसा हैं कि, जेसे नट वा व्यभिचारिणी स्त्री वा गणित अभ्यासी वा नाटक द्रष्टा, कलादि कालमें स्व शरीरका भान नहीं रखते वा शरीरको नहीं मानते—नहीं देखते वा उसका ज्ञान नहीं है; इस हेतुको लेके कहेंके हमारा शरीर नहीं—अभाव वा मिथ्यारूप है. किंवा कोइ रोगी स्वप्नमें अपनेको निरोगी मानलेता है.—एसा आपका कथन है. निदान समाधि कालमें ज्योतिष्मती किंवा विश्वास रूप कोइ चेतन वा शून्यादि आकार वृत्ति रहनेसे शरीरका भान नहीं होता. वहांसे निवृत्त हुये वही शरीर ओर भोग. जेसाके सुषुप्तिमें रोगी, निरोगी; ओर जागे तब वेसाका वेसा. निदान इस दृष्टांतसे निवृत्ति होगइ, एसा सिद्ध नहीं होता.

जो यह कहोके "ज्ञान होतेही यदि शरिरका अभाव हो, तो संप्रदायकाही अभाव होगा. किंतु किसीका कोइ उपदेशक नहीं मिलनेसे ज्ञान मार्गका विच्छेद होगा. इस लिये ज्ञान पश्चातभी शरीर रहता है." यह कथनभी बालगालीवत् है—अर्थात् यदि यह वात सत्य है के, 'अधिष्ठान ज्ञानसे अध्यस्तकी निवृत्ति हो' तो, शरीरादिक नहीं होने चाहियें ओर जो आप ज्ञान संप्रदाय रहनेकी युक्ति देते हो, सोतो ज्ञानीकी दृष्टिमें, कोइ संप्रदाय वा उपदेश योग्य, है ही नहीं; तब उक्त विकल्प केसे होगा?—नहीं बनता; उलटा एसा देखते हैं के, ज्ञान पश्चात्भी जनकादि विशेष प्रवृत्तिवाले हुये हैं. इसलिये प्रारब्ध ओर तद्जन्य कार्य शरीरादि माया रचित वा ज्ञान निवर्त्तनीय

मिथ्या–नहीं अथवा सत्य परमाणुके संयोग वियोग जन्य वा सत्य मायाके परिणाम विशेष हैं एसा मानना पडेगा.

प्रश्न होता हे के सबसे प्रथम, अधिष्ठानके ज्ञानका पानेवाला कोन हुवा? जो यह कहोके ईश्वर हे; तब तो, अधिष्ठान [चेतन] के ज्ञानवाला–अहं ब्रह्मरूपसे स्वरुपका ज्ञाता जो वेदांतियोंका नित्य मुक्त ईश्वर, उसको जगत् ओर माया नहीं भासनी चाहिये; ओर जीवोंके कर्मानुसार व्यवस्था कर्त्ता अभिन्न निमित्तोपादान नहीं होना चाहिये; परंतु मानते तो हो. तथाहि उसका उपदेश वाक्य प्रमाण हे–वोह सर्वज्ञ हे–इत्यादि कथनकी असमीचीनता उपर कह आये हें; अतः ईश्वर विषे सो कल्पना अघटित हे.

जो आद्य उपदेशक किसी मनुष्य (वामदेवादि) को मानो तो, ज्ञान होतेही उसके शरीरका बाध होनेसे उपदेश नहीं हुवा होगा, एसा मानना पडेगा.

जो अनादिसे परमपरा एसेही होता आना, ब्रह्म ज्ञान पीछे शरीर रहना ओर उपदेश होना मानो तो, इसी प्रकार भविष्यमें अनंतकाल तक माननेसे माया–अवीद्याका अभाव माननेका स्वयं निषेध होगया.

जो यह कहोकि "जिस अंतःकरण–जीवको ज्ञान हुवा उसके उपादान ओर तत्कार्य प्रारब्ध ओर शरीरका अभाव होता हे; अन्यका नहीं" तो, आपके मतमें अनेक दोष आवेंगे.–संप्रदायका उच्छेद होना चाहियें. मायाको स्व सिद्धांत विरूद्ध सावयव मान्ना पडेगा. सावयवसे विलक्षण नहीं ठेरेगी; क्योंके उसका एक अंश नाश हुवा अन्य नहीं. तथा उसी अधिष्ठानांश देशमें अन्य अंतःकरण आनेसे वेसेकी वेसी व्यवस्था रही. ओर प्रारब्ध

जन्य शरीरका ज्ञान पीछे नाश तो नहीं देखते; अतः उक्त मंतव्य कथन मात्र हे.

जो यह कहो के "ज्ञान हुये पीछेभी–विदेह होने पश्चात् उसके शरीर ओर प्राण तथा अंतःकरणका समष्टि ईश्वरमें लय होताहे ओर ईश्वरके लय होने साथ उसकाभी लय वा विदेह मुक्त होताहे" इस मंतव्य वा कथनकीभी कोइ साक्षी नहीं मिलती. ओरभी एसा मान्नेसे "अधिष्ठान ज्ञानसे कल्पितकी निवृत्ति" यह वेदांतका सिद्धांत साग होगा. तथाही आपकी रीतिसे तो, अबभी मायाका कार्य अविद्या, अंतःकर्णादि, माया पदके वाच्य–विशिष्ट चेतनसे भिन्न नहीं हे; अतः उक्त कथन असंगत हे.

जो ब्रह्मज्ञानसे अज्ञान के एकअंशकी निवृत्ति ओर विक्षेपांशकी अनिवृत्ति हे; एसा मानोगे तो, जेसेके स्वप्नगत् स्वप्नसिंह ओर स्वशरीर यह सर्व (स्वप्न, स्वप्नशरीर, स्वप्नसिंह.) नाश हुयेभी, किंचितांश जाग्रतकालके शरीरको, भीतसे टकराता वा कंपाता हे; किंवा, स्वप्नगत् स्वभोक्ता शरीर ओर भोग्य स्त्री तथा स्वप्नके नाश हुयेभी, उस अविद्याका किंचितांश जाग्रतरूप शरीरसे वीर्यपात कराता हे. वेसेही विक्षेपांश इस शरीरके त्याग पीछेभी, अन्य शरीरोंके साथ संबध करावेगा; क्योंके स्वप्नसृष्टि "दृष्टि मात्र सृष्टिथी" उसी अविद्याके एक अंशने, पुनः जाग्रतनामासृष्टि [जिस शरीरसे वीर्यपात हुवा सो] पुनः रची. इत्यादि प्रकारसे अत्यंत निवृत्तिका अभाव होगा.

जेसे अज्ञानका कार्य अध्यास मानते हो, वेसे प्रारब्ध ओर शरीर सिद्ध नहीं होता; क्योंके रज्जु सर्प दर्शनकालमे अध्यास कथन बने नहीं, किंतु सर्प निवृत्तिकाल पीछेही कह-

ना बनता है; यह वात सर्व भ्रमवादियोंको मान्य है. तद्वत् देहादि दर्शनकालमें देहादिको अध्यास-भ्रमरुप कहना नहीं बनता ओर निवृत्ति पश्चात् कहने वाला नहीं है. इससे क्या आया? ब्रह्मज्ञान तो, हुवा परंतु, प्रारब्ध ओर शरीरका अभाव नहीं हुवा; अतएव, ब्रह्मज्ञान करके जो मूलाज्ञान, बाध होगया है; उसके कार्य, प्रारब्ध वा शरीर नहीं हैं. जो यह उसके कार्य हों तो, इस शरीर के विद्यमान-भासमान होते हुये-" यह मिथ्या अध्यासरुप है " एसा कथन असंभव वा सदोष वा संशयरुप है.-यह सिद्ध होगा-ओर जब निवृत्त होजायगा [मरजायगा] तिस पीछे साक्षी नहीं. यद्यपि पूर्व जन्मवत् उत्तर जन्मादिका अनुमान करते हैं, वेसे अनूमान होगा, तथापि उक्त दर्शनानुसार असंत निवृत्तिकी साक्षीका अभाव है. श्री शंकरमहाराज, सनत्कुमार, रामादि ज्ञानीका, ज्ञान पश्चात्‌भी अन्य जन्म होना वेदांती भाइभी मानते हैं निदान उक्त उभय प्रकारसे प्रारब्ध ओर शरीर अज्ञानके कोइ अंशकेभी कार्य नहीं ठेरते.

जो यह कहोके " जेसे घटमेंसे कपूर निकालें तोभी कपूरका गंध शेष रहती है. किंवा जेसके किसीके मारने वास्ते तीर फेंके सो, उसको मारकेभी वेग बलसे आगे जाता है; किंवा कुंभारका चक्र घट होजाने पीछेभी पूर्व वेग बलसे थोडी देर चलता है; किंवा तालावकी पाल उपर जो फलित अंब वृक्ष उसका मूल उखाडे पीछेभी थोडे दिन फल शाखा वेसेही ज्ञात होते हैं. किंवा सर्प भ्रांतिकालमें जो चोट लगी उसका दरद भ्रांति निवृत्ति पीछेभी रहता है-इत्यादि दृष्टांतो समान अविद्या लेश [प्रारब्ध रचित शरीर] रहेता है. " तो इससे यह परि-

णाम निकला के, जेसे भूमी ज्ञानसेभी मृगजल भासना निवृत्त नहीं होता, वेसे शरीरभी भासता हे; उसके अधिष्ठान ब्रह्म वा अंतःकरण उपहित वा कूटस्थ चेतनके ज्ञानसे उसकी निवृत्ति नहीं होती. परंतु एसे विरोधी भाषण–उपदेश,–बालकहानी समान सिद्धांतपर अफसोस आता हे, अज्ञान तो निवृत्त हो ओर उसका कार्य किंचित शेष रहे ? वाहरे भारत खंडकी अविद्या ओर–न्याय नहीं किंतु, अन्याय! जब कपूरका अभाव कहो तो गंध कहांसे. जब तीर वा बलका अभाव–तो, वेग केसे शेष रहेगा. घटका उपादान चक्र नहीं–तो, घटोत्पत्ति पीछे चक्र अभाव होनेका नियम क्यों? जब वृक्षके मूल–परमाणु समूह–का नाश हो (जोके शाखा फल फूलमें हे) तो फेर वृक्षही कहां? फल फूलतो स्वप्नमेंभी नहीं. रज्जु अज्ञान वा सर्पका उपादेय चोट वा दरद वा कंपन होता तो नाश होते; अन्यथा केसे नाश हो–इत्यादि दोषोंको लेकर अविद्या लेश मानना व्याघात दोष हे.

ओर इसी वास्ते यह सिद्ध होता हे के, जब अध्यस्त माया–अज्ञान–अविद्याका कार्य (प्रारब्ध-शरीरादि) ब्रह्मज्ञानसे नहीं जाते तो, माया केसे जायगी? अर्थात् ब्रह्ममें वोह अध्यस्त–मिथ्या–नहीं, किंतु [कर्मसेभी अनिवृत्तनीय] सत्यरुप हे.

जो कहोके “ जेसे अग्नि संयोगसे कारणरुप तंतुका प्रथम ओर कार्यरुप पटका पीछे नाश होता हे; वेसे कारणरुप अविद्याका पहिले (ब्रह्मज्ञान होतेही) ओर कार्यरुप प्रारब्ध–शरीरादिका पीछे (ज्ञानके पश्चात्) नाश होता हे,” यह न्याय वा वेदांतियोंका कथन सर्वथा पक्ष वा अन्यायरुप

किंवा भूलभरा हुवा हे; क्योंके अग्नि ओर तंतुका संयोग जो हे सोही, पट ओर अग्निका संयोग हे. पटका उपादान तंतु ओर पटसाथकेसाथ नाश होते जाते हें; जो तंतुकी समाप्ति सोही पटकी समाप्ति हे. इस प्रकार अधिष्ठान ज्ञानके अत्यंत समीप-उत्तर क्षणमें वा ज्ञान होतेही वा अज्ञानाभाव होतेही माया-अविद्या-अज्ञानके साथ शरीर गलना चाहिये. परंतु एसा तो नहीं देख पडता.

तथाही वेदांत संप्रदायसे विद्या-ब्रह्मज्ञान-भी मायाका कार्य हे, सो कार्य स्वोपादान मायाके नाशमें असमर्थ हे. अतः ज्ञानसे सकार्य अज्ञानका नाश मानना समीचीन नहीं. जो यह कहोके " जेसे पट ओर अग्निका संयोग उन उभयका कार्य हे, सो संयोग, स्वोपादान पटका नाशक हे; इसी प्रकार माया-अज्ञान-का कार्य जो वृत्ति ज्ञान सो स्वोपादान अज्ञानका नाशक हे. किंवा जेसे हस्त स्वोपादान शरीरका नाश [अपघात] करके आपभी नाश होता हे. इसी प्रकार कार्यरुप वृत्ति करके माया ओर वृत्तिका नाश होजाता हे, " सोभी समीचीन नहीं. क्योंके पटके नाशमें पट संयोग मात्र हेतु नहीं, किंतु अग्निका संयोग ओर अग्नि-उभय हेतु हें. इस रीतिसे ब्रह्म ओर उसके ज्ञानका संयोग-यह उभय वृत्ति अज्ञान-मायाके नाशके हेतु मानने पडेंगे. परंतु अग्निसे जब पट संयोग होगा, तबही पटका बाध होगा, वेसे ब्रह्म, माया-अज्ञानमें कहना नहीं बनता; क्योंके ब्रह्म तो, मायाका साधक हे. जो साधक न हो किंतु बाधक हो तो, उसके अध्यस्त, व्याप्यत्व ओर स्वरुपकी असिद्धि होगी. निदान ज्ञानके उपादानका एक अंश [ब्रह्म] तो, मायाका बाधक नहीं. अब रही माया-वृत्ति, सो जेसें अकेले पटसे

पटका दाह नहीं होता वेसे, माया वा तद्कार्य ज्ञानसे माया–अविद्याका दाह नहीं होगा. इस रीतिसे स्वकारणके नाश करनेमें ब्रह्म ज्ञान हेतु नहीं.

जो यह कहोकि जेसे कोई दो पुरुष दोधारी बरछी, परस्पर पेटमें रखके बल करके परस्परमें मरजाते हें वेसे, वृत्तिज्ञान ओर अज्ञानका नाश समझलेना चाहिये. सोभी नहीं बनता; क्योंकि जो वृत्तिज्ञानने अज्ञानका नाश किया तबतो, वृत्तिज्ञानके नाश होनेकी सामग्री नहीं. ओर जो परस्परके नाशक हुये तो बरछी समान, साधक ब्रह्म ओर उभयसे भिन्न तीसरी सामग्री चाहिये. किंवा परस्परकी मक्कुश्ती के समान नाश होतेहों तो, ब्रह्मज्ञानी महाराज जड मुरदे समान होजावें; किंतु शरीर रहित होजावें–ज्ञान होते अज्ञान नाश हो कि, तुरत अज्ञानके कार्य शरीर वृत्ति उभय प्रतीतिके विषय नहीं–एसे लुप्त–नाश पर्याय होजावें, तो जानें कि परस्पर नाशके हेतु हुये, परंतु जो एसी असंभव वार्त्ता होना मानलेवें तोभी, अन्य प्रपंच दृष्टि गोचर हे; अतः सो अज्ञानका कार्य न कहा जायगा. उपदेशक आचार्य, अज्ञानी–अमुक्त मानलेने होंगे. उपदेशक, प्रमाणका अभाव मान्ना पडेगा.

जो कहो के " ब्रह्मज्ञान वा वृत्तिज्ञान करके उसके उपादान अविद्या–माया–ओर उसके कार्य प्रारब्ध–शरीर–प्रपंचका नाश तो नहीं होता, परंतु बाधितानुवृत्ति करके (जेसेके उसर भूमिके ज्ञान हुयेभी मृगजल देखपडता हे वेसे) विक्षेप-शरीरादिक देख पडते हें.–अर्थात् पूर्व अज्ञानकालवत् सत्यरुपसे प्रतीत नहीं होते. " तो, यह परिणाम निकलेगा के "विशेष ज्ञानसे, "चेतन एक व्यापक अखंड ब्रह्म हे," एसा ध्यानमें आया. ओर माया तथा उसके कार्य शरीरादि, जड

दुःखरुप ओर परिणामीं तथा ब्रह्मसे विलक्षण हें, सत्य नहीं, एसा मानलिया; परंतु उसकी अत्यंत निवृत्ति हुइ एसा, अथवा जिसने माना सो मायाके बंधन (जन्म मरण)से रहित हुवा सो, सिद्ध न हुवा." जब यूं हे तो,—अनावृत्ति, जीव ब्रह्मकी एकता, जन्म मरण त्याग, ओर क्षीयंते चास्य कर्माणी, इत्यादि—वेदांत पक्ष सिद्ध नहीं हुवा ओर पूर्ववत् प्रवाहमें रहेगा. हां, इतना अंतर हुवा के पहिले तो, ब्रह्म ओर माया तथा स्वस्वरुपको निश्चय नहीं कियाथा ओर अब करलिया; इससे इतर फल नहीं. परंतु स्वस्वरूप निश्चयभी (जेसा के वेदांती लोक मानते हें) यथार्थ नहीं हे; यह उपर लिखआये हें. अतः विश्वासरुप वा कथन मात्र—अयथार्थ निश्चय हुवा, सो अनर्थका हेतु हे, श्रेयका नहीं. अतएव साध्य होनेसे सिद्धांतकी हानी हुइ.

ओर मृगजल देख पडनेके कारण तो केवल अज्ञान नहीं, किंतु सूर्यकी रोशनीका उलट फेर ओर रजकण विशेष तथा दूरादि कारण हें, अतः उनकी निवृत्ति तक वेसाहि देख पडेगा. केवल भूमिज्ञानसे जलकी मान्यताका अभाव हुवा, कुछ दृष्ट स्वरुपका नहीं. इसी प्रकार ब्रह्म हो ओर सत्य हो तथा माया ओर उसके कार्य शरीरादि मिथ्या हों तो, ब्रह्मज्ञान पछि ब्रह्मचेतनकी सत्यता ओर सकार्य मायाकी ब्रह्मसे विलक्षणता का निश्चय हुवा; परंतु उसके स्वरूप ओर विक्षेप दुःख सुखादिकी निवृत्ति नहीं हुइ. [यथा दग्धपटमें उसका मूलतो हे. सर्वथा अभाव नहीं] अतः उक्त दृष्टांतसेभी ब्रह्मज्ञान करके मिथ्या शरीर, ओर प्रारब्ध उसके कारण माया—अविद्याकी निवृत्ति नहीं. ओर अविद्या लेश नहीं, यह सिद्ध होजायगा.

इसी प्रकारको लेके "ज्ञानवानके प्राणका उत्क्रमण होगा अर्थात् ब्रह्मज्ञानीको विदेह मुक्ति होगी-पुनर्जन्म न होगा." उस वेदांत सिद्धांतका उच्छेद होसकता हे.-केवल विश्वास मात्र मंतव्य ठेरता हे; क्योंके उसकी साक्षीभी नहीं मिलती, अद्यापि कीसीने चिठी,-कागजभी नहीं दिये. ओर प्रेतवत् आकेभी नहीं कहा के में मुक्त हुवा. जो [गरुडपुराणादि मंतव्यवत्] पीछे आके कहेना मानलो तो, ब्रह्मस्वरुप न हुवा, एसा सिद्ध होजायगा. किंवा प्रेत हुवा, ओर फेर पुनर्जन्म लेगा, एसा सिद्ध होगा. ओर जो विदेह मोक्षभी मिथ्या मानते होतो, ब्रह्मज्ञानका उपदेश ओर श्रवण मननादिभी व्यर्थ हें.

तथाहि विदेहमोक्ष (मोक्ष होने पींछे जन्म नहीं होता-प्राणोंका उत्क्रमण नहीं होता-पुनरावृत्ति नहीं होती-जीव संसारको प्राप्त नहीं होता) मान्नाही असंगत-अयुक्त हे; क्योंकि आपके सिद्धांतमें 'जीव अनादि हे-नवीन उत्पन्न होना नहीं मानते-सादि नहीं कहते हो; ओर इधर मोक्षसे अनावृत्तिभी, मानते हो.' अर्थात् इस सिद्धांतसे सृष्टिका उच्छेद होजाना चाहिये. क्योंकि सृष्टि रचना के निमित्त जो जीव हें सो [तमाम जीव, जब तब मोक्षको प्राप्त होके सृष्टिके उपादान (माया- प्रवृत्ति-पंचतत्व) से असंबंधी-असंसर्गी-संबंधके अयोग्य-(मुक्त होगये-वा) होंगे. तब निमित्तके अभावसे सृष्टिकी रचना नहीं होगी. जब यूं होतो, सृष्टि नियम विरुद्ध आपके मिथ्या पंचतत्वोंकीभी निरर्थकता मान्नी पडेगी; जोकि असंभव हे. कारणकि, ब्रह्मांडमें कोइभी वस्तु निष्फल नहीं मानसकते-नहीं सिद्ध होती; जो मानें तो, उसका होनाही व्यर्थ होगा. जीव

ओर मोक्षभी व्यर्थ मान्ने पडेंगे.-आपका तमाम पक्षभी निष्फल मानसकेंगे. एतद्दृष्टि "सर्व सफल हें" एसा सिद्ध होता हे-मान्नना पडेता हे. सार यह हे कि, एकजीव (वामदेवादि) के ज्ञानसे तो, माया-तत्वोंकी निवृत्ति हुई नहीं, केवल जीवत्व [कर्तृत्व, भोक्तृत्व, जन्म मरणादि] की निवृत्ति हुइ. जो तमाम पंचतत्वादि-मायाकी निवृत्ति हुई होती तो, खंडन मंडन कर्त्ताकीही सिद्धि-अनुभव-प्रतीति नहीं होती. अतः मुक्त वामदेवादि समान, सर्व जीवोंमें जीवत्वकाही अभाव होगा.-मायाके कार्य-पंचतत्व,[ईश्वरभी] शेष रहेगें. सो ये नाना गुणदोष स्वभाववाले तत्व (तमाम जीवोंके मुक्त हुये पीछे) किस काममें आवेगें[1]-निष्फल रहेंगे. परंतु यह वात असंभव हे. अतएव उक्त 'निरर्थकाभाव' नियमके बलकरके जीवोंकी मोक्षसे पुनरावृत्ति मान्नी पडेगी. इसका प्रसिद्ध परिणाम यह निकलेगाकी, अनुत्क्रमण (अपुनरावृत्ति) का सिद्धांत-मंतव्य अयुक्त ओर झूट हे. किंतु अनावृत्ति (अपुनरावृत्ति) का उपदेश वा लोभ, मिथ्या कपट-वा अज्ञानता हे.

१ जिन मतोंमें जीवोंको अनादि मानके मुक्ति (मोक्ष हुये पीछे अनावृत्ति) मानी हे, उन सर्व मतोंको यह दोष ग्रसता हे. ओरभी जो मत-पक्ष जीवको सादि मानके अनंत उन्नति अथवा सादि जीवकी मोक्षसे अनावृत्ति मानते हें, किंवा जीवको अनादि मानके अनंत उन्नति मानते हें, उन सर्व मतको दूषित करताहे. बुद्धिमानको चाहियेकि, जीवोंके उपादान ओर पंचतत्व-सृष्टिके उपादान-उपयोग होने योग्य जो, वर्त्तमान समान अच्छे बुरे नाना गुण कर्म स्वभाव हें उनके उपयोगपर दृष्टि डालके समझ लेवे. अप्रासंगिक होनेसे विस्तार नहीं लिखा.

इस रीतिसे कल्पित् (मिथ्या-माया-अविद्या) की निवृत्ति अधिष्ठानरुप, अविद्या लेशवत् प्रारब्धभोग ओर विदेहमोक्ष-यह तीनों मंतव्य असंगत वा विश्वास वा अज्ञान मात्र हैं, सयुक्त, समीचीन नहीं.

अजात-दर्शन-२३.

जो कहो के "ब्रह्ममें माया ओर उसका कार्य प्रपंच न हुवा न है और न होगा. "न निरोधो न चोत्पत्ति र्न बद्धो नच साधकः न मुमुक्षुर्नवैमुक्तः१" इत्यादि श्रुति हैं; अतः अजातवाद है. माया नामरुप होतो, विवर्तवाद ठेरे वा मायाका स्वरुप होतो, दृष्टिसृष्टिवाद वा सृष्टिदृष्टि वाद वा अवच्छेदाभासादि वाद ओर निवृत्तिकी सिद्धिमें प्रयास हो; परंतु माया ओर तत्कार्य कुछवस्तुही नहीं है; इसलिये तुझ मतिमंद अज्ञ [समीक्षक] का उक्त तमाम कथन वा खंडन व्यर्थ है." यह मंतव्यभी बालकोंकी गाली समान, अभिप्राय शून्य है. जेसे बालक परस्पर गाली देते हैं ओर उन पदोंके रहस्यको नहीं जानते हुयेभी, लडते-रोते-मरते ओर दुखित देखते हैं वेसे, अजातवादकाभी कथन है. अर्थात् प्रत्यक्षको नहीं, ओर नहीं को हां, कहके फेर नहीं वास्ते उपदेश, तकरार, संप्रदाय ओर तिसका पक्ष, जीव-ब्रह्मकी एकताका आग्रह, वर्णाश्रम निर्वाह, प्राण रक्षार्थ याचना, मतमतांतरके दोष कथन, कर्मोपासनादि तथा बंध-

१ यह वाक्य [श्लोक] न वेदका हे ओर न ब्राह्मण उपनिषद ग्रंथका है. किंतु, श्रीगौडपादाचार्य कृत हे. तोभी मनमुखी वा विश्वासी वा अशोधक वेदांती भाई इसे वेदकी श्रुति कहते हैं. वेदांती भाइओंके वेदकी श्रुति है.

मोक्ष आदिके झगडे!!! वाह अजातवाद! वाह! जो अजातवाद हे तो ब्रह्मकी सिद्धि नहीं करसकते. कोन करेगा? स्वयंब्रह्मतो अवाच्य-तदेतर कोन कहे, ओर मानसकेगा. अजातवाद कथन मंतव्यही न होसकेगा.

अजातवाद हे, एसे कथनसेही जातवाद सिद्ध होता हे. वक्ता श्रोता विद्यमान होनेसे. जो यह कहो के "तुम देखतेहो वा अज्ञ देखते हें के वक्ता ओर सृष्टि हे; परंतु हम नहीं देखते वा ज्ञानवान नहीं देखते." इसका उत्तर आपका वाक्यही बस हे. यद्यपि तद्यपि घटपटादि शब्द बहुछार [वर्षा] की आवश्यकता नहीं. व्याघात वाक्य उन्मत्तोंके सिवाय कोन कहे? ओर उसमें तकरारभी कोन करे? हम कपोल कल्पित निकम्मे-असत् विषयमें व्यर्थकाल नहीं गुमाना चाहते.

पर अपरिहार [परसेस्वपक्ष बचाने] के लिये आपकी अजातवाद कोटीमे तो यह उत्तम शैली माननीय हे कि, "यदि स्वपर पक्षनिर्णय वा परीक्षा वास्ते किसी अन्यको मध्यस्थ ठेरावें तबतो, हम स्वयं उसीसे पूछ लेवेंगे वा निर्णय कर लेवेंगे. हमारे ग्रंथरुप मध्यस्थने जो कहा वा शिक्षकरूप, हमारे मध्यस्थने जो बताया अथवा हमारे मनमुखी प्रमाण युक्ति नामा मध्यस्थने जो हमारे मगज [मन] में उतारा सोही ठीक हे. उसपर हमारा विश्वास हे. तुम्हारा सुनना वा समझना ओर हमारा कहना वा सुनाना हम नहीं चाहते." तथापि इस उपरकी शैली वा उत्तर मात्रसे क्या? मनहीमें समझ रहे होगे,-संशय अशांतिकी दोडादोडके तमाशेमें लग रहे होगे, जिसकोकि दूर करने वास्ते प्रयास हे. यूंतो सर्व शैलीसे उत्तम, बलनामा मध्यस्थहे.-जो चाहासो मनादिया.

फेर कालांतरमें संतानमें वोही संस्कार दृढरूप होके भासमान होगा, सत्य जानेंगे. (वाहरे नबीमोहम्मदजी–आपकी धर्म पोलीसी). आपभी उसे उपचार क्यों नहीं करते कि, जिससे ग्रंथ वा उपदेश करनेका श्रम न हो, अर्थात् बल संप बढाके एक मत होके मनमाना मनादो. कोई चूंभी न करे ?

जो यह कहोकि " परमार्थ (ब्रह्म) दृष्टिसे माया ओर तत्कार्य अजात हें–नहीं हें,"–एसा मानो तो यूं क्यों न माना जाय कि, मायाकी दृष्टिसे ब्रह्म अजात (न था, न हे, न होगा) हे–नहीं हे? जो इष्टापत्ति कहो तो, ब्रह्मोपदेश ओर तत्प्राप्ति अर्थ साधन करनेमें प्रवृत्ति न संभव; परंतु इसके विरुद्ध उपदेश ओर कर्तव्य होता हे–करते कराते हो. अतः अजातवाद मानना बालकोंकि कथा समान हे.

तथाहि जिसकी (ब्रह्म वा मायाकी) दृष्टिसे अजात हे, सो घट, आकाशवत् जड हे, अज्ञ हे, अज्ञाता हे, इस लिये अजात? वा ज्ञाता तो हे परंतु वस्तु न होनेसे अजात ? यह दो विकल्प हें; प्रथम कल्पना मायामें संभव; न कि ब्रह्ममें. जो ब्रह्म विषे मानोगे तो, अधिष्ठान न होगा. ब्रह्म जिज्ञासा न बनेगी, स्वपक्ष त्याग होगा. ओर जो ज्ञाता–दृष्टा मानोगे तो, ज्ञेय–दृश्यकी सिद्धि होजायगी. वस्तु नहीं हे एसा हुये उसके अभाव ज्ञानेसे उसके अभावके प्रतियोगी [माया]की सिद्धि होजायगी. ओरभी पूर्वोक्त रीतिसे ब्रह्म विषे ज्ञातृत्व का अभाव हे; एतद्दृष्टि माया वा ब्रह्मका अजात कल्पक उनसे भिन्न मानना पडेगा. जब यूं होगा तो, ब्रह्मंतर दूसरा अजात कल्पक–दर्शक–निश्चयकारक माननेसे स्व सिद्धांतका त्याग होगा. किंवा जैनियोंके अनेकांतिक [स्याद्वाद]–सिद्धांत समान किसीकी दृष्टिसे 'हे' किसीकी दृष्टिसे 'नहीं हे'

किसी दृष्टिसे "है नहीं है" इत्यादि सदोष सिद्धांत माननें पडनेपरभी वस्तुतः अजात सिद्ध नहीं होगा; किंतु ब्रह्म वा माया-दोनों, वस्तुतः कुछ हैं. 'कुछभी किसी प्रकारकेभी नहीं हैं' एसा नहीं है. उन दोनोंमें कोइभी शुन्यरूप नहीं हैं. किसी देशकालमेंभी जो न हो-जो दृष्टश्रुत न हो उसके लिये अजातपद कथन ही संभव नहीं होता-अवसरप्रद नहीं.

अन्य मत-दर्शन-२४

विदितहो:-जेसेकि द्वैतपक्ष कई प्रकारके हैं:-यथा विशिष्टाद्वैत [न्याय-रामानुज-सांख्य-योग-आर्यसमाज वगेरे.], द्वैताद्वैत[1] (किरानी, कुरानी, ईरानी वगेरे], केवल द्वैत [जैन, मीमांसा वगेरे], शुद्ध द्वैत [परमाणुवादि वगेरे].

वेसे अद्वैत पक्षभी अनेक प्रकारके हैं. यथा बुद्धाद्वैत,[2] अभावाद्वैत, शुद्धाद्वैत[3] (हमःओ), सूफी अद्वैत[4] (हमःअजो) वगेरे. इन सर्वसे इतर केवलाद्वैत[5] [शांकरमत[6]]उत्तमहे. जो उसमेंसे मायाका सांतत्व ओर जीव ब्रह्मकी एकता-यह अंशानि-

---

१ द्वैतके दोपक्ष-हमः दरो (यह सर्व उसमें हे), दरो हमः [सर्व उसमें हे].-किंवा व्यापक व्याप्यवाद, दुसरा परिच्छिनवाद. २ क्षणिकवाद, शून्यवाद, स्वभाववाद, दृष्टिसृष्टिवाद वगेरे. ३ यह सर्व ब्रह्म-ब्रह्मका विकार-वा इन सर्वका समूह ब्रह्म. ४ यह सर्व उस ईश्वरसे हे. आद्यअंत ईश्वरही हे. जगत आद्यअंतमें नहीं. मृगतृष्णावत् हे. वा ईश्वर कल्पित हे-स्वप्नवत् सादिसांत हे. वा अभावसे भावरुप ईश्वरने बनाइ हे. ५पूर्ववत्-वगेरे. ६ उपानिषद्, अनुभवने योग्य ज्ञेय ब्रह्म पर हे. उनका कोई पक्ष विशेष नहीं. द्वैत ओर अद्वैत दोनोंको अवसर देतेहें.

कालदिया जावे और शेष भाग तत् संबंद्धरुपसे रखाजावे तो, एसा विलक्षण पक्ष हे कि, जिसके समान अद्यापि अन्य फिलोसोफी नहीं, ओर द्वैतवादियोंकाभी उसके साथ विरोध न हो. अद्वैतपक्षकी शाखा बहुत हें, उनमेंसे कितनीक उपर कही गई. उपरांत तदंतर कवीर[७] आनंदभारती, प्रत्यभिज्ञ, नानक, थियोसोफी वगेरे हें.

यद्यपि विचारवान, सूक्ष्मदर्शीको पूर्वोक्त लेखसें सर्व पक्षोंकी असमीचीनता ज्ञात होने योग्य हें; अतः विशेष लिखना उचित नहीं; तथापि सेलभेल वाले केवल नाम मात्र जो अद्वैतवादी मत हें[९] उन पक्षोंको जनाना उचित जाना गया हे, अतः संक्षेपमें दरसाते हें.

(क) नवीन पुराणी.

[थियोसोफीकल सोसाईटी–गुप्त मत-गुप्त विद्या.]*

थियोसोफिसृ मतने आर्यावर्त्तमें १९ वर्षसें जन्म पाया हे. किसी अंशमें प्राचीन किसी अंशमें नवीन वेदांत, किसी अंशमें शुद्धाद्वैत, किसी अंशमें पुराण मत साथ मिलता हे– मिश्रण पक्ष हे. अद्यापि उनका लेख किसी विशेष पक्षपर नहीं जान पडता; इसलिये सक्रम नहीं लिख सकते. तोभी उसके प्रसिद्ध आद्य अंतके तत्व*–परिणाम संबंधित असमीचीनता–अयथार्थता संक्षेपसे जनाते हें:—

---

७ कबीरादिका अद्वैत, वेदांत जैसा हे. नाम मात्र वा शैलीमात्र अंतर हे. ८ क्योंकि सुफियोंके दो पक्ष हें उनमेंसे एक तो वेदांतपक्ष समान हे. दुसरा अभाववाद हे. कबीरादीका पूर्ववत्. इसलीये उनकी चर्चा नहीं लिखी. ९ वा उपर कहे प्रसंगसे जिनका थोडा ध्यान आवे

* वक्ष्यमाण नोट देखनेसे उनका मत जानोगे.

१-पूर्व दर्शनमें सर्वज्ञत्वकी असिद्धि, सिद्धकीगई है; उससे उनके ब्रह्म, लोगोस, ध्यान चोहानों, दिक्षित, सर्व अनुभव पश्चात मोक्ष और उन्नति पक्षका अभाव सिद्ध है.

२-जीवको मध्यम, मिश्रित (मनस-बुद्धि-आत्माका समूह-वा भान] मानते हैं; इसलिये उसको मोक्ष होना, मोक्ष साधन, मोक्ष सुख भोगना और अत्यंत उन्नतिका अभाव स्पष्ट है. सादि सांत जीव वास्ते उनकी मोक्ष मान्य नहीं होसकती.

३-जीवको किरण-प्रतिबिंब-आभास* मानें तो, पूर्वोक्त आभास-प्रतिबिंबवाले दोष आनेसे जीव और मोक्षभाव असिद्ध है.

४-' ब्रह्म सत्यम् जगत् मिथ्या ' वाले पक्षमें भी पूर्वोक्त प्रसंगवाले दोष. [दर्शन ६-७ वगैरे याद करो].

५-ब्रह्म और उसकी अनंत शक्ति मानें तो,* दो स्वरुपोंका परस्परमें अप्रवेश होनेसे पूर्वोक्त ईश्वरवाद प्रसंगवाले दोष आवेंगे. और सर्वशक्तिमानत्वका अभाव उपर जनाया है, इसलिये यह पक्षभी असिद्ध है.

६-ब्रह्मको विभु और अनंत तथा आधारभूत मानके नित्यगतिवान* मानते हैं, यह मंतव्य अलीक है; क्योंकि गतिवान आधेय होनेयोग्य होता है.

७-ब्रह्मको निर्विकार शुद्ध व्यापक कहके उसका रुपांतर और परिणाम* मानना असंभव दोष -विरोधाभास.- शुद्धाद्वैत पक्षवाले दोष.(ख) देखो.

८-जीव ब्रह्मकी एकता माननेमें पूर्वदर्शनोक्त दोष आतेहें. मनस, प्रकृत्तिका परिणाम है, उसकी एकता आत्मा वा ब्रह्मके साथ होना असंभव है.

९–पशु पक्षीमें मनुष्यवाला जीव नहीं मानते; परंतु हाथी, कुत्ता, बंदर, बैया वगेरे जानवरोंके कृत ओर पाक्षियों-की परिभाषा जाननेसे उनका अनुमान गलत हे.–मनुष्यमें ओर जानवरोंमें साधनोंका अंतर हे. भान [जीव] व्यापक आत्मा सर्वमें हे, एसा वे मानतेहें; अतः निरंश आत्माके संबंधमें उनका मंतव्य अमान्य हे. वगेरे.*

---

* इस नोटको वांचके ओर पूर्वोक्त दर्शनोंको ध्यानमें लेके थियोसोफिस्ट पक्षके दोष विचारोगे तो, उक्त ८ दोषही बस होते हें.

जोकि यह मत मिश्रिण पक्षसे हे १, आर्यावर्त्तवासी एसे बहोतही थोडे मनुष्य निकलेंगे जोकि, इस पक्षको जानते हों २, इस पक्षके अनुयायिओंमें बहुतोंका मगज पुराणियों समान विशेष अंशमें विश्वासी, वहमी ओर सकंप देखनेमें आया हे ३, उनका लेख ओर पक्ष एक क्रमपर नहीं; किंतु अपनेको तत्व शोधक मानते हें ४, कुछ स्पष्ट जनाये विना उक्त खंडन ध्यानमें नहीं आनेका ५, इत्यादि कारणको लेके इस पक्षका मंतव्य, संक्षेपमें जनाना आवश्यक जानके–अनिश्चित होनेसे मूल प्रसंग योग्य नहीं समझके, इस नोटमें उसके खंडन सहित लिखते हें. उस तमामको वांचनेसे सहेजमें जानसकोगेकि, इस मतके मुख्य पक्षका खंडन उपरके दर्शनोंमें आचुका हे. ओर इनका द्वैत वा अद्वैत वाद हे, यह वातभी जानलोगे.

सृष्टिके भवन वा तत्व.			थियोसोफी मत प्रमाणे मनुष्य बंधारण		भवन प्रति जीवकी उपाधि.	
सं.	लोक.	तत्व.	संज्ञा.			
१	सत.	महापरिनिर्वाण	० ०	अगम्य.		
२	तप.	परिनिर्वाण....	०/२ ०			
३	जन.	निर्वाण....	१ आत्मा			
४	महर.	बुद्धि भवन....	२ बुद्धि.	....	....आनंदमय कोश	
५	स्वर- देवखन- स्वर्ग.	अरुपलोक.....	२/२ बुद्धि—३/२ मनस (स्परटल शोल)	विज्ञान.	कारणशरीर.	मायावी रूप.
		रूपलोक.....	३ मनस (उपला. निचला)	मनशक्ति- इच्छा-लागणी.	कामरूप.	
६	भुवर	उपरका कामलोक.	३/२ मनस—४/२ काम.... .... [हुमन शोल]			
		नीचेका कामलोक	४ काम [उत्तम, मध्यम] ४/२ काम ५/२ प्राण [अनीमिल शोल]			

७	भूः— स्थूल भुवन	इथर ७ वायुरूप.	५ प्राण....	स्थूल उपाधि.
			६ छाया शरीर....	
		प्रवाही. नक्कर.	७ स्थूल शरीर....	

इस नकशेमें संज्ञाके सामने ०-$\frac{०}{२}$-१-२ वगेरे चिन्ह जिस नाम साथ लिखे हें, सो संज्ञा आगे जिस नकशेमें आवे वहां, यही नाम पढने चाहिये. यथा जहां ० आवे वहां, महापरिनिर्वाण, जहां २ वा $\frac{२}{१}$ आवे वहां बुद्धि, जहां १ वहां आत्मा, जहां $\frac{२}{१}$-$\frac{३}{१}$ वहां बुद्धि-मनस, वांचना चाहिये. इत्यादि.

इसलिये यह पक्ष सयुक्त नहीं. इसी सबबसे उनकी अंतरंग सभा [पुरुष प्रकृति वा ब्रह्म मायाकी संबंध दर्शक

अन्य मतों साथ थि.–[थियोसोफी] मतका मुकाबला.

संज्ञा.	थि. के तत्व.	वे–[वेदांतमत]के तत्व.
०	....	शुद्धब्रह्म.
०/२	....	शेषा–शक्ति–मायाका आधार जो ब्रह्म.
१	जबकि आत्मा, वस्तु नहीं.	माया वा अंतःकरण वा अविद्या अनवच्छिन्न चेतन.
,,	जबकि आत्मा, ब्रह्मका अंश है.	शुद्धमाया अवच्छिन्न–मायोपहित ईश्वर–अविद्या वा अंतःकरण अवच्छिन्न वा अविद्योपहित वा अंतःकरणोपहित चेतन–कूटस्थ.
,,	जबकि ब्रह्मकी किरण है.	शुद्धमायामें चिदाभास. } ब्रह्मका माया और अविद्यामें जोप्रतिबिंब, सो. अंतःकरणमें चिदाभास.
२	बुद्धि,–जबकि ध्यान चोहानोंका अरक मानाजाय.	मायाके अंश आविद्याके शुद्धसत्वका सूक्ष्म भाग. संस्कार पाई हुई [ऋतंभरा-रुप] अंतःकरणकी वृत्ति.
	जबकि ध्यान चोहानोंका किरण है.	अविद्याके शुद्धसत्वांशमें ईश्वरका आभास. सत्व रजतम मिश्रित जो अंतःकरण तिसमें जो शुद्ध सत्व भाग सो बुद्धि.संकृतवृत्ति.
२/१·३/१	बुद्धि–मनस.	अंतःकरणका शुद्ध सत्व भाग (बुद्धि) और शुद्ध रज [उपला मनस] मिले हुये वा शुद्ध सत्व–शुद्धरज–शुद्धतमका समूह जो अंतःकरणका भाग, सो.

ओर अनुभव करानेवाली सभा] का मोह गुप्त मोहही हे. तपासलो. खेर कुछभी हो, परंतु वेदांत, पुराणका पक्षी होनेसे पूर्व द-

संज्ञा. थी.	वेदांत.
३ मनस.	अंतःकरणके शुद्धरज, शुद्धतम-यह दोनों मिलके किंवा केवल अंतःकरण. प्रकृतिके कार्य महतका कार्य. वा मायाके अविद्या परिणामके भागका कार्य-परिणाम.
१ उपला [उपरका]	शुद्ध वा संस्कारी अंतःकरण, वा चिदाभास.
२ निचला	इंद्रिय ग्रामाधीन वा संबंधी अंतःकरण.
जबकि उपरके मनसका भाग हे.	” ”
जबकि उपरके मनसकी किरण हे.	अंतःकरणकी वृत्तिका ज्ञानेंद्रियों साथ-तादात्म्य वा वेसा चिदाभास.
३-४ मनस-काम........	रज तम प्रधानवाले अंतःकरणकी वृत्ति ओर इंद्रियोंका तादात्म्यत्व होके जो अवस्था होती हे, सो.
४ काम	इंद्रिय ग्राम-इंद्रिय समूह. सूक्ष्म शरीरका एक भाग.
१ उत्तम	निर्दोष अंतःकरणाधीन इंद्रिय वा शुद्धेंद्रिय.
२ मध्यम........	दुष्ट इंद्रिय ग्राम.

र्शनोक्त दोष इस मतको लागु होते हैं, अतः पुनः लिखना

४-५ काम-प्राण....	प्राणाधीन इंद्रिय ग्राम-कर्मेंद्रिय ओर प्राणका समूह.
५ प्राण	सूर्य वा हिर्ण्यगर्भका सूक्ष्म तत्व-जो स्वप्नसृष्टिमेंभी होता हे.
१ सूक्ष्म	,,
२ स्थूल....	स्थूल वायु, जो शुषुप्ति कालमें अन्यको प्रतीत होती हे.
६ छाया शरीर....	सूक्ष्म शरीरपर जो विद्युत-ओरा-शब्द वगेरे सूक्ष्म तत्वोंका पड हे.
७ स्थूल शरीर....	जो स्थूलभूत [रज वीर्य-खुराक]से बनता हे.-जलाया जाता हे.

इन सर्व तत्वोंमें ब्रह्म-कूठस्थ-आत्मा, अनादि अनंत, अंत:करण [मनस-बुद्धि] अनादि सांत.-अर्थात ज्ञान पूर्वक वासना त्याग पीछे अपने उपादानमें मिल जाता हे.

जीवः-जबकि भान हे.	अविद्याके रजतमसे दबाहुवा सत्वांश वा [यही] साभास सत्वांश. वा [यही]साधिष्ठान साभास सत्वांश.
जबकि मनस बुद्धि ओर आत्मा-तीनों मिलके जीव संज्ञा हे.	साधिष्ठान साभास अंत:करण-जीव वा अंत:करण विशिष्ट चेतन,-जीव.
चेतनः-जबकिहलने चलने वालेका नाम हे.	साभास अंत:करण. वा अंत:करण.
जबकि ज्ञानस्वरूप ब्रह्मका नाम हो. वगेरे.	कूठस्थ-साक्षी-ब्रह्म.

ऽयर्थ समझा गया है

संज्ञा. थी.	वेदांतके दुसरे प्रकारका मुकाबला.
०...	पूर्ववत्.
०/२...	
१...	
१...	आनंदमयकोश. अविद्याअवच्छिन्नचेतन.
२/२ ३/२...	विज्ञानमयकोश (बुद्धि ओर ज्ञानेंद्रिय).
३ मनस...	चित्-बुद्धि-मन-अहंकार-इन चार तत्व वा वृत्तिका समूह जो अंतःकरण, तिसमेंसे बुद्धि भाग छोडके जो है, सो.
३/२-४/२...	मनोमयकोश [मन-ज्ञानेंद्रिय].
काम.	इंद्रियग्राम.
उत्तम...	शुद्धेंद्रिय.
मध्यम...	दुष्टेंद्रिय.
४/२-५/२...	प्राणमयकोश [प्राण-कर्मेंद्रिय].
प्राण......... ...	पूर्ववत्.
छायाशरीर...... ...	,,
स्थुलशरीर...... ...	अन्नमयकोश.

अंतःकरणसे लेके सूक्ष्म प्राण तक, सूक्ष्मशरीर कहाता है, उसमें अन्नमयकोशसे इतर चारों कोश होते हैं-स्वप्नमेंभी होतेहें और इसमेंसे मरने पीछे अंतःकरणसे सब छुटजातेहें-वे अंतरक्ष विषे उपयोगमें आते हें. स्थूलशरीर-अन्नमयकोश तो जलाया जाताहे. केवल अंतःकरण उत्तर जन्म पाताहे. [पक्षमें सूक्ष्मशरीरको उत्तरजन्म मिलताहे]

थियोसोफिस्टोंके कल्पित ढकोंसलोंके संबंधमें मेरे एक मित्र (मरहुम थियोसोफिस्टने नाम लिखनेकी आज्ञा नहींदी.)

संज्ञा.	थि.	राजयोग मत–वा वेदांतका पक्षकार
०	... ...	पूर्ववत्.
०/२	... ...	
१	आत्मा	
२	बुद्धि...	कारणोपाधि.
२/१–३/१–३–३/२–४/१–		सूक्ष्मउपाधि.
४–४/२–५/१–५		
६–७	... ...	स्थूल उपाधि.

सं.	थि.	बौद्ध.
०	... ...	अक्षणिक शुद्धविज्ञान. वा शून्य.
०/२	... ...	सवासना मूल विज्ञान.
१	... ...	आलय विज्ञान.
२	... ...	प्रवृत्ति विज्ञान.
२/१–३/१	... ...	सवासना प्रवृत्ति विज्ञान.
३	... ...	क्षणिक विज्ञान.
३/२–४/१	... ...	परिणामी विज्ञान–विज्ञानस्कंध.
४	... ...	स्कंधवीज.
४/२–५/१	... ...	स्कंध परिणामाकार विज्ञान.
५	... ...	विज्ञानका परिणाम विशेष.
६	... ...	” ”
७	... ...	” ”

कहा करतेथेकि "मरहूमा मडम–ब्लॅवॅत्स्की साध्वी बाईने अदृष्टरूप हुये मुझको कहा कि मैंने जीव, ईश्वर, प्रकृति,

संज्ञा. थि.	ख्रिस्ति मत.
० / ०/२ ...	नहीं वा. जात.
१. आत्मा...	१–खुदा. रूह.
२...	२–खुदाका दम(श्वास) हुकम–अंश.
३–३/२–४/२–४...	जीव.
५–६–७...	शरीर.

सं. थि.	मुसलमानी मत.
०...	जात्–
०/२...	सिफात–कुदरत–शक्तिसहित खुदा.
१...	रूह (खुदाकादम–हुकम–अंश)
२...	खुदाकी कुदरतसे खुदाका बनया हुवा जोहर–सत्व.
२/२–३/२...	रूहलतीफ.
३ मनस.	रूहइनसानी.
३/२–४/२...	रूहकसीफ–कवायका मजमूआ.
निचला मनस–अधमकाम.	नफ्स.
४ काम.	रूहहेवानी–वा हिस्समुशतरिक.
४/२–५/२...	रूहसेलानी.
५ प्राण...	दम.
६ छायाशरीर.	जिस्मेलतीफ.
७ स्थूलशरीर.	जिस्मेकसीफ.

मोक्ष ओर परब्रह्मके स्वरुप विषे जो कुछ कहा—अपने बनाये ग्रंथोंमें लिखा हे, वोह मेंने भूल खाई हे. देवखनमें

१—(थि.) १ परब्रह्म. २ वोह अंतरजामी—सगुण—गतिवान—पोलरुप—अव्याकृत परिणामी—रूपांतर होनेवाला—वही पुरुष—वही प्रकृतिरुप होता हे.— व्यक्त अव्यक्तरुप धारता हे. सूर्य सेलेकर अणु पर्यंत उसीके विविधरुप हें.

३—अविकारी, शुद्ध, निर्गुण, आधार, सर्वका मूल (अधिष्ठान), निराकार, अखंड, अव्यय, अरुप, स्वतंत्र, सच्चिदानंद, अद्वितीय, जिसका सर्व स्थल केंद्र हे, विभु—अनंत,—सर्वका लय स्थान.

मजकूर लक्षणोंमेंसे नं. १ ओर नंबर ३ वेदांत पक्षभी मानता हे. नंबर ३ वाले ओर २ वालेमें परस्पर विरोध हे, इसलिये वेदांतपक्ष, परब्रह्म—शुद्ध चेतनके वे लक्षणके जो नं. २ में हें—थियोसोफिस्ट जिसको मानते हें, सो नहीं स्वीकारता. किंतु नंबर २ वाले लक्षण माया विशिष्ट ईश्वरके कहता हे.

परंतु शुद्धाद्वैत (वल्लभ) मत वाले, एकही ब्रह्मके थियोसोफिस्टों समान विरुद्ध धर्माश्रय वाले (नं १-२-३) लक्षण मानते हें. बौद्ध मतमें थियोसोफिस्टों समान घटित होसकते हें.

वेदांती—रामानुज—आर्य समाज—पौराणी—जैनी—किरानी-कुरानी-ब्रह्मसमाजी, इस विरुद्ध पक्षको नहीं स्वकारते.

२—थियोसोफी (थियोसोफिस्टोंके मान्य ४ ग्रंथका सार) वाला कहता हे कि, ब्रह्म, पुरुष वा प्रकृति नहीं. जगत, न पुरुष हे न प्रकृति, परंतु उभयरुप हे. परब्रह्म ओर प्रकृति वस्तुतः एक हें. ब्रह्म, जगतकर्त्ता नहीं; किंतु जेसे जल,

जाके अपनी भूलका शोधन करके कामभुवनमें मुझको आना पडा हे. ओर अब जो मुझसे कामभुवनमें असत्य

परपोटाका कर्त्ता नहीं, वेसे अनादिसे स्वभावतः भरती. ओट समान होता रहता हे. ब्रह्म हे सो जगत, जगत हे सो ब्रह्मरूप नहीं; किंतु सृष्टिका आधार हे. ब्रह्म विना सृष्टिकी स्थिति नहीं–ब्रह्म भान [ज्ञान] रुप हे,–सृष्टिका ज्ञान कर्त्ता नहीं. ब्रह्म बेभान वा केसा हे, यह नहीं कहाजाता.

ब्रह्म, एक सत् हे, परंतु माया (एक हो परंतु अनेक रूप में जनाय वा जनावे सो माया) के सवबसे द्वैत–नानारूप भासता हे. आकार मात्र माया हे. एक प्रकार कहें तो वही ब्रह्म, सृष्टि हे (गुप्त ज्ञान संहिता). ध्यानचोहानों (व्यक्ति समूह–ईश्वर) कोभी द्वैत भासता हे; जगत् एसा हे जेसाके जलमें परपोटा.

(ग्रं. क.) नं. २ वाले पक्षमें कितनाक अंश वेदांतको मिलता हे. परंतु थियोसोफिस्टभाई, विवर्त्त वादकी खूबी नहीं जानेत.–फिलोसोफीसे डरते हें. इसलिये मडम वा उसके चेलोंके बनाये हुये ग्रंथोंमें विरोधाभासका ठिकाना नहीं.

(समीक्षक.) इस विरोधाभास (व्यापक ब्रह्म सक्रिय–परिणामी–तम प्रकाशरुप वगेरे) का खंडन–असंभवता ओर ब्रह्मके अभिन्न निमित्तोपादानत्वका खंडन पूर्व दर्शनोंमें आचुका हे. ओर आकार, माया मात्र हे–वस्तुतः नहीं, इस पक्षके दोपभी पूर्वमें कहे गये हें. थियोसोफीका ब्रह्म, सांख्यकी प्रकृती–प्रधान समान हे; क्योंकि निराकार–निरुप ब्रह्मका साकाररुप वाला परिणाम–उपादेय माना थियोसोफिस्टोंके बुद्धिमान महात्मा–गुरु–सर्वज्ञ–गुप्त दिक्षित ध्यान चोहानोंके सिवाय कोन माने!

कृत नहीं हुवा तो, धारी हुई भूत योनी छोडके आर्य कु
लमें जन्म लेनेवाली हुं; " एसा अपने कर्मोंके ' (अलॅमंत

(नोट)

"प्रतिबिंब (किरण समुदाय जन्य आकृति) अज्ञान रहित नहीं होता. ओर परमात्मारुप नहीं होता. किंतु बद्ध होता हे-प्रकृतिका एक, विकारी परिणाम होता हे. आत्मा उसका साक्षी हे, (ब्लॅवत्स्कीकृत गुप्त ज्ञान संहिता)" (ध्यानमें रखिये.) " में कोन हुं? क्यों हुं? मनुष्य कोन हे ? यह कोईभी नहीं जानसकता (थि.)"

३ [थि.] "पुरुष.-ब्रह्मका दिव्य संकल्प.-महत्. इसकी गतिसे जगत होता हे. इससे मनुष्योंको चेतन मिलता हे." " वेदांत, इस अव्यक्तको माया विशिष्ट ईश्वर कहता हे, जिसके संकल्पसे मायामेंसे जगत हुई" [समी.] ब्रह्मको संकल्प न होसकनेका हेतु ओर इस पक्षका खंडन उपर आचुका.

४ "[थि.] प्रकृति. स्वरुपसे एक हे, परंतु नानाप्रकारके अणुकी उपादान हे. इससे चेतन उत्पन्न नहीं होता." "वेदांतके अनुकुल हे. वोह उसे माया कहता हे." [समी.] मायाके एक रुप न होनेका खंडन पूर्व दर्शनोंमे आचुका.

५ (थि.) " लॉगोस. ब्रह्ममें एक प्रकारकी नाना शक्ति. इसको अपना ज्ञान होता हे इसके भानसे जगत चलतीहे." " 'वेदांत में इसको शुद्ध समष्टि ईश्वर नामसे बोलते हें." (ईश्वर प्रसंगगत ईश्वरके स्वरुपमें जो पक्ष हें उसकी नोट देखो). [समी.] शक्तिको, ज्ञान होनाही असंभव. तथा अपना ज्ञान किसीकोभी नहीं होता; इत्यादि पक्ष पूर्व दर्शनोंमें सिद्ध किये हें; अतः गुप्त ज्ञानके अभिमानियोंकी यह कल्पना असंगत हे.

लों' का परिणाम) फलसे अनुमान करती हूं;" तब मुझको पुरुष-नर अवस्थामें यथार्थ योग ओर ब्रह्मविद्याकी प्राप्ति

---

६ [थि.] " फोहातः-ब्रह्मके संकल्पसे यह शक्ति उत्पन्न होती हे.-इसे पुरुष, प्रकृतिका संबंध [वा संबंधक] कहते हें. इस संबंधसे जगतकी उत्पत्ति, स्थिति ओर लय होता हे " वेदांत पक्ष, इसको चित् जडका संबंध नाम देता हे -यह, कोइ वस्तु नहीं हे. एसा मानना पडता हे." [समी.] फोहातका उपादान ब्रह्म मानें तो, अपने संकल्पसे, अपने शरीरमेंसे ब्रह्म, इसे उत्पन्न नहीं करसकता. हठसे मानें तो, ब्रह्म एक अव्यय नहीं; किंतु सावयव-सांश ठेरेगा-आधेय मानना पडेगा. जो फोहातको अनुपादानजन्य मानें, तो पूर्वोक्त मुसलमान, खिस्ति मतवाले असंभव दोष [अभावमें भावोत्पत्ति असंभव हे] आवेंगे. जो फोहात कोइ वस्तु नहीं, तो गुप्त ज्ञान संहिताका यह लेखकि. "ध्यान चोहानोंकी आज्ञामें फोहात रहती हे. हरेक परमाणुमें विजली शक्ति, फोहात ही डालती हे," असंगत होजायगा.-विरोध दोष आवेगा जो फोहातको संबंध मात्र मानें तो, जड होगा. वोह विजली शक्ति डालनेमें असमर्थ रहेगा. तथा जो माया ब्रह्मके संबंध प्रसंगमें दोष कहे गये हें, वे दोष आवेंगे. अतः फोहातकी कल्पना अयुक्त हे.

७ (थि.) आत्माः-"परब्रह्मका अंश वा किरण [मायामें ब्रह्मका प्रतिबिंब-आभास सो आत्मा] हे; निरूप हे,-स्मृति शक्ति उसमें नहीं,-उसका कोइ शरीर नहीं, लोकसे संबंध नहीं रखता. कोइ वस्तु नहीं, आत्मा एकही हे.-भिन्न-नाना नहीं, विजली वगेरे तमाम वस्तुका मूल हे,-मनसकी उपाधिको लेके भिन्नरूपमें भासता हे.-अमरतत्व हे." वेदांत

होगी. और जितना बन सकेगा, उतना सत्य प्रचार वास्ते उप
लूंगा. मुझ अदृष्टरूपद्वाराही उक्त कथन निकला है, उसक
परीक्षा-पुरावा यह है कि, थोडेही कालमें थियोसोफीक
सोसाइटी-थियोसोफिस्टोंके मतकी पोल खुलनेवाली है.
व्यर्थ द्वेष करेंगे.-पक्ष-हठपर आवेंगें. जब यह सोसाई
निराभिमान हुई आर्य संतान और आर्योंके सच्चे धर्मके सा

पक्षमें इसे कूटस्थ-[अंतःकरण उपाधि है जिसकी, ए
ब्रह्मके अंतःकरण अवच्छिन्न अंशको] कहते हैं. और वे
दांतका आभासवादभी ब्रह्मकी किरण [आभास] क
आत्मा नहीं कहता, किंतु चिदाभासको जड मानता है
परंतु फिलोसोफीके विरोधी थियोसोफिस्टभाई, इस भेदको
नहीं जानके पूर्वापर विरुद्ध लिख डालते हैं." [समी.] जो
आत्माको ब्रह्मका अंश मानें तो ब्रह्मके अंश प्रसंगमें (सा-
वयवता-सोपाधि निरंशता वगेरे प्रसंगमें) जो दोष जनाये
हैं, वे दोष आवेंगे. जो ब्रह्मके आभासको आत्मा मानें, तो
पूर्वोक्त प्रतिबिंब-आभास प्रसंगवाले दोष आवेंगें. ब्रह्मको
अंतरयामी मानके उसके अंश आत्माको स्मृति रहित
मान्ना हास्यास्पद है. ब्रह्मकी किरण मानके आत्माको उ-
सका स्वरुप वा अभिन्न मान्ना कितनी बडी भूल है.-कि-
रण, किरणी [जिसकी किरण है] और जिसमें किरण
पडती हैं-इन दोनोंसे भिन्न होती हैं. मजकूर नोट अनुसार
आत्मा-जड, प्रकृतिका परिणाम ठेरता है, उसको परमात्मा-
का अंश वा चेतन मान्ना केसी भूल है; अतः मडमसाहेबाका
उक्त लेख अयोगत है.

८ [थि] "ध्यान चोहानों-ईश्वरः-परमात्माकी अनंत
किरणें निकलती हैं, उन नानाप्रकारकी अनंत किरणोंमेंसे

एकमेक–संमिश्रित होगी, तब गुह्य रहस्यको पाके कृतार्थ बनेगी. और धर्मसंपको करने योग्य होगी. अभीतो सिद्धोंके

[चिंगारियोंमेंसे] एक किरण (सप्तमी)का नाम जीव है. उसेही पहिला ईश्वर कहते हैं उनमेंसे ध्यानचोहानो निकलते हैं.—उनका स्वरुप बनता है. यह अयोनिज [मानसपुत्र–कुमार–] और सात प्रकारके होतेहैं; उनमेंसे महान चोहान वर्ग, सूर्य वगेरे ग्रहोंको बनाते हैं.—उनकी रक्षा और व्यवस्था करते हैं–कोइ, जीवोंके कर्म जो कि स्टरिल लाइट (चित्रगुप्त)में अंकित होतेहैं और उस मुवाफिक भविष्य शरीर बनता है, उन कर्मोंके अनुसार सूक्ष्म वगेरे शरीर जीवोंको देते और यथाकर्म योनीमें डालनेकी व्यवस्था करते हैं.- एसे चार महाराज हैं. कोइ, अन्य कार्य करते हैं. यह ध्यान चोहानो, इथर समान गुप्त अदृष्ट होतेहैं, गोचर नहीं. और न्युनाधिक दरजेवाले होतेहैं. सर्व समान नहीं. जोकि सृष्टिनियमानुकुल कार्य करते हैं-अन्यथा नहीं करसकते, अतः [साधारण सत्कारसे विशेष] उनको पूजने स्तुति प्रार्थना करनेकी जरुरत नहीं.

यह सब ध्यान चोहानो सृष्टि आरंभकालमें स्वभावतः होतेहैं, उनकी उत्पत्ति वा प्रकट होनेमें कोइ मूल कारण वा कार्य नहीं है, प्रलयकाल विषे ब्रह्म विषे लय होजाते हैं. (जेसे शरीरका बंधारण-व्यवस्था, स्थूल शरीरगत अनंत जंतु करते रहते हैं, वेसे समष्टि-वैराट शरीरका बंधारण और व्यवस्था. ध्यान चोहानो करते रहते हैं). सृष्टि कर्त्ता, धर्त्ता हर्त्ता. कोई एक ईश्वर व्यक्ति नहीं है; किंतु व्यक्ति समूहका नाम ईश्वर है. फोहात, ध्यानचोहानोंकी आज्ञामें रहती है और इनके संकल्पसे फोहात, परमाणुओमें विजली शक्ति डाल-

समान खयाली गप शप और पौराणियोंके समान पागलमें है.
जैनियों वा नारायणस्वामियों समान अंतर बेतरनी है. वा शो-

ती है; तब, तमाम ब्रह्मांडके मेटर (परमाणुओं) का जो गोला, उसमें गति होकर सूर्य वगेरे ग्रह-उपग्रह-गृहोंकी हार वगेरे अर्थात् तमाम ब्रह्मांड बनता है और फेर यथानियम और क्रम, ध्यानचोहानो द्वारा बिखरके लय होता है. निदान पुरुष प्रजापति वर्गका नाम ईश्वर है. स्वयं ईश्वर कोई वस्तु नहीं.

वेदांतपक्ष, इस ईश्वरको समिष्टरूप मानता है. शुद्ध व्यष्टि अविद्या विशिष्ट वा शुद्धव्यष्टि शुद्ध अंतःकरण विशिष्ट वा अंतःकरण अवच्छिन्न चेतन, किंवा चिदाभास सहित शुद्ध अंतःकरणाके समूह विशिष्ट वा उपहित चेतनको ईश्वर कहता है. किंवा चेतनको नहीं किंतु शुद्धव्यष्टि अंतःकरणोंमें जो व्यष्टि चिदाभास है तिनके समूह-समिष्टिको ईश्वर कहता है.-यह पक्ष वेदांतके एक पक्षकारका है [ईश्वर प्रसंगगत नोट याद करो.]

(समी)-व्यापक चेतन ब्रह्मकी किरणें-आभास-फोटो होना असंभव-वगेरे दोष, परिच्छिन्न ईश्वरकी असर्वज्ञता-इत्यादि वातें उपर सिद्धकरआये हैं. आभास जड होता है, उसमें व्यवस्था और नियममें रखनेकी सामर्थ्य नहीं. ब्रह्मसे भिन्न कोइ जीव चेतन समूहको ईश्वर मानें तो, ब्रह्मांडकी अव्यवस्था; क्योंकि परिच्छिन्न ध्यान चोहानो, सर्वज्ञ नहीं होसकते. नाना पदार्थ बनानेमें नाना प्रकारकी सामग्रीकी आवश्यकता होती है. वे ध्यान चोहानों अनंत ब्रह्मांडका अंत नहीं पासकते; अतः घटित सामग्री लानेमें असमर्थ रहेंगे. ब्रह्मांडके तमाम जीवोंके कर्मकी व्यवस्था चार महाराज करें,

भक है. शंकराचार्य तथा स्वामी दयानंदके गुप्त रहस्य जानके आर्य धर्मका महत्व समझके धर्मविषयमें जंगली परखंडियोंके

यह असंभव बात है; क्योंकि परिच्छिन्न हैं. ओर जो उनको व्यापक, सर्वशक्तिमान मानो तो ४ मानना व्यर्थ है-पुरुषकी मान्यताभी ना काम है; अतः एकही मानना योग्य है. एक माननेमें पूर्वोक्त ईश्वर प्रसंग वाले दोष आवेंगे.

जो ध्यानचोहान स्वभावतः हैं तो, वे नित्य हैं-अर्थात् ब्रह्मरूप नहीं होते. ब्रह्मस्वरूपसे इसतरही रहे. वा ब्रह्म एकरूप नहीं. किंतु शुद्धाद्वैतवाला जैसा-विरुद्ध धर्मवाला-अरूपी-सरूपी होगा; जोकि असंभव बात है. ओर जो हठसे एसा मानोगेकि सृष्टिके अंतमें ब्रह्मरूप होगये, तो किरणरूप न होंगे. तथा दुसरे महा कल्पमें अन्योत्पन्न होंगे, उनको पूर्व महाकल्पके रहे हुये जीवोंके कर्मका ज्ञान नहीं होगा; अतः व्यवस्था नहीं करसकेंगे. तथा सृष्टि रचनेका ज्ञान बतानेवाला तीसरा कहना-मानना पडेगा. जो एसा कहोगेकि 'एक दिक्षित (सर्वज्ञ) अनादि अनंत है' तो पुनः उसका स्वरूप, ब्रह्मसे भिन्न मानना पडेगा.-अद्वैत तत्वकी हानी होगी. जो कहोकि 'ब्रह्मही ज्ञानवान है,' तो उसीको व्यवस्थापक मानलेना पडेगा.-नाना ईश्वर मानना व्यर्थ है. तथाहि उनके अरकमेंसे बुद्धि उत्पन्न हुइ; इस मंतव्यका परिणाम यह निकलता है कि, वे मध्यम परिणामरूप हैं, अतः नाशवान होंगे. अणुरूप मानो तो, सूर्यादि करने योग्य नहीं. विभुरूप मानो तो, स्वरूप प्रवेश दोष, गौरव दोष; इसलिये एकही मानना उचित होगा. किरणकी किरण मानना सायंस. सृष्टि नियम विरुद्ध है, अन्यथा अनवस्था होगी. परंतु " थि. सो. " तो ब्रह्मकी किरण आत्मा, ओर आत्माकी किरणभी

लाभार्थ आर्य धर्मकी महिमा देखानेके वास्ते देशांतरमें फि
रके मैंने वर्त्तमान देशकालानुसार कल्पित रचना बनाके छु

मानती हे. ब्रह्मकी किरण ध्यानचोहान-इनकी किरण बुद्धि
ओर पुनः बुद्धिकी किरण मान बेठी हे, यह केसी फिलोसो
फी ! ब्रह्मकी किरण अर्थात् क्या ? इससें सेहज जान पडत
हे कि किरण, ब्रह्मसे भिन्न प्रकृतिका विकार हे. स्वयं मड
आचार्या, इस बातको स्वीकारती हे (देखो पूर्वोक्त नोट)
ओर पूनः उसके विरुद्ध लेख लिखा हे, वाहरे, सर्वज्ञत्वके
शोधक ! निदान

सृष्टि कर्त्ता हर्त्ता, यदि परिछिन्न ध्यान चोहानो मानें
तो अन्य हजारों दोष आते हें. खंडनका मूल इस ग्रंथमें आचु
का हे (ईश्वर वगेरेका प्र याद करो). अतः विस्तार नहीं
किया. (तत्वदर्शन नामक ग्रंथमें नाना परिच्छिन्न ईश्वर प्रसं
ग विषे इस पक्षके दोष लिखेंहें, जिसको जाननेकी इच्छा हो
वोह ग्रंथ देखे) मुसलमानी पक्षका यह पक्ष छाया हे—उनके
फिरश्ते ओर थियोसोफीके ध्यानचोहान, एक जैसे हें.

९ (थि.) "बुद्धिः-ध्यानचोहानोंके अरकमेंसे निकलते
हे.—ध्यानियोंकी आत्माका किरण हे.—अमरतत्व हे.—अत्यंत सूक्ष्म
प्रकृतिको कहते हें —अलंकाररुपसे आत्माका वाहन हे. आत्म
बुद्धि उभय साथ रहते हें.—सृष्टिकी तमाम हिलचाल इसके
बलसे होती हे.—इस उपाधिसे आत्माका प्रतिबिंब भिन्न
जान पडता हे.—परमात्माके प्रतिबिंब लेनेका दर्पन हे." "वेदां
तपक्ष, बुद्धिको शुद्ध प्रकृति—अविद्याका सत्व—अंतःकरणका प
रिणाम विशेष वा अंतःकरणका सत्वांश मानता हे.—आत्माकी
उपाधि कहता हे.—आत्माके आभास लेने योग्य स्वीकारता हे."
(समी) जबाकि बुद्धि अमर तत्व हे ओर प्रकृति हे, तो प्रकृति

क बीज डाला है, सो सफल हो, और खरा प्राचीन आर्य धर्म फैले, एसी मांगणी इश्वरसे करती हूं. " (उक्त मुझ·

अमर–' अनादि अनंत ' सिद्ध हुइ. ब्रह्मभी अनादि अनंतहै, अतः दोनों अनादि अनंत ठेरे. ध्यान चोहान, ब्रह्मकी किरण, उनके आज्ञामें फोहात, फोहातद्वारा परमाणु–प्रकृतिमें विजली पडती है. फोहात, प्रकृति पुरुषको संबंध करानेवाली है; इन तमाम मंतव्यका परिणाम यह निकलाकि, ध्यानचोहान और प्रकृति परुष तथा फोहान-यह तीनों स्वरुपसे भिन्न २ हैं. ध्यान चोहान, परमात्माकी किरण हैं, और पूर्वोक्त नोट अनुसार प्रकृतिके परिणाम अज्ञ और बद्ध हैं; इस विरोधी लेखसे यह सिद्ध हुवा कि, " परमात्माकाही विविधरूप जगत है. " परंतु यह मंतव्य असंगत है. बुद्धि, जन्य है, क्योंकि प्रकृतिका अंश है–ध्यानचोहानोंका अंक है, अतः मध्यम पदार्थ है. " मध्यम नाशवान होता है, यह नियम है; इसलिये थियोसोफीके बुद्धितत्वको अमर मानना समीचीन नहीं. ! इत्यादि.

१० [थि] मनसः–स्वर्गीय तत्व पदार्थ है.–ब्रह्मांडके महत [महाबुद्धि–समिष्टि बुद्धि] मेंसे उत्पन्न होता है–. उसमें ज्ञान और क्रिया, यह दो शक्ति हैं.–बुद्धितत्वके प्रकाशसे प्रयत्न करता है–धातु–मूल–पशूपक्षियोंमें यह तत्व नहीं होता.–मनुष्य योनीमेंही आता है.–शब्द, स्पर्श वगैरेकी लागणी मुझे हुईथी–अब होती है–आगे होगी, एसा भानवाला, स्मृति–विज्ञान रखनेवाला, विचारवान, विचारसे आकार बनानेवाला, गतिवान, इच्छा शक्तिवाला, स्वतंत्र मरजीवाला, अहंका अभिमानी, [इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, संस्कार, स्मृति, ज्ञान, वगैरे गुणवाला] है.–इसको कर्मा·

मित्र अपने कहनेके पुरावे-साक्षीमें थियोसोफिस्टोंका मंतव
कहा करतेथे अर्थात् जैसे मडमके साथ वा थियोसोफिस्टों साथ

नुसार योनी-भोग, भोगने पडते हैं. मनसके विना. जीवके अनुभव नहीं होता. इसके उत्तम मध्यम संकल्पोंसे शरीरोंका काम चलता है. मनस और चेतन, मानस ध्यानियो द्वारा, पशुतत्व -(काम-प्राण-छाया शरीर-स्थुल शरीर में आता है तब, मनुष्य होता है. इस मनसके दो विभाग हैं

१-उच्च मनसः-स्वर्ग संबंधी-उत्तम विचारवाला 'काम मनस' का अविषय.

२-निच मनसः-उपरके मनसका भाग वा किरण प्रतिबिंब-आभास है.-काम तत्वके साथ जुडा हुवा रहता है इसका लोक साथ विशेष संबंध है. ज्ञान संहिताके अनुसार "उपले मनसकी किरणों पडती हैं, उसको जन्मा-जन्म भोगना पडता है."

"मनसका नाश नहीं होता-अमर तत्व है. जब ज्ञान होता है-जीव संज्ञा समाप्त होती है, तब मनस, बुद्धिमें समाता है मनस बुद्धि,-दोनों, आत्मामें और आत्मा ब्रह्ममें समाजाते हैं-तद्रूप होजाते हैं. तीनोंका पताभी नहीं लगता. नाम निशान-चिन्हभी नहीं रहता." (ज्ञान गुप्त संहिता) गुप्त ज्ञान संहितामें एक जघे एसाभी लिखा है.-"शुद्ध मनस-बुद्धि-आत्मा-इन तीनोंकी किरणें पडती हैं, उसको योनियोंमें जाना पडता है." (जीवको नहीं कहीं बुद्धि-मनस (सूत्रात्मा) को अवतार-पुनर्जन्ममें आना लिखा है."

"वेदांतपक्षमें अंतःकरणका सत्व रज भाग किंवा मल वगेरे दोषोंसे रहित शुद्ध अंतःकरण वा चिदाभास वा माया

गुप्त महात्मा वा भूत बातें करते हैं वा मेस्मेरिझम क्रियाकी गुप्त दृष्टिसे गुप्त साथ संभाषण ओर गुप्त वृतांत मिलता है; उसी प्रकार

का अंश अविद्या मात्र, उपला मनस है. ओर अंतःकरणका तम भाग किंवा इंद्रिय ग्रामों साथ जो युक्त हुवे अंतःकरण वा अविद्या मात्र. सो नीचला मनस है. ओर जो नीचले मनसको उपलेका फोटो मानें तो, वेदांतपक्षमें उस अंतःकरण का ग्रहण होगा जो कि, नाना मलिन छाप-संस्कार लेनेवाला, इंद्रिय संबंद्ध, विषयासक्त है. किंवा मायुपहित चेतनके आभासवाला अंतःकरण, नीचला ओर माया विशिष्ट समिष्टि उपला. ”

(समी.) मनस (अंतःकरण-जीवकी उपाधि)जबकि महतसे उत्पन्न होताहे. तो आदिवाला हुवा, उसका नाश होना चाहिये; अतः अमर लिखना असंगतहे, जबकि वोह इच्छा. ज्ञान शक्तिवाला स्वतंत्र हे ओर उसको जन्म भोगने पडतेहैं. तो उसको मनुष्य शरीरमें क्यों आनापडा? जो उसके पूर्वके कर्मका फल मानें तबतो, उसकी उत्पत्ति मानना अबाटित हे. जो उत्पत्ति रहित अनादि मानें. तो उसका ब्रह्मस्वरूप होना ओर नाम निशान मिटना, यह बात गलत होजायगी. जो एसा नियम मानें कि “ स्वभावतः पदार्थ बनतेहैं उनमेंसे एक मनस तत्वभी बनता है. जब धातु मूलका रुपांतर होते उन्नतिमें आते हुये, कामतत्व बनता है तब, मनसकोभी अपनी उन्नत्ति होने वास्ते उसमें आना पडता है; फेर उन्नतिकी सीमापर आता है अर्थात मूल बिंदुसे उठके तमाम दोरा करके मूल बिंदुपर पीछा आके ठेरता हे ओर समाप्त होता हे.” तो मनसका लय उसके उपादान महतप्रकृतिमें होना चाहिये, ब्रह्ममें नहीं. ओर जो उन्नतिके वा अवनतिके साधन हैं

को मिलता है "उक्तसत् झूटका निर्णय उभय आद्यवक्ता-परीक्षकके वा पक्षकारोंपर छोडते हें ग्रं क.") (तथा ग्रंथके साथ जो पत्रहे, उस पत्रमें

~~~~~~

वेभी स्वभावतः प्राप्त होंगे; अतःउसको स्वतंत्र नहीं मानसकते. तथा जिन वामि वगेरेको थियोसोफी बुरा कहतेहें, स्वपक्ष उत्तम बताते हें, यह उनका कहना ठबके पात्र ठेरेगा; क्योंकि स्वमतमें अच्छा बुरा तमाम अनुभव हुये विना छुटकारा नहीं. जब यूं हे तो, दुराचार अनीतिकी वृद्धि होगी; अतः उनका स्वभाववाद त्याज्यहे पुनः मनसको धातु मूल पशु पक्षीका अनुभव कामतत्वद्वारा होगा, क्योंकि उसको पश्वादि योनी नहीं मिलती. जब यूं हे तो, यह क्या व्यापक नियम हुये? नहीं. मन घडत हें. इत्यादि.

११. [थि.] "कामतत्वः-यह एक शरीर होता हे, जोंकि इथरमेंसे बनता हे, वा (ध्यानचोंहानोंद्वारा) बनायाजाता हे. जीवको यथा कर्म मिलता हे-विषयभोक्ता, विषयसे आकर्षाने वाला, हरेक प्रकारके जुस्से लागनीको ग्रहण कर्त्ता, क्षण क्षणमें रंग बदलनेवाला, सूक्ष्मशरीरके बाह्यांतर व्यापक ओर रंगदार हे. इसकेभी दो प्रकार. हें.

१ उत्तम-कामक्रोधादिको तीव्र रखनेवाला. २ मध्यम-कामक्रोधादिके आधीन	काम शरीर, स्थूल शरीरसे बाहिर जासकता हे. सुषुप्तिमें सूक्ष्म शरीर से जुदा पडता हे. जीवके मरने पीछे कामभवन तक साथ जाता हे.

पीछे मनस तो आगे लोकमें जाता हे. ओर काम शरीर यथा संस्कार नाश होजाता हे."

"वेदांतपक्षमें उसे [कामतत्वको] अंतःकरणकी अवस्था विशेष वा इंद्रियग्राम वा सूक्ष्म शरीरका एक भाग कहसकते हें. उत्तम भाग-शुद्धेंद्रिय मध्यमभाग-दुष्टेंद्रिय."
~~~~~~

जिन ग्रंथोंके नाम लिखेंहैं उन ग्रंथोंमेंभी थि. सो. के मतकी सविस्तर चर्चा है). इस दृष्टिसेभी विस्तार करना योग्य नहीं जाना.

१२ (थि.) "काम और मनसका अंतरः–कामतत्व विषयसे खिंचता है. यथा मगज–साधन, काम करता है. मनस, स्वतंत्र विचार पूर्वक चलनेको समर्थ है."

१३ [थि] काम–मनस [साधारण मन]–यथा मगज काम करनेवाला. उच्च मनस एसा नहीं."

१४ [थि.] अंतःकरण, "उच्च और निचले काम मनसके साथ जो संबंध करता है सो."

१५ [थि] "प्राण, छाया शरीर, स्थूल शरीर–यह तीन तत्व और चौथा काम, यह चार पशु तत्व हैं. मनस–बुद्धि और आत्मा (यह त्रिपुटी) दैवी तत्वहैं; पशु, पक्षी, त्रियक–वनस्पति वा धात्वादिमें नहीं होते. मनुष्य शरीरमें उक्त सातों तत्व होते हैं. पश्वादिमें पशु तत्व होते हैं."

[समी.] कामतत्वादिका विवेचन वा खंडन, इस ग्रंथका विषय नहीं; क्योंकि वे कार्यरूप हैं. इस ग्रंथमें आद्य–कारण तत्वों और अंत–परिणामकी चर्चा है. जोकि कार्योंसे निकालके मूल तत्वोंके साथ तोलना पडता है, अतः उपराम होते हैं.

ब्रह्म, ईश्वर–आत्मासे इतर तत्वोंके वर्णन करनेकाभी हेतु यह है कि, उसके विना थियोसोफिस्टोंके जीव वगेरेके स्वरूप हरेकको समझमें नहीं आवे.

१६ [थी] जीवः–"जीव कोइ तत्व पदार्थ नहीं. किंतु भान है (शब्द, स्पर्शादिसे जो लागणी होती है, उसे भान कहते हैं.) उसके दो भेद हैंः—

१ सामान्य भानः–(वे भानके विरुद्ध) यथा पशु–पक्षी त्रियकादिमें है और वनस्पति धात्वादिमेंभी है.

२ विशेष भान :–लागणीके समय मुझको अमुक होता हे, मुझे लागणी (असर–दुःख–सुख) हुईथी, इस प्रकार अपनेको उससे जुदा करनेवाला जो भान सो, स्वभान [विशेष भान–अहमत्व ममत्व प्रकारी)

चेतनत्व [हलना–चलना] अणु अणुमेंभी हे ओर लागणीभी हे; अतः सामान्य जीव सर्व स्थलमें हे; परंतु जीव विशेष (कर्मका फल–दुःख सुख भोक्ता) मनुष्यमेंही हे." थियोसोफी.

(समी.) इसका परिणाम यह आयाकि बुद्धि–मनस, काम–मनस, काम–प्राण, काम–छाया, यहभी जीव हे; क्योंकि सामान्य भान, इन तत्वोंके शरीरमेंभी हे. मरने पीछे इनका हलना चलना ओर अछे बुरे परिणाम निकालना तथा इनके अलंमतलोंके कार्य होना, थियोसोफिस्ट मानते हें. (देखो स्थूल भूवन ओर काम भूवन तथा देवखणका वर्णन. ओर भूतप्रेतोंके विभाग.)

परंतु मरने पीछे पूर्वोक्त कामादि तत्वोंका नाश होजाता हे.–उनको पुनर्जन्म नहीं लेना पडता.–ओर मनसको दुसरा जन्म लेना पडता हे; अतः मनस–बुद्धि–आत्मा,–इन तीनोंके समूहका नाम जीव विशेष हे.–(यह स्वरूप गुप्त ज्ञान संहितामें लिखा हे.)

(थि.) "आत्मा वा बुद्धिमात्र जीव नहीं, क्योंकि आत्मा सर्व जघे पशुतत्वोंमेंभी] हे. केवल मनस तत्व नहीं हे. प्रलयमें जीव नहीं मरता, उसे सृष्टि आरंभ कालमें उन्नति निमित्त यथा कम जन्म लेना पडता हे. जीव प्रथम शुद्ध होता हे; संबंध कामादि प्रकृतिके संबंध] से वद्ध हे"

(थि.) " सामान्य जीवका आरंभ मूल प्रकृति

(प्रधान) मेंसे होता हे. उस समय उसमें चेतन नहीं होता. फेर उन्नतिके नियमसे धातु मूल पश्वादिरुप [शरीर] में आता जाता हे. जब चार पशुतत्व योग्यतामें आये कि, मनस जो कम दरजेमें था उसका संबंध होके उन्नतिकी तरफ चढता हे. वहांतक मनस स्वतंत्र नहीं होता. मनसके संबंध पूर्व, सामान्य जीव था जो कि सर्वमें हे. परंतु जडमें मंदगति होनेसे जडवत था. मनसके संबंधसे विशेष रुपमें आया. ओर बुद्धि, आत्मा मिलके पूर्ण जीव संज्ञा होगई. ''

[समी.] इस पक्षमें काम, काम–मनस, मनस, मनस–बुद्धि. बुद्धि–आत्मा–इनका नाम जीव नहीं किंतु भानका नाम जीव हे. ओर मनस–बुद्धि वगेरे जीवकी संज्ञा हें; परंतु काम–प्राण–छाया–ओर स्थूल शरीर–इन पशु तत्वोंकी नहीं, एसा हे. जब यूं हे तो, भान नामक जीवका पश्वादिमें गमनागमन माना जासकेगा अर्थात् मनुष्यदेहमें आये पीछे पश्वादिमें नहीं जाता. किंतु तिसके पूर्व प्रथम पत्थर, पीछे वनस्पति, पीछे त्रियक, पीछे पक्षी, पीछे पशु हुवा. परंतु यहां यह विचारनेका हे के पशु तत्व नाश होजाते हें तब वोह भान कहां रहा.–मनसके साथ जुडगया वा क्या ? ओर पशु तत्वोंमेंभी वोह भान कोनसे तत्वमें था ? अथवा यह चारों उसकी उपाधिथी ? अंतमें मूल प्रकृतिका तत्व माननेसे चारों तत्वसे भिन्न माना जायगा. ओर मनस–बुद्धि–आत्माके साथ मिलनेपरभी तीनोंसे भिन्न स्वरुप ठेरेगा. परंतु यह बात 'गुप्तज्ञानसंहिता'के विरुद्ध हे.-वोह बुद्धि–मनस ओर आत्मा इन तीनोंको जीव कहती हे.

[थि.] '' जीव, लोगोसमेंसे नाना–ज्ञाता–किरणरुप पदार्थ हे, (इस पक्षका जीव, पश्वादिमें नहीं हे. किंतु उन्नति पाये

हुये तत्व, जब मनसके साथ मिलते हें तब, यह चोथा पदार्थ उस शामिल होता हे. निदान वेदांतियोंके समान थि. सो. मतमें गडबडहे कहीं सूत्रात्माको जीव कहा हे." वेदांतपक्ष इसको साभा अविद्या विशिष्ट चेतन जीव कहता हे

[थि.] " गुप्तज्ञान संहितानुसार मनस-बुद्धि ओ आत्मा इन तीनोंके समूहका नाम जीवसंज्ञा हे." [वेदांतपक्ष अंतःकरण, चिदाभास ओर उनके अधिष्ठान कूटस्थ-इन तीनोंके समूहको जीव संज्ञा दी हे. यह संज्ञा. आत्माको परब्रह्मका अंश मानके होती हे. जो आत्माको किरण माने तो, साधिष्ठान साभास अंतःकरण, जीव समझलेना.]

(थि) " जबतक जीवको तमाम सृष्टिका ज्ञान [सर्वज्ञता]-अनुभव न हो-वहांतक उन्नतिकी सीमा नहीं आती; स्वतंत्र नहीं होसकता." उन्नतीकी सीमापर गये विना, तृष्णा-वासना नहीं जाती.-सो ब्रह्मके ज्ञान विना नाश नहीं होती; अतः ज्ञान प्राप्तव्य हे. वहांतक जीवको यथाकर्म अवतार लेना पडता हे. जब कल्पांतमें ज्ञान हुवा कि इसकी समाप्ति होती हे. दौरा करके अपने केंद्रपर जाता हे. ज्ञानसंहिता अनुसार-जबाकि जीवकी समाप्ति होती हे तब, मनस ओर बुद्धि, आत्मामें समाजाते.-[एकरुप होके] तीनों परमात्मामें समाजाते (तद्रुप-एक स्वरुप होते) हें जीव संज्ञा वा जीवका कोइ चिन्हभी नहीं रहता.-एसा निर्वाण मोक्ष-परमात्माके अनुभव होनेपर होता हे. ज्ञान पीछे मायावी शरीर छूटजाता हे.

[समी.] भान नामा जीवको वा मनस-बुद्धि-आत्मा-इन तीनोंको अपनाही ज्ञान नहीं होसकता, तब ब्रह्मका ज्ञान केसे होगा ? नहीं. सर्वज्ञत्वका अभाव हे, थि. सो.

बुद्धि वगेरेको ध्यानी वर्गमें मानती हे, वे सर्वज्ञ नहीं थे. [इत्यादि उपर सिद्ध किया हे.] आभास-किरण जड हे-मनस, प्रकृतिका कार्य हे-आत्मा किरण हे-ब्रह्मके अंश आत्माको ज्ञान होना वा बंध मोक्ष होना नहीं बनता-बुद्धि, अरक, वा किरण हे; अतः बुद्धि-मनस, यह दोनों ज्ञान करने योग्य नहीं. तीनोंमेंसे किसको ज्ञान हुवा ? पृथक पृथकको मानो तो उस उसकी मोक्ष. जो तीनोंको होना मानो तो, वोह ज्ञान किसको ? इसका उत्तर न होगा. जो तीनों मिलके ज्ञानशक्ति नवीनोत्पन्न होना मानो, तो पूर्व दर्शनोक्त ज्ञातृत्व प्रसंग वाले दोष आवेंगे. मनसका लय उसके उपादान बुद्धि (महत) में हुवा. बुद्धिका ध्यानचोहानमें होना चाहिये. आत्मानामी किरणका तथा ध्यानचोहान ओर बुद्धिका ब्रह्मसे इतरमें लय होना चाहिये. अन्यथा मनस-आत्मा-बुद्धि, प्रकृति, ध्यानचोहान,-यह सर्व ब्रह्मरुप मान्ने पडेंगे. जब एसा माना तो पूर्वदर्शनोक्त असंभव दोष प्राप्त होंगे. ब्रह्म अपनेको भूला, अपनेको अपना ज्ञान प्राप्त हुवा-इत्यादि असंभव बातें स्वीकारनीं पडेंगी. पश्वादि, मनस ओर मल वगेरेका अंतर-भेद नहीं मान्ना पडेगा.-न कोई बद्ध, न कोइ मोक्ष, न साधन, न साध्य मान्ना होगा. जब यूं हो तो, थिसो.के तीनुं मुख्य उद्देश ओर गुप्तज्ञान-उपदेश वगेरे मिथ्या-ढकोंसले ठेरेंगे. तथा जीवकी उत्पत्ति, मनस वगेरेका जन्म मिलने, दुःख भोगनेका सबल कारण नहीं मिलता. स्वभाव मानें तो मोक्ष-उन्नति ओर उनके साधनका उच्छेद होता हे.

जो कि उपरके दर्शनोंमें इन बातोंकी सविस्तृ चर्चा हे; अतः यहां उपरामते हें.

१७ [थि.] "मुक्तिः-पूर्वोक्त लॅागोससे जुदा हुये जीवका

अपने स्वरूपको पहिछानके लॉगोसमें एकरूप होजानेको मुक्ति कहते हें. किंवा पूर्वोक्त जीव-(आत्मा-बुद्धि-मनस) का अपने मूल [परमात्मा]में ऐक्यताको प्राप्तहोना-मुक्ति हे. तमाम भवनोंके ज्ञान होने पीछे जीव, जन्म मरणके बंधनसे छूटके मुक्त होता हे. सो मुक्ति दो प्रकारकी होती हेः—

१ निर्वाणः-अत्यंत सुख (परमानंद)में रहना. २ जीवनमुक्तिः-उन्नतिकी सीमापर पहोंचके अपनी खुशीसे परोपकार अर्थ जन्म लेके लोकोंपर उपकार करना (यथा ध्यानी-बुद्ध-पेगंबर-महात्मा हुये ओर होंगे).

वस्तुतः मुक्ति कोई वस्तु नहीं किंतु एक नाटक हे"

वेदांत पक्षमेंभी एसाही हे. "में ब्रह्मस्वरूप हुं" एसा ज्ञान जब जीवको होताहे तब, बंधनकी निवृत्ति होती हे.-अर्थात् जीवको भ्रांति-अज्ञानसे अपनेमें बंध प्रतीत होताथा; सो 'तत्वमसी' "अहंब्रह्म" रूप ज्ञानसे बाध होजाता हे. उस पीछे प्रारब्ध भोगतक परोपकारी जीवनमुक्त रहता हे ओर मरने पीछे विदेह मुक्त होताहे. फेर जन्म नहीं लेता.

जिनको अवतार कहते हें [यथा विष्णु-ब्रह्मा-शिव-राम-कृष्ण वगेरे] वे नित्य मुक्त हें.-कभी बंधनको प्राप्त न हुये-न होंगे. किंतु थियोसोफीस्टोंके ध्यानचोहान वा ध्यानियों समानहें. थियोसोफीके मत अनुसार वर्त्तमानके मनुष्य जीव, उत्तर महाकल्पमें ध्यानी पुनः ध्यानचोहानोंके नंबर पर पहोंचते हें, परंतु पौराणिओंके मतमें एसा नहीं.

[समी.] १ ज्ञाता ज्ञेय भिन्न होनेसे अपना अपनेको ज्ञान नहीं होता, २ कार्य [जीव] अपने कारण (ब्रह्म-प्रकृति) को नहीं जान सकता. ३ दो (लोगोस ओर उससे जुदा हुये किरण वा ब्रह्म ओर उसकी किरण-वगेरे) एक

[लोगोस-वा ब्रह्म], नहीं होते. ४-एक (ब्रह्म-लोगोस), दो [किरणके टुकडें], नहीं होते. ५ उपादान (ब्रह्म-लोगोस) से उपादेय [किरण-मनस-बुद्धि] भिन्न वा भिन्नरुप वा अन्यथा वा अन्य गुण स्वभाववाला नहीं होता.-इत्यादि नियमोंसे थियोसोफिकल सोसाइटीकी मुक्ति अमान्य-असंगत हे. कल्पना मात्र हे.

उनके ग्रंथोके इस लेख ("थि. सो. मुक्तिका मार्ग बतासकती हे") की कीमत, उनके सिद्धांतसे हरकोई जान सकता हे उनके प्रसिद्ध ग्रंथ अंतरंगसभा संबंधी ओर ब्रह्म मायाके संबंध बतानेवालेकी परीक्षा उनकें विरुद्ध धर्माश्रय नामके सिद्धांतसे प्रसिद्धहे.

कदाचित वे दूसरा पक्ष-"ब्रह्म सत्यम् अन्य मिथ्या" अर्थात् ब्रह्मसे इतर लोगोस-ध्यानचोहान-फोहात-इनकी किरणे-आत्मा-बुद्धि-मनस-काम ओर त्रुटी मात्र-नामरुप सर्व माया-अज्ञान करके भासतेहें. हमभी मयावी हें; अतः एसी कल्पना करते हें.- बंध मोक्ष नाटक हे".-इत्यादि मानें तो, उपर जो वेदांत पक्षकी असमीचीनता सूचक दोष कहेंहें-वे सर्व, प्राप्त होंगे. "ब्रह्म हे, यह सिद्धांत यथार्थ हे" इसकी साक्षी क्या? हम तुमतो मायावी हें, अतः मजकूर सिद्धांत मिथ्या हे.

१८ [थि.] " मुक्तिके साधनः-सत्कर्म, पाप संकल्पसे बचना, कुसंग त्याग, प्रेम, भक्तियोग- कर्मयोग-यमनियमादि पूर्वक योग-ध्यान-उपासना, विवेक, वैराग्य, शमदमादि, श्रद्धा, समाधान, वगेरे हें (यह वात उनके ग्रंथ मार्ग प्रकाशनी वगेरेमें प्रसिद्ध हे). इस प्रकार करनेसे नीचेका मनस शुद्ध (आरसीरुप) होवे, तब उसमें बुद्धि-मनसका प्रतिबिंब पडता हे; पीछे नीचेका मनस 'बुद्धि-मनस में हुं" एसा ज्ञान करता

हे-[तब] 'तत्वमसी' रुप ज्ञान होता हे, फेर मनस, मनस-बुद्धि, आत्माके साथ एकरुप होजाते हें." मजकूर साधन, वेदांत पक्षानुसार हें. ओर मजकूर एकता, "बाधसमानाधि क॰रण" प्रक्रिया कहाती हे.-जिसका खंडन उपर दर्शनोंमें आचुका. ओर साधनोंके खंडन वा मंडनकी व्यवस्था साध्यवत् जानके यथायोग्य त्याग ग्रहण कर्तव्य हे; इस ग्रंथका वोह विषय नहीं हे.

१९ (थि.) समष्टिव्यष्टि-पिंडे ब्रह्मंडेः—

	स.	व्य.	ब्र.	पिं.	
अ.	मूलप्रकृति.	वेखरी.	परमात्मा.	आत्मा.	वेदांतपक्ष जैसाहे.
उ.	आद्यशक्ति.	मध्यम.	महत.	मनस.	
म्.	ध्यानचोह्रान(ई)	पश्यंति.	विश्व.	शरीर.	
०	परब्रह्म.	परा.	वगेरे.	वगेरे.	

(समी.) उपरके लिखे हुये विषयका खंडन होनेसे इसकाभी खंडन होजाता हे.

२० [थि.] सृष्टि उत्पत्ति-स्थिति-लय-[नं. १९ के अंतर]:—

१ सृष्टिकी उत्पत्तिका कथन नेति नेति कहने योग्य हे-अशक्य हे. [समी.] पुनः कहतेभी हें. केसी पोपविद्या ओर चाल.! अपने मुखसे असत वादि हुये सत पक्षवाले बनते हें.

२-सृष्टि पूर्व, देश-काल- महत-पुरुष-प्रकृति-जीव-मोक्ष-मोक्षसाधन-कुछभी नहींथा. असत् [माया-जगत-नामरूप-शून्य] भी असतमें नहींथा. केवल अंधकार था.

३-प्रथम उपाधिसे परमात्मा. [स.] अन्याभावसे व्याघात.

४-परब्रह्मको संकल्प हुवा [इसका नाम पुरुष हे].जगतके उपादान प्रकृतिरूप परिणाम हुवा. ब्रह्मकी शक्तियें उदय

हुई (जिनमेंसे एक शक्ति लोगॉस हे-लोगोस नाना हुये). ब्रह्मके संकल्पसे एक फोहात नामक शक्ति हुइ (पुरुष-प्रकृतिका संबंध). महत ओर तमोगुणके अंशसे आकाश उत्पन्न हुवा [इससे वायु वगेरे परमाणु]. ब्रह्मके किरण छूटे उन किरणोंमेंसे कितनीक किरणोंमेंसे कितनेक प्रकारके ध्यानचोहानो हुये-उन्होंने प्रकृतिके गोलेको फोहातद्वारा चक्र कर दिया. सत्-तप-जन वगेरे ७ लोक [१४ भुवन] के विभाग कहलाये, (यह लोक परमाणु, आकाश समान परस्परमें ओत प्रोत हैं. सूर्य पृथ्वीके समान जुदा नहीं) गृह, उपगृह, हार बने. वे गोले ठंडे पडे. पहिले कल्पमें धातु [नक्कर]-मूल (वनस्पति) ओर प्राणी हुये. उद्भिज वगेरे ४खानके प्राणी क्रमशः हुये. उनकी भिन्न २ प्रकारकी जाति हार, उपगृह ओर ग्रहोंपर क्रमशः हुई. उन्नतिके क्रमसे चार पशुनत्व पूर्ण स्वरुपमें आये. चोथे कल्पमें मनुष्य हुये. मनकी उपाधिसे आत्मा (ब्रह्मकी किरण वा अंश) नाम पडा. महत तत्वमेंसे मनस हुवा. ध्यानियोंने जन्म लिया-मानसिक सृष्टि (मनस-पुत्र) हुई. ध्यानचोहानोंमेंसे बुद्धिनामक अर्क-किरण-निकला. अब मनस-बुद्धि-आत्मा तीनों मिलके जीव नाम कहाया; मनुष्य जीवोंकी अनेक जाति क्रमशः हुई. उनमें जुगलिये (नर, मादा उभय शक्तिवाले) थे. पीछे इस शक्तिके द्विभाग बने, फेर अन्य जातिके हुये, अंतमें मैथुनी [मनुष्य] सृष्टि हुई. उनको ध्यानियोंने सिखाया. एसे वे कर्मानुसार महाकल्प तक उन्नति पाते रहेंगे. पुनः उत्तर महाकल्पोंमें. इत्यादि.

९ दरमियानमें किसी कल्पमें अग्निसे किसी कल्पमें वायुसे किसी कल्पमें जलसे (इसादिसे) भी सृष्टिका आरंभ होता है.

६ पशुतत्त्वोंकी सिद्धि, उनके अॅलमंतलोंकी हकीकत, मनुष्योंके कायिक, मानसिक कर्मोंका चित्रगुप्तमें चितार होना, मनुष्योंके संकल्पोंके अॅलमंतल, उनका अपने और दूसरे प्राणियोंपर असर होना, कर्मानुसार विजलीद्वारा दूसरा गुप्त शरीर बनना, मनुष्यके मरने पीछे उसके जीवको ध्यान चोहानों (४ महाराजों) की मारफत कर्मानुसार जीवको सो मिलना, उसपर ध्यानियोंकी कृतिसे छाया शरीर ओर स्थूल शरीर बनाया जाकर मिलना, इस प्रकार उन्नति अर्थ जीवका यथाकर्म जन्मपाते रहना. मरने पीछे कामतत्वका काम भवनमें जाना, उसका ओर उसके अॅलमंतलोंका उपयोग, जीवका पशुतत्त्वोंसे वियोग हुये देवखणमें जाना, निकृष्ट कर्म वालेका वहांसे पीछे खिंचके स्थूल भवनमें जन्म पाना, शुभ कर्म वालेका देवखण (स्वर्ग) में रहना, अगले कल्पमें तीसरा (शिव) नेत्र खुलना,-जलादि समान आकाश वगेरेका ज्ञान होना, इस प्रकार होते सर्वज्ञ बनना-पीछे तत्व (ब्रह्म) ज्ञान होना, निर्वाण मुक्ति पाना वा जीवन मुक्त होना-अपनी खुशीसे परोपकार अर्थ जन्म धारना वा न धारना-पर शरीरमें प्रवेश करना वा मनो कल्पित शरीर रचके विचरना, उपकार करना, अमुक कल्पतक एसा होना, फेर निर्वाण होके ध्यान चोहान पदवीपर आना ओर अंतमें ब्रह्म विषे समाना-ब्रह्मरूप बना.

निदान इस प्रकार केंद्रसे चलके सर्व ब्रह्मांडका अनुभव लेके-दौरा करके अपने केंद्र रुप पर पहोंचता हे. इस प्रकार नवीन जीव बनते, भोगते ओर बिगडते तथा लय होते रहते हें. ओर प्रकृति ओर तिसके तत्व ओर किरण तथा शक्तियोंकी उत्पत्ति, स्थिति ओर लय होता रहता हे.-

एसा अनादि अनंत प्रवाह हे. जो सुषुप्तिमें सर्व प्रपंच लय ओर जाग्रतमें नाम रुपात्मक भासमान ओर स्वप्नमें सूक्ष्मरुप पुनः सुषुप्तिमें बिंदुरुप होता हे; वेसेही ब्रह्माकी रातमें प्रपंच, बिंदु-शून्यरुपसे, ब्रह्ममें हे. प्रकटिकरणकाल पूर्व ओर लयके पूर्वकालमें सूक्ष्मरुप तथा ब्रह्माके दिवस कालमें स्थूल (वैराट) रुप रहता हे.

७-विद्युत, इथर, शब्द, आकर्षण, तथा शक्तियोंका काम ओर विभाग, कीमिया (इथरका अधिकारी मनुष्य, सोना चांदी बना सकता हे), मंत्र, जंत्र, तंत्र, अनुष्ठान, मारन, मोहन, ग्रह फलादेश,-इनकी सायंस विद्यासे सिद्धि, भूतयोनी [छाया शरीर-काम शरीर-इनके ॲलमंतलोंका दर्शन ओर असर], भूतोंके फोटो खेंच लेना, मेस्मेरिझमकी विश्व दृष्टि, योगके चमत्कार, काम भवनके जिन परी, पुराणोक्त कथा सत्य-रुपालंकार वाली हें, पूर्व जन्मका स्मरण, जातियोंके नियत वर्ष-इत्यादि थियोसोफीकल सोसाइटीका मंतव्य हे.

(समी.) उपर जितनाके ७ अंकोमें लिखगया हे, उन वातोंका एक दुसरेके साथ संबंध हे; अतः उनके यथायोग्य संबंध ओर क्रमका स्पष्टिकरण किये विना वाचककी समझमें नहीं आता. परंतु यह तमाम विषय इस ग्रंथका विषय नहीं हे; अतः उपर नाम संज्ञाभी पूरी नहीं लिखी हे.

थियोसोफिस्टोंके पूर्वोक्त मंतव्यमें बहुत दोष हें, ओर वे जनानेभी चाहियें, परंतु तमाम प्रसंग इस ग्रंथका विषय न होनेसे जितनाके इस ग्रंथमें योग्य हे, उतनेको उद्देश लक्षण सहित संक्षेपमें कहाहे, अर्थात् आद्य पदार्थ ओर परिणाम प्रसंग संबंधीकी चर्चा लिखी हे.

हम यह नहीं कहना चाहते कि उसका तमाम मंतव्य-कथन गलत है, वा जैनी, पुराणी, किरानी, कुरानी, वगेरे भाइयों के ग्रंथोंमें जेसे लख हैं, वेसे गपोडे हैं; किंतु कितनाक विषय परीक्षा, युक्तिके अनुकुल हे. यथा मेस्मेरिझमकी सच्चाई, जिसको जडवादी ओर आर्यसमाजी वगेरे नहीं मानते. परंतु सत्य हे (मैंनेभी वहुत परीक्षाकी हे); तथापि थोडी सत्यके आधार थियोसोफिस्टोंने बडे बडे गपोडे मारे हैं, वे असिद्ध हैं.

आद्य तत्व ओर परिणाम संबंधमें जितना विषय हे ओर उसमें जो दोष हैं वे तमाम दोष वेदांत पक्षानुकुल पडते हैं-अर्थात् वेदांत पक्षमें जितने दोष हैं, वे तमाम थिसो. के मंतव्यमें आते हैं. अतः पूर्वोक्त दर्शनों अनुसार इस मतका खंडन ज्ञातव्य हे.

वेदांत पक्षसे कितनेक मंतव्य अपवादरूप हैं. यथा जगत् कर्त्ता कोइ १ व्यक्ति ईश्वर नहीं, वेद ईश्वर कृत नहीं ब्रह्मका आद्य संकल्प, स्वभावतः होता हे, जीवोंकी कर्म व्यवस्थापर नहीं. वगेरे. अतः पूर्व दर्शनोक्त दोष, यथा प्रसंग लगालेना चाहिये.

जबकि थि. सो. का यह पक्ष हो कि "ब्रह्मेतर स (नाम-रुप-सृष्टि-त्रपुटी मात्र) माया हे-मृगजलवत् हे, ह मायावी हैं, अतः जीव जगत् सत्य भासता हे, अन्यथा ब्रह्मे तर सर्व मिथ्या हे," तो उस पक्षका सर्व प्रकारसे खंड उपर आचुका हे.

जबकि थि. सो. का यह पक्ष हो कि "एकही शुद्ध अविकारी-अचल-ब्रह्म तम प्रकाश, शीत अग्नि वगेरे विरु धर्मवाले पदार्थाकार होता हे, यह तमाम जगत् उसीका

रिणाम है, यहांतककि उत्तम मध्यम सर्व उसीकारुप है." इस बालवत् मंतव्यका खंडनभी उपर आचुका है.

जबकि थि. सो. का यह मंतव्य हो कि "नाना प्रकार के नाना पदार्थोंके समूहका नाम ब्रह्महै ओर वे पदार्थ स्वःभावतः संयोग वियोग पाकर नाना जीव जगत् बनताहै," इस मंतव्यका खंडन आगे द्वैत पक्षमें है.

निदान थि. सो. का मंतव्य सयुक्त नहीं है. गुप्त विद्या प्रकाशक जो नाम रखा है, यह नाम, नामही है. इस मतमें कोइ नवीन वा अद्यापि गुप्त रहे बिषयका स्पष्टिकरण नहीं है; किंतु पौराणियोंके समान खिचडी मत है. इनका "ज्ञयान" ग्रंथ पुराण पक्ष जेसा है. इनका लेख नवीन सुधारेसे पालिसवाला है. परिभाषाके फेरसे नवीन पुराणी कल्पनाको रंगा है. यथा–

१-जुगलिये-नरमादा जैन पक्षकी कल्पना. तिब्बत तातारवालोंका पक्ष.

२-अनीश्वर वाद, कर्मवाद, मीमांसाका. [तोभी कर्म वाद, इस सोसाइटीमें पूर्ण नहीं है.]

३-परिणाम वाद, महत-महाबुद्धि तथा मनसोत्पत्ति ओर अंधपुंगवत् जड चेतनका नित्य संबंध-उनका उपयोग-तद्वत् पुरुष प्रकृतिका उपयोग-सांख्यमतका.

४-अवतार, सर्वज्ञता ओर अलंकार, पुनर्जन्म वगेरे पुराण मतका.

५-मेस्मेरिझम, भूतप्रेत, प्रयोग, अनुष्ठान, मंत्र, जंत्र, वगेरे तंत्र ग्रंथोंका.

६-ज्ञानसे मोक्ष, मायावाद, संचित क्रियमाणका ज्ञानसे नाश होना, प्रतिबिंब वाद, जीव ब्रह्मकी एकता वगेरे

वेदांत मतका.

७-अभेद्वाद, अविकृत परिणामवाद, विरुद्ध धर्माश्रय मंतव्य, यह शुद्धाद्वैतका.

८-अनीश्वरवाद्, जडवाद, उन्नतिवाद, सृष्टि रचनाकी शैली योरोपका.

९-पशु पक्षी त्रियकोंमें जीव नहीं, उनके कर्मका फल नहीं, कर्म व्यवस्थापक ओर गृह, उपगृह, लोक तथा पदार्थ प्रति ध्यान चोहान ध्यानी (फिरशते)-वगेरे मान्ना पुराण, कुरान ओर बाइबल मतका.

१०-बुद्धके जो ४ पक्ष प्रसिद्ध हें उनमेंसे कोई पक्षभी नहीं लिया हे, तथापि शुद्धाद्वैत पक्ष निकालडालें, ओर "ब्रह्ममें हमेशे गति होती हे-उसीका रुपांतर यह जगत् हे," थि. सो. का इतना कथन मानलेवें तो, अनीश्वरवादि बुद्धके क्षणिक विज्ञान वादसे मिलता हे. ओर रुपांतर हुये ब्रह्म वगेरे वादि बुद्ध पक्षोंको मानें तो, बुद्ध रहस्य ग्रंथपर थियोसोफी मत जाता हे.

११-ब्राह्मणोंने उपनिषद् न्यून करडाले, संन्यासी लोक मडम ओर थियोसोफिकल सोसाइटी मतको दोष देंगे, अपने अपने पक्षमें रहके सर्व थियोसोफी.-वगेरे लेख, वर्त्तमानका सुधारा वाद वा आर्यसमाजका.

१२-गृह, उपगृह, हार, जीवोंकी जाति वगेरे जैन, पुराण मतका.

१३-सिद्धि वगेरे योग पक्ष.

१४-थियोसोफिस्टभाई न्याय, वैशेषिक, रामानुज, आर्यसमाज़, वा द्वैत वादीके पक्षको नहीं लेते. खि्रस्ति, कुरानी, पौराणी, पारसी समान फिलोसोफी (तत्वविद्या) के तो

अत्यंत विरोधी.

इत्यादि प्रकारसे खिचडी मत हे. और इसी कारणसे उनके तमाम लेख तपासो तो, पूर्वापर विरोध दोषवाले-अयुक्त निकलेंगे. यथाः-ब्रह्म, जीवके स्वरुप और उपयोगमें विरोध हे-अयुक्त पक्षहे. कहीं तो ध्यानचोहानोको स्वभावतः होना कहा; कहीं तो भविष्य कल्पोंमें जीवोंको उस पदवीपर पहोंचना कहा; कहीं तो जीवको मिश्रित (बुद्धि-मनस-आत्मा) मध्यम वस्तु कहा; कहीं तो अमर कहा. कहीं तो "बलवान, निर्बलको मारता-दबाता हे" इस नियमको सृष्टि नियम मानलिया; कहीं तो इसके विरुद्ध पशुवधादि पक्षको निंदा. कहीं तो आकाशकी उत्पत्ति मानी; कहीं तो देशकालको अनादि अनंत मानलिया. कहीं आकाशको अवस्तु, कहीं आकाश (पोल) को ब्रह्म मानलिया. कहीं तो ब्रह्मका रुपांतर माना; कहीं तो ब्रह्मकी किरणभी मानी. कहीं तो ब्रह्मांडको व्यापक एक ब्रह्मका रुपांतर माना; कहीं तो सातुं लोकको परस्पर ओत प्रोत (व्याप्य व्यापक, व्यापक व्याप्य) मानालिया. कहीं तो थि. सो. के मतको सातवां दर्शन लिखडाला; कहीं तो शोधक मंडली मानलिया. कहीं तो वेद, गीता, उपनिषद्को शिरोमणी मानलिया, कहीं तो उसके विरुद्ध जगत्कर्त्ता एक ईश्वरका खंडन करडाला. कहीं तो तमाम मतके आचार्य (इसु, बुद्ध, महावीर, जरतोस्त, स्वीडनबोर्ग, अरस्तु, शमशतबरेज, मौलानारुम, राम, कृष्ण, शंकर वगेरेको ध्यानचोहान-महात्मा-वा योग्य अवतार मानके प्रशंसा की हे; कहीं तो उनके पक्षका अपमान किया हे. कहीं यथा देशकाल उनको जो चलना पडा उसको नहीं निंदा हे.

जो इनके सृष्टिक्रमके असंग मंतव्यपर उतरें तो दो षोंका वारपार नहीं? कहांतक लिखें.-इसको नवीन पुराणीकी उपमा देना बस हे.

तथापि इस मतकी स्थापक मडम 'ब्लेवॅत्स्की'को तो, इसलिये धन्यवाद देना चाहिये के उसने स्त्रीजाति हुयेभी कितना काम किया हे. स. १८३० इ. (सं. १८८७) में जन्मी. युरोप, अमेरीका. चीन, तातार वगेरे देशोमें फिरी. स. १८७५ में अमेरीकामें मंडली स्थापि. जडवादका मुकाबला किया. स. १८७९ (संवत् १८३६) में हिंद विषे आई. स. १८८२ (१९३९) में मद्रास इलाके आध्यार गाममें थि. सो. मंडलीने मुंह देखाया. सं. १८८४ (संवत् १९४१) में पीछे चली गई. ओर कितनेही ग्रंथ बनाये. अंतमें गुप्त ज्ञानसंहिता बनाके बेमारी पाके स. १८९१ इ. (१९४८) में मरगई. जोकि वोह हमेशे रोगी रहेतीथी तोभी. इस १६ वर्षमें युरोपके जडवादी ओर हिंदुस्थानके कितनेक इंग्रेजीखांके दिलको हला डाला. "आर्यधर्म, महिमावाला हे," एसे संस्कार प्रदेशियोंके दिलमें जन्म पाने लगे. खरेखर-इसुरिव्रस्ति ओर ईरान अरबके आचार्योंसे कम न थी. उसके तीनों नियम पार पडो. वे नियम यह हें. १ धर्म जातिके भेद निवारण पूर्वक भाईबंधी हो, एक धर्म हो. २ धर्मविद्या के ग्रंथोंका उत्तेजन. ३ तत्वज्ञानपर शोध चलाना. यह तीन मुख्य नियम थियोसोफीकल सोसाइटीके हें. पार पडें तो अच्छाही हे. यद्यपि नियम विरुद्ध इस सोसाइटीमें पक्षापक्षीकी गुप्त बास फेलने लगी हे; तोभी मडमके लेख खरेखर इन्हीं नियमोंपर हें. अतः आशा हे के थि. सो. जब तब नियमोंको संभालेंगे.

माना कि जेसे अरब [गंवार] में मुहम्मद साहेबने अपना धर्म चलाया, सो बडी बात नहीं,–लोभियोंको जैन मत पसंद पडे, यह आश्चर्य नहीं.–युरोपकी जंगली प्रजा, 'इसु' पर कुरबान हो, यह महत नहीं–पंजाबमें ७०० वर्षसे मुसलमानी धर्मसे छाये हुये, अपने आर्यधर्मसे नावाकिफ हुये पंजाबियोंको आर्यसमाजने सीधा किया, वहांके किरानी कुरानीको पीछा हठाया, यह आश्चर्य कारक वात नहीं,-वर्त्तमानके नामके साधु ब्राह्मणोंको पुराण, वल्लभ वगेरेका मत प्रिय हो, इसमें आश्चर्य नहीं, वेसेही इंग्रेजीखांनोंको मगज–दिलको थि–सो. हलाके चेतन वाद पर लावे, यह वात आश्चर्यकारक नहीं; क्योंकि जेसे अरब वगेरेको नवीन वात पसंद पडी, वेसेहीं अन्योंकोभी मनमें चोंटीहो. जेसे स्वामी दयानंदजीने तो, प्राचीन मतही वताया हे; तोभी, भूले हुये पंजावी वा पोप लोक उसको नवीन जानके मानते हें. वेसेही मडम साधवीका हे. इधर उधरसे एकत्र करके रचनाकी हे; तोभी, नवीन भूलेहुये इंग्रेजीखां (हिंदू वा युरोपियन) उसको नवीन जानके आश्चर्यमय ओर गुप्तज्ञान मानते हें. सच पूछो तो, आर्यफिलोसफरोंका अनुभव–परीक्षामें आने योग्य तत्व अभी दूर हे; तोभी, उनलोकोंने असलही मानलिया हे.

तथापि मुझे मडम पंडिताकी स्तुति ही करना उचित हे क्योंकि, उसने आर्यसमाजके नीचे आर्यधर्म महिमा गाने, जनाने वास्ते दूसरी गादी बनाई हे, जोकि प्रचलित धर्म–मत मात्रमें दूषण हें-निर्दोष सिद्ध नहीं होते, अतः किसीकी प्रशंसा घटित नहीं होती. तोभी, उन सदोषोंमेंभी कोन एसा मत हे कि जो ओरोंसे ज्यादे उत्तम हो? ओर लोक व्यवहार नीतिके अनुकुल हो? लोकोंको सुखदाई

हो? यथार्थकी छाया लेता हो? इसके उत्तरमें धर्मसंप संबंधमें थियोसोफी मत हे. शेष भागमें आर्यसमाज उत्तम हे, एसा मेरा निश्चय हे. यद्यपि यह मान सकते हें कि पुराण, जैन पक्ष समान कायरता, वहम, निर्वलता–पराधीनी फेलानेका निमित्त थि. सो. हो, तथापि वर्त्तमानकाल ओर व्यवहार दृष्टिसे तो प्रचलित नाना धर्म, संप संस्कारी हों उस चालको बतानेमें इस सोसाइटीकी चाल कुछ अच्छि समझता हुं. जो वोह, सयुक्तता आर्यसमाजसे सीखे तो ओरभी अच्छा हो. मूल यथार्थ तत्व पर पहोंचने लगे. देश धर्मकी उन्नति हो. संभव हे कि, मेरे उक्त खयाल भूलसे भरे हुये हों; क्योंकि जमानेके फेरफारसे अन्यथा परिणामभी निकलता हे, अतः आग्रह छोडता हूं.

(थि.) हमारे पक्षमें वेदके पढे हुये, लार्ड, जडज, बेरिस्टर–वकील ओर बडे बडे मनुष्य हें, अतः यह मत उत्तम हे. तुम न्यून दृष्टिसे केसे देख सकोगे?

(समी.) इस मतके खंडन करने वाले वा विरोधी पक्ष धारन करने वाले वेद पढे हुये, लार्ड, जडज बेरिस्टर–वकील ओर बडे बडे हें (देखो दयानंद स्वामी वेदवक्ता ओर राजा–ओर करनल वगेरे प्रसिद्ध हें). महाराणी अपने कुटुंब सहित, रूमका बादशाह, रूसका शाहनशाह, वगेरे तुम्हारे वेदिये, लार्ड जडज वगेरेसे बडे बडे अन्य धर्म पंथमें हें, अतः तुम्हारे सिद्धांतसे वोह धर्म उत्तम हे. तुम्हारा पक्ष नाकाम हे.

(थि.) थि. सो. मतमें जो जो गुप्त वातें लिखी हें, उनके पक्षका जो तुम इस चोथे कल्पके मनुष्यने खंडन किया हे, सो मान्य नहीं होसकता; क्योंकि यह बातें त्रिनेत्र-

वाले महात्माओंने बताई वा लिखी हैं, तुम्हारे जेसे मनुष्य केवल मनुष्य बुद्धि वा साधारण नियमोंपर दोडनेवाले हैं; वे वातें इन नियम ओर मनुष्य बुद्धिकी विषय नहीं. उनके तत्व, बुद्धि ओर फिलोसोफीसे पर हैं; अतः तुम्हारा खंडन व्यर्थ है.

(समी.) आपका कहना केसे स्वीकार लेवें. ? जो जो कहोगे वा बताओगे वा अपने पक्षमें लेनेको सुझाओगे, वे सब, बुद्धि ओर सृष्टि नियमके विषय होने चाहियें. अन्यथा इतनाही उत्तर बस हे कि आपके तीन नेत्रसे आगे अभी सात ७ नेत्र हैं, वे जब खुलेंगे तब, हमारी वातें समझोगे; ओर आर्य सनातन धर्म जानोगे. जिसको आप महाकल्प कहते हो, उसमें ध्यानचोहानोंको सर्वज्ञ मानते हो, सो तो हमारे महाकल्पका एक पहेर है........आपका गुप्त दिक्षितही हमको बताता हे के थि. सो. का सिद्धांत यथार्थ नहीं है; नहीं तो हम एसा नहीं कहते. आपका उन्नति नामा नियम यह कहता हे कि थि सो. जबकि उन्नत्तिपर पहोंचेगी तब ''बुद्ध रहस्य'' वाली वातेंको गलत मानेगी; मजकूर खंडन समझमें आजायगा; ओर अपनी भूल स्वीकारने लगेगी. [जेसा सिर पेर विनाका अयुक्त प्रश्न हे; वेसाही कल्पित उत्तर हे]–इत्यादि क्यों न मान लिया जाय ?

(थि.) मडम ब्लेवॅत्सकीने गुप्त महात्माओंसे पूछके वा अपनी तरफसे जो कुछ लिखा हे, वोह यथार्थ हे, परंतु उसके रहस्यको अभी हम (थियोसोफिस्ट) ही नहीं जानते, तुम तो क्या जानोगे.

[समी.] मानो कि हम ओर आप तो नहीं समझते, परंतु आपका जो सभासद समझता हो, प्रसिद्ध करे. फेर

देखें-तपासें. जितना जितना प्रसिद्ध होता जाता है उतना उतना सफा होता है. इंग्रेजीमें ग्रंथ हैं उनको धर्म फिलोसोफीके अनजान वाह वाह केसे न करें ? एसा होनाही चाहिये. जो जैन, वल्लभ, नारायणस्वामी समान गुप्त रखो तो, ओरभी महिमा बढे. परंतु आप वेसा नहीं करते; अतः शोधक, जिज्ञासु मंडळीसे बाहिर नहीं कहना चाहते. इस ग्रंथमें जितना लेख है वोह सर्व यथार्थ है. परंतु उसके रहस्यको आप नहीं समझते, अथवा सर्व धर्मपंथोंके ग्रंथों वास्ते एसाही क्यों न मानलिया जाय ? निदान आप सुधरी हुइ मंडलीके सभासदोंके एसे अनुचित उपदेश अयोग्य हैं. सच्चे लुपे नहीं रहते, उनका खंडन नहीं होता. " सत्यमेव जयति " इसपर आरुढ रहो. जेसे बुद्ध देवने यथाशिष्य वा यथा देशकाल परस्पर व्याघातवाला पक्षभी बताया ओर लोगोंको अनुयायी किया, वेसे आपकी इच्छा होतो, अन्य पक्षों समान आपभी करें. स्वतंत्र हैं परंतु जय, सत्यकी होगी. अन्यथा अन्य मतों समान हालत होगी.

(ख) शुद्धाद्वैत.

शुद्धाद्वैत [वल्लभपंथ वगेरे मत] भी पुराण मतकी शाखा हे. इस मतके ग्रंथ पूर्ण नहीं हैं. भक्ति सूत्रोंका अनुयायी हे. उपरका भाग प्रसिद्ध हे. अंतरका अपूर्णतासे वा कोई अन्य गुप्त कारणसे यथायोग्य प्रसिद्ध नहीं.

यह तमाम [जीव-पंचभूत-गति-ईश्वर वगेरे ब्रह्मांड] ब्रह्म हे. " सर्व खल्विदं ब्रह्म " "श्रीकृष्णशरणंमम " यह इसका सिद्धांत हे. जेसे 'कछवा' अपने अंग बाहिर निकालता हे ओर सुकेड लेता हे, एसे ब्रह्म, जब सृष्टिरुप परिणाम पाता हे. तब ब्रह्मांड होता हे. जब संकुचित करता हे, तब प्रलयरूप होता हे. इस प्रकार ब्रह्म-विष्णु अपनी लीला करता हे. आपही जीव आपही दासरुप होता हे. आकाश, काल, तम, प्रकाश, जल, शीत वगेरे तमाम उसीके परिणाम हैं. वही बंधमोक्षवाले जीवरुप होता हे. वही अवतार धरता हे. तमाम दृष्टश्रुतका समूह ब्रह्मरूप हे. जीवोंको कर्मानुसार स्वर्ग, नरक प्राप्ति वगेरे उसका लीलारुप खेल हे. अन्यथा न अन्यथा करनेमें समर्थ हे-करता हे. यथा पापीको क्षमा, धर्मात्माको स्वर्ग न देना, इत्यादि करनेमें स्वतंत्र हे. सर्वका प्रेरक हे इसमतका विरुद्ध धर्माश्रय अविकृत परिणामवाद हे.-इतना (मल मूत्ररुप) रुपांतर होतेभी पुनः ब्रह्म अपने असली स्वरुपमें आठेरता हे. *

---

*व्याससूत्रपर अपूर्ण वल्लभ भाष्य [सुनते हैं] गीता, भागवत, नारद पंचरात्र वगेरे इस मतके मान्य ग्रंथ हैं. जितने गोस्वामी--आचार्य होते हैं, उनको उनके अनुयायी प्रभुजी ईश्वर -कृष्णका अवतार मानते हैं. स्वयंभी इस बातको गुप्त रूपमें स्वीकारते हैं. !

[समीक्षक] जो इस पक्षका स्वीकार हो तो, पूर्वो
अभिन्न निमित्तोपादान [दर्शन १४] वाले दोष प्राप्त हो
हैं.-ब्रह्म विकारी ठेरता है. उपादयवाळे तमाम दोष [जड
नाशवान-दुःख-दुर्गंध-छल-झूठ-राग-द्वेष-वगेरे], ब्रह्म
मानने पडेंगे. यह विषय(सर्व ब्रह्म है) किसने जाना? त
ज्ञातासे भिन्न जगतको मानना चाहिये.-इदं पद सर्व प
का वाच्य वक्ता-ज्ञातासे भिन्न स्पष्ट है सर्व ब्रह्म, ए
माननेसे पाप-पुण्य-गोहिंसा-मांस भक्षण-गोस्वामी-श्रीज
महाराजोंको सिक्षा देनी (हुई है) मूर्त्तिखंडन, वगेरे निषि
नहीं मानसकेंगे कर्मोपासनादि साधन और स्तुति, प्रार्थ
भक्तिमार्गका उच्छेद होगा. रासलीलामें यवनादि-सर्व
शामिल करना पडेगा. ब्रह्म सावयव-सांश ठेरेगा. अधिष्ठा
विना, अणु, अणु मानके समूहको ब्रह्म पदका वाच्य ठेर
तो, अन्योऽन्याश्रयताकी असिद्धिसे यह पक्ष असमीची
रहेगा. सर्वदा अक्रिय आकाश, ब्रह्मपदसे इतर ठेराना पडेग
क्योंकि कछवाये [दरयाई जानवर] समान स्वगत भेदरहि
ब्रह्मका एक अंग हिले और दूसरा गतिमान न होवे, ए
कथन-मंतव्य बालकोंकी कहानी समान है. विकृत या अ
कृत-परिणाम मात्रही देश [आकाश-जग] विना नहीं हो
कता. उनकी श्रुति प्रतिपाद्य सर्वथा निष्कलंक-व्यापक-अ
क्रिय ब्रह्मको क्रियावान-परिणामी बताना, गोस्वामी*-या
धर्मात्माको व्यभिचारी वा व्यभिचारीको आचार्य-गोस्व
मी वगेरे बताने जैसा है. तथा जबकि 'सर्व ब्रह्म,' तो स
र्वका वचन प्रमाण मानना पडेगा; इसलिये शुद्धाद्वैतका नि
धक वाक्य और "दिव्योहि अमूर्त्तः" "न तस्य प्रति

*बेल-कृष्ण-गवालिया-चारण.

अस्ति "–श्रुति वाक्यभी प्रमाण मानने चाहिये. आकाशादि निराकार–अमूर्त्त, कभीभी मूर्त्तिमान [शब्द–अग्नि–तम विजली–आकर्षण–मन–शक्ति–राम–कृष्ण–विष्णु वगेरे मूर्त्तिवाले साकार हैं]. नहीं होते–नहीं हो सकते. (ईश्वर प्रसंग वांचो). जो ब्रह्मकी नानारूप लीला मानके अल्पज्ञ कर्त्ता भोक्ता. सर्वज्ञ. अकर्त्ता, अभोक्ता, रूपसे नाना परिणाम मानें तो. एक अद्वितीयमें विरोधी धर्म असमान्य होनेसे चोर साहुकारकी समानतावाले दोष आवेंगे तम प्रकाशका भेद-अभाव भावका भेद–ओर विभुपरिच्छिनका भेद,-यह सर्व. ब्रह्म प्रकृति ओर वस्तु मात्रका इतरेतरत्व स्पष्ट जनारहे हैं. जो, गोहूं, बाजरेके मिश्रण राशी समान [यह.सर्व धान है] एसा मानके उक्त वाक्यका अर्थ लेवें तो, परिभाषा मात्रका भेद रहता है, जडवादि वा द्वैतमत बन जाता है. तथापि जब जड, चेतन, ज्ञान, गति, बंध ओर मोक्षादिका विभाग विवेक करेंगे तब, पूर्वोक्त दोष प्राप्त होंगे. निमित्त विना व्यर्थ लीला करनेसे ब्रह्म उन्मादि–मूर्ख ठरेगा. व्याससूत्रके विरुद्ध ओर किरानी, कुरानी, इरानी वगेरेके ईश्वर समान शुद्धाद्वैतका ब्रह्मभी दोषी–भोक्ता–देवाना–गांडा वा अन्यायी मानना पडेगा थि. सो. मतवाले दोषभी आवेंगे. ओर पूर्व दर्शनोंमें जो जो अद्वैतपक्ष विषे ओर सर्वज्ञत्वादि प्रसंगमें लिखे हैं वे तमाम दोष इस मत ओर लालजीके अवतारोंको आवेंगे.

हडकाये हुये कुत्तेकी लालका प्रवेश होनेसे कुत्तेके काटे हुये रोगीके पेटमेंसे कुत्ते जेसे जीव निकलते हैं; वेसे भृंगकी लाल ओर कीटकी योग्यतासे कीट, भृंग होता है. एसे सारूप्य मोक्ष मानने वाले वा आकाश सर्वत्र व्यापक व्याप्य समान सालोक्य वा सामीप्य वा सायुज्य मोक्षवादि

किंवा शरीर अपेक्षासे राजा रंककी समानता समान जीवे
श्वर एक होना मान्ने वालोंकी बुद्धिपर आश्चर्य !

मोक्ष निर्णय विना उसके साधनका निर्णय असंभव उनके विना मुमुक्षता नहीं बनती. जिस मतके संस्कार मुमुक्षु बनता है, उसी मतके साधनमें पडता है; परंतु जब उस मत-धर्म-पंथ तथा उस धर्म-पंथकी मोक्ष और उसके साधन अन्य पक्षकारों द्वारा निर्णय करता है,- इस प्रकार सर्वको शोधता है तो, सर्व मत-पंथ-धर्मकी मोक्ष, उसके साधन और धर्ममें मोटी पोल निकलती है. परीक्षा वास्ते एक यही मत बस है. (देखो छपा हुवा पुष्टिमार्ग और लाइबल केस).

संक्षेपमें इस [शुद्धाद्वैत] प्रकारके मत वालकोंकी व कल्पित कहानी समान हैं और अज्ञ-बालकोंको मोहित करते हैं. चकर-रासलीलामें घुमाते हैं-इस अयुक्त मतका जो निकृष्ट परिणाम निकला, वोह और इस मतके दोष लोक प्रसिद्ध हैं [देखो पुष्टिमार्ग नामक ग्रंथ और महाराजका लाइबल केस. इत्यादि कारणसे विशेष लिखना उचित नहीं समझा. उद्देश मात्र दोष जनाये हैं.

(ग.) विदेशी अद्वैत.

वक्ष्यमाण कथा कहांतक सत्य है वा असत्य होगी—सो हम नहीं कहसकते; परंतु सुनते हैं और थियोसोफिस्टोंके ग्रंथोमें वांचते हैं. उस अनुसार लिखते हैः-याहूदीकेबाला, क्रिश्चियनोंमें डोमीनकनब्रुका तथा फेलसूफ स्पीनोझा वगेरेका विचार तथा मुसलमानी और जरतोस्त धर्ममेंसे सूफीतरीक और चीन वगेरे देशोंमें, बुद्ध सिद्धांतसे अविरुद्ध 'लेओ-ट्स

का प्रचार किया हुवा मार्ग—यह तमाम जीवेश्वरकी एकता ओर जगत्का मिथ्यात्व तथा अभेदसे मोक्ष [अर्थात् केवलाद्वैतानुसार] मानते हैं. अद्वैतज्ञानियोंमें 'स्पीनोझा' 'हेगेल'. [जिसके वास्ते, "डेवीडमेसन—रीसंटब्रिटीश फिलोसोफी" विद्वानोंकी साक्षी लेके दुनियामें आखरी तत्व ज्ञानीकी पद्वि देती हे] प्रसिद्ध हे. स्कोपनहोअर, पेरेसेलसस, जेकबव्हीम, ओलिफास, लेवी वगेरे धर्म ओर उपनिषदानुसार अद्वैत मतमें कुशल थे. इनमेंसे मुसलमानोंके सूफियोंका मत उपर लिखे जैसा हे, यह उनके ग्रंथ पठन ओर फकीरोंके संगसे ज्ञात हुवा. अन्यके वास्ते विशेष नहीं कहसकता. तोभी इतना तो जिताना जरुर हे कि. जिस प्रकारका नवीन वेदांनियों, किरानी. पौराणी, इरानी, थियोसोफियोंका [सजातीय, विजातिय, स्वगत भेद रहित] अद्वैत हे. वेसाही उनका हो तो. असिद्ध हे जिसकी चर्चा—प्रक्रियाओंके दोष ऊपर कहे हैं. ओर जो यथार्थ बोधक उपनिषदों समान हो तो, जब तक उनका मंतव्य संपूर्ण नहीं देखें -न जानें, वहांतक उनके मत विषे कुछ नहीं कहा जाता. दूसरेके लिखे वा माने हुये वा अर्थ किये हुयेपर विश्वास रखें तो, उपानिषद्के अर्थ द्वैत. ओर अद्वैत—उभय पक्षमें लेजानेवालोंने जो कुछमानाहे सो—उभय पक्ष मानने पडेंगें. कुछ सिद्ध न होगा. तथापि जब वे वा अन्य कोई प्रकारका मत समक्ष हों, तव उसे वक्ष्यमाण "मतमान" में 'तोल' लीजे. दूषण भूषण स्वयं जान सकोगे.

[घ.] बौद्ध मत.*

बौद्ध मतमें दो पक्ष मुख्य हैं.—शून्य ओर अशून्य. अ-

*बौद्धमतके स्थापक बुद्धदेवको २९०० वर्ष हुये हैं. तमाम

शून्यके अद्वैत [योगाचार] ओर द्वैत (सोत्रांतिक ओर भाषिक) यह दो भेद हैं. वस्तुतः क्षणिक पक्ष,-पिछले ः नों पक्ष-द्वैताद्वैतमें हे.

भूमंडलमें जो दो अर्बुद मनुष्य हों तो, ७० किरोड बुद्धमतके ः अर्थात् सर्व धर्मोसे विशेप व्यापक हे. बुद्धमतकी वडी चार शा हैं; किसीका एसा कथन हैं कि बुद्धने श्रोताकी बुद्धि अनुसार उ देश किया, इसलिये मतमें भेद पडे. उसका रहस्य प्रचलित प से अन्य था. किसीका यह कथन हे कि, उसके अनुयायियोंने बना लिये. कोई उसे ईश्वरवादि कोई उसे अद्वैतवादि मानता उसके सूत्र कम मिलते हैं. जो मिलते हैं वे खंडित नाना अर्थ वाले मिलते हैं उसके वडे ४ पक्ष यह हैं.

१ माध्यमकः-असत् ख्याति-ज्ञान अपने आपमें अवस्थि हे. जेसे रज्जुमें सर्प, न था, न हे, न होगा; अतः शून्य हे त यह तमाम त्रिपुटी-प्रपंच हे. अर्थात् शून्यरूप हे.

२ योगाचारः-आत्मख्याति-विज्ञानसे इतर बाह्यांतर को पदार्थ नहीं हे, किंतु एक विज्ञान नामा पदार्थ हे. वोह क्षणिक- तिवान परिणामी हे. क्रमशः त्रिपुटिका रुप रखता हे. जब ज्ञे परिणाम हो तब, ज्ञान ओर ज्ञातारुप नहीं. जब ज्ञातार परिणाम हो तब, ज्ञेय ओर ज्ञान परिणाम नहीं. उस विज्ञानव आलय (अहंप्रत्य) ओर प्रवृत्ति, यह दो धारा अनवच्छिन्न-क्ष क्षणमें होती रहती हैं इसका निमित्त पूर्व वासना हे, वासनाके अभा हुये विज्ञानकी स्थिति मोक्ष-निर्वाण हे. इस मतमें कारण कार्यसह व र्त्तमान वा तादात्म्य संबंध संबंधीकी अपेक्षावाला मुख्य अनुमान प्रमाण है

३ सौत्रांतिकः-बाह्य पदार्थ मानता हे. उसका विषयी वि ज्ञान हे. परंतु बाह्य पदार्थ अनुमानके विषय हैं. प्रत्यक्ष नहीं. शे क्षणिकवादवत्.

शून्यवादको साक्षी वास्ते शून्यका सिद्ध कर्त्ता—अनुभव करनेवाला उससे भिन्न होना चाहिये. शून्यसे नाना दृश्य पदार्थकी उत्पत्ति असंभव. इत्यादि प्रकारसे शून्यवाद समीचीन नहीं.

जो विज्ञानसे भिन्न बाह्य पदार्थ मानें तो, उनको अधिष्ठानकी अपेक्षा ओर वक्ष्यमाण द्वैत पक्षवाले दोष आवेंगे. नाना विज्ञान ओर नाना पदार्थ (ज्ञेय) माननेसे जीव, अजीव पक्ष स्वीकारनेसे द्वैत पक्षवाले दोष आवेंगे. जो एक विज्ञानका ज्ञान ओर दूसरेका ज्ञेयाकार [परोक्ष अपरोक्ष पदार्थाकार] होना मानें, तो एक दूसरेका सहचारी नियम सिद्ध न होगा; जहां एक घटको ४ मनुष्य हाथ लगाके देखें, वहां चारोंको ४ घट प्रतीत होने चाहिये; परंतु एसा नहीं होता. जो पदार्थाकार रखनेवाले विज्ञान अनंत मानोगे तो, परमाणुवाद—प्रकृतिवाद सिद्ध होगा. किंवा वेदांतपक्षका स्वप्नवाला अविद्यावाद स्वीकारना पडेगा. उसमें पूर्व दर्शनोक्त दोष आवेंगे. जो स्वप्नवत् विज्ञानाकार त्रिपुटी मानके क्षणिक विज्ञानका परिणाम मानें, ओर अंतमें विज्ञान मात्र रहनाही स्वीकारें, तोभी वेदांतपक्षवाले दोष आवेंगे, [शेष दोष वक्ष्य-

४ वैभाषिकः—अर्थज्ञान अन्वयित पक्ष है. अर्थज्ञाता, ज्ञेय भिन्न मानके सविकल्प, निर्विकल्प, यह दो भेद ज्ञानके मानता है. ओर विज्ञानसे भिन्न बाह्य पदार्थ प्रत्यक्षके विषयभी हैं, एसा स्वीकारता है. शेष क्षणिकवादवत्.

५ लंका वगेरे देशोंमें ईश्वरवादिभी बौद्ध हैं. ओरभी रूपांतरवाली अनेक शाखा सुनते हैं.

६ यह पक्ष द्वैताद्वैत रूपमें है. तथापि एक पक्ष अद्वैतमें गिनते हैं; इसलिये यहां प्रसंगमें लिया गया है. ओर संक्षेपमें खंडन जनाया है.

माण अंक ३ में[1] वांचोगे.]

तदुपरांत जो बौद्धमतका ईश्वरवाद पक्ष मानो तो, पूर्वोक्त ईश्वर प्रसंगवाले दोष आवेंगे.—इस प्रकार बौद्ध मतके अद्वैत (ओर द्वैतवादमेंभी) में दोष हैं.—असंगत मत है.

(अं.२) द्वैतासिद्धि.

अद्वैतपक्षोंका उच्छेद जानके अद्वैतपक्षवादि, द्वैतपक्षके दोष जनाता है:—

[सिद्धांति] जेसे ऊपर अद्वैत मतका समीक्षकने खंडन किया, वेसेही वोह (समीक्षक) जो जो पक्ष मानेगा सोभी अयुक्त-असंगत रहेगा. अर्थात् द्वैतमतमात्रभी समीचीन नहीं; *किंतु सदोष है. यथा-जो कोइ द्वैतवादि ईश्वर वा शक्ति वा अन्य वस्तुको व्यापक मानता होगा उसको, पूर्व प्रसंग [व्यापकमें अन्य स्वरूपका अप्रवेश ओर अकर्तृत्व है] समान, स्वपक्ष छोडदेना पडेगा. ओर जो अनीश्वरवादि हैं (जेसेके जैन, पूर्वमीमांसा, सांख्य—ईश्वर नहीं मानते; परंतु देशकाल आत्मादिको व्यापक मानते हैं), उनकोभी, पूर्व कही हुइ रीति समान स्वपक्ष त्याग करना पडेगा. ओर जो व्यापक वस्तुको नहीं माननेवाले [युरोपके फिलोसफर—है-

---

१ अंक [३] पक्षतुला, प्रसंगगत नोट नं. ६ वांचो.

*द्वैत, द्वैताद्वैत (वक्ष्यमाण अंक ३ की पहिली नोट वांचो) ईरानी, यहूदी, किरानी, कुरानी, ब्रह्म, प्रार्थनासमाजी ओर कोई पुराणीका अनुपादान—अभावजन्य सृष्टि है,यह मत है; पुनर्जन्म नहीं मानते ओर जीवको सादि सांत कहते हैं. यह पक्ष द्वैताद्वैत के अंतरगत हैं —एसे अभाववादि, ईश्वरवादि पक्षोंकी असमीचीनता प्रसंगोपात पूर्वमें आचुकी है.

मिल्टन, हरबर्ट–सायन्सवादि–आकर्षणवादि, चार्वाक, परमाणुवादि,–जडवादि वा परिच्छिन ईश्वरवादि इत्यादि] हैं. उनको, परिच्छिन्न जडादिके व्यापक अधिष्ठान माने विना, छूटका* नहीं है क्योंके जिस समय आकर्षणके स्वरूपका निर्णय करोगे वा ग्रहादिक अन्योऽन्याश्रयकी तपासपर उतरोगे. वा सृष्टिके अनादित्व और स्वभावतः विद्यमानके शोध पर दृष्टि डालोगे, किंवा प्रत्येक पदार्थके स्वरुप लक्षण (अणु, मध्यम वा व्यापक, सावयव वा निरवयव, भाव वा अभाव, जड वा चेतन, विरोधी, वा अविरोधी, उपादान वा उपादेय, कारण है. वा कार्य इत्यादि) पर ध्यान दोगे वा परिच्छिन्न ईश्वरकी सत्ता तपासोगे और अनुभव इत्यादिका निर्णय करोगे: उसीकालमें परिच्छिन्न वादकी परिसमाप्ति होजायगी. और जो द्वैत क्षणिकवाद [वा शून्यवाद] है, उसका परि अवसान तो, उसके मूलको निरवयव मानके परिणामी मानना वा उसको, जाननेकी अपेक्षावाला (साक्षी) सिद्ध होनेसेही सदोष जान पडेगा. एक विज्ञान वा नाना क्षणिक विज्ञानके निर्णय करनेपर अव्यवस्था

---

* अधिष्ठान विना अणु अणुमानें तो, अन्योऽन्याश्रयता नहीं बनती. और उस अणुवाला रस्सी [दोरी] माननेसे यथोचित व्यवस्था नहीं बनती. उस रस्सी बननेकोभी आधार चाहिये. तमाम ब्रह्मांड [अणु समूहात्मक सृष्टि] के गोलका आधार मानना पडेगा. जैसे जलमें डुबकी मारें वहां आकाशने शरीरको अवकाशदिया; परंतु चारुं तरफके जलका भार शरीरपर नहीं मालुम होता, उसका कारण जलकी आधारता है–अर्थात् चारुं तरफसे जल महारता है. यह आकाश और आधारका अंतर है. निदान आधारविना माने छुटकारा नहीं.

ओर व्यवहारमात्रकी असिद्धि होगी तथा अपरोक्षत्वका सर्व वादमें दोषही हे. जब किसी प्रकारकाभी द्वैत [दो पदार्थ] मानोगे, तब उन परस्परमें भेदवादही दोषको सिद्ध करदेगा. जेसेके घट [परमाणवादी] का पटमें भेद हे सो, भेदसहित हे वा भेदरहित हे? इसका उत्तर नहीं बनेगा. घट, पट भेदसहित पटसे भेदवान हे तो, वा घट, पट भेदरहित भेदवान हे तो, वा घट पट भेदरहित भेदवान हें तो, वा प्रतियोगी विना धर्मीमें भेदकी सिद्धि अन्योंके भेदसे मानेंगे तो, वा घट पटके भेदोंके भेदमानने पडेंगे तो, वा घट गत पटभेदका घटसे भेद मानेंगे तो;-निदान हरेक रीतिसे अनवस्था, अन्योऽन्याश्रय वा आत्माश्रयादि दोष आवेंगे. ओर जब द्वैतवादि एसा कहेगा के. 'अभाव वा भेद कोइ पदार्थ नहीं हे, किंतु एक कल्पनामात्र हे.' तब, 'भेद हे,' एसी सिद्धिही नहीं होगी.-उसको चूपही रहना पडेगा.

तथा सो भेद वा अभाव वस्तुतः कुछ हें तो, अणु हें वा मध्यम हें वा विभूपरिमाण हें? (इन तीन परिमाणसे इतर कोइभी वस्तु नहीं होसक्ती. तदेतर जो मानोगेसो, कल्पितसे इतर नहीं सिद्ध करसक्ते.) अब जो भेद वा अभावको अणुरूप मानोगे तो, एक परमाणु विशेषका अभाव, परमाणु अधिकरणसे इतर सर्व देश [आकाश] में हे, अतः अणुरूप नहीं एसा, सिद्ध हुवा. ओर जो विभू मानोगे तो, देशका अभाव देशवत् विभू होना चाहिये; परंतु एक परमाणु ओर अणु अधिकारमें, विभूदेशके विभू अभावको आश्रित मानना कल्पनामात्र हे वा असंभव हे तथा, परमाणुके अणु अधिकरणसे इतर देशमें, उसका अभाव

नहीं हे, इसलिये विभू नहीं हे. ओर जो घटादि स्वरूप परिमाण समान तीनों प्रकारका परिमाण मानोगे तो, दो परिमाणका पूर्ववत् खंडन समझलेना चाहिये, शेष रहा मध्यम परिमाण भेद (अन्योऽन्याभाव) सो जन्य होना चाहिये, परंतु द्वैतवादमें नाना वस्तु अनादि हें तो, उनका भेदभी अनादि होना चाहिये. अर्थात् अजन्य हे. इसलिये अभाव वा भेदका मध्यम परिमाण कहेना असंगत होगा. ओर जो हठसे मानभी लेवें तो, उसकी उत्पत्ति पूर्व, भेद सिद्ध नहीं होगा. तथाही उसका उपादानभी अभावरुप कहा चाहिये. इसप्रकार उपादान अणुपरिमाण कहेना पडनेसे पूर्वोक्त दोष आवेंगे.

ओरभी, जो नाना परिच्छिन्न पदार्थ हें सो, देशवर्ती हें वा देश रहित ? जो देश रहित कहोगे तो, क्रियाका अभाव होगा, गति विना कार्यका अभाव होगा; परंतु कार्य ओर गति तो देखतें हें; अतः देशवर्ती पक्ष मानना पडेगा; तहां, देश (आकाश) कोइ वस्तु हे वा नहीं ? जो देश स्वरूपमें कोइ वस्तु हे तो, उसके स्वरूप भागमें परमाणु स्वरुप भाग नहीं हे, एसा माननेसे देशाभाव मानना पडेगा. ओर उक्त दोष आवेगा. जो यह कहो के परमाणुके चारुं तरफ देश हे स्वरूप भागमें नहीं तो, देश (आकाश) चालनी समान छिद्रवान लचकी मानना पडेगा. अर्थात् परमाणु समूहात्मक हे; एसा माननेसे पुनः गति, प्रवेश, अप्रवेश आदिकी अव्यवस्था होगी.

ओरभी, जो आकर्षण नामा पदार्थ मानके गति, स्थिति ओर आधारकी व्यवस्था करोगे, तो आकर्षण अणु हे वा मध्यम वा विभु परिमाण हे? इस निर्णयपर जानेसे अनंत

दोष प्राप्त होंगे.-आकर्षणकीही सिद्धि न होगी वा अव्यवस्था रहेगी.[१] [विस्तार भयसे नहीं लिखते. बुद्धिमानने

१ आकर्षण यदि कोइ वस्तु हे तो, उसका परीक्षासे निर्णय कर्तव्य हे:-लोष्टके खेंचनेवाले-आकर्षण वाले चंबुकके टुकडे करें तो, उसकी उसमें रही हुइ आकर्षण वा विद्युत, न्यूनरुपमें विभाग पा जाती हे १, किंवा ग्रहोंके फिरनेसे अन्य ग्रहोंकी उनमें रही हुइ आकर्षण, लंबी ओछी होने योग्य हे २, किंवा गृहोंकी आकर्षण, परस्परमें कहीं न कहीं अवश्य टकराने योग्य हे ३, किंवा भारी हलके पदार्थ खेंचनेमें, उसके न्यूनाधिकरुप परिणाम होते हें ४, किंवा नेगीटिव पाजीटवकी समान तुलना होने वास्ते उसको दौरा करना पडता हे, तिस विना पृथ्व्यादिकी अपनी कक्षामें नियमत गति नहीं होसकती. ५, इत्यादि अपरोक्ष परोक्ष कारणोंसे यदि आकर्षण कोई वस्तु हो तो, वोह मध्यम (अणु अणु समूह परिणामी) जन्य मान्नी पडेगी. तथाही उक्त कारण ओर मध्यम होनेसे, उसका आधार. द्रव्य-परमाणु-गृहादि पदार्थ हें, एसा सिद्ध होगा. जो यूं हो तो, यह प्रश्न उठता हे कि, आकर्षण द्रव्य हे वा किसीकी शक्ति हे वा गुण हे? यदि द्रव्य मानें तो, वोह विभु, स्वतंत्र, चेतन, न्यामक, इच्छा शक्तिवाली हे वा इन विनाकी हे? तहां उक्त रीतिसे विभु वगेरे विकल्प असिद्ध हें. पराधीन काम करने योग्य होनेसे स्वतंत्रभी नहीं. तद्वत् चेतनादि संबंधमें जानलेना चाहिये. एतद्दृष्टि परिच्छिन्न जड हे; एसा मानें तो, परिच्छिन्न होनेसें किसीके आधार रहने योग्य हे.-स्वयं आधार नहीं जो द्रव्य [गृहादि] की सत्ता-शक्ति वा गुण हे तो, द्रव्य देशसे इतर स्थानमें नहीं जासकती; अतएव परस्परके आधार ओर नियमकी स्वतंत्र हेतु नहीं होगी. इत्यादि रीतिसे आकर्षण मात्र द्वारा व्यवस्था नहीं होसकती. विद्युत विषेभी एसेही ज्ञातव्य हे.

पूर्व अभाव-भेद समान कल्पना करलेना चाहिये]

अब जो प्रत्येक द्रव्य ओर गुण के स्वरुप तथा उनके संबंध ओर जाति (धर्म) तथा विलक्षणत्वका विवेक करनेको उद्यत हों तो, निर्णय समय द्वैत (भेद) वादीके मन बुद्धिकी जिव्हा चप चप करने लगजायगी.[२]

---

२ द्रव्यके कोन देशमें गुण, स्वभाव, आकर्षण, शक्ति-सत्ता, धर्म रहता, हे? तहां पूर्वोक्त स्वरुप अप्रवेश प्रसंगानुसार, द्रव्य गुणादि, परस्पर व्यापक व्याप्य नहीं होसकते. उपरके भागमें लिपटे हुये मानें तो, उनको [अणु अणु जन्य]-मध्यम मान्ना पडेगा. जो 'एक भागमें हें' एसा मानें तो, संयोगी तथा अणुही ठेरेंगे. अतएव उनको गुणादि रूप नहीं दे सकेंगे. तादात्म्य, समवाय, भेद अभेद, वा भेदाभेद-संबंध वाले सिद्ध न होंगे. संबंध विना, द्रव्य साथ केसे रह सकेंगे? निदान, यातो-गुणादि, स्वरुपसे कोई वस्तु नहीं होंगे, यातो द्रव्यरूप वा द्रव्यकी अवस्था होंगे. एसा, सिद्ध होनेसे, द्वैतवादीका पक्ष पदपदपर असमीचीन रहेगा.

तद्वत् शब्दप्रमाण मान्नेके मूल-शब्द स्वरूपके निर्णयमें जानलेना चाहिये.-जो सूर्यवत् शब्दरूप अपनी स्वतः प्रमाणता सिद्ध करने वा ज्ञान करानेमें समर्थ होता तो, अन्यकी अपेक्षा विना बोध कराता. किसी (अंधादि) कोभी अन्यकी अपेक्षा नहीं होनी चाहिये. सब उसे स्वतः प्रमाण मानते; परंतु शब्दमें स्वयं शक्ति नहीं; अतः एसा नहीं होता. अर्थात् कहे हुये मंत्र-प्रमाणको वा उसके सूचन किये हुये अर्थको युक्ति, सृष्टिनियमादि प्रमाण लेके सिद्ध करना पडेगा. अन्यथा वेद मंत्रकी निंदा करना हे. जो कहे हुये मंत्रके विषयको सयुक्त सिद्ध नहीं करसकें, तो वेदका कथन अयुक्त होगा, एसा विश्वास होजाता हे इस लिये वेदादि-शब्दप्रमाणको परतः प्रमाणही मान्ना पडेगा. कारण कि "वेदादि-शब्दप्रमाण स्वत

प्रमाण है, " एसा निर्णय वा निश्चय वा मंतव्य, बुद्धि आधीन है. अन्यथा अग्नि उष्ण प्रकाश रूपवानवत् सर्वको स्वतः सिद्ध प्रमाण होता. अमुक उसे प्रमाण मानता है, अमुक नहीं मानता है, एसा भेद नहीं होता.

इत्यादि प्रकारसे परिच्छिन्न द्वैतवाद विषे नाना दोष हैं. विशेष विस्तार देखना होतो, भेदधिक्कार, तत्वदर्शनादि ग्रंथका अवलोकन करें,

जो स्वभाव वादि बीचमें कूदे और कहे कि, परस्पर प्रवेश तथा कार्यमात्र स्वाभावतः होते हैं और अमुक प्रकारके शंका समाधानादिभी स्वाभावतः होते रहते हैं. तहां, स्वभाववादिसे पूछना चाहिये कि; स्वभावका लक्षण क्या है? जड है–चेतन है–अणु है वा विभु है ? आश्रित है कि आश्रय है ? अणु अणुका भिन्न २ स्वभाव है वा एक है; ? उत्पन्न हुवा क्यों नाश होता है ? अमैथुनज मनुष्य क्यों नहीं होते? बिच्छु मैथुनी अमैथुनी क्यों होतेहैं ? जूं वगेरे अमैथुन क्यों होतेहैं. स्वभावका द्रष्टा तद्भिन्न है वा अभिन्न? स्वभाव परोक्ष है वा अपरोक्ष? स्वयं नियामक है वा नहीं? अमुक परमाणुका अमुक परमाणुके साथ संयोगीकरण हो, अमुकके साथ न हो, इसमें योग्यतादि हेतु हैं? वा स्वभाव है वा क्या? इत्यादि प्रश्नोंके उत्तर–निर्णयमें उसका मंतव्य बाध होजायगा? स्वभाव कोइ पदार्थही सिद्ध न होगा. किंतु कार्यमात्र योग्यता, आकर्षणादि नियमोंमे होते हैं; यह परिणाम निकलेगा. परस्परका परस्परमें प्रवेश स्वभावसे है, यह बात सिद्ध न होगी. स्वरूप अप्रवेशका सवाल खडाही रहेगा. जो स्वभाव पदार्थ नहीं, एसा माने, तो स्वभाववादका उच्छेद होगा निरर्थक-अलीक मत होनेसे विस्तार नहीं करते. [तत्वदर्शन नामक ग्रंथमें इस मतका सविस्तृत खंडन है]

श्रित, स्याद्वाद) मानके निर्वाह करनेको जावे तो, पदार्थों के स्वरुप, तिर्थंकरादिकी अस्ति नास्ति. बंध. मोक्ष, कर्मफल. द्वैत, अद्वैत वा द्वैताद्वैत-इत्यादि तमाम मंतव्य-सिद्धांत कथन श्रवण ओर दृष्टमात्रमें अव्यवस्था रहेगी. सम्यकप्रकारसे कुछभी-एक निश्चय नहीं होगा.

तद्वत् अन्यमतवाद-पक्ष (भेदाभेद, सत्यासत्य,-उभय विरोधी पक्ष माननेवाले) वा शून्यवाद माननेवालोंमे असंभव, विरोध, वा दृष्ट विरुद्ध-इत्यादि दोष आते हें (अप्रसंग ओर ग्रंथ विस्तारभयसे नहीं लिखते. बुद्धिमान वास्ते उक्त कथ नही बस हे.)

इसी प्रकार अनेक युक्ति ओर सृष्टि नियम एसे हें क, व्यापक वा व्यापक व्याप्य, परिच्छिन्न वा क्षणिकादिवाद-मंतव्य अर्थात् समग्र प्रकारके द्वैताद्वैत वादमें दोष आते हें. केवल शब्द वा मनोराज्यमात्रसेही नहीं किंतु. निपक्ष शोधक बुद्धि परीक्षासेभी, उस शोधकके मंतव्यनामा मुखपर, वे नियम थप्पड (तमाचा) लगादेते हैं ओर उसको चुपही रहना पडेगा; किंवा स्वपक्ष त्यागना पडेगा. ओर द्वैताद्वैतसे विलक्षण कोइ सिद्धांत नहीं होसक्ता. यदि मानोगे तो उभय पक्षवाले ओर विरोध सूचक-अनेक दोष आवेंगे. अतः निर्दोषाभावसे आप (समीक्षक) का खंडनभी सदोष होगा ओर किसीके पक्षको सदोष नहीं कहसकोगे. क्योंके निर्दोष कोइभी नहीं.[1] इस कथनकी अर्थापत्तिसे यह परिणाम निकल सकता हे वा विचारवान पुरुष नि-

१. संस्कृत भाषामें "खण्डन खण्डखाद्यम्" नामा छोटासा ग्रंथ हे, उसके देखनेसे हमारे लेखकी यथार्थता ज्ञात होसक्ती हे तदुपरांत ओरभी एसे ग्रंथहें.

काल सकता है कि:-अन्य मतोंसे अद्वैत पक्ष उत्तम है." (समीक्षक) मेरी ओरसे उक्त कथनका यह उत्तर है कि द्वैत वा अद्वैत वा अन्य पक्ष मात्र, सदोष हों वा न हों; हमको इसमें आग्रह नहीं. परंतु यह वात किंचित् विचारसे ज्ञात होसक्ती है के, जो है सो. ना नहीं, और जो. नहीं सो, हां नहीं अर्थात् जो है सो है. कोइ उसको ज्यूं का त्यूं जानसक्ता हो वा नहीं, इसमें कोइ विवाद नहीं; परंतु जो स्व पक्षको अन्यसे अच्छा बतावे, इतनाही नहीं किंतु हम कहें वा हमारे आचार्य वा गुरु वा ग्रंथने जो कहा, सोही ठीक है, एसे अभिमानी भ्रमानेवालोंके दोष, जबतक नहीं दरसाये जावें तब तक, वे अन्यायसे नहीं हटते. जेसेके प्राचीनकालमें. रिव्रस्तिलोक-प्रोटेस्टंट और रोमनकेथलिकने स्वधर्माभिमान करके, लाखों किरोडों मनुष्योंकी जान ली, तत्ववेत्ताओंको मारडाला २ और मुहम्मदिन (मुसलमानी) धर्मको चलानेवाले वा कुरान बनानेवाले नबी मुहिम्मद वा कुरान बनानेवालेजीनेतो. जिहाद [जो कुरानी धर्ममें न आवे उन-परधर्मवालोंको मारडालना उनके स्त्री पुत्र धनादिको स्वाधीन करलेना]का स्पष्ट हुकम दरसाया है. "कतलुल काफरीन" तो. उनका मुख्य उद्देश है. निदान जेसाके अधर्मी न्याय वा धर्म द्वेष करके किरोडों जीवोंको इस पंथवालोंने मारडाला सो वात, जगत् प्रसिद्ध है*

इन उभयसे न्यून, अन्य धर्मवालोंने भी किया और कर रहे हैं (वैष्णव, शैवियोंकी लडाइपर ध्यान दीजिये.) अ-

२ देखो क्रिश्चियन मतदर्पन ग्रंथ और इग्लांडका इतिहास.

* देखो 'तकजीब बुराहीन अहम्मादिया" "खब्तअहमादिया" "जिहाद" "पादरी कृत लाइफ मुहम्मद"-४ ग्रंथ.

। इनके दोष नहीं दिखायें जावें तो, उनके पूर्व पूर्वके संस्का-, इस अधर्म अन्यायसे उनको कब छूटने देंगे?१ इस लिये मारा खंडन धर्म द्वेषरुप नहीं. एतद्दृष्टि सदोष नहीं और अन्य सदोष पक्षका दोष देखाना, उलटी उनपर दया संझते हैं, अर्थात् किसी प्रकारभी, वे अन्याय-अधर्म-असत्-अयथार्थताको छोडके सब मिलके सत्यको खोजें, ओर द्वेष रहित-संपवान हुये सुखको भोगें; अन्य प्रयोजन नहीं.१

[अं. ३] पक्षतुला-मतमान.

पक्ष दृष्टि छोडके, सर्वके मत-पक्ष, उद्देश लक्षण परीक्षा पूर्वक समझके, उनके दूषण भूषण ओर पक्षकारकी देश काल स्वार्थी-निस्वार्थी-योग्यता-अयोग्यतावाली दृष्टि यथाशक्ति ध्यानमें लेके, योग बुद्धि करके परीक्षा-निर्णय-करोगे तो, हरकोई मत (पंथ-पंतव्य-मजहब-धर्म-बाडे,-दीन, सिद्धांत-निर्णय-विश्वास-फिलोसोफी) के आद्य, अंत (जीव, ईश्वर, प्रकृति मोक्ष, वा तत्व निर्णय) संबंधी विषयमें निम्न-लिखित दोषोंमेंसे कोइनकोइ दोष अवश्य आवेगा.* निर्दोष

---

१ (प्र.) तुमको क्या ? आप समझलो. [उ.] तुमको रोकनेसे क्या ? परधर्ममें जाने वा अन्य धर्म होनेसे क्या ? क्यों मारामारी करते हो ? आप समझलो. दूसरेकी दूसरे जानें.

* इस प्रसंगगत लिखेहुये दोष तमाम मत-[द्वैत वा अद्वैत वा शून्य-इन तीन पक्षमें वा विभुवाद, परिच्छिन्नवाद वा व्याप्य-व्यापकवाद इन तीन पक्षमें सर्व मतका समावेश होता हे-उन तमाम मत] में आवेंगे.

द्वैतमत [दो वा दोसे विशेष अमर तत्व मानने वालोंका पक्ष). वेद, १ चार्वाक, २ बुद्धमत गत ईश्वरवादि, १८ जैन, ९

रामानुज, १९ पूर्णप्रज्ञ, १३ पाशुपत, ११ शैव, १२ माधव, १६ रसेश्वर, १४ कणाद, ३ गौतम, ४ जैमानि, ७ पतंजली, ६ सांख्य, ७ पाणिनि, ९ आर्यासमाज, २० यूनानी, १० [फिसो गोरस, अरस्तु, लुकमान, बतलीमूस वगेरे फेलसूफ] आकर्षणी, १७ दहरिया, १९ जडवादि, २ परमाणुवादि, ३ हरवर्टस्पेंसर वगेरे २१ बौद्धका एक पक्ष ८ वगेरे.

अद्वैत (एक तत्ववादि)—निर्विकार, अपरिणामी मानके सृष्टिकी व्यवस्था करनेवाला **वेदांत**—पक्ष—विवर्त्तवाद शोधो.

द्वैताद्वैत [अमिश्रित एक तत्वही स्वयं नानारूप होवे और फेर असली रूपमें आजावे. किंवा एक तत्व, अभावसें भावरूप नाना पदार्थ करे और फेर अभावरूप करके आप वेसाका वेसा अद्वैतरूप रहे. किंवा एक तत्वही नानारूप परिणाम धरता जावे, फेर उस पूर्वरूपमें नहीं आवे एसा माननेवाले मत.] यथा बौद्ध के क्षणिकवाद वाला पक्ष ४ (बाह्य पदार्थ माननेवाले दो भेद द्वैतमें हें. शून्यवादि शून्य पक्षमें हे. क्षणिक विज्ञानवादि इस पक्षमें हे). पुराणी १, किरानी ५, कुरानी ६, इरानी [पारसी] २, यहुदी ३, सूफी७, थियोसोफी १३, ब्रह्मसमाज ११, प्रार्थनासमाज १२, प्रतिभिज्ञ ८, कबीर ९, नानक १०, वगेरे.

शून्यः—बौद्धका शून्यवाद, अभाववाद.

इत्यादि मूलशाखा उपशाखा सहित ९६००० मत भूमंडलमें हें, उन सर्वमें कोईनकोई वक्ष्यमाण दोष अवश्य आवेगा.

पंचदशी, सर्वदर्शन संग्रह, जैनतत्वादर्श, सत्यार्थप्रकाश, षडदर्शन संग्रह, खाद्यखंडन (संस्कृतमें हे), हरवर्टस्पेंसरका अगम्यगम्य वाद और फिलोसोफी [मरेठीमें हे], तकजीब बुराहीन अहमदिया, क्रिश्चियनमतदर्पन, वगेरे प्रसिद्ध ग्रंथ वांचनसे एक दूसरे पक्षके दूषण भूषण जान सकते हो यहां तो मूल तत्व

न होगा. १

१-स्वरूपसे एक अखंड, एकरस, अच्छेद्य-अभेद्य-घन-पररहित-अपर [अर्थात् देशकाल वस्तु परिच्छेद रहित: जिसके आजु बाजु कुछ न हो] विभु वा अणु. (अखंड, अव्यय-परिच्छिन्न-सक्रिय अज-अमर-अनादि-अनंत) वा मध्यम (विभु अणुसे विलक्षण) परिमाण-एक वस्तु मानके उसीको नानारूप होना-नानाप्रकारकी [तम-प्रकाश, अग्नि जल-आकाश परमाणु वगेरे परस्पर विरुद्ध धर्मवाले परिणाम-होना-रूप रखना-एसे विरुद्ध धर्मवाले पदार्थोंका अभिन्न निमित्तोपादान कारण होना. इत्यादि] स्थिति-रूप-आकृति धारन करना-होना मानना; इस पक्षमें असंभव और विरोध दोष. [एक वस्तु नानारूप न धर सकनेसे, विरुद्ध धर्मवालोंका एकही वस्तु उपादान न बन सकनेसे, व्यापकमें गति-परिणाम-उपादानत्व न होसकनेसे. परिच्छिन्न वस्तु व्यापकरूप न धार सकनेसे. * * *]-वेदांत, बौध, वल्लभ, थियोसोफी, सूफी, शाक्त, शैवी, वैष्णव-पौराणी-वगेरे मतमें दोष.

२-एक विभु वा अणु वा मध्यम पदार्थ मानके उसका अभावसे भावरूप-जीव, प्रकृति पदार्थ-पेदा करना, किंवा

ओर परिणाम संबंधी संक्षेपसे (व्यापक सामान्य रूपमें) सहेल प्रकारसे दोष दर्शन-खंडन प्रकार जनाते हैं; ताकि किंचित विचारवान शोधकको मतोंमें न फंसना पडे-जालमें न गुंथावे-किंतु अपने सहित ओरोंको जालमेंसे निकाले ओर न पडने दे.

१ विदित हो कि जो वक्ष्यमाण दोष कथन प्रकार हे, उनमेंसे कितनेक विषय पूर्व प्रसंगोंमे आयेहैं, तोभी शोधकको सुगमतासे एक स्थलमें जनाय, इस लिये जानके पुनरुक्ति रखी गइ हे.

एकसे अधिक वस्तु मिलके उनसे इतर तीसरी सर्वथा नवीन वस्तु उत्पन्न होना मानना, असंभव दोष. [अभावसे भावकी उत्पत्ति न होसकनेसे.] किरानी, कुरानी, याहुदी, पारसी, ब्रह्मसमाजी, प्रार्थनासमाजी, यूरोपके फिलोसोफर जडवादीके मतमें दोष.

३-व्यापकको सक्रिय मानके जगत् कर्त्ता मानना, वा विभुको सक्रिय मूर्त्तिमान मानके प्रबंधक-न्यामक मानना. असंभव दोष (व्यापकमें गतिका अभाव होनेसे). न्याय, वैशेषिक, आर्यासमाजी, किरानी, कुरानी, ईरानी, पौराणी, रामानुज-वल्लभ-शाक्त-वैष्णव-याहुदी मतमे दोष.

४-देशको वस्तु वा देश न मानके गति-परिणाम मानना-असंभव दोष. (अवकाश विना गति न होसकनेसे) वेदांती, बौद्ध, किरानी, कुरानी, ईरानी, याहूदी मतमें दोष.

५-आधार माने विना [द्रव्य] परमाणओंको परस्पराश्रय मानके सृष्टिकी स्थिति स नियम मानना, अन्योऽन्याश्रय दोष. [ब्रह्मांड नाम गोलेका आधार विना न टिकने और अन्योऽन्याश्रय दोष सिद्ध होनेसे; आकर्षण परिच्छिन्न, मध्यम [अणु] लचकी सिद्ध होनेसे.] जडवादी-चारवाक-बृहस्पति-आकर्षणवादि-सायंसवादि-लोकायत-यूरोपके जडवादि वगेरेके मतमें दोष.

६-समूहात्मक [विभु-अणु, व्यापक व्याप्य उभय प्रकारके पदार्थ] मानके निर्वाह करनेमें स्वरुप अप्रवेश [असंभव] दोष [एक स्वरुपहो वहां दुसरा स्वरुप न होसकनेसे. स्वरुपमें स्वरुपका प्रवेश असंभव दोष आनेसे]. वेदांत-न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, पूर्वमीमांसा, जैन, किरानी, कुरानी, ईरानी, याहुदी, पौराणी, [रामानुज, वल्लभादि]

ईश्वरवादि-ब्रह्मवादि-आकाशवादि-कालवादि-वगेरेके मतमें दोष.

७-नाना विभुवादमेंभी उक्त दोष. न्याय, सांख्य-योग-जैन-वगेरेका विभुवाद है.

८-व्यापक न मानके परिच्छिन्न समूहात्मक सिद्ध करके माननेमें;

[१] पूर्वोक्त अन्योऽन्याश्रयादि दोष (४-५)

[२] शक्त्यादिकी व्यवस्था न होनेसे अव्यवस्था¹ दोष.

[३] ब्राह्मांड नामा शरीर नित्य गमन माननेसे इष्ट विरुद्ध दोष [अर्थात् नित्य गमनसे नियम पूर्वक व्यवस्था अहोतव्य; परंतु नियम पूर्वक व्यवस्था देखते हैं.]. तमाम जडवादियोंके मतमें दोष.

९-एकही वस्तुमें सर्व प्रकारकी सामर्थ्य-अन्यथा करसकना (यथा अभावसे भावरुप करे-अपना जेसा बनाले, आपको आप पेदा करे वगेरे) मानके निर्वाह करनेमें आत्माश्रय दोष. [असंभव होनेसे. किरानी-कुरानी, ईरानी, पौरानी (रामानुज, वल्लभादि), ईश्वरवादि, थियोसोफी वगेरे. मतमें दोष.

१०-देशसे अनंत (व्यापक माननेवालोंमें अज्ञान-अज्ञात दोष. [परिच्छिन्न वस्तु अनंतत्वकी सिद्धि न कर सकनेसे). जिन जिन मतमें ईश्वर वा आकाश वा ब्रह्म वा काल वा

---

१ गुण गुणी, शक्ति शक्तिवान, जाति व्यक्ति, भेद भेदवान, कर्म क्रियावान....के परस्परमें कोनसे अंश बाहिर भीतर हैं-? व्यापक व्याप्यरूपसे दोनोंका होना असंभव. स्वरुप अप्रवेश दोष. तथा गुण शक्ति वगेरका परिमाण (अणु, विभु वा मध्यम) क्या ? इत्यादि अव्यवस्था.

अन्य कोई व्यापक वस्तु मानी होवे, वे तमाम मत इस दोष वाले हैं.

११-संख्यासे अनंत (परमाणु, नवीन उत्पन्न नही होते और अनंत हैं) मानने वालोंमेंभी पूर्वोक्त और हठ दोष हैं. "क्योंकि कल्पक, विभु नहीं, परिच्छिन्न हे. और अनंत व्यापकसे अज्ञात हे-अल्पज्ञ हे वोह वेसा नियम बांधसकनेमें असमर्थ हे. संभव हे कि आगे अन्य प्रकारकी व्यवस्था हो. और हठसे मानें तो, व्याप्तिकी सिद्धि नहीं कर सकेगा. जो फेरभी मिथ्याभिमान-दुराग्रह करे तो, और प्रबल दोष आता हे. वोह यह हे कि-देश अनंत हे, इस लिये जीव, परमाणु अनंत हैं. जब यह हेतु माना तो, जहां जहां देश स्वरुप वहां वहां परमाणु नहीं,-क्योंकि स्वरुपमें स्वरुपका प्रवेश नही,* यह बात सर्वको अनुभवगम्य-स्वीकारने योग्य हे; अतः आकाश-देश चालनी समान सावयव हुवा. अनंत नहीं. और देश वा ब्रह्मके विना, परमाणु किसके आधार होंगे? इस उभय विरोधी पक्षोंसे उस दुराग्रहीका पक्षही सिद्ध नहीं होता. जो अपरोक्ष समान अणु और आकाशको व्यापक व्याप्य-स्वरुप प्रवेश माने और आकाशको चालनी समान

* स्थूल सूक्ष्म-सावयव निरवयव-साकार निराकार-गंध पुष्प-जल शीत-संबंध संबंधी-गुण गुणी-जाति व्यक्ति-धर्म धर्मी-शक्ति शक्तिवान-कल्पित अकल्पित-भाव अभाव-इत्यादि हरकोइ प्रकारकी स्वरुपसे जो वस्तु हो सो स्वरुपसे भिन्न २ हैं, अतः एक दूसरेके स्वरुपमें प्रवेश नहीं पाती.-परस्परमें तादात्म्य वा व्याप्य व्यापक नहीं होती. यथा गुण और गुणीका स्वरुप देश-अधिकरण भिन्न होगा. अग्नि, रूप और रंगका भिन्न स्वरुपाधिकरण होगा. इत्यादि. स्वरुप अप्रवेश नियमका रहस्य हे.-यथा प्रसंग लगालेना चाहिये

माने तो, असंभव अनुभव ओर युक्ति विरुद्ध दोष आवेगा. इतनाही नहीं किंतु, स्वरुप प्रवेश असंभव पक्ष माना तो, आकाशवत्-नाना विभु ओर अणुवत् नाना अणु परिमाण वाले जीव ओर आकाश (देशकाल प्रकृति) मानके ओत प्रोतरुप नाना अनंत सृष्टि मानलेंगे. जब यूंहे तो, जीव जीव प्रति सृष्टि होनेसे यह किसका घट ओर सूर्य हे? एसा निर्णय न होनेसे व्यवस्था न होगी.-व्यवहार भंग होगा; परंतु एसा नहीं होता हे. तथाही बेदांतवाला दृष्टि सृष्टि वाद मान्ना पडेगा. वा बौद्ध वाला अज्ञात सत्ता वाला क्षणिकवाद मान्ना पडेगा. आकाश ओर परमाणु उड जांयगे * * *. जो देश-आकाश न मानें वा देशको मगजका असर वा भ्रमरुप कहें,-ओर अनंत परमाणु हें. एसा कहें, तो परमाणुओंमें गतिका व्यवहार न होगा, क्योंकि देश-पोल-जघे-आकाश विना गति नहीं होसकती. देश न मानें ओर गति मानें, यह हठ हे-इत्यादि." जडवादियोंके तमाम मत, न्याय, वै. जै. पूर्वमीमांसा वगेरे मतमें यह दोष हें.

१२-ज्ञाता ज्ञेय-दृष्टा दृश्य परस्पर भिन्न होनेके नियमसे अपने स्वरुपको आप कोई जान्नेको शक्तिमान नहीं. "में अणु हुं वा व्यापक," "में देशानंत (अपने देशके अंतको नहीं जानता-अज्ञानी) हुं वा सांत," 'में अनादि हुं वा सादि,' 'में कालानंत हुं वा सांत (नाशवान)' वगेरे, एसा जान्ना मान्नाही व्याघात हे. इत्यादि-ओरभी कितनीक वातें हें कि जिनको कोइभी नहीं जान सकता. इस लिये सर्वज्ञ (त्रिकालज्ञ-सर्व विषयोंके गुण कर्म स्वभाव, संख्या, परिमाण, संयोगवियोगकी गणना-वगेरे अक्रम कर्मका जान्ने वाला) कोई नहीं होसकता; अतः सर्वज्ञ मा-

नवालोंमें असंभव दोष. (जडवादीसे इतर तमाम मतमें यह दोष हे.)

१३–अपरोक्षत्व–स्वतः प्रामाण्य–परतः प्रामाण्यमें दोष–अनुमानकी सिद्धमें अपरोक्षत्व; ओर अपरोक्षत्व–ज्ञातृत्वमें स्वयं जान्नेकी अपेक्षा; परंतु उसकी असिद्धि. अतः यह पक्ष सर्वमें अकथ वा दुषित रहता हे.

१४–ज्ञानकृति, ध्यानकृति वा प्रमाण (ज्ञानके साधन) से भिन्न जो ज्ञान वोह अणु हे वा मध्यम वा महत वा परमाणुओंकी जन्य अवस्था वा नवीनोत्पन्न वस्तु हे? इसके निर्णयमें सर्व पक्ष विषे दोष (निर्णायक उसका विषय होता रहनेसे. वोह उसका गम्य न होसकनेसे). वेदांतसे इतर तमाम मतमें यह दोष हे.

१५–जो कुछ हे सो हे, हम कहते हें सो ठीक हे. बुद्धिसेपर तर्क अमान्य हे, बुद्धिका विषय न होवे उसको अपनी बुद्धि अनुसार विशेषण युक्ति कल्पना थुकके पकोडे हें.-इत्यादि मानके किसीके कथनपर विश्वास करनेवाले हें, उनमें व्याघात दोष; क्योंकि जो कुछ मानते हो (वोह एसा हे–अगम्य हे-बुद्धिसे पर हे. हमारा मंतव्य यथार्थ हे, अन्यका नहीं,-इत्यादि जो कुच्छ मानते हो.) वोहभी बुद्धि करके मानते हें; अतः सत्प्रतिपक्षादि दोष. शब्द प्रमाणके विश्वासी जो मत हें, किंवा केवल स्वबुद्धिके आग्रह रखनेवाले पक्ष हें, उन तमाम मत-[किरानी, कुरानी, ईरानी, पौराणी-वेदी-बौद्ध-जैन–यहूदी वगेरे ओर जडवादी तमाम मत] में यह दोष.

१६–जडवादियोंमें गुप्त मोह दोष रहता हे. अर्थात शरीर रक्षाका मोह नहीं जासकता. ज्ञान वस्तु विषे शंका नहीं जाती. [अधूरे–विश्वासी जडवादि तो अवश्य हठ

करेंगे, परंतु खरे सत्यवादि पक्के जड़वादियोंसे मित्र बनके एकांतमें पूछलो.]

१७-विश्वासवादियोंमें दोषादोष. अर्थात् जैसा कि है, वैसाही विश्वासका विषय है, तो निर्दोष हैं, अन्यथा निःकृष्ट परिणाम निकलेगा. दुःख-भ्रांतिकी विशेषता होगी. एकही विषयमें अन्य (विरुद्ध वा अन्यथा)-नाना प्रकारके विश्वास देखते हैं; अतएव विश्वास और उसके विषयमें संशय वा विपरीत भावनाभी संभव है.

१८-अनिश्चितवादियोंमेंभी दोष.

[१] कोन जाने क्या है? यूं वा यूं. एसोंकी भ्रांति वा संशय नहीं जाते. अधोगति रहती है.

[२] यूंभी है वूंभी है,-यूंभी संभव है-वुंभी संभव है, एसे मंतव्यवालोंकोभी संशय वा-विपरीत भावना होते हैं. ओर व्याघात, विरोधादि दोषोंमें फंसना पड़ता है.

१९-ब्रह्मवादि ब्रह्मको देशविना, स्वयंभू अचल मानता है, उसको आत्माश्रय दोष. देश विना केसे अचल रहेगा. वा प्रकृति, देश विना केसे परिणाम धरेगी? [वेदांत बौद्ध, ओर एक जड़वादिके मतमें दोष.]

२०-नवीन फिलोसोफर हरबर्ट स्पेन्सर वगेरे समान मूलतत्व अधिष्ठान-द्रव्य-शक्ति-देश काल-मन वगेरेको अगम्य मानके व्यवहारगम्य-गोचर विषयमात्रमें स्वपक्ष जनाते हैं, एसे पक्ष, सर्वथा समीचीन-यथार्थ नहीं माने जासकते; "मूलोनास्ति कुतो शाखा" समान बात है. उनमेंभी मजकूर दोष हैं. ओर प्रत्यक्षादिमें जो दोष रहते हैं, वे उपर दर्शनोंमें जनाये हैं.

निदान कोई पक्षभी निर्दोष नहीं. मूलतत्व (पदार्थो-

का स्वरुप) ओर यथार्थ परिणाम-फल-अकथ-अगम्य-अ
वेचनीय हें यथावत्-यथार्थ किसीकोभी ज्ञात नहीं.

२१.-जो कोइ सर्व पक्षोंमें वा अनेक पक्षोंमे मि
जाता हे, वोह उन सर्वको प्रीति पात्र नहीं होसकता;
उससे विपरीत परिणाम निकलता हे; अतः सभ्यता प्
सत्यको नहीं छोडके यथार्थ कहना उचित हे. *

* कितनेक पक्षकारोंके मंतव्य जो कि साध्य रूपमें
हें उनमेंसे कितनेक साध्यके उदाहरण नीचे लिखते हें:—

१. जीव जो विभु हो तो, कर्ता भोक्ता न होसकनेका
क्योंकि गतिके विना कर्तृत्व भोक्तृत्व न संभव ओरभी उसके
व्याप्य होनेसे स्वरूप अप्रवेश दोष आनेसे दोमें एककी असिद्धि

जो मध्यम होवे तो, उत्पत्ति नाशवाला होनेसे मोक्ष
उसके साधनका अभाव होगा जोकि मोक्षवादीको असंमत
परलोक नवादि-[पुनर्जन्म वा मोक्ष न माननेवाले]को उसके
तृत्वादिकी सिद्धि करना नहीं बनेगा. (क. १४ याद करो.)

जो अणु परिमाण मानते हें,-उनके मतमेंभी ज्ञातृत्वादि
सिद्धि ओर अणुमें भोक्तृत्वादिकी मान्यता असंभव होगी. ओरभी
गुणी, शक्ति शक्तिवान, सत्ता सत्तावानादि—परस्परके देशसे
नहीं होसकनेसे जीव देशसे शरीरका इतर भाग जड,—वेदना न
योग्य होना चाहिये; जोकि दृष्ट विरूद्ध दोष हे. कर्म—गति उस
अनादि स्वभाव होनेसे अनंत—अक्षय मोक्ष नहीं होगी.

२ मोक्ष व्यापक वस्तु हो तो प्राप्त होनेसे साधन व्यर्थ
अणु एक होनेसे अनेक जीवोंको प्राप्ति न संभव २. नाना अणु
होनेसे गतिवान-परिच्छिन्न-पराधीन-आधेय-जड सिद्ध होगी.
की प्राप्तिसे लाभही क्या ? कुछ नहीं—शांति नहीं.

जो, मोक्ष अवस्था विशेष हे तो, उत्पत्ति नाशवान होगी. सा

अनंत न होनेसे. ओर जो नाशवान न होगी तो, जिस अनादि अ- -नंत पदार्थकी [जीव वा जीव ओर दूसरी–ईश्वर वगेरे वस्तु मिलके दोनोंकी] अवस्था हे, उन बद्धोंको संख्या का जब तब अंत आनेसे सृष्टिका उच्छेद होना संभव; जोकि निरर्थकाभावसे असंभव हे. तथा अवस्थाके संबंधियोंका सादि संयोग वा परिणाम हुवा हे, अतः वियोग ओर परिणाम बदलभी होगा.

३ जो जीवकी मोक्षसे अनावृत्ति मानते हें, उनके मतमें सृष्टि उच्छेद दोष आवेगा; क्योंकि जीव नवीनोत्पन्न नहीं होते तो, जब तब मोक्षमें जानेसे उनका अंत आवेगा. उससे जड तत्व जो भोग्य हें,–वे निरर्थक रहेंगे. परंतु निष्फलत्वका अभाव हे.

जो कहो कि जीव अनंत हें, तोभी वोह दोष निवारण नहीं होसकता; क्योंकि अनंत-१०० पद्म=अनंत–१०० पद्म. अब यहां विचारना चाहिये कि इन १०० पद्मके जीवों वासते जितने द्रव्योंका जितना उपयोग होताथा सो, उपयोग न रहा; किन्तु न्यून हुवा.–इसी प्रकार अनंत परमाणु अनंत जीव माननेमें भी व्यवस्था नहीं होती. ओर मोक्षकोजो प्राप्त हुवा–सो अनादिसे गतिवान हे; अतः उसका गतिवान स्वभाव होनेसे आवृत्तिही माननी पडेगी.

जो मोक्षसे आवृत्ति मानें तो, वोह मोक्षही क्या? सुषुप्तिवत् अवस्था हे. "जीव निर्दोष नहीं होता; किंतु अमुक काल तक रा- गादि दोष तिरोधान होजाते हें." एसा मानना पडेगा हो.

४ मोक्ष होतीभी हो तो, उसके साधन क्या? इस बातका निर्णय कठिन हे.–इसलिये मत पक्षोंमें अंतर ओर मुक्ति तथा मोक्षके स्वरूपमें विवाद होने ओर निर्दोष साक्षी न मिलनेसे, किसके कहे हुये– कोन साधन, विश्वासयोग्य हें, एसा सिद्धांत संशय रहित नहीं होता.

५ जो जीव–ईश्वर–प्रकृति–बंध–मोक्ष वगेरे वेदांत समान दृष्टि सृष्टिवादरूप,–स्वप्नवत् मिथ्या मानें तो, उनका यह कथनभी

मिथ्या होनेसे त्याज्य रहेगा. तद्वत् उनका "ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या
का पक्षभी मिथ्या–झूठ ठरेगा.

जो शून्यवादिवत् अजात मानें तो, उसके मंतव्यको व्याप्
त है. शून्यका साक्षी इतर रहने और उसका कथन शून्य होजाने

६ जो बौद्ध पक्ष समान 'ज्ञात (अनुमानसें वा प्रत्यक्ष
ज्ञात) अथवा अज्ञात [जिस क्षणमें ज्ञेय उसक्षणमें ज्ञाता, जिस क्षण
ज्ञाता उस क्षणमें ज्ञेय नहीं; परंतु अनुमानसे ज्ञान–अनुमान मात्र
सिद्ध–परोक्ष] रूप दृष्टि सृष्टि वाद मानें–जीव ब्रह्म ईश्वर आका
प्रकृति–सर्व दृष्टि मात्रही हैं, एक क्षणिक परिणामी विज्ञान
वस्तु है, एसा स्वीकारें." तो इस पक्षमेंभी अनेक दोष हैं:—

[१] एक घटके दो आदमी हाथ लगाके तपासें:–
किसका दृष्टि सृष्टिवाद है? तहां, अव्यवस्था रहेगी. जीवन व्यव
ही सिद्ध न होगा.

(२) जोस्वप्न समान तीसरेका मानें तो, आभासरूप दो
शरीर उस तीसरे मूलरूपको कि जिसका दृष्टि सृष्टिवाद है, न
जान सकते. और अनुमानसे मानें तो, यह अनुमान इन उ
(वादियों) का न होनेसे अमान्य है, वा आभासरूप मिथ्या है.

(३) क्षणिक, स्थाई न होसकनेसे साध्य विषय त
करनेसे, अनुमानकी व्याप्तिकी सिद्धि न होगी. अतएव उनका
पक्ष सदोष अमान्य, कल्पनामात्र.

[४] क्षणिकत्वकी सिद्धिमें उनकी रीति सिद्धांत–मंत
वा क्षणिकत्व होनेसे प्रत्यक्ष ज्ञान वा प्रत्यक्षत्व वा ज्ञेय, ज्ञान, ज्ञात
असिद्धि. आलातके वेग समान मानें तो ज्ञाता, ज्ञेयरूपका
अनुभव न होना चाहिये.

[५] यह मेरा यह तेरा, यह झूठ यह सत्य, इत्यादि जगत्
हार न संभव होनेसे दृष्ट विरूद्ध दोष है. और अमान्य.

(६) क्षणिक परिणाम रहनेमें कारण क्या ? जो स्वभाव मानें तो, उनके निर्वाण पदका उच्छेद-[स्वभावका स्वरूप असिद्ध हे]. जो पूर्व २ वासना-संस्कारको हेतु मानें, तो क्षणिकत्व परिणाम होनेसे वासनाकी असिद्धि. उस वासनाका स्वरूप विज्ञान- से भिन्न-विज्ञान स्वरूपसे इतर देशमें भिन्न बताना चाहिये ? सो व्यापक व्याप्यभावसे न संभव-स्वरूप प्रवेश दोष.

(७) जबकि विज्ञान, परिणाम-गतिवान हे तो, उसको देशकी अपेक्षा हे. जब यूं हे तो, पूर्वोक्त स्वरुप अप्रवेश नियम बाधक होगा. ओर दृष्टि सृष्टिवाद न ठेरेगा.

[८] विज्ञान स्वयं अमिश्रित एक स्वरूप हे, तो परिणामही असंभव; क्योंकि मध्यम-जन्य विना परिणाम नहीं होसकता. तथा हि तमप्रकाशादि विरोधी स्वभाववाले स्वरूपरूप-परिणाम नहीं होससकता. जो नानाका समूह विज्ञान हे, तो उनके मंतव्य क्षणिकत्व, निर्वाणत्व-इत्यादि पक्षका उच्छेद होजायगा.

[९] जिस क्षणमें विज्ञान, घटाकार हुवा तब ज्ञाता, ज्ञान ओर देश तथा रंग वा पंचरंग परिणाम नहीं हे. दूसरी क्षणमें ज्ञान वा ज्ञाता आकार हुवाहे-तिस क्षणमें घट परिणाम नहीं, ओर पंचरंग आकार नहीं हे; जबयूंहे तो उंगलीसे स्पर्श किया हुवा घट प्रतीत न होना चाहिये; तथा देश ओर पंचरंग किंवा खंडित घट प्रतीत नहीं होना चाहिये. परंतु इसके विपरित देखते हें

[वेदांतका दृष्टि सृष्टिवाद त्रीपुटिसहित हे, बोद्धोंका त्रीपुटि रहित हे. यह अंतर हे.]

(१०) विज्ञान एक वा नाना ? एक मानें तो, पूर्वोक्त तमाम दोष. ओर नाना मानें तो, तदुपरांत यह सूर्य ओर अस्मद युष्मदादि किस विज्ञानकी सृष्टिहे ? यह निर्णय न होसकेगा. वगेरे.

(११) बौद्धके पक्षकी सिद्धि कारक सामग्री नहीं मिलती.

अर्थात् जो सूर्य प्रकाशके समान वा वेदांतियोंके स्वप्रकाश स्वरूप समान, बौद्धोंका विज्ञान, प्रकाश स्वरूप मानें तो उसके जो विषय (सिद्धांत-पक्ष वा घटादि विषय-प्रकाश्य) सो घट प्रकाशवत् उससे भिन्न मानने पडेंगे; क्योंकि प्रकाश स्वरूपसे प्रकाश्य भिन्न होता है. प्रकाश स्वरूपको प्रकाश्य नहीं मान सकते. इसलिये क्षणिक परिणामी प्रकाश स्वरूप हो तो, वोह अमिश्रित अनन्य प्रकाश स्वरूपहे, नाना विषय परिणामवाला नहीं. नाना-घट, पक्षादि-विषय जो प्रकाश्य स्वरूप हैं सो उससे भिन्न कहे चाहियें. परंतु बौद्धोंमें दुसरे पदार्थका अस्वीकार है; अतः क्षणिक विज्ञानवादकी असिद्धि है जबकि प्रत्यक्ष-अपरोक्ष-की सिद्धि नहीं होती तो, उनका पक्ष अनुमानप्रमाणका विषय कैसे होसकेगा? नहीं.

[१२] अनुमानकी व्याप्तिको तादात्म्य-कारण कार्य-संबंधरूप मानें तो, पिता पुत्रका शरीर साथ होना चाहिये.-सर्व कार्य कारणसहित साथही उत्पन्न ओर नष्ट होना चाहिये; परंतु एसा नहीं होता; अतः जेसे नविन वेदांतियोंकी कल्पितकी निवृत्ति प्रसंगगत अनुमान संबंधी जो जो दोष लिख आयेंहें वे तमाम दोष आवेंगे. अनुमान उच्छेदसे बौद्ध मतकी कल्पनाका परिअवसान आजाता है.

[१३] जो बौद्ध (हरवर्ट युरोपियनके समान) एसा कहें कि "देश विना गति न होना जो मानते हो सो अध्यास-भ्रम है. याद करो स्वप्नको कि जहां आकाशकी उत्पत्ति होती है वा अन्यथा प्रतीति होती है." इसके उत्तरमें यूं क्यों न माना जाय कि देश विना, गति-परिणाम मानना भ्रम है-अज्ञान है. याद करो स्वप्नगति ओर जाग्रत स्वप्न-उभयके देश काल गतिकी सदेश गति स्पष्ट है.

७ जो, जैन समान अनेकांत [अनिश्चित-स्याद्वाद-सप्तभंगी] वाद मानें तो,

परदोष-दर्शन-२८.

जो यह कहो के, तुम्हारे (समीक्षक)से जो अज्ञात वस्तु (जीव वा ब्रह्म वा ईश्वर वा प्रकृतिका स्वरूप वा जीवं ब्रह्मकी एकता, जो के अनुभवियोंको गम्य हे) उसके खं-

---

क-घट-पुद्गल-जीव-मोक्ष-सर्वज्ञता-देशकाल-इत्यादि के स्वरूप कैसे हैं, यह नहीं कहा जाता-अर्थात् उनका निश्चय नहीं होता. जबयूंहे तो, उनका तमाम धर्म-मत-मंतव्य-कथन त्याज्य रहा. ओर अनैकांत पक्षभी अनिश्चितही ठेरा.

ख-जो यह कहो कि प्रत्येकको पर्याय दृष्टिसे सत्-असत् सदासद्-वाच्यावाच्य वगेरे नाना प्रकारका, (विरोध धर्म-विशेषण वाला स्वीकारके)कहसकते हैं-वा हैं; परंतु एक कालमें नहीं कह सकते; तोभी उनके मुक्त, साधन, मोक्षादिका निर्णय ओर प्रत्येककी दृष्टिसे अन्य अन्य प्रकारका होनेसे अनिश्चत हुवा त्याज्य होगा. यथा-ऋषभदेवकी दृष्टिसे वोह आपमुक्त, अन्य नहीं, अन्यकी दृष्टिसे ऋषभदेव मुक्त नहीं. इत्यादि अनेक दोष रहेंगे.- (किसीको सत्शीलसे किसीको जूंजतियोंको मारनेसे मोक्ष मिलना मानलेना पडेगा-वगेरे.)

८ ख्रिस्ति-मुसलमानी, ब्रह्मसमाजी, प्रार्थनासमाजी वगेरेके मतमें अभावसे भावोत्पत्ति ओर निमित्त विना जीवोंको कर्मभोग मानना इत्यादि असंभव दोष हैं.

९ सांख्य-योग-न्याय-पूर्वमीमांसा इत्यादि अन्य मतोंमेंभी मूल उक्त २० बीसों कलमवाले दोष [किसीमें कोई किसी मे कोई दोष आता हे-बुद्धिमानको चाहिये कि यथा प्रसंग उनका उपयोग लेवे]

१० तद्वत् यथोचित अन्य मतोंमें जानलेना योग्यहे.

डन करने वा जीव ब्रह्मके भेद वा द्वैत वा स्वपक्ष प्रतिपादन करनेमें कोनसा प्रमाण हे ?. जेसेके बाल ब्रह्मचारी-विद्वान बुद्धिमान-कामशास्त्रवेत्ताभी, विषयानंदके स्वरूपका यथार्थ खंडन वा मंडन नहीं कर सकता ओर न उसका कथन मान्य होसकता हे. किंवा, अन्य विषय शब्दादिका खंडन मंडन बधिरादि नहीं करसकते ओर न उनका मान्य होसकता हे; इसी प्रकार तुम्हारा (समीक्षक के मत वा खंडनका) खंडन मंडन समझलेना चाहिये. इंद्रियातीत पदार्थमें तुम भेदको सिद्ध नहीं करसकते.

इसका यह उत्तर हे के, जो आपका प्रकार मानलेवें तो, प्रत्येक पक्षकार-मतवादियोंका सिद्धांत-वा मंतव्य विश्वास करके, स्वीकारना पडेगा. तब, ' कोन सत्य हे.' एसा निर्णय न होनेसे अव्यवस्था आवेगी (संक्षेपमें उपर कहाहे, देखो अनुभव प्रसंग). वा जेसे कोइ कहे के " पाषाणकी स्त्री में, अपछराओंसेभी अधिक आनंद हे वा संखिया खानेसे अमर होजाता हे, परीक्षा करलो;" एसी व्याप्ति होनेसे आपका कथन विश्वासपात्र नहीं होसकता. तथा आपके मंडन वा उपदेशकाभी उच्छेद होजायगा. ओर आपकी रीतिसेही अगोचर जो जीव वा ब्रह्म तिसका अभेद कहना वा मानना अलीक हे.

ओर यहां तो आपसे आपके पक्ष सिद्ध करनेकी मांगनीका प्रसंग हे; न कि हमारा पक्ष स्थापनकाभी.

किंवा, जब आप यह स्वीकार लोगे के " अगोचर जीव ब्रह्मकी एकता [वा स्व मंतव्य-सिद्धांत]में कोइभी स्वतः प्रमाण नहीं मिलता," तब, हमारे उपर आक्षेप होसकेगा. उस काल तुरतही (प्रमाणाभावके विद्यमान होनेसे)

हमारे खंडनके प्रमाण-साधनकी आवश्यक्ता नहीं; एसा स्वयं स्वीकार लोगे. ओर कुछ कुछ साधन तो, आपको खंडन बांचनेसे ध्यानमे आगये होंगे. अन्यथा आपसेप्रश्नही नहीं होता.

जरा विचार करिये के, जब किसीको फंसाना हो तो, पूछने वालेको सीधा उत्तर यह हे कि, यदि तूं, शिष्य भावसे पूछता हे तो, हम कहें उसे मानले, तकरारकी आवश्यक्ता नहीं. यदि विवाद करना होतो, पंडित (मोलवी-पादरी-उपदेशकों) पास जा! यदि हमारी परीक्षा लेना हे तो, हम परीक्षा देने योग्य पंडित नहीं हें. यदि चर्चा मात्र-लीलारूप भाषणकी इच्छा हे तो, हम व्यर्थ बकवाद करना नहीं चाहते-इत्यादि दंभ, कपट, चतुराई वा गरीबी रूप कथन वा धूर्त्ततासे उसे भुला सकते हें; अतः आपके एसे प्रश्नोत्तरोंसे हम उदासीन हें.

हमारा उद्देश मतवादियोंके दूषण भूषण सहित पक्ष निर्णय करनेमें हे. आग्रह पूर्वक किसीके खंडन मंडनका उद्देश नहीं हे.

हमारा पक्ष तो वही समझो कि जो सर्व मतोंके सारज्ञ, विद्वान, बुद्धिमान, परीक्षक मिलके प्रत्यक्षानुमान, सृष्टिनियम ओर युक्ति[1] तथा अनुभवसे परीक्षा पूर्वक एक मत हो-

---

१ केवल-अकेले प्रत्यक्ष वा अनुमान वा सृष्टि नियम वा बलाबल युक्ति वा अनुभव वा लाघव, गौरव वा परीक्षामें भूल होजाती हे. [जिसके विस्तार करनेकी यहां आवश्यक्ता नहीं हे. कुच्छ उपर लिखभी आये हें.] अतः कितनेक मिलके मान्य कहे जाते हें; एक नहीं.-इन सर्वका वा किसीका यथोचित उपयोग होना चाहिये. केवल 'बहु पक्षी मतमान्य,' यह मंतव्य वा नियम मान्य नहीं होसकता. जो

के-सिद्ध करके स्वीकारलेवें. वा वे निर्दोष पक्ष सिद्ध करके परीक्षा करदेवें. वहांतक हमारा कोइ पक्ष२ नहीं. अतएव माना जावे तो, संसारमें अज्ञ मनुष्य बहुत हैं.-असत्यवादि अधिक हैं; उनका पक्षभी स्वीकारना पडेगा. सर्व उलूक 'सूर्य कोई वस्तु नहीं' एसा, निश्चय करते हैं. सोभी, मान्ना होगा. तमाम भूमीपर बौद्ध बहुत हें; उस मतको स्वीकार लेना चाहिये. विवादकी जरुरत नहीं.

२ सर्व मतमतांतरका मूल, जबके लौकिक वा पारमार्थिक (मोक्ष) वा उभय सुख प्राप्ति होनेकी दृष्टिपर हे; उसका इतनेमें समाधान बस हेः—" संसर्गमेंभी मूल तत्व अपने स्वरूपको नहीं छोडते; " जेसेकि पारदमें सुवर्ण लय वा एकरुप होजाता हें, ताम्र श्वेत वा पीत होजाता हे, तोभी, उनमें जो मूल परमाणु हें वे, वेसेही रहते हें. पारदादिरूप नहीं होते. इसी प्रकार जीव विषे समझ लेना चाहिये.-अर्थात् जो जीव जडवाद समान मिश्रित (मध्यम-जन्य) हे तो, सादिसांत होनेसे, जब तब नाश होगा, इसलिये उसका बंधमोक्ष क्या. तद्वत्-अनादिसांत, सादिअनंतवालेमें समझलेना चाहियें. ओर न, यह [उत्तरके दोनों] पक्ष संभव हें. अतएव जीव अनादि अनंत निरवयव तत्व हे, एसा मानें तो, स्वस्वरुप ओर स्वभाव त्यागका अभाव हे. ओर कितनेभी अनंत (अमाप) जीव मानें, परंतु जब तब, सृष्टि प्रवाह ओर तत्वोंके उपयोग होने अर्थ मोक्षसे पुनरावृत्ति माननी पडेगी; अन्यथा सृष्टिका उच्छेद होगा. जो अणु वा व्यापक हे तोभी, यही निर्णय रहेगा. जो किसी तत्वका अंश हे, तोभी उक्त पक्षही मानना पडेगा. जो, सोपाधि वा मध्यम परिणामी (सादि) हे तोभी, वही पक्ष स्थिर रहेगा.

हमसे प्रमाणादिक पूछनेकी आवश्यकता नहीं. प्रत्युत जो जो, मिथ्या हे तो, उसका बंधमोक्ष वा निवृत्तिही क्या. जो, क्षणिक-परिणामी हे तो, सावयव (मध्यम) समान व्यवस्था होगी. अब चाहे, उक्त पक्षोंमें पुनर्जन्मवाला जीव मानो वा, अपुनर्जन्मवाला मानो,-सर्वथा उक्त पक्षोंकी हानी नहीं. एसेही मोक्षको कोई-तत्व वा अवस्था मानके सिद्धांत होसकता हे.-अर्थात् जो, मोक्षको अवस्था विशेष [सारुप्य सालोक्य, सामीप्य, सायुज्य, इष्ट प्राप्ति, जीवका परिणाम विशेष इत्यादि] मानके उसे, यदि सादि अनंत मानें तो, असंभव दोष आवेगा.-हठसे मानभी लेवें तो, जीवकी अनावृत्ति होनेसे परिणामी-अवस्थावान-संयोगी जीवकी संख्या वा उपादानका जब तब अंत आनेसे सृष्टिका उच्छेद ओर तत्वोंकी निष्फलता मानना होगा, जोकि असंभव हे. जो मोक्षको अनादि अनंत वा अनादि सांत मानें तो, अनादि अनंत सिद्ध [जीव प्राप्त मोक्ष में प्रवृत्ति न संभव. तथा अनादि सांत (नाशवान मोक्ष) विषे जीवकी प्रवृत्ति नहीं बनती. स्वभावतः-विना प्रयत्न सांत होके बंधसे छूट जायगा. ओर सादिसांत पक्षमें जीवकी मुख्य प्रवृत्ति व्यर्थ होगी. जो मोक्षको व्यापक एक तत्व मानें तो. सदा प्राप्त हे; प्रवृत्ति न संभव. जो अणु तत्व मानें तो, जीवोंमें विवादका हेतु होनेसे दुःखद होपडेगी. जो "मरणही मोक्ष,-मोक्ष न तत्वहे-न अवस्था हे," एसा मानें तोभी प्रयत्न वास्ते अभाव हे; क्योंकि स्वभावतः सर्वको (प्राप्त होने योग्य) हे. इ.

[शंका] ' मरना हे ' यह सर्वको प्रतीतरुप-निश्चय हे तो फेर प्रयत्न प्राप्त भोजनादिमें प्रवृत्ति व्यर्थ हे-नहीं होना चाहिये.-क्यों होती हे ? अर्थात् जेसे सादिसांत फल

स्वपक्ष यथार्थ समझते वा मानते वा परीक्षा करके जानते

वाले भोजनादिमें प्रवृत्ति होती हे-सफल हे. वेसे मोक्षकं सादिसांत मानें हुयेभी विशेष कालतक सुख [मोक्ष-स्वतं त्रता] विशेष प्राप्तहोने-रहने-भोगने अर्थ मोक्ष विषे प्रवृ संभव हे-सफल हे.

[समाधान] जेसे पशवोंकी स्वभावतः भोजनादि प्रवृत्ति होती हे वेसे, मनुष्योंकोभी हे. इसी प्रकार अदृष्ट अनिर्णित, कल्पित, वा विश्वासवाली मोक्ष प्राप्ति अर्थभ प्रवृत्ति हो; इससे उक्त पक्षोंका बाध नहीं होता. अर्था बंध रहने वा होनेका कारणबीज नाश नहीं हुये वा ना नहीं हो सकते हें जिसके, एसा जीवनाम तत्व, घटीयं वा घटमाल समान नित्य फिरताही रहेगा.-"पूर्ववत् स्वभाव तः बंधसे मोक्ष, मोक्षसे बंध होता रहेगा.-स्वस्वरूप वा अ नादि शुद्धाशुद्ध स्वभावको, कभी ओर किसी प्रकारसेभ नहीं छोड सकता." अतएव कोई प्रकारभी मानो, कुछ भी हो-मोक्षवादि धर्म-मत-पंथ-बाडे-मजहब-दीनके झग डोंमें क्यों पडें. १.

किंवा यदि ईश्वर हे ओर न्यायी हे तथा हम जी चेतन अनादि अनंत हें, तो हमको उचित हे कि, जहांतक कि हमको ज्ञात हें वा जानसकते हें; वहांतक कुदरत नियम ओर स्व अंतःकरणके विरुद्ध कृत्य [जिसको पा कहते हें] न करें; ईश्वर हम परतंत्रोंका कुछभी नहीं बि गाड सकता.

जो ईश्वर सत्ताधारी हे ओर अन्यायी जबरदस्त हे, अच्छेको बुरा, बुरको अच्छा फल देसकता हे वा देता हे तो हम सत्ताहीन, पराधीन, फल भोगनेमें परतंत्र-लाचार हें

जनासकते हो वा अनुभवगम्य जानते हो ओर जिज्ञासुओं-

निर्दोष हैं-निरुपाय हैं. जो हम पूर्वमें न थे ओर ईश्वरने अपनी शक्ति वा इच्छा वा अभावसे हम (जीव)को उत्पन्न किया, तो भी हम निर्दोष हैं-जेसे स्वेच्छानुकूल उसने साधन [बुद्धि, इंद्रिय, शरीर, पदार्थ] दिये वेसे कृत्य करते वा होते हैं. बुराई भलाई ओर फल भोग उसके सिर हे. जो ईश्वर हे ओर हमारा प्रेरक हे, तो भी जोखम उसके उपर हे; यदि हम उसकी प्रेरना नहीं मानते, तो उसके ईश्वरत्वका बाध हे.

जो, जीव ईश्वरका अंशहे, तो नित्य पवित्रहे किंवा ईश्वरही जीव–जगतस्वरूप हे, तोभी शोक, प्रयत्न करने योग्य जीव नहीं हे. जो जीव ब्रह्मका वस्तुतः अभेद हे-अर्थात् जीव पदका वाच्य लक्ष्य ब्रह्म ओर ब्रह्म पदका वाच्य वा लक्ष्य जीव हे, तोभी जीवको शोक वा प्रयत्न प्रवृत्ति योग्य नहीं हे. जो ईश्वर [ब्रह्म] की छाया–आभास वा प्रतिबिंब, जीव हे, तोभी जीव जड हुवा. बुराई भलाईका जोखम, भोक्ता ईश्वर पर हे. जो जीव जड हे ओर ईश्वरकी सत्तासे गति करके कार्य करता हे, तो जीव लाचार हुवा; अतः शोक योग्य नहीं. जो जीव जड वा चेतन हे-अनंत आकर्षणों के अनुकूल उसको गति करनी पडती हे ओर फल पाता हे, तोभी लाचार हुवा. अतः निर्दोष हे, शोक करने योग्य नहीं.

जो जीव कर्म करनेमें स्वतंत्र फल भोगनेमें परतंत्र हे; किंवा ईश्वर नहीं हे, तोभी जीवको इष्टकृत्य [जिनकृत्योंका परिणाम दुःख न हो–सुख मिले, अर्थात् कुदरती नियम ओर अपने आत्माके प्रतिकुल न हों, किंतु कुदरती नियम ओर अपने अंतःकरणके अनुकुलहों, एसे कृत्य] करने योग्य हें,

का हित इच्छतेहों तो, परको जनाने वा आकर्षणे वास्ते सि-

शोक वा परलोकके झगडे–इत्यादिमें पडनेकी आवश्यकता नहीं.

निदान मजकूर [ईश्वर–जीव–परलोक–परोक्षवादादि] झगडोंमें क्योंपडें. जो हे सो हे.

ईश्वरादि प्रसंगी जो कल्पना लिखी सो पूर्वोक्त कल्पना वा निर्णयके विरुद्ध नहीं हे–एसे मंतव्यका फल वही हे जो कि उपर लिखा. २.

किंवा—बुद्धि [मन–मगज] वीर्य (शरीर–तन) स्वछ आरोग्य रहें, स्वतंत्रता बनी रहे, शारीरिक–मानसिक दुःख न हों [जो यह वातें प्राप्त होती वा होसकती होंतो] तिनके साधक प्रसिद्ध उपायोंमें जीवन पर्यंत प्रवृत्त रहें. (जो उक्तवातें यथावत प्राप्त न होसकती हों तो, हम लाचार हें). यदि परमार्थ वस्तुतः कुछ हे, एसा मानें तो वोह भी, इतना हुये विना सिद्ध नहीं होनेका. उन उपायोंमेंसे कितनेक यह हें:—

१ सत्य–जेसा देखा सुना ओर जानतेहों वेसाही कहना ओर मान्ना–वर्तना वर्ताना [वस्तुतः जेसा हमने जाना हे वेसाही हो, एसा नहीं कहसकते]. दूसरा अर्थ यह हेः—हे. तीसरा अर्थः–हे, हे, हे,–अवाध्य–परीक्षामें वेसा कावेसा. निदान सत्यका स्वीकार.

२ असत्य—जेसा देखा, सुना, ओर मानतेहों वेसा न कहना–न वर्तना. [किंवा वस्तु–अर्थ शून्य वा यथार्थसे अन्यथा], एसे कर्म गुण त्याज्य हें–त्यागना.

३–अहिंसा–अपना ओर परका दुःखसुख समान समझके, उपयोगी निरपराधिके तन, मन, धनको न सताना–वैरभाव नहीं करना.

द्ध कर बतानेका आप उपर भार है. क्योंके-सत्य वस्तु प-

---

४ दया, न्याय, प्रेम-किसीको दुःख-पापसे बचाना. जैसेकि कोई मत पंथवाला किसीको बहकाता हो-अजाने वा जानता हुवा असिद्ध-कल्पित-स्वधर्ममें आने-लाने वास्ते फंसाता हो; वा कोई दुष्ट जन किसी उपकारी सज्जन वा निरपराधिके तन, मन वा धनको सताता हो तो, उसको कोई प्रकार (साम, दाम, भेद वा दंड-समझाके, लुभाके, खंडन मंडन, उतार चढाव करके वा बालताडन समान दंड देके-इत्यादि रीति) से उक्त असत्य-पाप कर्मसे बचाना [दया है]. परंतु वोह बचानेकी रीति यथावत्-योग्य हो. अन्यथा अन्याय वा निर्दयता है तथाहि वोह रीति द्वेषरुपमें नहो; किंतु उसकी हित दृष्टिसे हो. तदुपरांत दया, न्याय, प्रेमके अर्थ लोकमें प्रसिद्ध हैं.

५-ब्रह्मचर्य-सृष्टि नियमके विरुद्ध वीर्य त्याग न होने देना वा न करना. (इसका विस्तार प्रसिद्ध ग्रंथ 'व्यवहारदर्शन' में है) यह उपाय बल, वीर्य, आरोग्यता उद्यम और विद्या वृद्धिके वास्ते सर्वोत्तम है.

६-अस्तेय-अनीति- अनधिकारसे किसीका तन मन वा धन स्वाधीन न करना वा पराधीन न कराना-न उसमें संमति देना. [चोरी, ठगी वगेरे].

७-विद्या-पदार्थ ज्ञान (वैद्यक-रसायन वगेरे) और हुनरकी प्राप्ति करना; क्योंकि इसके विना, विवेक नहीं होसकता. विवेकके विना यथावत्, त्याग ग्रहण [मनुष्य, ज्ञातव्य, कर्तव्य, प्राप्तव्य] नहीं होसकता. उसके विना कोई प्रकारकाभी यथायोग्य सुख (तन, मन, धन, स्त्रि, पुत्र, सत्ता-राज्य, सिद्धि वगेरेका) प्राप्त नहीं होसकता.

त्येक प्रकारसेभी सिद्ध होने योग्य है. झूट वा कल्पित सि

८ संप–हरकोई सामाजिक काम मंडली विशेषकी सम्मतिसे करना, एकदुसरे के दुःखमें आडे आना–रक्षाकरना-दुःखसे बचाना, केवल अपनी उन्नतिसेही संतुष्ट न होना; किंतु परस्परकी उन्नति करना,–एक जीव होके दुष्टोंका संहार करना. जो संप न होवे तो कोई बातभी नहीं बनती (परस्पर मनुष्यों तथा शरीरके अवयवोंकी–संपकी हानी से शरीरभी नहीं चलता–रोगिष्ट होजाता है–नाशहोता है). जितने अंश संप [ऐक्यभाव–एकखयाल–एकमत] में न्यूनता उतने अंश मनुष्यकी स्वतंत्रता ओर उन्नतिमें न्यूनता–खामी जानलेना चाहिये.

९ योग–आत्मोन्नति [मनेंद्रिय निग्रह ओर शुद्धि शक्ति वृद्धि] प्रकार–सूक्ष्म पदार्थों के ज्ञान पाने–होनेकी क्रिया विशेष.

१० धृत्ति, क्षमा, दम, शौच, इंद्रियनिग्रह, धी बुद्धि, वगेरे पूर्वोक्त १० बातोंमेंसे उक्त कहे हुये बाधकरके शेष जो हों सो. [पूर्वोक्त बातोंके हेतु, उदाहरण विस्तार भयसे नहीं लिखे]

यद्यपि "सत्य, असत्य, ओर यथार्थ, अयथार्थका जानना ओर तदानुसार वर्तन कठिन है; तथापि नैसर्गिक नियमानुकुलही कहना–मानना पडता है–जेसे प्रचलित नाम–महादेव, गणेश, गफूर, अबदुल्ला, हुरमजद, राम, श्रीकृष्ण, ईश्वर, विष्णु–इत्यादि रखना, बोलना, बुलाना १. छत चूती है २. मेरी चक्षु, में काना ३. मेरी नाक, में नकटा ४. में को तु ओर तु को में का वाच्य मान्ना–कहना ५. बहेन पदमें कही हुई स्त्रीको पत्नी कहना [यवन लोक काकाकी लडकीको विवाहते हैं.] ६. वेश्या–व्यभिचारणीका पुत्र न जाने

द्धांतमें कहीं न कहीं किसी न किसी प्रकारसे अवश्य दोष आवेगा. सत्यमें नहीं.

ओर कहे कि यही मेरा बाप हे ७.-इत्यादि असत्य, वा अयथार्थ व्यवहार हे.-ओर लोक विषे सत्य रुपमें माना जाता हे. मृग जलको देखके अजाना पुरुष जल कहता हे-मानता हे-समझता हे ओर पानी लेनेको दोडता हे-दूसरेकोभी दोडाता हे; यहां, यद्यपि वस्तुतः वोह यथार्थ [जो हो, जेसा हो, सफल प्रवृत्ति निवृत्तिका जनक हो; अबाध्य हो, वोही, वेसाही, फलप्रद जानना-मानना-होना) रूप जल नहीं हे; किंतु अयथार्थ (यथार्थसे भिन्न-बाध्यरूप-अन्यथा) हे; तथापि उसका वक्ता ' असत्यवादि हे,' एसा नहीं कहसकते. मानो कि परीक्षामें वोह (जल) मृगजल न हो किंतु जल हो; तब तो वक्ताको सत्यवक्ता ओर यथार्थवादिभी कहसकेंगे. अन्यथा अयथार्थवादि तो कहसकेंगे; परंतु असत्यवादि नहीं कहसकते. परीक्षाके पूर्व सत्यवादि तो कहसकेंगे; परंतु यथार्थ ज्ञाता-वक्ता नहीं कहसकते. जहां, रज्जुमें सर्प भासता हे वहां, यदि वक्ता उसे सर्प निश्चय करता हे ओर दूसरेको जलधारा बताता हे तो, उसने ' असत्य कहा-कपट किया, ' एसा माना जायगा. यद्यपि वस्तुतः वहां, न सर्प हे न जलधारा हे-उभय अयथार्थ ज्ञानके विषय हें; तथापि जलधारा असत्य ओर सर्प अयथार्थ ओर रज्जु यथार्थ पदके वाच्य होंगे. सर्प, असत्य ओर यथार्थका वाच्य नहीं कहा जायगा.-इत्यादि विलक्षण व्यवहार हे. [एसेही, ईश्वर मोक्षादि विषयके संबंधमें जानलेना योग्य हे]. उक्त लेखसे यह परिणाम निकाल सकते हें कि " यथार्थ वादकी निश्चित सीमा नहीं-अमुक यथार्थ वक्ता हे,-एसा सिद्ध होना क-

ओर यदि आप उक्त लेखको वितंडादि रूप-सदोष

ठिन हे." "तथापि" लोक व्यवहारमें, जेसे सत्य ओर असत्यका निर्वाह-संकेत, भाव, संस्कार, अभ्यास, रूढी, नीयत, लाभ हानी विशेष पर हे. (व्यवहार विषे सत्यका अर्थ 'हे' वा 'हे, हे, हे,'-'अबाध्य' असत्यका अर्थ 'वस्तु शून्य वंध्या पुत्रवत्'-सर्व स्थलमें ग्रहण नहीं करते-नहीं होता) जो एसा न होवे तो जीवन व्यवहारही कठिन पडजाय. वेसेही व्यवहारिक यथार्थका मंतव्य, "बहुधा बुद्धि, विश्वास" पर हे; सर्वांशमें यथावत्-अबाध्य-यथार्थ नहीं कहसकते. जब यूं हे तो, परमार्थ विषयक विषय संबंधमें क्या कहना हे एतद्दृष्टि परोक्ष वादको छोडके, विवादित पक्षको किनारे रखके-उसकी चर्चासे उदासीन हुवे प्रसिद्ध-सर्व हितकारी, उन्नति कारक विषयमें प्रवृत्ति हे. ईश्वरकी अस्ति नास्ति, धर्म पंथोंके झगडमें क्यों पडें? (यद्यपि हमको चाहिये कि हिंदुओंके समान केवल स्वार्थमेंही प्रवृत्त हों, अपनी डाढी बुझावें-आपही जूता पहने; दूसरा अपना मा-बाप-भाईभी क्यों न दुःख पावे, हमको क्या; तथापि जीव परतंत्र हे मनुष्यका व्यवहार, सुख, जीवन, परसंबंध-पराश्रय-पराधीन हे; इसलिये "परके सुखसे अपनेको सुख, परके दुःखसे अपनेको दुःख हे"-इत्यादि गुह्य विवेकसे स्वार्थमेंही दृष्टि हे ओर व्यवहारमें स्वपरोपकार स्वपरोन्नतिका कथन हे.) ३.

किंवा-हमारा पक्ष, हमारी दृष्टिसे चेतन वादमें हो, तथापि हम अपनेको उसके सिद्ध करने योग्य नहीं जानते,-वा नहीं करसकते; वा अयथार्थ पर हों. ओर न अपने मंतव्य-कल्पनाके आग्रहके विश्वासी बनना वा बनाना चाह-

वा बाल लेख समान समझके, अपनी दृष्टिमें तुच्छ मानके स्व भार उतारनेमें उदासीन रहोगे, तो जेसेके आर्य संतान

ते हें. ओर न आग्रहके योग्य, अपनेको समझते हें. ओर न आग्रह रखते हें. ४.

किंवा—आप एसा समझलेवें कि, 'यह (में) संशयात्मक हे;' अतएव इस क्षण—[इस नोट—ग्रंथ समाप्तिकाल] तक हम कुच्छभी नहीं कहसकते.—ओर न कहना चाहते हें.-कोइ दोष, रहित सत्य दरसावे; एसी जिज्ञासा रखते हें.५.

किंवा—जिन जिन मत—[पक्ष—धर्म—पंथ—दीन—मजहब, फिलोसोफी] वालों—वादियोंने, जो जो मंतव्य—[कल्पना—सिद्ध विषय—निर्दोषपक्ष—मानो वेसाही होय नहीं—] माना हे, तिस तिस अनुसार सो सो मुख्य फल -हो—निर्णयका विषय हो -अर्थात् सर्व मतोंकी रीतिसे, मानलो कि, उनकी धारनानुसार, इसलोकके ओर परलोकके, तमाम सर्वोत्तम,-सर्व मान्य.-अत्यंतदुःखमात्र रहित,-संपूर्ण ऐश्वर्य [" तन मन, धन, स्त्री, पुत्र बंधु, राज्य, सत्ता, कीर्ति, मान, सर्व ऋद्धि, सर्वसिद्धि.-करामातका सुख-स्वर्ग प्राप्ति, अरिहंतत्व-"कामादि सर्व दोष रहित," शांति (राग द्वेष, हर्ष शोकादि राहित्य—अचल आनंदघन), स्थिरता, ईश्वर—ब्रह्मज्ञान वा तत् प्राप्ति,अपुनर्जन्मत्व, मोक्ष प्राप्ति, सर्वज्ञता, यथेच्छा करने वा संकल्पमात्रसे मनमाना होनेकी सामर्थ्य, स्फुरणा रहित, ईश्वरभी बनजाना, निरतिशय सुख,-अथवा जो जो कुच्छ मानो—इच्छो—कहो सो सो सर्व—इत्यादि"] प्राप्त हुये हों-सर्वदा प्राप्त रहें, तोभी क्या? ओर यूं न हुवा— न होसके—नहो, तोभी क्या? किंवा उस [पूर्वोक्त ऐश्वर्य] के विपरीत हुवा—हे-हो, तोभी क्या? अथवा कहे हुये तीनों

को, अन्य मतवालोंने स्वधर्ममें मिला लिया.-ब्राह्मण स
लोक केवल स्वाभिमान मात्रमेंही लीन रहे -उनके मन
न हुये-उनको आर्य करने-स्वधर्ममें मिलानेसे ग्लानी क
रहे ओर कर रहें हें.-केवल परस्परके खंडन मंडन करने
जये वा स्थान बनाने वा भिक्षा मांगने वा देवादिके उपा
नाके भरोसे काल व्यर्थ गुमाने वा अन्य सिटपटमें पडे र

प्रकारसे न्यूनाधिक (जेसा तेसा) हुवा-हे-हो, तोभी क्य
किंवा वेसा न था-न हुवा-न हे-न हो, तोभी क्या?. किं
कहे हुये प्रकारसे अन्यथा हुवा-हे-होगा, तोभी क्या? अव
सो अवधि-सीमाही.-तृष्णा सो तृष्णाही -वासना सो वा
नाही.-संस्कार सो संस्कारही.-कामना सो कामनाही.-प
ना सो फुरनाही.-"हे सो हे ही."-'नहीं सो नहीं ही'.-
नादि स्वरूप-स्वभाव-गुण सो अनंतही '.-" अतिसे नि
वृत्ति पूर्णता स्वभावसे, "-यह नैसर्गिक अनादि अनंत निय
अटल हें. [अतः उनकी इच्छा छोडके पूर्वोक्त-जनाना-समझ
बस हे.-इसका विशेष विस्तार करना उचित न जानके
जीवन व्यवहार ओर आपकी मान्यता-इच्छा तथा स
भाव-संस्कार-प्रकृतिपर छोडके उपराम होते हें.]. हां, इ
भेद-रहस्यके जानने-मानने-प्राप्ति-जनाने-मनाने-प्राप्त क
ने कराने कीभी इच्छा न रहे.-इस प्रकारकी अनूपम-अकथ
अद्भुत शांति होनेके अर्थ, यदि प्रयत्न करनेको कहो-तिस
संबंधमें में कुच्छभी कहना-सुनाना-मनाना नहीं चाहत
जेसे जिसको योग्य प्रतीत हो-प्रबल संस्कार हों-जेस
योग्य समझे वेसा करे. ६.

{ तत्वदर्शननाम ग्रंथमें इस प्रसंग
का सविस्तृत निरूपण हे. प्र. क. }

नस आर्यधर्मके उच्छेद होनेके हेतु होपडे.-ओर वे (परधर्मी) चुपाचुप अपना काम (स्वार्थ-स्वधर्म फेलाना, परका खंडन करना) कर रहे हें.[१] वेसेही, यह लेखभी अपना काम करेगा. उससे आपके पक्षका उच्छेद होजायगा.

जो विषयके यथास्थित मनुष्योपयोगी उपयोगपर दृष्टि नहीं रखके एसा कहो कि "तुम्हारा खंडन मन वाणी करके हे-ओर मनादि सादि सांत हें-उनको पूर्वोत्तरका यथावत् यथार्थ ग्रहण नहीं होसकता-ओर परोक्षका तो वर्त्तमानमेंभी, यथावत् ज्ञान-ग्रहण नहीं होता हे; अतएव सर्व कल्पना मात्र हे-स्वीकारने योग्य नहीं." इस विकल्पका उत्तर देनाही व्यर्थ हे.-आपको वा जितने मताभिमानी सर्वज्ञत्वके मानी हें, उन सर्वको दोष प्राप्त होगा. जबकि आपके माने हुये नियमका आपने स्वीकार करलिया, उसी कालमें ग्रंथका आशय पूरा होजायगा.-(अर्थात् आपका सिद्धांत शून्य होजायगा-उसकी सिद्धि वा उपदेश न कर सकोगे).

ओर जो एसा कहो कि " जेसे, तुमको दुराग्रह नहीं (मत पक्ष नहीं), वेसे, हमकोभी नहीं.-कोइभी प्रकारसे मनुष्यके मनको शांति हो-बंध मोक्षादि कल्पनाकी हायहू मिटे." तो, जडवादकी व्याप्ति होसकेगी.[२]-सर्व धर्म पंथके संस्कारोंका उत्थान योग्य होगा; जोकि असंभव ओर सुपरिणामका अजनक[३] होगा.

---

१ जोलाइ स. १८९९ (सं. १९५६) में मद्रास देश विषे मूर्त्तिपूजाकी तकरारपर एक दिनमें ६०० शनार हिंदु-मूर्त्ति पूजक, मुसलमान होगये. हा !

२ जिसके मनने जो मानालिया सो ही ठीक.-शांति.

३ मनमुखिताका प्रसार होगा.

और जो एसा कहो कि " किसी प्रकारसे ब्रह्म चेतन, जीव, प्रकृतिका यथार्थ ज्ञान होवे, एसा अभिप्राय हे." तो, आग्रह छोडके सत्य शैली शोधो. जो बात यथार्थ हो-निर्दोष हो-उसको शोधके-उसके प्रचारका उपाय लेके, लोकोंको भ्रांतिसे निकालना चाहिये. प्रथम अहंब्रह्मादि पक्ष मत धारो, किंतु सर्वको सरल रीतिसे समझमें आवे, एसे प्रकारसे आर्जव पूर्वक कार्यको उठाके-आगे रखके कारण पर पहोंचाइये. तो, आशा हे कि, जो सत्य, तिरेगा उस सत्य को सर्व ग्रहण करेंगे. आगे आपकी इच्छा. स्वतंत्र हो.

मतप्रचार-दर्शन-२६.

जो यह कहोके "जेसे अन्य धर्म-पंथ-मजहब-बाडे-दीन-संप्रदाय और उनके अनुयायी तथा उनके उपदेशक गुरु और ग्रंथ,-सर्व सदोष हें और चलते हें, यथा, बौद्ध मतके ६० किरोड, उनसे थोडे ख्रिस्ति, उनसें थोडे यवन, और सबसे थोडे हिंदु [२५ किरोड] हें.-इनमेंसेभी अद्वैत संप्रदायवाले सबसे न्यून हें, वे [ख्रिस्ति, यवन, बौद्धादि]-सर्व पंथ मतवाले, स्वपंथाभिमान रखते-उपदेश करते हुये दूसरोंके संस्कार बदलके इतने बढ गये के, स्वराज्य स्थापन किये. यदि उन निर्बीज धर्मपंथवालोंमें, स्वधर्माभिमान नहीं होता और एक धर्मी नहीं होते तो, धनबल, राज्यबल, सत्ताबल, मनुष्यबल, वा स्वधर्मबल केसे संपादन करते? अर्थात् नहीं करसकतेथे.-और परस्पर मिलके जो सुख उठा रहे हें सो, नहीं उठा सकते; इसलिये तिनके समान सर्व सुखका मूल- और अन्य मत पंथवालोंसे न्यूनदोषवाला, एकता-संपवर्धक अद्वैत मतभी, एक प्रकारका बाडा

मानके उसकी उन्नतिकी जाय तो, क्या दोष हे? वा संभव नहीं हे के वोह अन्यसे शिरोमणि सिद्धांत सर्वको स्वपक्षमें करले? [संभव हे]. अतः सज्जन महात्माओं करके खंडनीय नहीं हे.

इसके उत्तर देनेमें हम उदासीन हें. आपका दूसरोंके समान अयथार्थ अभिमान भी हो तोभी रहो. अंधांधी व्यवहारवत्-अन्यों समान धूलमें लठ लगाते रहो; परंतु यदि, सर्व देशी,-व्यवहारानुभवी,-राज्य कार्यमें कुशल,-प्रचलित उपयोगी-सर्व विषयका ज्ञाता,-संसारको सुख देने में उद्यत,-जगत्हितेषी,-विद्वान्,-बुद्धिमान,-जितेंद्रिय,-योगी,-ओर सदाचारीसे संमति लेकर जो प्रवृत्त होंगे तो, सत्यमार्गसे उन्नति पाना संभव हे. " सत्यमेवजयति नानृतं," यह ठीक नियम हे. जेसे बौद्धमत ओर वेदांत मतमें किंचित् अंतर हे, वेसे यथार्थ सिद्धांतमें किंचित् वा विशेष अंतर हो; परंतु उक्त उपाय रचनेसे, उस सयुक्त प्रबल,-किसीसे न दबने,-न चपनेवाले-ओर अन्य कल्पित मत पंथोंको उडा देनेवाले सिद्धांतको पा सकोगे; अतएव सब बाडोंमें खंडनीय जो, प्रचलित उपपाद्य[1] रुप धर्मतत्व ओर उनके कारण[2] रुप धर्मतत्व हें, तिनके समान, आपको विशेष श्रम देना नहीं चाहते. आपका स्वधर्माभिमान, तथा वेद-ईश्वर-प्रकृति सूचक-ओर प्रेम अभेद-एकता वर्धक नीयत [भाव-

१ अमुक विधि, अमुक निषेध, यह पाप, यह पुण्य, अमुक मोक्षके साधन, अमुक नरकके साधन, इससे जीवन लाभ, इससे अलाभ, इत्यादि. स्वगुरु, वा ग्रंथगत उपदेश.

२ लोक कल्पित जीव, ईश्वर प्रकृति आदि मूल पदार्थ मात्रके स्वरुप गुण स्व स्व मंतव्य वा गुरु आचार्य ग्रंथगत मंतव्य.

ना] रहो. [३]ओर एक संप,-एक मतकी मंडली बनो. [३] अस्तु

३. ग्रंथगत खंडनको समझके जो, परधर्मी-किरानी, कु
-रानी, बौद्धादि, खंडनपर उतरें तो, इस प्रतिज्ञा, उद्देशका बा
होसकेगा; एसी **शंका** नहीं करना चाहिये; क्योंकि (**स.**) इस
सेभी उत्तमोत्तम-अधिकतर खंडनके ग्रंथ क्या नहीं हें? हें [देख
स्वा. चि. कृ. भाषाका न्याय प्रकाश. सर्व दर्शन संग्रह. जैनी कृ. षडदर्श
समुच्चय, पा. कृ. वेदांत दर्शन. स्वा. द. कृ. सत्यार्थ प्रकाश, वेदांत
ध्वांत निवारण. रा. कृ. श्री भाष्य. जैनी कृ. वेद, वेदांत खंडन संबंध
'निगम प्रकाश,' 'अगम प्रकाश.' सत्यामृत प्रवाह-इत्यादि]. य
तो, सामान्य वर्गके वेदांतियों वास्ते एक लघु नोट हे. इसके वा
चक नवीन परधर्मीको स्व निर्मूल धर्म-मत-पक्ष-मंतव्यमें संशयोत्प
होना चाहिये, यह वात सहजसे ध्यानमें आसकती हे. [यहभी ए
फल हे] मानो कि वोह स्व असत् पक्षसे डिगे तोभी, परखंडनकी उद्य
तताका अनभाव; तथापि जिसको वेदांत मतकी उपर ऊपरक
वातोंके खंडनार्थ इस पुस्तकके अर्थ सहित रहस्यको सीखना होग
उसको पूर्वोक्त (प्रवेश-टिप्पणके) ग्रंथ वांचने पडेंगे. वेदांती भाई
योंके सिवाय उन ग्रंथोंके विना, किंवा वेदांत परिभाषा औ
प्रक्रिया जाने विना, हरकोई वेदांत संबंधी ग्रंथके गुप्त आशयक
नहीं पासकता ओर आशय समझे विना, किसी ग्रंथकी पंक्ति सु
नाना, पोपाटिया (शूकवत्) कथन हे,-हरकोई मरयल-लघु बिल्ली
की घुरकीसेभी, उसका टीटी करना बंध पडजायगा (पंजाब
एसा हो रहा हे) वा, स्वयं चुप करजायगा. कुरानी धर्मका संप
जुस्से-जनून ओर बलपर तथा किरानी धर्मका संप, ओर पोलीस
उपर आधार हे. अन्योंका, विशेषतः शब्द की मारा मारीपर वि
चार हे. ओर हो,-जो, उक्त ग्रंथोंमेंसे कोईभी [वा, सत्यार्थ प्र
काशादि] समझके बांचालिया तो, परखंडनके बदले अपनाही खंड

समाप्ति-दर्शन-२७.

पूर्वोक्त [दर्शन १ से २६] प्रकार-रीतिसे प्रचलित अद्वैत सिद्धांत (माया-प्रकृति-सांत मिथ्या ओर जीव ब्रह्मकी

पाके, मूहको फेरेंगे. वा वेदांत (यथार्थज्ञान-मुख्यज्ञान-ज्ञानकी सीमा-ज्ञानका पर्यवसान) के खरे रहस्य गोतनेकी जिज्ञासा होगी.

इस ग्रंथ वांचनेका फल, वेदांतास्ता-श्रद्धाका अभाव, खराबी; एसी (शंका) भी नहीं करना चाहिये; क्योंकि (स.) विना समझे तो, अबभी, खराब हो रहे हैं. यथार्थ न समझनेसे टके वा प्रतिष्ठा वा मोदक महाराजकी आस्ता रखते हैं. यादि इसको समझेंगे तो, संशयात्मक हुये यथार्थ ग्रहण वास्ते प्रयत्न करेंगे. मुक्त,-विद्वान,-यथार्थ ज्ञानवानको इसकी आवश्यकता नहीं.-ओर न यह उनके हस्तकमलके स्पर्श करने योग्य हे-ओर न निंदा स्तुति अर्थ उनकी प्रवृत्ति. जिज्ञासुओंके संशयका उत्तेजक, यथार्थ सम्यक शोधनार्थ उच्चाटक, किसीके कथन, वा विश्वासमात्रपर आधार न रखनेके संस्कारका सहायक, यथार्थ ग्रहणको कर्तव्यरुपसे बोधक-यह लघु पुस्तक उनको हेय-निषिद्ध फलप्रद नहीं. पामरोंकी दृष्टिसे तो, निंदा स्तुति-त्याग ग्रहण-उभयथा शून्य हे. विषयीको केवल स्वमनोकामना रंजक-विषयके सिवाय, अन्य प्रिय नहीं.-उनकी इच्छाका विषय इस ग्रंथमें नहीं हे; अतएव नहीं वांचेंगे. जीवेश्वरका खंडन तो, जडवाद (यूरोप, चारवाक) ओर ईश्वर खंडन [मीमांसा, जैन, सांख्यादि] मतके प्रसिद्ध ग्रंथोंमेंभी हे. किंतु युरोपकी शैली तो एसी हे कि विना खंडनही खंडन होता जाता हे; अतएव आप महाशयोंको प्रत्युत यह ग्रंथ यूं चिताता हे कि उपायलो.-निर्दोष मत प्रचारकी कोशिश करें.-नहीं तो, आर्य संतान अतोभ्रष्ट ततोभ्रष्ट हो चली हे.-परिणाम अच्छा नहीं हे.

एकता तथा उसके जानेके साधन) साध्य है. नैसर्गिक नियम ओर युक्ति प्रमाणको नहीं सहार सकनेसे शोधक ओर यथार्थ दृष्टि रखते हुयेभी उसके मंडन करनेका मार्ग सिद्ध नहीं होता; तद्वत् उससे भिन्न अन्य अद्वैत-द्वैत-द्वैताद्वैत-क्षणिकादि मत विषे उपर कहा गया है; अतः अन्य उत्तम

विचारने योग्य बात है कि आर्यवर्त्त विषे २९ क्रिरोड आसरे हिंदु हैं उनके पुरुषार्थकी गणना कीजियेः—**कमाई शून्य २४ करोड हैं.** ओर **कमाई करने वाले** ५ करोड आसरे हैं.— इनकी अन्य रूढी,—व्यर्थ कृतोंको छोडके, फिलोसोफी, धर्म संबंधी संस्कार—खयालोंमेंसे, व्यर्थ वा अन्यथा खयाल ओर निष्फल वा अन्यथा कृति-धंधोंको निकालदें तो, सरेरास चार घंटेसे विशेष कमाई—उद्यमका समय नहीं; एसा अनुमानसे जान पडता है. अर्थात् नाकाम धर्म संबंधी संस्कार ओर तदनुसार कृति—धंधेमें द्रव्य काल विशेष जाता है. (विशेष वृत्तांत पुराण पोगलमें है). निदान उद्यमसे गये, खरा धर्मतत्वभी हाथ न लगा. (श्री कृष्ण महाराज तथा स्वा. शं. स्वा. द. का आंतरीय शुभोदेश ध्यानमें लेना योग्य है.) क्या भूके-कंगाल-क्षुधातुर-दुःखिया, वेदांत वा धर्मके गुह्याशयको पासकते हैं? नहीं.

इत्यादि दृष्टिसे उक्त शंकाओंका अवसर नहीं है. तदुपरांत नकारखानेमें इस तूतीके शब्दकी भिगकभी, नहीं पडनेकी; अतः कोई शंका नहीं. जो इस तूतीकी आवाज सुनें, उनको योग्य है कि, प्रथम हिंदुओंको आर्य बनावें. जब एसा होजायगा तो, वे-स्वयमेव अधिकारको प्राप्त होके, वेदांत (यथार्थज्ञान—ज्ञानकी पराकाष्टा—ब्रह्मविद्या वा फिलोसोफी) के योग्य होजायंगे, आजकल—वर्त्तमानमें उनके प्रसिद्ध दुःखोंकी निवृत्तिका उपाय लीजिये. ब्रह्मबन्नापना छुडाके सत्यपर लाइये.

श्रेयकर मार्ग अवधारण करनेकी सूचना की है वहांतक आर्य संतानके ओर अपने प्रत्यक्ष जो दुःख हैं-उनके निवारणमें प्रवृत्त हों, यह विनति स्वीकार हो.

ग्रंथको इति करने पूर्व नवीन वेदांती ओर जिनका पक्ष स्थापन किया गया हो-उन पक्षकार भाइयोंकी सेवामें इतना जिता देना उचित हे कि, यदि मेरा लेख खंडन ओर आपका पक्ष किसी योग्य प्रकारसे सिद्ध होजाय तो, मुझको स्वपक्ष त्याग, ओर सत्यपक्ष ग्रहण करनमें किंचित्भी आग्रह नहीं होगा.

एतद्दृष्टि शब्द-पदके भाव ओर स्व मत गत लक्षण तथा परिभाषा ओर अभिप्रायपर ध्यान खेंचके, सर्व लोकोपयोगी हिंदी भाषा वाले लेख द्वारा, इस ग्रंथ गत कथनके विरुद्ध-आनंद पूर्वक उत्साही होकर उतरें. शब्द व्याकरआदिकी तकरारमें काल व्यय न करें; क्योंकि सो तकरार ओर कठिन खंडन मंडन तो, अन्य ग्रंथोंमें प्रसिद्ध हें; अतः सफलतापर ध्यान रखना उचित हे.

इस ग्रंथमें कितनाक लेख वा खंडन, एसा पाओगेकि अन्य ग्रंथोंमें नहीं देखा हो. तथापि कितनेक विषयोंका जो, अन्य ग्रंथोंमें खंडन वा मंडन किया गया हेभी; सो एसा संतोषकारक नहीं जान पडता कि, इस नवीन प्रकाश कालमें ठर सके. अतः उभय प्रकारके खंडनरुप लेखके खंडन ओर पूर्वोक्त स्वपक्षके मंडनमें यथार्थताको लिये उत्तम रीतिसे उत्तरना चाहिये.

परंतु अस्वीकारणीय विषयका ग्रहण न होना चाहिये. यथाः—१ कहींका एक पद वा वाक्य लेके दोष देखाना, क्योंकि यह प्रकार निंदक, मिथ्याभिमानियोंका हे.

शोधक विवेकीका नहीं. २ अयुक्त, असंभव वा साध्य दृष्टांतोंका उपयोग करना.- जेसे पंचदशीके ध्यानदीपमें गोदावरी आदि नदियोंके स्नानसे पापकी निवृत्तिका दृष्टांत दिया हे.-अजामेल और रावणादिको अन्यथा मोक्ष मिलना मानके उदाहरण दिया हे. अथवा बाजीगरके बनाये हुये छुहारेके वृक्षको मिथ्या मानना. कल्पितकी निवृत्ति अधिष्ठानरूप मानना अर्थात् भगेर (दीपडे)में कुत्तेकी भ्रांति ओर उस काल्पित (कुत्ते)की निवृत्ति उसके शत्रु-अधिष्ठान [भगेर] के स्वरूप मानना. किंवा पंचदशीमें लिखा हे कि, 'इक्षणासे प्रवेशतक ईश्वर कल्पित सृष्टि, ओर जाग्रतसे मोक्ष पर्यंत जीव काल्पित सृष्टि" अक्रियसे आकाशादिकी उत्पत्ति-इत्यादि अयुक्त असंभव बात न हो. ३ पंचदशी वगैरे कितनेक ग्रंथोंमें जिनको श्रुति वाक्य लिखा हे, उनमें बहोतसे एसे वाक्य हें कि चारों वेदोंमें नहीं. हे; परंतु श्रुतिपद लिखके वाचक वा श्रोतागणको दाबा हे. वेसा नहीं हो. ४ युक्तिसे युक्तिका, बुद्धिसे बुद्धिका, विद्याका विद्यासे, अनुभवका अनुभवसे मुकाबला करना योग्य हे. अन्यथा नहीं. इत्यादि*-बातोंका ध्यान रहेगा तो, लोक हितकारी हो पडेगा.

निदान जो आपका वोह लेख-प्रत्युत्तर, पक्ष रहित, यथार्थ ओर लोक हितकारी होगा, ओर उसमें अमुक एक दोषकाही निवारण [एक शंकाका समाधान] नहीं किंतु, सर्व

---

* वासना ज्ञान विना नहीं जाती वासनाके अभाव विना जन्म मरण नहीं टलता (बेदांत पक्षको संमत्त हे), वासना जाय ओर ज्ञान न हो वा ज्ञान हो ओर वासना रहे तो मोक्ष नहीं होता अर्थात् उभय हुये मोक्ष होना संभव हे. परंतु " युवति भोगे सदा संन्यासी " इत्यादि बातें-वाक्य-प्रचलित हुईं, इसको क्या समझें? निदान एसे वा पु. कि. कु. इ. जै. के गप्पों समान लेख न हो.

दोषोंके निवारण पूर्वक सर्व रीतिसे योग्य प्रकार पूर्वक स्वप-क्षका प्रतिपादन किया गया होगा; तथा जीवन है तो, मैं स्वलेख खंडन-सत्पक्ष मंडन वांचके वा उस लेखकी प्रसि-द्धि सुनके प्रसन्न और उत्तर प्रदका आभारी हूंगा* इति.

सत्य शोधन जिज्ञासा उत्पादक पूर्वपक्ष समाप्त हुवा.

---

* [नोट] अपनी परीक्षा और शांति होने-इत्यादि कितनेक कारणोंको लेके में (स्वसंवेद्य लक्षणका अपरीक्षक)ने शिष्य समान कित-नेक महाशयोंको पूर्वोक्त टीप सुनाके उत्तर मिलनेकी जिज्ञासाकी; उन-मेंसे किसी महात्माने यह उत्तर दिया, "इसका भार वही उठावे कि जिसको भार है, हम नहीं उठा सकते." एक महात्माने कहा कि "फिलोसोफी और खंडन मंडनमें कुछ हाथ नहीं लगता, उन्मत्त, उद्यमहीन, वा बडबाडियोंका काम है." दो तीन महापुरुषोंने यह कहा कि "जितना कुछ धर्म पंथ, खंडन मंडन, पक्षपात और कृति चलरहे हैं, इनसे कुछ हाथ नहीं लगता. विवेक करके, वैराग्यवान होके मन वृत्तिका निग्रह करो, निरुद्ध हुये जो कुछ होगा सो (अकथ विषय) आपही मिलजायगा. बाकी सर्व, परमार्थ संबंधी प्रचलित वातें (गप्पे) हैं. (मैं, उक्त उत्तरकी रमजों-लक्ष्यभावको नहीं समझा). एक महाशयने उपनिषद्की स्वतः प्रमाणता, जीव ब्रह्मकी एकता वा भेद, माया अनादिसांत-इन तीन विषय-पक्षको छोडके-इनसे उपराम होके शेष कितनीक वातोंका उत्तर दिया; परंतु मेरी बुद्धिमें संतोषकारक नहीं जानपडा, इसलिये नहीं लिखा; विश्वासी, दंभी, वाचाल, शुष्क ज्ञानीजनोंको, प्रसंगोपात प्रासंगिक विषय पूछे जानेपर, उलटा मुझ कुतर्की मंदमतिके कल्पित (कर्तवी) संतोष-शांतिभी जातेथे. निदान अब सत्य शोधन वा शोधित प्राप्तिके उत्तेजनार्थ प्रसिद्धिमें डालनेकी जिज्ञासा रखताहूं. पूरी हो. इति.

(उत्तर पक्ष–सत्यज्ञ–तटस्थ)

दोहा.

विमुख न होना सबसे, करो न मत अन्याय;
अहित पक्ष करना नहीं, पूरव उत्तर जाय.

सूचना.

मुद्रित होतेही दिया, ग्रन्थ खुला जिसकाल;
प्रसिद्धकको यह लिखा, नोटिस छाप संभाल.
पूरव उत्तर पक्षमें, निर्दोषी जो बात;
ताको छोरे दोष जो, वाको करिये पात.
जीव ब्रह्मकी एकता, अजा अनादि सांत;
बने त्याग यह बात ज्यूं, नहीं ब्रह्म वृतांत.
इस रीति सिद्धांतको, गुरुजन कृपा धार;
सामग्री अवसर मिले, कहियेधार विचार.
सृष्टि नियम युक्ती पकर, अनूमान प्रत्यक्ष;
योग अनुभव अरु वेदसे, खेद निवारो दक्ष.
शब्दमात्र तो शब्द हे, एसाही विशवास;
जल्प वितंडा वाद तज, विद्याको लो पास.

अ. स.

प्रवेशक.

अपरोक्ष वा परोक्ष, अदृष्ट वा दृष्टके स्वरूप निर्णय वा निश्चय करनेमें इंद्रिय [ज्ञानतंतु]-बुद्धि-जीव ओर व्याप्ति अनुभवसे इतर मुख्य साधन देखनेमें नहीं आते; इसलिये जो प्रथम किसी मूल [वस्तु-ईश्वर-जीव-मोक्ष-पुनर्जन्म वा किसीको सर्वज्ञ मानके उसके वाक्य-इत्यादि] को विश्वासमात्रसे मानके-दृढ करके-कार्य-साधन वगेरेकी व्यवस्था तदानुकूल करते हें,-यह शैली वा विषय सर्वमान्य वा यथार्थ बोधक नहीं मानी जासकती. परंतु जो व्याप्ति अनुभवद्वारा कार्यसे मूलपर पहोंचते हें,-वे सुज्ञ अधिकारी अपनी परिमित शक्तिकी सीमातक अयथार्थपर नहीं आवेंगे. जो कुछ माना जाता हे, उसमें कोइभी सयुक्त हेतु होना चाहिये. यथा हरकोइ (आकर्षणादि) परिच्छिन्नके गति, परिणाम-देश ओर आधार विना नहीं होसकते, एसी व्याप्तिका अनुभव हे; परंतु कोइ एसा कहता वा मानता हे कि, "देश [आकाश] वा आधार कोइ वस्तुही नहीं हे किंतु देश, मगजकी असर वा जीव वृत्तिका परिणाम वा अभ्यास हे. उससे गतिके व्यापकआधारकी कल्पना करते हें."-इस मंतव्यका निर्दोष सयुक्त हेतु नहीं मिलता. प्रत्युत् एसा माननेसे पक्षकारको व्याघातदोष आजाता हे. अर्थात् द्रव्योंकी गति माननाही असिद्ध होजाता हे, जो कि दृष्टविरुद्ध दोषवाला ओर कार्य व्यवस्थाका विरोधी पक्ष हे. किंवा कोइ कहता हे कि, 'मूल स्वरूप अगम्य हे.' परंतु पुनः उसके स्वरुप-विशेषण वा कार्यकी व्यवस्था करनेको तैयार होता वा आग्रह करता हे * इत्यादि असंतोषक कारण

---

* यथा-आद्य संस्कार प्रबल होते हें, एक तरफी कहानी

कोलके मूल स्वरुप ओर उनके परिणाम–फल–निर्णयार्थ कितनेक 'नियम' सिद्ध किये गये हें,–उनका आधार सयुक्त व्याप्ति अनुभव हे; न कि विश्वासमात्र. जोकि उन सृष्टिनियमोंका शोधक जिज्ञासुओंके सामने आना लोकोपयोगी समझा गया हे; अतः संक्षेपमें लिखके प्रसिद्धिमें डाले जाते हें. (जिनको सयुक्त हेतु उदाहरण सहित सविस्तृत विवेचन देखनेकी इच्छा हो उनको विचार पूर्वक मूलग्रंथ-(" तत्वदर्शन " ग्रंथ) अवलोकन करना चाहिये.

गुडसेभी अधिक मीठी मालूम हुवा करती हे, मनुष्योंकी प्रकृति भिन्न २ विलक्षण ओर असाधारणभी होती हें, विश्वासमें वा हठपर आया हुवा पुरुष साक्षर नहीं कहाजाता; तोभी, आद्य संस्कारके रंगे हुये कानशेंससे मनुष्य लाचार होजाता हे. इन सर्व वातोंके नमूनेमें एक प्रतिष्ठित [साक्षर ब्राह्मण] की 'पेपरप्रसिद्ध' वात याद करो–जोकि **स्त्रीहन**वोर्गके ढकांसलोंसे छाया हे–उसने स्वत्वको गंवाया हे-अमूल परधर्म स्वीकारने (खृस्ति होने) को तैयार हुवा हे. ईश्वरअवतारवादि समान इसुको ईश्वरसे अन्य वा न्यून नहीं मानता–वेदियों समान बाइबलकोभी ईश्वरीपुस्तक मान बेठा हे–दुसरेकी वात वा योग्य ग्रंथ वा उचित शिक्षणको नहीं सुना चाहता–विचारपर नहीं आता–सत् शोधन वा तत्वविद्या (फिलोसोफी) को पास नहीं आने देता–उच्च दृष्टिसे नहीं देखता. वाहरे विश्वास ओर हठ ! ! इसलिये जरूर हे कि, सत्मत–धर्म–शोधनार्थ एसे नियम [रूल] तलाश किये वा बनाये जावें कि जिन द्वारा मनुष्य स्वतंत्र विचार करसके ओर सत्यकी तरफ झुके; क्योंकि बहुधा दुसरेके कहेने सुननेसे उसके (श्रोताके) दिलमें विपरीत असरभी होजाता हे; ओर हठपर आनेसे अज्ञानवश अपनेको अवनतिमें डालता हे. उक्त प्रकारके जो नि

विशेष सूचना सूत्रोंकी अनुभूमिकामें हे; अतः विस्तार
केया. अंक क्रम मेरी तरफसे हे. जो पद वा वाक्य मोटे
से हें, उनको हिंदी भाषागत "मूळ सूत्रोंका उलथा"
चाहिये. शेष जो अर्थ वा संबंधसूचक पद वा वाक्य
को "मूळ अर्थोंका संक्षिप्त सार मेरी तरफसे लिखागया
ग समझ लेना चाहिये.

इन नियमोंसे मत-पक्ष-साध्य विषय केसे निर्णय हो-
उसकी शैली [1] यथा अवसर-सामग्री, प्रसिद्ध करनेका
रखता हुं.

प्र. क.

ये जावें, वे बालकोंकोभी सिखाये जावें तो, उनके जवान होने
त्य मार्गसे बचानेमें वे रक्षक होजांय. मानाकि तत्वविद्याका
किरोड मनुष्योंमेंसे एक सुनना चाहता हो. एसे किरोडोंमेंसे
क अधिकारी समझता हे, एसे किरोडोंमेंसे कोई एक पाता
किरोडोंमेंसे कोई एक समझासकता हे; अतः बालकोंको
योग्य यह विषय नहींभी हे; तथापि जो उनको 'संस्कार' डाले
ोतेके समानभी नियम याद कराये जावें तोभी, उनको बहुत
-लाभप्रद होपडेंगे; यह बात प्रकृतिशास्त्रज्ञों ओर अनुभ-
दृष्टिसे देखो तो, स्पष्ट हे. (इस लिये यह नियम नमूने
रजु करना उचित जाना गया.) १ मूळ ग्रंथमें सविस्तृत हे.

॥ ॐ ॥

स्वरूपनिर्णायक नियम.

तत्वदर्शन अध्याय २ के मूल सूत्रोंका संक्षेपार्थ.

१ अतः [1]नियमादिनामुद्देशः ॥ अ. २ सू. १ ॥ इस लिये सत् निर्णयार्थ उसके योग्य [2]नियम [3]ओर तत्संबंधी आवश्यक विषयका कथन करते हैं. ॥

२ दोष विपरीत भावना भ्रांति-असंभावना-संशय वा अज्ञानादि आवरणका **निवारणत्वही निर्णय** वक्तव्य है; क्योंकि जो है सो है ही. ॥

३ संज्ञाका कथन सुगमार्थ होता है. ॥

४ जेसे इस ग्रंथमें भ्वादि संज्ञा हैं. ॥ [4]

---

१ तत्वदर्शनकी पाहिली अध्यायमें " **अथ सत्जिज्ञासा.**" आरंभक सूत्र है. तहां उसके विवेचनमें जनाया हैः-

(१) अत्यंत दुःखरहित सुखप्राप्ति वा उन दोमेंसे एकक. (२) स्वर्गप्राप्ति. (३) सुखादिके प्रवाहका ज्ञान. (४) जीवन पर्यंत दुःखरहित सुखप्राप्ति वा इन दोमेंसे एक. (५) मरण-अभाव शून्य [६] यथार्थ निर्णय.-यह छे पक्ष-साध्य (मुख्य फल-धर्म फल)-विषे हैं. (१) कर्म (कर्म-उपासना-भक्तिआदि) (२) उपेक्षा-शून्य (३) ज्ञान (सृष्टिनियम-प्रत्यक्ष-अनुमानजन्य प्रमा) (४) विश्वास (५) समुच्चय.-यह ५ पक्ष उक्त श्रेयके साधनरुप धर्ममें हैं.

उक्त साध्य, साधनसे इतर पक्ष नहीं.

पूर्वोक्त पक्षोंमें पक्षकार जो एक दूसरेके दूषण भूषण बताते हैं सो प्रथम अध्यायमें लिख आये हैं.-अर्थात् स्वभाव, कर्म, वेदांत, न्याय, वैशेषिक, योग, सांख्य, ओर अदृष्ट मतका सविस्तृत बयान किया गया है; उनमेंसेभी 'अदृष्ट' मतविषे कर्मयोग १, सिद्धक ओर तारकयोग २-आत्मयोग ३,-यह तीन पक्ष हैं. उनमें अन्य मतोंका खंडन, स्वपक्षमंडन दरसाया गया है. पदार्थोंका निर्णय विस्तारसे

किया गया है. तथा जैमिनी-मैमांसिक, बौद्ध, जैन, पौराणी [रामानुज-वल्लभ-शाक्त-सौर्य-स्मार्तादि]; विश्वासी "(तोरेत-जबूर-इंजील वा कुरानके माननेवाले गबर-तरसा याहूदि-किरानी (नसारा-खिस्ति-ईसाई)-कुरानी (मुसलमान)"; थियोसोफी;-फेलसूफ [अरस्तु वगेरे यूनानी] आर्यसमाज, ब्रह्मसमाज; जडवाद (चारवाक-दहिरिया-लोकायत, आकर्षण-परमाणु-यूरोपके फिलोसोफरोंका मत); अभाववाद, शून्यवाद, व्यवहारमत; मतोंका एक पत्र (नानक, कबीर स्वामीनारायण वगेरे छोटे छोटे वा बडे बडे अर्थात् भूमंडलमें मूल शाखा उपशाखा सहित ९६००० आसरे पंथ-धर्म-मत हें-परंतु एसा पक्ष कोई न होगा जो उस पत्रसे बाह्य हो); तथा जविनमत, विदूषकमत [इस मत विषे पूर्वोक्त सर्व मतोंका खंडन हे]; विभूषक मत (इसमें पूर्वोक्त मतोंके भूषण लिये हें):-इत्यादि मत धर्मोंका वर्णन हे.

पूर्वोक्त अनेक पक्ष दर्शन श्रवण ओर परस्परमें विरोधी वा विवादित पानेसे शोधक-जिज्ञासुको यह जिज्ञासा उत्पन्न होती हे कि-उक्त मतोंमेंसे कोन वा उनमेंसे किसीका कोई किसीका कोई भाग वा उनसे भिन्न-अर्थात् श्रेयकारी कोनसा मत हे? वा सत् क्या हे?

एतद्दृष्टि तिम (सत्) के निर्णय होने वास्ते २ जितनोंकी आवश्यकता समझी गई उतने ३ नैसर्गिक-सृष्टिनियम वा सिद्ध नियम [जो इस अध्यायके नियम सूत्रोंके विवेचनमें सिद्ध करबताये हें]. लिखनेका उद्देश हे. तथा साधन नियम संबंधि उपनियम-उपवाक्य ओर उपसाधनभी उसी कारणसे लिखे हें अर्थात् पूर्व अध्यायमें प्रतिज्ञा होचुकी हे -अतः नियमादि लिखनेका उद्देश हे. यह इस सूत्रका प्रयोजन हे. १.

४-मूल ग्रंथगत 'भ्वादि' संज्ञाओंमेंसे सूत्रार्थमें जो उपयोगी हें, वेसी कितनीक संज्ञा यहां लिखते हें, तथाहि इनमेंसेभी जो वक्ष्यमाण सूत्रार्थमें यथा प्रसंग जनाई गइ हें, उनको छोडके-शेष (संभावनादि संज्ञा) यहां लिखी हें. यथा प्रसंग उपयोगमें लेलेनी चाहियें.

(स्वरूप) संभावना संज्ञाः—

१	२	३	४	
स्वरुप.	विशेषणवान	सत्य	असत्य	भावादि संज्ञा. १
भाव.	अभाव.	,,	,,	
सत्.	असत्.	,,	,,	
नित्य.	अनित्य	,,	,,	
भेद.	अभेद.	,,	,,	
एक.	नाना.	,,	,,	
अणु.	विभु.	,,	,,	परिमाणसं. २
मध्यम लचकी.	मध्यम अलचकी.	,,	,,	
अव्यक्त.	व्यक्त.	,,	,,	आकारादि संज्ञा. ३
अपरोक्ष.	परोक्ष.	,,	,,	
साकार.	निराकार.	,,	,,	
रंगी.	बेरंगी	,,	,,	
वजनी.	बेवजनी.	,,	,,	
सावयव.	निरवयव.	,,	,,	
लचकी.	अलचकी.	,,	,,	
चिद्.	जड.	,,	,,	चिदादि संज्ञा. ४
अचेतन.	अजड.	,,	,,	
चल.	अचल.	,,	,,	
आधार.	आधेय.	,,	,,	
व्यापक.	व्याप्य.	,,	,,	
उपादान.	निमित्त.	,,	,,	
कारण.	नकारण.	,,	,,	
कारण.	कार्य.	,,	,,	

मूल.	जन्य.	,,	,,	
परिणाम.	अवस्था.	,,	,,	
अनुपादान.	सोपादान.	,,	,,	
स्वरुपसे अनादि.	स्वरूपसे सादि.	,,	,,	कालादि संज्ञा. ५
स्वरुपसे अनंत.	स्वरूपसे सांत.	,,	,,	
अनादि अनंत.	सादि सांत.	,,	,,	
संख्यासे अनंत.	संख्यासे सांत.	,,	,,	
देशसे अनंत.	देशसे सांत.	,,	,,	
कालसे अनंत.	कालसे सांत.	,,	,,	

भोक्ता, भोग्य, भोग.	३, २, ०	त्रिपुटी संज्ञा. ६
प्रकाशक, प्रकाश्य, प्रकाश	,, ,,	
द्रष्टा, दृश्य, दर्शन.	,, ,, ,,	
ज्ञाता, ज्ञेय, ज्ञान.	,, ,, ,,	
कर्त्ता, कर्म, करण.	,, ,, ,,	

आभास, प्रत्याकृति, प्रतिबिंब, छाया, संस्कार, पांचों वा इनमेंसे २ ३–वा ४ प्रकारका वा इनसे अन्यथा. **आभासादि संज्ञा. ७**

द्रव्य, गुण. कर्म, स्वभाव, शक्ति, धर्म, योग्यता, असर, संबंध, अ-

वस्था, परिणाम, इन ११ प्रकारका, ११ मेंसे २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, वा नोनो प्रकारका, वा इन ११ से विलक्षण. **स्वरूपादि संज्ञा.** ८

अकल्पित.	कल्पित.	
कल्पितवत्.	अकल्पितवत्.	
नअकल्पित.	नकल्पित.	

गुण, कर्म, स्वभाव, शक्ति, (सत्ता), धर्म, योग्यता, असर, संबंध अवस्था, परिणामकी **गुणादिसं.** ९

(गुणादि संज्ञा कहनेसे कहीं कर्म वा असर विनाभी प्रयोग होता है.)

इन [गुणादि] वाला वा इनमेंसे कोइ एक वा दो२ वा तीन २ वा चार २ वा पांच २ वा छे ६ वा सात २ वा आठ २ वा नो २ वा दस २ वाला किंवा इनविनाकोंकी **गुण्यादि संज्ञा.** १०

पूर्वोक्त भावादिमें उभयथा संज्ञामेंसे इष्ट स्वरूप कहीं कभी केसा कहीं कभी केसा १. किंवा उनमें कोई एक प्रकारका कोई दुसरे प्रकारका हो. (यथा द्रव्य, भाव अभावादिरूपवाले) २. वही, साध्य पक्षकारोंकी दृष्टिसे अन्य २ प्रकारका [यथा अभाव भावरूप वा अभावरूप] ३. **विविध संज्ञा.** ११

साध्य वस्तु परस्परकी अपेक्षासे उक्त '**भावादि**' संज्ञामें कहीजाती है, वस्तुतः उनसे विलक्षण है १. साध्यवस्तु अकथ, अगम्य, अज्ञात, अनिर्णीय, अनिर्वचनीय, अनुभवमात्रकी विषय, परस्पर विलक्षण २. **मौन संज्ञा.** १२.

पूर्वोक्त भावादि १२ संज्ञाके समूहका नाम '**संभावना संज्ञा.**'

(**इतने प्रकारमें साध्यका स्वरूप कल्पा जा सकता है**).

असंभवादि संज्ञाः—

साध्यहे ओर शून्य;	नहींहे ओर कोइ प्रकारका;
भावाभावरूप.	न भाव न अभावरूप.
सदसत्.	न सत् न असत्.
नित्यानित्य.	ननित्य नअनित्य.
भेदाभेदवान्.	नभेद नअभेदवान्
एक नाना.	न एक न नाना.
अणु विभु.	न अणु न विभु.
लचकी अलचकी.	न लचकी न अलचकी.
सावयव निरवयव	न सावयव न निरवयव.
साकार निराकार	न साकार न निराकार.
रंगी बिरंगी.	न रंगी न बिरंगी

बजनी बेबजनी.	न वजनी नबेवजनी
चिद् जड.	न चिद् न जड.
अचिद् अजड.	नअचिद् नअजड.
एक देशकाली चलाचल.	न चल न अचल.
एक देशकाली आधाराधेय.	न आधार नआधेय.
एक देशकाली व्यापक व्याप्य	नव्यापक न व्याप्य.
अभिन्नोपादान निमित्त.	न उपादान न निमित्त.
एक देशकाली एक का कारण कार्य.	न कारण न कार्य.
मूल अवस्था मूलजन्य.	न मूल न जन्य.
उक्त त्रिपुटिमें तीनों रुप.	तीनोंमेंसे एक रूपभी नहीं.
अकल्पित कल्पित.	न कल्पित न अकल्पित.
अनादि सादि.	न अनादि न सादि.
अनादि सांत.	न अनादि न सांत
सादि अनंत.	न सादि न अनंत
अनंत सांत	न अनंत न सांत.
अनादि अनंत ओर अनादि सांतभी.	न अनादि अनंत न अनादिसांत. न सादिसांत.

संख्यासे अनंत.	संख्यासे न अनंत न सांत.
देशसे अनंत सांत.	देशसे न अनंत न सांत.
कालसे अनंत सांत.	कालसे न अनंत न सांत.
बिंब (द्रव्यादिरूप), आभास, प्रतिबिंब, प्रत्याकृति, छाया, संस्कार, इन पांचो प्रकारका.	न पाचोंरूप.
द्रव्य, गुण, कर्म, स्वभाव, शक्ति, धर्म, योग्यता, असर, संबंध, अवस्था, परिणाम—इन ग्यारारूप.	इनमेंसेका इकरूप नहीं.
अभाव, शून्य असद् जन्य.	नथा ओर अनुपादा न.नवीनोत्पन्न हुवा.

न परोक्ष न अपरोक्ष. नदृष्ट, नअदृष्ट. किंवा पूर्वोक्त प्रकारमेंसे वही वस्तु कहीं केसी कभी केसी विरुद्ध धर्मवाली; किंवा वही एक साध्य किसीकी दृष्टिमें केसी किसीकी दृष्टिमें तद्विरुद्ध—परस्पर विरुद्ध धर्मवाली. किंवा कोईकी अपेक्षा लेके किसीमें विरुद्ध धर्म—लक्षण आरोप करना किंवा कहे हुये प्रकारसे विलक्षण कल्पनाकी **असंभवादि संज्ञा.**

पूर्वोक्त संभावना संज्ञामें साध्यका जो स्वरुप कल्पा हे उसमेंसे असंभवादि संज्ञाके अंतर

गत हो उसे निकाल देना चाहिये. क्योंकि असंभवादि संज्ञामें जो विशेषण-प्रकार-हैं वे असंभव-अप्रमाण-असिद्ध-अयुक्त हैं.

मूलस्वरूप, नित्य, अणु,-विभु, अलचकी, अचल, निराकार, वजनरहित, रंगरहित, निरवयव, अटल, आधेयत्वरहितआधार, व्यापक, अजन्य, अकार्य, अपरिणामी, अवस्थारूप नहीं, अकल्पित, अनादि अनंत स्वरूप, देशकालसे अनंत. (इतने प्रकार स्वरूपजों के नहीं होसकते; इस लिये इनकी) **स्वरूप संज्ञा.**

कार्य,जन्य, कल्पित, लचकी, सावयव, अनित्य, अवस्था, परिणाम, अमर, कारण कार्य, सादिसांत, देशकालांत, सोपादान, आभास, प्रतिबिंब, प्रत्याकृति, छाया, संस्कार, मध्यम. (इतने प्रकार मूलस्वरूपोंके नहीं होसकते; इस लिये इनकी) **स्वरूपज संज्ञा.**

पूर्वोक्त "संभावना" संज्ञामेंसे "असंभवादि" संज्ञोक्त, "स्वरूप" संज्ञोक्त और "स्वरूपज" संज्ञोक्त कल्पना (साध्य स्वरूप-लक्षण) को त्याग-बाध करके जो शेष विकल्प रहे हैं, उनकी **स्वरूप स्वरूपज संज्ञा.** (क्योंकि वे विकल्प-विशेषण-लक्षण, मूल अनादि स्वरूप और कार्यरूप (स्वरूपज)–इन उभय प्रकारके पदार्थों विषे संभव होते हैं).

नोट (सूचना.)

जो साध्य (इष्ट पदार्थ निर्णयका विषय) पूर्वोक्त स्वरूप, स्वरूपज, स्वरूपस्वरूपज संज्ञामें कहे प्रकारसे अन्यथा (विरुद्ध-व्यवस्थामें पुरा न उतरे) हो, उसकी असिद्धि है, वा अपनी कल्पना वा परीक्षासे अन्यथा है, एसा जानना चाहिये.

अभाव, शून्य, असत् स्वरूपकी **अभावादि संज्ञा.**

अनुद्भव, उद्भव, तिरोधान, प्रादुर्भूत, लय, दृष्ट, अदृष्ट, सूक्ष्मत्वादि संज्ञोक्त, लौकिक वा अलौकिक प्रकारसे प्रत्यक्षयोग्य, न प्रत्यक्ष योग्य, किसीको अपरोक्ष, किसीको अप्रत्यक्षकी **अनुद्भवादि सं.**

अतिसमीप, अतिदूर, अतिप्रकाश, (तमादि) आवरण, समानाभिहार, प्रमाण प्रमाताकी अयो

ग्यता, सूक्ष्मत्व, अनुद्भवत्व, तिरोधान, लय, अभाव,—प्रत्ययके अयोग्यकी **समीपादि संज्ञा.**

सूक्ष्म, स्थूल, नित्य, अनित्य, सावयव, निरवयव, पारदर्शक, साकार, निराकार, सजातीय, विजातीय, परोक्ष अपरोक्ष, विरोधी अविरोधी, गुण गुणी, जाति व्यक्ति, शक्ति शक्तिवान, संबंध संबंधी, सापेक्ष निर्पेक्ष—इत्यादिकी **सूक्ष्मादि संज्ञा.**

ममता, मंदता, कुतर्क, कुसंग, दुराग्रह, शंका, भय, अशक्ति, दृष्टादृष्ट भूत भावि प्रतिबंध की **ममतादि संज्ञा.**

संसर्ग, तादात्म्य, समवाय, संयोग,-संबंधमात्र, (अनुद्भवादि-समीपादि) की **संसर्गादि संज्ञा.**

कर्म—उपासना (यम, नियम, आसन, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान) के उत्तर-विवेक, वैराग्य, शम, दम, उपराति, तितिक्षा, श्रद्धा, समाधान, जिज्ञासा, श्रवण, मनन, निदिध्यासन (पश्चात् योगद्वारा परीक्षा और समाधि) की **विवेकादि सं.**

अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष, अभिनिवेशकी **क्लेश संज्ञा.**

आध्यात्मिक, आधिभौतिक, आधिदैविक, इन तिन तापकी **तापसंज्ञा.**

---

५ इष्ट विषयके उद्देश और लक्षण शीघ्रबोधक होते हैं. ॥

६ निरपेक्ष, लघु, व्यापक, निर्दोष, नियमाविरुद्ध और यथार्थ वा लक्ष्यबोधक लक्षण मान्य होते हैं. ॥

७ स्वरूप और तटस्थ दो प्रकारके लक्षण होते हे. ॥

८ शोधकको लाभप्रद होनेसे उपयुक्त लक्षणोंका संग्रह करना उचित हे. ॥

९ लक्षितके उपयोगार्थ लक्षण की **परीक्षा और अभ्यास** कर्तव्य होता हे. ॥

१० **सृष्टिनियम** (नैसार्गिक नियम) **अटल** होते हैं. ॥

११ **न नियम अनियम होता हे-न अनियम नियम होता हे.॥**

१२ प्रत्येक नियमोपयोगादि कार्योंका देशकाल प्रसंग और अधिकार प्रति उपयोग होता हे; न कि

८—शोधकके लाभार्थ उपयुक्त लक्षणोंका मूलग्रंथमें संग्रह हे.

१० इस अध्यायमें अधिकरण हैं. यथा सूत्र १० से १९ तक नियमाधिकरण हे. "इस अध्यायगत ज्ञात सृष्टि नियमोंसे कितनेक प्राचीन शोधकोंके नियम एकत्र और सिद्ध किये गये हैं, और

इनकी एकही सीमा होती है. ॥

१३ नियम कथनादि प्रसंगोंमें असंगति वा पूर्वापर विरोध दोष नहींभी माना जाता. जैसे कि नियम प्रसंगमें ज्ञात होगा. ॥

१४ सकारण पुनरुक्ति ही दोष नहीं कहाता. जैसे कि अक्षरोंका उपयोग है. ॥

१५ एक देशकाल विषे परस्पर दो विरोधी नियमोंसे एक साध्य ×असाध्य होता है. ॥

१६ दो वा अनेक परस्पर विरोधी सिद्ध नियम होतेभी यथार्थ व्यवस्था होजाना संभव है.॥

१७ आसंग-प्रसंग भिन्न विषयके निर्णय वा समाधानी से नियम उदासी-उपेक्षावाला रहता है. ॥

१८ नियम संबंधी वा अर्थांतर वाक्य नियमादिके सहकारी कहाते हैं-उनको नियमबाधक वाक्य नहीं कहा जाता. ॥

१९ कोइ विषय वा नियम अपनी वा परकी दृष्टिसेभी कथन किया जाता है ॥

२० सुखेच्छा तथा प्राप्ति उसके योग्यको होती है. अनधिकारीको नहीं. ॥

२१ सो सुखेच्छा जीवको स्वभावतः प्रवृत्तिमात्रका कारण अर्थात् प्रवर्त्तक है. ॥

२२ दुःख और न दुःखाभाव सुख के लक्षण हैं. (किंतु अन्य हैं) ॥

२३ व्यवहारमें नित्यानित्य दो प्रकारके सुख माने जाते हैं. ॥

२४ सुख, विषयविनाभी होता है न(कि) विषयसेही. ॥

२५ न सजातीय सुखमेंही अर्थात् अनुभूतके सजातीय सुखमें ही अभिलाषा-इच्छा होनेका नियम नहीं है; किंतु अन्यमें भी होती है. ॥

२६ जो सुखादि इष्ट अप्राप्त और निर्दोष हो, उसकी इच्छा होती है. ॥

२७ जिसकी निवृत्ति वा प्राप्ति इष्ट है-ऐसे प्राप्तव्य इष्टमात्रकी प्राप्ति पुरुष प्रयत्नसे होती है. ॥

२८ इष्ट साध्यके न योग्य सा

कितनेक नवीन सिद्ध कर दिखाये हैं."

× जिसको सिद्ध करना है.

१६-सू. २१७, २६३, २६४ नियमका विवेचन वांचो.

२०-पाषाणको इच्छा और पामर विषयीको परमार्थकी प्राप्ति नहीं होती.

धनसे इष्ट प्राप्ति नहीं होती; किंतु कर्म ज्ञानादि* इष्ट-साध्ययोग्य साधनसे इष्टकी प्राप्ति होतीहे.॥

२९ किसी साध्यकी सिद्धिमें जो मुख्य साधन हें वे अन्य साध्यके सहकारी साधनभी होतेहें.॥

३० ज्ञान नामा साधनसे वस्तु साक्षात् ओर अज्ञान असत् नामक आवरणभंग-यह दो मुख्य फल होते हें. ॥

३१ कर्म नामक साधनसे उत्पत्त्यादि[1] मुख्य फल होता हे ॥

३२ उपासनासे विक्षेपाभाव फल होता हे. ॥

३३ इष्ट सिद्धिमें भूत, वर्त्तमान, ओर भावि-तीन प्रतिबंध होते हें, उन प्रतिबंधाभावसे (हुये) ओर सम्यक् साधन सामग्री विद्यमान हुये उनके योग्य उपयोगसे साधनकी सफलता (इष्टफलप्राप्ति) होती हे. ॥

३४ बलवान विरोधीसे निर्बलकी निवृत्ति (हटना-नाश दबना) होती हे. ॥

३५ जो श्रवण किया उसकाही मननादि (मनन-निदिध्यास) करनेसे इष्टफल होता हे. ॥

३६ बहु प्रयत्न करने परभी इष्ट कार्य न हो वा लघु प्रयत्नसे भी भारी इष्ट कार्य तुर्त होजावे-इत्यादि विलक्षणता (के प्रसंग-भाव) में संस्कारादि÷ हेतु जानने चाहियें.

---

३७ ब्रह्मांडमें कोइभी वस्तु निष्फल नहीं. किंतु सर्व सफलही हें

३८ मूलस्वरूप (आमिश्रित-अपरिणामी तत्व) के मूलका अभाव होनेसे मूलामूल हे. ॥

३९ मूलस्वरूपकी अनुत्पत्ति हे अर्थात् कोईभी वस्तु नवीन उत्पन्न नहीं होती. ॥

४० न नाश अर्थात् मूलस्वरूपका कभी नाश नहीं होता. ॥

४१ प्रत्येक मूलस्वरूप न्यूनाधिक नहीं होता हुवा. जितना

---

*वस्तुमात्रकी प्राप्ति वा निवृत्ति किंवा ज्ञातव्य-कर्तव्य-प्राप्तव्यमात्रके कर्म, उपासना ओर ज्ञान बिना अन्य [अभाव-शून्यादि] मुख्य साधन नहीं होते. कर्म=गति, उपासना=जुडना-समीप स्थिति-गतिअभाव, ज्ञान=प्रतीति.

[1]उत्पत्ति, नाश, प्राप्ति, विकार, निवृत्ति, वृद्धि.

÷संस्कार, रजवीर्य, जीवस्वभाव, संग-संबंध.

ओर जेसा हे वेसा ओर **उतनाही** रहता हे. ॥

४२ मूलस्वरूप **संसर्गादि**[१]का लमेंभी **वही** होता हे—जैसाकि संसर्गके पूर्वमें था, ओर संसर्गाभाव पीछेभी वेसाही रहेगा-जेसा कि वर्त्तमानमें हे. ॥

४३ मूलस्वरूप सर्वदा **अविकारी** रहता हे; अर्थात् न्यूनाधिक नहीं होता, परिणाम नहीं पाता, स्वरूप नहीं बदलता ओर विकार को नहीं धारता. ॥

४४ परंतु **न कार्यरूप अवस्था.** अर्थात् जो स्वरूपज (मूल स्वरूपजन्य कार्य वा अवस्था) हें वे पूर्वोक्त अनुत्पत्यादि नियमोंके विषय नहीं; किंतु उत्पन्न ओर नाश होते हें, संसर्गकालमें बदलते ओर न्यूनाधिक होते हें—अर्थात् विकारी हें. ॥

४५ स्वरूपमात्र **इतरेतर** (भिन्न-भिन्न) होते हें; परंतु स्वरूपज अपने स्वरूपसे इतर स्वरूप नहीं रखते, इस वातका ध्यान रहे. ॥

४६ **गुण गुण्यादिवत्.** अर्थात् जेसेकि—मूल गुणगुणी, जातिव्यक्ति, शक्ति शक्तिमान, असर असरवान, वाच्य वाचक, धर्म धर्मी, संबंध संबंधी, भेद भेदवान,—यदि स्वरूपसे वस्तु होंतो, वे वास्तवमें, परस्परमें स्वरूपसे भिन्न भिन्न हें. ॥

४७ तद्वत् **द्दष्टा दृश्यादि** (द्दष्टासे दृश्य, ज्ञातासे ज्ञेय, अधारसे आधेय, प्रकाश वा प्रकाशकसे प्रकाश्य, व्यापकसे व्याप्य, कर्त्तासे कर्म, प्रतियोगीसे अनुयोगी,—इत्यादि) **भी** स्वरूपसे भिन्न२ होते हें. ॥

४८ **समकाल एक** वस्तुके **दो** (द्दष्टा दृश्य इत्यादि) **परिणाम नहीं** होते.—नहीं होसकते. ॥

४९ **संभावना** संज्ञामें[२] जितने प्रकार गिनाये गये हें, उनमें **स्वरूपकी भावना** हे—अर्थात् मूलस्वरूप ओर स्वरूपज उन प्रकारोंमें होने योग्य हें. ॥

५० परंतु जो **असंभवादि** संज्ञामें[२] प्रकार लिखे हें, उनको **त्यागके** स्वरूपकी संभावना ज्ञातव्य हे. ॥

५१ **दृष्ट अदृष्ट द्रव्य गुणादिवत्.** ॥

---

१ समीपता, तिरोधानता, अनुकूलता, आवृतता, लय, प्रत्यक्ष न होसकने-इत्यादि. [संज्ञादेखो]

२ संज्ञा वांचो.

५२ **न अन्यथा**—अर्थात् पूर्वोक्त प्रकारसे इतर स्वरूपका अस्तित्व असिद्ध हे. कारण कि जो परीक्षाकी सीमा न हो तो, असंभव कल्पना ओर अव्यवस्था माननेका अवसर मिलता हे. ॥

५३ **स्वरूप स्वरूपज संज्ञासे भिन्न उभयकी.** संभावना संज्ञोक्त कल्पनामेंसे कितनीक स्वरूप, कितनिक स्वरूपज ओर कितनीक उभयमें घटित होती हें. ॥

५४ **गुणादिके गुणादि नहीं** होते. ॥

५५ **अनादि स्वरूप न सांत,** ओर **न सादि अनंत** होता हे. अर्थात् सादि सांतही ओर अनादि अनंतही होता हे. ॥

५६ **स्वरूपसे** अनादि **ओर प्रवाहसे** अनादि—**यह दो भेद अनादि** पदार्थके होते हें. ॥

५७ **एक निरवयव** (अर्थात् अणु वा विभु परिमाणवाले पदार्थ) **का परिणाम नहीं** होता.

५८ **एक** निरवयव (अणु-विभु) वस्तुमेंसे एककाल विषे **न अनेक** अविरोधी वस्तु ओर न अनेक परिणाम—अवस्था होसकते हें; तो अनेक विरोधी वस्तु वा परिणाम केसे होसकेंगे ? नहीं. ॥

५९ **एक** अखंड निरवयव स्वरूप स्वयंभी **न अनेक** रुप धार सकता हे ओर न अनेक अंश वा परिणाम पासकता हे. ॥

६० **अपेक्षासे** ही **एक करके अनेक.** अर्थात् उपादानोंकी अनेकता हो तो, एक निमित्त करकेभी अनेक कार्य होना संभव हे.॥

६१ निमित्त अनेक हों वा एक परंतु **नाना** उपादानोंसेही **नाना** कार्य होना संभव हे. ॥

६२ **दो** कभी **एक** नहीं होते ओर **नएक** कभी **दो** होसकतेहें.॥

६३ **कारणविन** (उपादानादि*कारणके विना) **न कार्य** (कार्य नहीं होता). ॥

६४ **साधारणादि कारणदो** अर्थात् कारणमात्र साधारण ओर असाधारण-दो प्रकारके देखतेहें.॥

६५ साधारण असाधारण—यह प्रत्येक कारण **तीन वा दो** प्रकारके होते हें. अर्थात् उपादान (समवायि—परिणामी), असमवायि ओर निमित्त—यह तीन, किंवा परिणामी, निमित्त ओर निवर्त्तक य

*यह पद अधिकरणके उत्तर सूत्रोंसे लिया गया हे.

ह तीन, अथवा उपादान ओर निमित्त–यह दो. ॥

६६ पूर्वोक्त कारण **कार्यसे पूर्वही** होते हैं. ॥

६७ उपादानादि–कुछभी भाव रुप पदार्थ **होवे तभी** उपादेय–परिणाम–अवस्थादि कार्य **होता है.** कुच्छ न हो तो–अर्थात् अभावसे भावरुप कार्य नहीं होता. ॥

६८ जिस कारणसे जो कार्य कभीभी हो– **उस** कारणमें पूर्वही **उस** कार्यकी **योग्यता** ओर **अधिकरणता नित्य** होती हे. जेसे संयोगीमें संयोगकी होती हे. ॥

६९ जो कारणमें [जिनकी] योग्यता ओर अधिकरणता **हे,** उनका **उपयोग** संयोग–इच्छादि **निमित्त** ओर सृष्टि **नियमसे** होता हे . यथा ओक्षिजन हाईड्रोजनके नियत संयोगसे जलरुप कार्य होता हे. ॥

७० जिस सत्तादि प्रकारका **उपादान** होता हे, तद्वत् (वेसा ही) उसका **कार्य**–उपादेय होता हे, अन्यथा नहीं. ॥

७१ **न भिन्न** अर्थात् अपने उपादानसे भिन्न अधिकरणमें कार्य नहीं होता ओर न रह सकताहे.।

७२ अपने उपादानसे **न इतर गुणसत्तावाला** कार्य होताहे.॥ ओर न भिन्न स्वरुप होता **हे.**

७३ उपादान **कारणके नाशसे कार्यका नाशही** (अवश्य नाश) होजाता हे. ॥

७४ **इसके** (कार्यके) **अभावसे** (नाशसे) **उसका** (उपादानका) नाश **नहीं** होता. ॥

७५ उपादान उपादेय **न परस्पर आश्रय** आश्रित भाव रखते हैं ओर न व्यापक **व्याप्य** भाववाले होते हैं.

७६ **निमित्त** कारण, कार्यसे **भिन्न** होताहे, **करणवत्.**–अर्थात् जेसेकि घटकार्यका कुलाल निमित्त कारण दंडादि समान घटसे भिन्न हे. ॥

७७ निमित्त कारण अपने कर बने हुये **कार्यके नाश होनेमें निमित्त हे भी** ओर निमित्त नहींभी होता हे. ॥

७८ **साकार** कार्यका **निमित्त** कारण **निराकार संभव** हे. **न उलटा.**–अर्थात् निराकारका साकार निमित्त नहीं होता. ॥

---

६८ कीट–लटसे भ्रंग होजाना ६८–६९ समान जानना चाहिये.

७९ निराकार-पर रहित-विभु किसीकाभी **उपादान नहीं** हो-सकता. ॥

८० उपादान ओर निमित्त कारणसे इतर-**असमवायी** कारण **मंतव्यभी.** अर्थात् तीसरा असमवायी कारण मानने न माननेमें लाभ हानी नहीं हे. ॥

८१ **अभिन्न निमित्तोपादान** (एकही स्वरूप एक देशकालमें एकही कार्यका निमित्त ओर उपादान-उभय कारण होने) **की असिद्धि** हे. क्योंकि उभयके स्वरूप भिन्न होते हें. ॥

८२ उपादान **कारण स्वकार्यका अविषय** होता हे. अर्थात् कार्य, कारणका विषय (जानना) नहीं कर सकता. ॥

८३ अपने कार्यसे उपादान कारण **न्यून नहीं** होता. ॥

८४ स्वरुप स्वरुपज-पदार्थ मात्रका **परिमाण अण्वादि** (अणु, विभु वा मध्यम-इन) **तीन**से इतर प्रकारका नहीं होता ॥

८५ जो परमाणु सिद्ध वस्तु हो तो, वे-**परमाणु गोल** होने चाहियें. ॥

८६ **सब** परमाणु **सजातीय नहीं**, किंतु विजातीयभी हें. ॥

८७ परमाणुओंका मूल स्वरुप **अखंड** ओर **निरवयव**-अलचकी, परिच्छिन्न होना चाहिये. ॥

८८ जेसे आकाशका स्वरुप कल्पनामें नहीं आता, वेसे परमाणुका निरवयव स्वरुपभी **कल्पनासे पर** हे-बुद्धिमेंभी नहीं आता. ॥

८९ **व्यापक** कभी **परिच्छिन्न नहीं** होता-ओर **उलटाभी** अर्थात् परिच्छिन्न-सपर-कभी व्यापक नहीं होता. ॥

९० **अणु** ओर **विभु** परिमाणवाले **स्वरुप** सर्वदा **अलचकी** (संकोच विकोच रहित) होते हें. ॥

९१ **मध्यमद्विधा** अर्थात् मध्यम परिमाणवाले स्वरुप लचकीही होते हें, परंतु कोइ अलचकीभी हो, एसी संभावना कल्पनामें हे. ॥

९२ मध्यम परिमाणवाला **अलचकी स्वरुप अप्रसिद्ध** हे. ॥

९३ **मध्यम** परिमाणवाला स्व-

---

८१ मकडीके जालेका उपादान मकडीका शरीर हे ओर निमित्त जीव हे.

रूप, **जन्य** (संयोग वियोग ज-न्य-सादिसांत-**स्वरुप**ज) होता हे. ॥

९४ **विभु** परिमाणवाले **स्व-रुपमें न क्रिया** (गति–कर्म) ओर **न वजन** (गुरुत्व) होता हे.॥

९५ **अन्य** (अणु ओर मध्यम परिमाण स्वरूप) **में** क्रिया ओर गुरुत्व–**दोनों** होते हें. ॥

९६ दो **विरोधि धर्म एक** अधिकरण (देशकाल स्वरुप) वर्त्ति वा एक वस्तु**में नहीं** होते. ॥

९७ अपने किसी देशमेंभी विरोधिके **असंयोगका** (संयोग न होवे, एसा) **नियम नहीं** हे. ॥

९८ **नित्य वा अनित्य संयोगसे इतर** अन्य कोइ **साक्षात् संबंध नहीं** हे. ॥

९९ गतिवान् व्याप्यका **व्यापकसे** व्यापकके साथ समवाय संयोगसे **भिन्न** प्रकारकाभी संबंध माना जासकता हे. यथा गतिवान परमाणु ओर अटल नभका होतेभी होता जाता हे इ. ॥

१०० **क्रिया गुणवानकी** तिसके क्रिया वा गुण विन **न सिद्धि**–उपलब्धि नहीं होती. ॥

१०१ **कार्य, कारण ओर साधनसे** क्रमशः **कारणादि**[कारण, कार्य, साध्य] **की** अनुमान के नियम पूर्वक **सिद्धि** होसकती हे.॥

१०२ **अन्वय व्यतिरेकसे योग्यता, अयोग्यता ओर कारणताकी** सिद्धि–अनुमिति होसकती हे. ॥

१०३ पूर्वोक्त रीतिसे जो सिद्ध सो **परीक्षासिद्ध** ओर **अनुभवगम्यहोनेसे** माननीय हे. ॥

१०४ व्याप्यविना **परिशेष** अनुमानसे **परोक्ष शेषीकीभी** सिद्धि होजाती हे. यथा शब्दको क्रियावान जानके उसके आश्रयकी परोक्ष अनुमिति होती हे. ॥

१०५ लक्ष्य–वस्तु सिद्धिकी **निर्दोषता असाधारण** लक्षण **वा अनेक** एसे लक्षणोंसे कि जिनका समूह अतिव्याप्ति, अव्याप्ति ओर असंभव दोषवाला न हो–उनसे होजाती हे. ॥

१०६ ज्ञेय वा **विषय,** किसी ज्ञाता वा विषयीका **विषय होने योग्य** हे. ॥

१०७ **हुया** (जो होचुका) **अनहुयेवत्** (जो हुवाही नहीं तिस जेसा) ओर **होतव्य** [सृष्टि नियमानुसार होनेवाला] **न अहोतव्य** (न होनेवाला जेसा) नहीं हो

ता (व्यवहारका विषय नहीं होता).॥

१०८ जो होचुका हे सो नैसर्गिक [सृष्टि वा कुदरती] नियमसे जेसा होना चाहिये था वेसाही हुवा हे, **अनहुवा** (न होने योग्य) **न हुवा** हे, इसी प्रकार जो सृष्टि नियमसे होनेवाला हे-सो **अहोतव्य** (नहीं होने योग्य) **न होतव्य** नहीं होने योग्य हे, एसा नहीं हे; किंतु होने पीछे पूर्वोर्ध वाक्यवत् विषय होगा.

१०९ **"हे सो नहीं ओर नहीं सो हे"** एसा नहीं हे. अर्थात् "हे सो हे," उसे ना ओर "नहीं हे सो नहीं हे," उसे हा नहीं कहसकते. ॥

११० जो (नित्य)भावरूप हे **उसका** कभी **अभाव** ओर जो **अभावरूप** हे **उसका** कभी **भाव नहीं** होता. ॥

१११ **कालांत देशांत**-जिसका कालसे अंत उसका देशसे भी अंत होता हे. ॥

११२ **हुवा** (जो न होकर हुवा-ओर होकर न रहा हो) **सोही फेर नहीं** होता. ॥

११३ पूर्व **हुये जैसा** कार्य होना **संभव** हे. ॥

११४ पदार्थके गुण, कर्म, स्वभावकी **परीक्षा कियेविना,** जीव द्वारा उसका **न योग्य उपयोग** अर्थात् यथायोग्य उपयोग नहीं होसकता. ॥

११५ **गुणादि-*स्वाश्रय-**गुण्यादिसे **व्यतिरिक्तवर्त्ति नहीं** अर्थात् अतिरिक्त देशमें नहीं जाते, नहीं होते ओर न रहते हें. ॥

११६ **पदार्थकी सिद्धिमें ज्ञानकी अपेक्षा** हे, **न इस** (ज्ञान-सिद्धि)**में उस** (ज्ञेय)**की**. ॥

११७ परंतु ज्ञानको ज्ञेयकी "व्यवहारमें अपेक्षा" हे, अन्यथा ज्ञान व्यवहार असंभव हे. **तद्वत मिथ्या ओर सत्य**. अर्थात् मिथ्यात्वकी सिद्धिमें सत्यकी अपेक्षा हे. परंतु सत्यके प्रकाश होनेमें मिथ्याकी अपेक्षा नहीं; तथापि सत्यत्व नामसे जो व्यवहार होता हे, सो मिथ्याकी अपेक्षासे होता हे; अतः व्यवहारविषे सत्को सत्की अपेक्षा मानी जासकती हे.॥

११८ नित्य हो वा अनित्य,

१११ देश काल पदका प्रयोग सिद्ध दृष्टिसे नहीं, किंतु व्यवहार दृष्टिसे हे. अन्यथा कथन श्रवणही नहीं बनता.

*संज्ञा वांचो.

परंतु 'हे' सो अस्तित्वविशिष्ट अस्तित्व मय एकही हे÷ अर्थात् वही अन्य भावसे वस्तुतः नहीं हो सकता. ॥

११९ झूठ नानामी. अर्थात् झूठकी रचना वा आकारके वाच्य (विषय) नहीं होते हुयेभी एक वा अनेक प्रकारसे अस्तिवत् कल्पना के विषय होजाते हैं.÷ ॥

१२० उक्त (झूठ)से सत् अप्रतिपाद्य हे ॥

१२१ सत्यमे आवरण (असत्)का भंग होजाता हे. ॥

१२२ असत्मे असत्के आवरणका भंग होना संभव हे (यथा-कल्पनासे कल्पना, रज्जु सर्पमें जलधाराका दर्शन वा इष्ट गणितमें कल्पनासे कल्पनाका अभाव होजाता हे). ॥

१२३ जीवोंके क्रिया-ज्ञान(दोनों)का समकालत्व (दोनों एककालमें होना) उनकी दृष्टिसेभी देखते हैं. ॥

१२४ परंतु वास्तवमें एकमे एक देशकालमें न दो कार्य. अर्थात् एक जीव एक कालमें दो कार्य नहीं करसकता, एसा नियम हे.

१२५ जो ज्ञान वा क्रियाका क्रम विचारके देखें तो शतावधान भी भिन्न भिन्न कालमें होते हैं. (अज्ञोंकी दृष्टिसे समकाली हैं.)

१२६ निरपेक्ष क्षणिक स्वभाववालेमें स्मृति वा उसकी स्थितिका अभाव हे. ॥

१२७ वेसेही स्मृतिवान्में क्षणिकत्व धर्मका अभाव ज्ञातव्य हे.॥

१२८ विभु (अपरिच्छिन्न-निराकार) अगोचर हे, तद्वत् तद्भिन्न (अर्थात् साकार, परिच्छिन्नोंमें) अगोचरभी हैं, सारांश यह हे कि परिच्छिन्न पदार्थ गोचर ओर अगोचरभी होते हैं. ॥

१२९ रूपरहित अपरिच्छिन्न नहीं होता हे परंतु रंगरहित परिच्छिन्नभी होता हे. सारांश-अपरिच्छिन्न, रूप रंग रहित ओर परिच्छिन्न, रूपवान ओर रंगसहित तथा रंगविनाकाभी होता हे यथा-नभ परमाणु, रंग, प्रकाश वा आकर्षणादि.

१३० अनादि वा सादि-कोईकी भी अन्योऽन्याश्रयता मानना दोष हे; क्योंकि असिद्धि हे. ओर न

÷यथा जीवके स्वरूपमें परस्पर विरोधी मत हैं; परंतु वास्तवमें तो एकही प्रकारका हे. अतः नाना पक्ष अमान्य हैं. ११८. ११९.

संभव हे. ॥

१३१ **न सिद्ध अनवस्थादि.**– प्रमाण सिद्ध-यथार्थ–अनवस्था, आत्माश्रयतादि दोष नहीं. जेसेकि मूल स्वरूपोंके पूर्व पूर्व संयोग वियोग-का प्रवाह निर्दोष हे–यथार्थ हे. परंतु अप्रमाणता वा अव्यवस्था हो तो अनवस्थादि दोष हे. ॥

१३२ वस्तुतः स्वस्वरूप अभेदत्व ओर अधिकरण भेदकी विलक्षणतासे कोइ किसीके समान नहीं हे; तथापि व्यावहारिक दृष्टि (नियम)से **सजातीय ओर सादृश्यकी समानताभी** कही जाती हे.॥

१३३ **पूर्ववत् देशकी अपेक्षा.** (स्वरूपमात्र जहां तहां, जब तब अपनी सीमा-क्षेत्रफल पाने योग्य होताहे.)

१३४ **कारण कार्य सापेक्ष** होते हें. अर्थात् कार्यको कारणकी, निमित्तको उपादानकी ओर उपादानको निमित्तकी अपेक्षा होती हे.॥

१३५ **यदितद्** (कारणत्व कार्यत्व भावसे) **भिन्न** कोई होतो वो ह **अनादिसे स्वतंत्र, असंग** होने योग्य हे. ॥

१३६ हरेक परिच्छिन्न पदार्थकी एक उपयोगसे **निवृत्ति** ओर उपयोगकी **पूर्णता** (अवधिरूपसे उपयोग) **स्वभावसे** होती रहती हे. (अर्थात पदार्थके गुणकर्म कहीं एक उपयोगमें आरहे हें, वहांसे वोह पदार्थ निवृत्त होके उसके गुणकर्म सहित दुसरे उपयोगमें आता रहता हे. एसा नैसर्गिक नियम हे). ॥

१३७ **जडमात्र** केवल **स्वयं हलाहल** (आप गति करने ओर ठेरने)**में असमर्थ** हे.–समर्थ नहीं.॥

१३८ **मूर्त्तमान** (परिच्छिन्न पदार्थ)**में गति** होती हे, **न अमूर्त्तमें.** ॥

१३९ पूर्वोक्त गतिको कर्म, शक्ति, वा अवस्था वा कुछभी मानो परंतु **योग्यता, अयोग्यतासे** होना न होना हे. यथा–कर्म करने योग्य मूर्त्त पदार्थमें गति स्वभावसे हे ओर अमूर्त्तमें गतिकी योग्यता नहीं; किंतु अयोग्यता हे, तथा

---

१३२ सर्प सर्प, खिजुर–छुहारा का वृक्ष, इत्यादि,

१३५ सफल (सू. ३६)के विरुद्ध हे. परंतु दृष्टि [सू. १९] पर ध्यान दो. किसीकी दृष्टिसे कथन हे.

१३६ यथा द्रव्यकी छत वा न्यूनाधिकताका क्रम देशोंप्रति बदलता रहता हे–वर्त्तमानमें आर्यावर्त्त कंगाल, यूरोप धनवान हे.

देशकी प्राप्ति नहीं है; इसलिये वोह गतिवान् नहीं. ॥

१४० जिसमें गतिकी योग्यता है उसकी क्रियाका, **निमित्त** विशेषसे **होने** वा **न होनेका नियम** है.।

१४१ गति **देश अपेक्षावाली** होती है. देशके विना नहीं होती.॥

१४२ गति **वेगजनक नहीं** होती, किंतु वेग होनेमें अन्य गुरुत्वादि कारण हैं. हा–गति, वेगअवस्थाका निमित्त कारण मान सकते हैं. ॥

१४३ दोके **टकरानेसे (गति)** होती है. ॥

१४४ जब एकके धक्केसे दूसरेमें गति होती है वहां **न बलका बदल** अर्थात् पूर्ववालेका बल दूसरेमें नहीं जाता; किंतु दूसरेके बलादि उसकी गतिके हेतु हो जाते हैं.

१४५ धक्का देनेवालेके तटस्थ रहने कालमें दूसरेके **अन्य** बलादि **निमित्तोंसे** दूसरेमें गत्यादि कार्य होते हैं. ॥

१४६ तुल्यबल होनेपर **संयोग स्थितिसे** (संयोगकी स्थिति पश्चात्) गतिरुप कार्यका **अभाव** होभी जाता है ॥

१४७ कोई गतिकाभी **अन्यमें बदल नहीं** होता. ॥

१४८ यदि कोई निमित्तविशेष न होवे तो **हलके** पदार्थ ओर भारी पदार्थकी **गति विरुद्ध देश** [हलकेकी उपर ओर भारीकी नीचे देश]में होती है. ॥

१४९ **एक** (परमाण्वादि) पदार्थकी **क्रियासे अनेकमें** गति होजाती है. ॥

१५० क्रिया, **करण** (साधन)से **साध्य** होती है. ॥

१५१ **उस** (गति–क्रिया)**विन न संयोग**–(संयोग नहीं होता).॥

१५२ एक **अधिकरणमें एकही** संयोग होता है. ॥

१५३ संयोगियोंका संयोग **अव्याप्यवृत्ति** होता है, अर्थात् उन संयोगियोंके एक देशवर्त्ति होता है, सर्व देशमें नहीं. ॥

१५४ संयोग **आश्रयों** (संयोगके उपादान उभय संयोगी) **के** प्रत्यक्ष हुयेविना **अप्रत्यक्ष** रहता है.

१५५ **तद्वत् गति**. अर्थात् गतिवान्के प्रत्यक्ष हुयेविना अप्रत्यक्ष रहती है. ॥

१५६ **द्रव्य गुणवत् कर्मका वैधर्म्यत्व नहीं** है. अर्थात् द्रव्यादि सामान एक कर्म (गति) ओर

दूसरे कर्ममें वैधर्म्यत्व नहीं हे.* ||

१५७ **गुणादिका उपयोग** अनेक **निमत्त** ओर उनके तथा सृष्टिके **नियमसे** होता हे. ||

१५८ आप–**गुण** किसीका **आधार नहीं** होसकता. ||

१५९ **आकर्षणमें** स्वतंत्र न **पराश्रयत्व** ओर **न नियामकत्व** शक्ति वा धर्म हे, किंतु वोह पराश्रय होता हे. ||

१६० वेसेही **विद्युत्‌मेंभी** पूर्वोक्त उभय योग्यताका अभाव हे.||

१६१ तद्वत् **शेषा** (इथर)**मेंभी** ज्ञातव्य हे. ||

१६२ **कर्म** (गति-शुभाशुभ क्रिया) में पराश्रयत्व ओर नियामकत्व नहीं हे, इतनाही नहीं, किंतु उसमें **अनाधारत्वभी** नहीं हे. अर्थात् पराश्रितही होता हे. ||

१६३ कर्म समान **शक्ति** ओर **धर्ममेंभी** जानलेना चाहिये. ||

१६४ कर्म समानही **स्वभावमेंभी** समझलेना. ||

१६५ **खंडित खंडन नहीं करता.** यथा कार्यका निमित्त न मानके कार्योत्पत्तिमें निमित्ताभावही निमित्त मानना, यह खंडित बात हे, इससे अन्य निमित्तोंका खंडन नहीं होता-इत्यादि. ||

१६६ **न कार्यकी स्वयं उत्पत्ति**. (कार्यमात्रकी स्वतः उत्पत्ति नहीं होती.) ||

१६७ **न अभावादि** (अभाव, शून्य वा असत्-इन कोई)**से कार्यकी** उत्पत्ति होती हे. ||

१६८ **न** अकेले **निमित्त** (कारण) **वा** अकेले **उपादान** (कारण) **मात्रसे** कार्यकी उत्पत्ति होती हे. ||

१६९ **न नाशसेही** कार्यकी उत्पत्ति होती हे. अर्थात् कोई घटादि पदार्थका नाशही अन्य घट शरावादिकी उत्पत्तिरूप नहीं होता.

१७० किंतु पूर्वघट कुंडलादिके नाश हुये पश्चात् न्यूनाधिक न हुये उनके उपादानसे जो दूसरे घट कुंडलादि उत्पन्न होते हें, उनकी **पूर्वकेही उपादानसे** उत्पत्ति होती हे; पूर्वके नाशमात्रसे नहीं.

१७१ **न असत्‌की सत्‌से** उत्पत्ति होती हे. ||

१७२ **न असत्** (शून्य, न वाच्य]**की असत्‌से** उत्पत्ति होती हे.

---

*वायु ओर पृथ्वी द्रव्य हें परंतु उनमें वैधर्म्यत्वभी हे. कर्मत्व, सर्व गतिमें समान हे.

१७३ न सत्‌की असत्‌से उत्पत्ति होती है. ॥

१७४ उत्पत्ति रहित सत् कहा मानेसे **सत्‌की उत्पत्ति** कहना, मानना **व्याघात** दोषयुक्त है. ॥

१७५ **उत्पत्ति नाशवाला तिस**की [अपनी] उत्पत्तिसे **पूर्व** ओर नाशके **उत्तर न सत् न सदसत्**का वाच्य होसकता है ॥

१७६ वेसेही पूर्वोक्त विशेषणवालेको उत्पत्तिके पीछे ओर नाशसे पूर्व अर्थात् **मध्यमें न असत् न सदसत्** कह सकते हैं. ॥

१७७ मूल संयोगी पदार्थोंकी **संयोग वियोगरूप अवस्थाही उत्पत्ति** [संयोगरूप अवस्था]ओर **नाश** [संयोगका वियोग होनारूप अवस्था] जानना चाहिये. अर्थात् कोईभी पदार्थ नवीन उत्पन्न वा नाश नहीं होता. ॥

१७८ **गति**[कर्म ओर उसका कार्य संयोग], द्रव्यादि समान स्वयं **कोई पदार्थ नहीं है, परंतु** गतिवानकी देश—स्पर्शास्पर्शरूप [वा देश अस्पर्शरूप] **अवस्था** है.॥

१७९ **कर्मसे** संयोग वियोगसे इतर, **न अन्य**-द्रव्यादि कार्य होतेहैं.

१८० कार्यरूप **द्रव्यका** मूल **द्रव्य** ओर कार्यरूप **गुणका** मूल **गुण उपादान** होता है. द्रव्यका गुण ओर गुणका द्रव्य, उपादान नहीं होता. ॥

१८१ द्रव्यके **गुणोंका संबंध, द्रव्योंके संयोगसे भिन्न** [अन्य] **नहीं** होता. ॥

१८२ **अवयव** ओर **अवयवी अभिन्न** होते हैं. यथा घटके उपादान रजकण ओर उपादेय घट है. उनकी भिन्नता मानना व्यवहार वा कथनमात्र है. ॥

१८३ अवयव अवयवीका **आश्रय आश्रितभाव नहीं** है. यथा शरीर ओर पद वा शिर हैं. परंतु व्यवहारमें अवयवी आश्रय,अवयव आश्रित मानते हैं.सो कल्पनामात्र है.

१८४ **एक** [एक अवच्छेदक] **में एक काल विषे दोकी अनुत्पत्ति.** ॥

---

१८० पदार्थोंके विभाग जनाने वास्ते पदार्थ विशेषोंके नाम द्रव्य वा गुण संज्ञा[नाम]है. यथा पृथ्वी द्रव्य है—गंध गुण है; जल द्रव्य है, शीत गुण है. कोई इस मंतव्यसे अन्यथा मानता है. जिसे एक पक्षकार गुण कहता है उसीको दूसरा द्रव्य कहता है. इत्यादि.

१८५ **संयोग** वा **शब्दादिवत्** (यथा एक देशमें दो संयोगकी उत्पत्ति नहीं और एक ध्वनिमें उसी काल विषे अन्य शब्द नहीं होते)

१८६ स्व उपादानसे **अन्य** उपादेय होनेमें विद्यमान **उपादेय** [अवस्था] **प्रतिबंधक** होता है. यथा कुंडल होवे तबतक उसी कनकका कंगन नहीं होता. ॥

१८७ जितने **परिणाम, अवस्था, और असरजन्य**—कार्य होते हैं वे **न नवीन पदार्थ** हैं और न नवीन स्वरूप हैं; किंतु मूल स्वरूपोंकीही रचनाविशेष हैं. जैसे दूध, छाछजन्य दही और ओक्षिजन हाइड्रोजनादिजन्य शीत स्वादवान जल हैं—यह नवीन पदार्थ नहीं हैं. ॥

१८८ **जाति देशकाल भेदसे अवस्थाके प्रकार** होते हैं. यथा—पुत्रजन्य वा द्रव्यजन्य सुख, सजातीय हुयेभी विलक्षण हैं. एक ही नीलरंग देशकाल बदलनेपर गहरा, फीका वा अन्यथा जान पडता है. ॥

१८९ **सज्ञान विषय** (विषय और विषय ज्ञान) **का समकाल उत्पत्ति नाशभी** होता है. यथा स्वप्नमें सर्वको गम्य है. ॥

१९० एक **ज्ञानसे** दूसरे **ज्ञानका बाध** होजाता है. ॥

१९१ **उपादेय स्वोपादानविरोधि नहीं** होता. ॥

१९२ हरकोई पदार्थके **उत्पत्ति, स्थिति** और **नाश तिन क्षणसे न्यूनमें नहीं** होते. ॥

१९३ **परिणामीके नाशसे परिणामका नाश** होजाता है **न कि विपरीत**—अर्थात्—परिणामके अभावसे परिणामीका अभाव नहीं होता. ॥

१९४ कोईभी सावयव पदार्थका जब नाश (वा रुपांतर) होता है, तब एक क्षणमेंही नहीं होता; किंतु उसका **नाश क्रमसे** होता है. ।

१९५ **प्रमा** [ज्ञानस्वरूप] **का खंडन** (निषेध) **नहीं** होसकता.॥

१९६ **खंडन प्रमेय** [ज्ञानका विषय] **होजानेसे.** ॥

१९७ तद्वत खंडनका साधन होनेसे **करणकोभी** खंडन नहीं होसकता. ॥

१९८ **स्वतःप्रमाण** [प्रामाण्य] **का प्रमाण नहीं**; क्योंकि विषयकी प्रतीति, प्रमाकी सिद्धि, स्वयंप्रकाशकी आपत्तिसे स्वतःप्रमाणसिद्ध **है.** त

थाही अन्योऽन्याश्रय दोष आने और उसके अनुमानकी व्याप्ति माननेमें अनवस्थादि दोष प्राप्त होनेसे उसका प्रमाण नहीं माना जासकता. ॥

१९९ **परतः** प्रमाण, प्रमाण (ज्ञानका साधन होते हुयेभी **तद्वत्** (स्वतःप्रमाण समान) प्रमाण **नहीं** होसकता हे. ॥

२०० **करण अपना करण** [अपने ज्ञानका साधन] **नहीं** होसकता. ॥

२०१ केवल **प्रमेयकोंभी** अपने ज्ञान वास्ते करणता नहीं हे. ॥

२०२ **प्रत्यक्ष** प्रमाण **आपमें** [आप वास्ते] **प्रमाण नहीं** होसकता

२०३ तद्वत् **अनुमानादिभी*** अपने वास्ते आप प्रमाण सिद्ध नहीं होते. ॥

२०४ सहेज-केवल **प्रतीतिमात्र** विषय **आधार योग्य नहीं** होसकता. यथा रज्जुमें सर्प वा मृगजल वा रंगादिकी प्रतीतिमात्र आधार योग्य नहीं हे. ॥

२०५ **बहुवृत्ति मतमें यथार्थत्वका नियम नहीं** मान सकते. ॥

२०६ यथा प्रसंग **गौरव लाघवका बल योग्यतासे** लिया जाता हे. किसी एक गौरव वा लाघवको सबल, निर्बल **नहीं** माना जासकता. ॥

२०७ **प्रमाणोंकी संख्या** और उनके **स्वरूपका** वर्णन प्रमाण माननेवालेकी **दृष्टिसे** भिन्न भिन्न हें.—उनमे विवादभी हे. ॥

२०८ निर्दोष वृत्ति—मन—बुद्धि, इंद्रिय द्वारा अव्यपदेश, अव्यभिचारी जो उत्पन्न हुवा योग्यविषयका यथार्थ वा योग्य प्रत्यक्ष ज्ञान, उस ज्ञानका जो साधन सो **योग्य प्रत्यक्ष** प्रमाण (मनादिका विषय साथ सन्निकर्ष वा मनादि वा उनका परिणाम-इत्यादि) लोक प्रसिद्ध **व्यवहारमें*** **मान्य** होनेका नियम हे. ओर अन्य अनुमानादि सर्व प्रमाणोंका तदंतर [योग्य प्रत्यक्षमें] समावेश होजाता हे ॥

---

* अनुमान. शब्द, उपमान, अर्थापत्ति, अनुपलब्धि, चेष्टा, स्मृति, तुला—इत्यादि प्रमाण.

* सूक्ष्मदर्शी यंत्र ओर चक्षु, राजा ओर चर्मगर तथा पाचककी नाक त्वचा, तथा पशु पक्षी आदिकी इंद्रियों ओर मनुष्यकी इंद्रियोंके विषय-ज्ञानमें अंतर हे. अतः व्यवहार दृष्टिमें मान्य कहा हे.

२०९ **प्रत्यक्षका लिंगी होनेसे अनुमान** (परोक्ष प्रमाण)**भी** लोक व्यवहारमें मान्य हे. ॥

२१० **व्याप्य** [जिस लिंगसे÷ परोक्षलिंगीका÷ अनुमान होता हे–उस)के **ज्ञानद्वारा अनुमिति** की सिद्धि मान्य होती हे; **न अन्यथा** (मनमुखी–कल्पनामात्रसे नहीं). ॥

२११ साध्य–जिसको सिद्ध करना वा जिसका अनुमान होनेका हे–उस साध्यका **हेतु** (लिंग, व्याप्य) **व्यभिचार रहित सहचारी** हो (अर्थात् तादात्म्य संबंध वा अविनाभाव संबंध वा कारण कार्य भाव संबंधवाला हो)सोही अपने व्यापकका व्याप्य कहाता हे. जो व्यभिचारी हो उसे हेतु वा व्याप्य नहीं कहा जासकता. ॥

२१२ हेतु होते हुये नहीं जेसा जो हेतु भासता हे, सो **निरुद्ध** हेतु अनुमित्ति सिद्ध–अनुमित्ति ज्ञान होनेका **प्रतिबंधक** होजाता हे. यथा संध्या वा प्रातः कालमें सघन वृक्षोंविषे आग्नि हुयेभी धूम धुंध समान फेला हुवा होता हे, सो अग्निकी अनुमित्ति ज्ञान होने-अनुमान होनेका प्रतिबंधक **हे–निरुद्ध हेतु हे.** ॥

÷जहां अग्निका धूमद्वारा वा काचगत प्रतिबिंबद्वारा अनुमान हो वहां धूम वा प्रतिबिंब, लिंग-हेतु व्याप्य ओर अग्नि, लिंगी–साध्य–व्यापक कहाते हें.

२१३ साध्यका हेतु-साधक न-होता हुवा हेतु समान भासनेवाला हेत्वाभास×-**दूषित हेतु अयथार्थ** अनुमित्ति ज्ञान**का जनक** होता हे.यथा घनवृक्षोंमें वा अन्य स्थलमें धुंध देखके अग्निका अनुमान होना अयथार्थानुमान हे. ॥

२१४ रचित संकेत ओर प्रत्यक्षाधीन होनेसे **शब्द प्रमाण स्वतंत्र प्रमाण नहीं**. ॥

२१५ (शब्द प्रमाण) **न सर्वथा त्याज्य** हे. क्योंके अनुमानादिसे भिन्न **प्रमाण**रूप **होनेसे** अर्थात् व्यवहारका निर्वाहक-साधक हे; अतः **ग्रहण** योग्य **हे.** ॥

२१६ परंतु सो शब्द प्रमाण वक्ष्यमाण **मध्यस्थानुकुलही** ग्राह्य होता हे–अन्यथा विश्वासमात्र वा हानिकारक हे. ॥

२१७ यथार्थ **दृष्टश्रुतसे इतर**

×इनके भेद, लक्षण, उदाहरण मूल **ग्रंथ**में हें. ॥

कपोलकल्पित **मंतव्य अनुपयोगी** हे. ॥

२१८ **पदार्थ स्मृतिका हेतु संकेतभान** (कल्पित पदकी कल्पित वृत्तिसहित पद पदार्थके कल्पित संबंधका ज्ञान) हे **न** कि **संकेत** (पद) मात्र. ॥

२१९ वेसेही **शाब्दबोधका*** **हेतुभी** संकेत भान हे, एसा ज्ञातव्य **हे**. ॥

२२० वक्ताके **तात्पर्य** जाननेके **विना वा संदिग्ध** पद वा वाक्यसे **शाब्द बोध नहीं** होता.॥

२२१ **विशिष्टके वाच्यका न भिन्न ग्रहण, दुग्धवत्** (इस–समक्ष वर्त्ति क्षीर अर्थात् स्वस्वरूप संबंध सहित पृथ्वी जलादिके मिश्रणमें,-वे वा उनका स्वरूप दुग्ध पदसे इतर–भिन्न स्वरूप-नहीं माने जाते. परंतु जहां विशेष्य, विशेषण स्वरूपके विभाग जनादिये हों वहां यह नियम लागु नहीं पडता). ॥

२२२ जहां यौगिक वा रौढिक पद वा स्वाभिप्रायके लक्षणका वक्ताने स्पष्टिकरण किया हो, एसे **विवेचन हुये** कथन वा लेखमें कारण पूर्वक नाना **अर्थ होसकने** सेभी **व्याकरणकी बाहुल्यता वक्ता** के रहस्यकी **बाधक नहीं** होसकती. ॥

२२३ पदके अर्थ करनेके प्रसंगविषे **तबके** (जिसभावमें जिन पदोंको जिस कालमें रचा गया **है** उस कालके)**शक्यार्थ** (पद वा वाक्यका मुख्यार्थ) **होते** हुये पद की **लक्षणा** (भावार्थ) करना **वा** लेना **अमान्य** हे.-प्रसंगको **स्वी**-कारणीय नहीं होसकती **है**. ॥

२२४ तबके शक्यार्थ अनुसार अर्थ योग्यतामें **न** आता **हो** अर्थात् भावार्थ हो–वक्ताने भावार्थ रखा हो तो, प्रसंगानुसार अर्थात् **प्रसंगवशात् योग्यता** (आकांक्षा, योग्यता, आसति, ओर वक्ताके प्रयोजन बल)**से लक्षणा** कर्तव्य हे. मनमुखी रूपसे **नहीं**.॥

२२५ वाक्यार्थके अन्वय न होनेसेही लक्षणा करनेका नियम नहीं हे; किंतु वक्ताके **तात्पर्यानुपपत्तिकोभी** लक्षणाका **बीज** जानना चाहिये. ॥

२२६ **पदवत् चेष्टामेंभी** मुख्यार्थ ओर भावार्थ लिये जाते **हें**; परंतु सो अर्थ ओर भाव **उसके** (चेष्टा प्रकरणके) **नियमसे** लिये

*जेसे सत्संग पद श्रवणसे महात्मा ओर मंडली पदका बोध.

माते हैं; मनमुखी नहीं. ॥

२२७ शब्द वा चेष्टा—यह उभय **संकेतभान** (संकेताभ्यास) **मात्र होनेसे** अर्थात् शब्द वा चेष्टामें अर्थ वा अभिप्राय जनाने वाली अपनी वा अन्य किसीकी सामर्थ्य नहीं होती, किंतु कल्पित संकेत, संकेती संकेत संबंध भान का नाम शब्द वा चेष्टाकी शक्ति वा लक्षणा वृत्ति है. इसलिये मन माने अर्थ वा भाव नहीं लेसकते.

२२८ जिस प्रकारसे संकेतार्थ लेके निर्णय करते हैं वहां **सदोष** अर्थ होने वा दोष प्राप्तिपर **अन्य प्रकार** (प्रत्यक्ष—अनुमान-युक्ति—अनुभवादि)**से निर्णय** कर्तव्य है.—शब्द विवाद त्याग देना उचित है. ॥

२२९ ग्रंथमात्रमें प्रवर्त्तक-निवर्त्तक वाक्य अर्थात् कितनेक **विधिनिषिद्ध** बोधक वाक्य **देशकालानुसारभी** होते हैं. वे सर्व देशकाल वास्ते लागु नहीं होसकते. यथा—आपत्काल, शरीर ओर देश सोसाइटी[मंडली] संबंधी बोध बदलता रहता है. ॥

२२७ पहली प्रमाणका समाशे श शब्द वा चेष्टामें है.

२३० **निषिद्धका निषेधसेभी उपदेश** होता है. जेसे बाल यां प्रति अव्यभिचारीका कथन. ॥

२३१ प्रत्येकको **ज्ञातव्य, कर्तव्य** ओर **प्राप्तव्य** उसके **अधिकारपर** होता वा होसकता वा होतव्य है वा सफल होता है. ॥

२३२ अन्यथा नहीं-अर्थात् वर्त्तमान प्रचलित **रौढिक वर्णाश्रमादि**. जाति, पुरुष, स्त्री, वीर्य मंडलीविशेष, निश्चय, विश्वासादि मात्रपर **नहीं**. ॥

२३३ **अपूर्व वाक्यादिवत्**-(जेसे अपूर्व वाक्योंका फल उसके अधिकारीसे इतरको नहीं होता.-बधिरको शब्द ओर अंधको रूप का ज्ञान नहीं होसकता. तद्वत् ज्ञातव्यादि गुणकर्म स्वभावरूप अधिकारपर प्राप्त होने योग्य हैं. मंडली वा स्वपंथमात्रपर नहीं. ॥

२३४ **गुणादि** (शुभाशुभ गुण, कर्म, स्वभाव) प्राप्तिके **संस्कारादिचार** (संस्कार, रजवीर्य, संग संबंध ओर जीव स्वभाव) **मुख्य कारण** होते हैं. ॥

२३५ **शब्दमात्रसे निर्णित आधारयोग्य नहीं** होसकता. ।

२३६ विषय (वाच्य)**के अ**·

भावमें जो शाब्द बोध होता है, सो भ्रमरूप होता है. ॥

२३७ सदोष (छल, जाति, व्याघात, असंभवादि, दोषवाले) वाक्य प्रमाण नहीं माने जाते.

२३८ प्रत्येकका सत्य वाक्य आदरणीय है. ॥

२३९ असत्य, अयथार्थ वा संशयात्मक किसीका वाक्यभी आदरयोग्य नहीं होता. ॥

२४० सत् पद–चेष्टा–वा सत् व्यवहार विना न जीवन (जीवन नहीं होसकता.) ॥

२४१ किसीको एक सत्यकाति से उसकी सर्वथा प्रमाणता ओर किसीकी एक असत्यतासे उसकी सर्वथा अप्रमाणता नहीं मानी जाती. ॥

२४२ शाब्द, अनुमान वा प्रत्यक्षके अंतर्गत उपमान प्रमाणका समावेश करते हैं; तथापि उनसे उपमान प्रमाण भिन्नभी माना जाय तोभी अयोग्य नहीं है; क्यों कि किसीके उपदेशविना दो (खिजुर ओर छुहारेके वृक्ष) का साधर्म्य ज्ञान वा साधर्म्यत्व, उपमिति ज्ञानका साधन हो पडता है. ॥

२४३ अर्थापत्ति प्रमाणका अनुमानादि प्रमाणमें समावेश करते हैं; तथापि अर्थापत्तिको उनसे भिन्न प्रमाणभी मानें तोभी अयोग्य नहीं है. ॥

२४४ यद्यपि स्मृति प्रमाण माननेमें बहुधा पक्षकार उदासीन हैं; तथापि स्मृतिभी भिन्न प्रमाण मानें तोभी अयोग्य नहीं है. ॥

२४५ यद्यपि कितनेक पक्षकार चेष्टाको भिन्न प्रमाण नहीं मानते तथापि चेष्टाकोभी भिन्न प्रमाण माना जाय तो, अयोग्य नहीं है; किंतु २२६–२२७ सूत्रवत् व्यवस्था होजाती है(देखो बालक, गूंगे ओर तारादिकी चेष्टा तथा मधमाखी प्रबंध.) ॥

२४६ अभाव प्रमाण विवादित है. कोई अभावको वस्तुही नहीं मानता. ओर जो पक्षकार इसे प्रमाण मानते हैं–उनमें कोई अनुमान कोई प्रत्यक्षके अंतर मानते हैं ओर कोई भिन्न प्रमाण कहता है.

२४७ यथार्थ संभव प्रमाण अनुमानसे भिन्न सिद्ध नहीं होता.

२४८ ऐतिह्य प्रमाणभी यदि

यथार्थ बोधक हो तो, शब्द प्रमाणके अंतर्भूत हे. ॥

२४९ मान (देशमाप, कालमाप, वस्तुमाप—गुरुत्व,को प्रमाण मानें तोभी देशमापका प्रत्यक्षके अंतर कालमापका समावेश प्रत्यक्ष वा अनुमानके अंतर, और गुरुत्व का अनुमानके अंतर समावेश होता हे. किंवा यह कल्पित_साध्य—होनेसे निश्चित प्रमाणरूप नहीं. ॥

{ पूर्वोक्त तमाम प्रमाणोंका समावेश परोक्ष, अपरोक्ष—इन दोमें होता हे. अनुभव इनके आधिन हे; परंतु जडजरूपसे स्वतंत्रहे; अतःउसको प्रमाणपद नहीं देते. किसीने इसकोभी प्रमाण माना हे. }

२५० उद्देशादि (उद्देश, तटस्थ—स्वरूप लक्षण, और प्रमाणादि) सहित (युक्त) और अतिव्याप्तिआदि (अतिव्याप्ति, अव्याप्ति, और असंभव) दूषण रहित ही विषय लक्षण मान्य होसकता हे. ॥

२५१ प्रत्यक्षादिसे एक वा नेक—कितनेभी प्रमाण और उ का कैसाभी स्वरूप लक्षण मान परंतु विषय—प्रमेयके स्वरूप यथार्थ निर्णय मध्यस्थ द्वारा रीक्षा होनेसे होसकता हे. ॥

२५२ अकेले प्रत्यक्ष वा अनु न वा युक्ति वा अनुभव वा अ में दोषकी आपत्ति होजाती अतः इष्ट निर्णय वास्ते यह च अर्थात् "प्रत्यक्ष, अनुमान, यु (साथ) वा सृष्टि नियम, बुद्धि इंद्रिय साथ अनुभव" मध्यस्थ रनेसे (मनुष्यकी सीमा तक) य र्थ निर्णय होजाता हे. ॥

२५३ निर्दृष्टांत विषय न होता, उसके साधर्म्यत्व, वैधर्म्य का कोई न कोई भाग दृष्टांत योग्य अवश्य होगा. ॥

२५४ दृष्टांत एक भागमें ग्रहण होता हे. ॥

२५५ परंतु दृष्टांतका ग्रहण ग्यतामें होता हे. सर्व दृष्टांत स्थलमें नहीं लगाये जासकते.

२५६ दूषित दृष्टांतका अ कार हे. किंतु यथार्थकाही कार होता हे. ॥

---

२५० जिसका उद्देश होसकता हो. जो दूसरेसे भिन्न अपनी वा अपने लक्ष्यकी सिद्धिके योग्य हो, और असंभव न हो. सो लक्षणादि विषय मान्य होसकता हे.

२८७ जो दृष्टांत **विकल्पमात्र** वा साध्य (अनिर्णित) **रूप** हो उसकाभी स्वीकार नहीं किया जाता.

२९८ **योग्यादियों** (योगी, इंद्रजाल, सृष्टि नियम विरुद्ध देखाने मात्र चमत्कार)का अन्यथा उदाहरण भी स्वीकारना नहीं चाहिये. ॥

२५९ **अनुवृत्त्यादिवत्** (जेसे योगी अनुवृत्ति अवस्थामें आकर्षण–ओरा–विद्युत् ओर संकल्प करके अर्थशून्य अन्यथा अर्थ विषय करा देते हैं. वा इद्रजालीभी चालाकी वा लागादिकसे अन्यथा देखा देते हैं.–वेसे उदाहरण मान्य नहीं होते). ॥

२६० एक पक्षकारको संमत वा साध्यरूप दृष्टांत दिया जानेपर जो आक्षेप होवे तो, **अन्य** (दूसरा सिद्ध वा उभय संमत दृष्टांत) देनेपर पूर्व **आक्षेपका त्याग** करना पडता हे. अर्थात् निर्णय रूप वाद प्रसंगमें उक्त अवस्थासे निग्रहकी प्राप्ति नहीं माननी चाहिये.

२६१ **दृष्टांतका** साधर्म्य वैधर्म्यत्व साध्यके साथ मिलाने-कहने **मात्रसे साध्यकी सिद्धि नहीं** होती. यथा यह जगत् मिथ्या हे; रज्जु सर्पवत्. इतना कहने मात्रसे जगत्, मिथ्या नहीं ठेरता. ॥

२६२ जो **परिच्छिन्न** गतिवान **जड** हे, सो किसीका **आधेय** होता हे, अनाधार नहीं होता, एसा नियम देखते हें. ॥

२६३ अत:दृश्य-परिच्छिन्न-गातिवान–जड ओर आधार आधेय एक स्थितिमें न रहनेवाले-तिनकाभी जो **मूलाधार** होवे तो * सो अ· अनादि, **स्वयंभू, स्वतंत्र एक** ओर **विभु** तथा **चेतन** होना चाहिये. ॥

२६४ **जेसे** इस **दृश्य परिच्छिन्नका** आश्रय चेतन हे–**दृश्य** परिच्छिन्न पदार्थ चेतनाश्रित जान पडते हैं, वेसे सकल ब्रह्मांडका होने योग्य हे. ॥

२६५ क्योंकि सर्व ब्रह्मांडसमूह आश्रय न हो तो, गतिवान परिच्छिन्न होनेसे एक दशामें नित्य गतिवान होना चाहिये; परंतु एक दशामें **नित्य गमन न संभव** हे, न सिद्ध हे ओर न देख पडता हे. अर्थात् कार्य व्यवस्थासे नित्य

*२६३ मनुष्यके ज्ञानकी सीमासे बाह्य अगम्य मानना पडेगा.

गमन असिद्ध, ओर आधार सिद्ध होता हे.

२६६ **स्वाश्रय** (परमाणु, आकर्षण, कर्म, स्वभावादि)**का नियामक कोई नियम** वा शक्त्यादि **नहीं** होसकते, अर्थात् आधेय, अपने आधारका नियामक नहीं होसकता. ॥

२६७ **संख्यासे अनंतता नहीं** (मूलस्वरूप वस्तु कोईभी वास्तविक रीते असंख्य नहीं.) ॥

२६८ **न देशकालसे पर अपेक्षासे.** अर्थात् परमाण्वादिको परिच्छिन्न अल्पज्ञ जीव अपनी अपेक्षासे अनंत कह सकता हे, परंतु देशकालकी अपेक्षासे नहीं ओर "देशकाल अनंत," यह अनंतत्व अपेक्षासे विकल्पमात्र हे.(२७१ सू० देखो) ॥

२६९ **आकाश** (देश) **अनंत होनेसे** परमाणू ओर जीव 'संख्यासे अनंत हें' एसे होनेकी **संभावना** हे. (यह शंका सूत्र हे.) ॥

२७० पूर्वोक्त (२६९सूत्रवाले) पक्षका **प्रतिपक्ष** हे **ओर** अव्यवस्था **अनवस्थादि** दोष आनेसे उक्त पक्ष मान्य **नहीं** होसकता.॥

२७१ लोकमान्य देशकालादि विभुकी **अनंतताका**, परिच्छिन्न पदार्थ ओर जीवकी अल्पज्ञताकी **अपेक्षासे कथन** किया जाता हे.

२७२ वेसेही जीवादिकी **अनंत** (देश, काल वा द्रव्य गुणादि वस्तुसे) **उन्नति** वा **अवनतिका** कथन वा मंतव्य**भी** जान लेना चाहिये. अर्थात् अनंत उन्नति वा अवनति किसीकोभी नहीं होती.॥

२७३ कोइभी **एक देशकालावच्छिन्न** (एक देशस्थ एक कालमें वा एक देशकालमें) **सर्वज्ञ नहीं** होसकता. ॥

२७४ **त्रिकालज्ञता** (सर्व भूत वर्तमान भविष्यका सत्र ज्ञान होना) **ओर सर्व शक्तिमानत्व** (सर्व शक्ति किसी एक वस्तुमें होना) **भी** किसीको प्राप्त नहीं हो सकते-अर्थात् असंभव हे. ॥

२७५ **योग्यतासे जबतब जहां तहां साक्षी होनेसे सर्व विषयकत्वादिकी संभावना** हे.

---

२६२ से २७८ सूत्रका विषय विचारशील स्वतंत्र पुरुष विवेचन द्वारा जान सकता हे, हरकोइ नहीं.

२७५ परिच्छिन्नमें सर्वज्ञत्व, सर्वशक्तिमानत्वका अभाव स्पष्ट हे.

२७६ **शरीर ज्ञान क्रमवत्** अर्थात् जैसे अपने शरीरके भूत, वर्त्तमान, भविष्यका क्रमशः ज्ञान होता है वैसे ब्रह्मांडनामा शरीरका होना संभव है ॥

अब यदि किसी व्यापकमें सर्व विषयकत्वादि मानें तोभी, एकही अभिमानी व्यापक, जो जो पदार्थ जिस जिस देश और कालमें सन्मुख होते हैं, उन उनको उन उन देश कालमें जहां तहां विषय करता है. वैसे भूतमें जाना और वर्त्तमानमें जान रहा है, भविष्यमें जानेगा; इस रीतिसे सर्व विषयक मान लेना संभव है. और एकमें सर्व शक्ति नहीं होसकती [यथा अपने जैसे बनाने वा नाश करने वा विभुको परिच्छिन्न, और परिच्छिन्नको व्यापक करदेने-इत्यादि कार्य करनेको कोई शक्तिमान नहीं होसकता] किंतु उसकी योग्यतानुसार उसमें शक्ति हो-सर्व शक्तियोंका उपयोग जिसकी शक्ति करके होसकता हो, उस दृष्टिसे उसने सर्वशक्तिमानत्वका आरोप करसकते हैं. इस प्रकारके सर्वविषयकत्वादिकी संभावना है.

२७७ **न अकृत** (स्वतंत्र इच्छाजन्य वा अन्यथा जो होनेवाले कृत, **और** पूर्वोत्तर अनंत संयोग वियोगादि अनंत **प्रवाहका ज्ञान्** वर्त्तमानमें सर्वथा संभव है-अर्थात् नहीं होसकता-असंभव है. ॥

२७८ कोईभी **अपना आप विषय** (ज्ञेय-दृश्य-प्रकाश्य-भोग्य-कर्म) **नहीं** होता; अर्थात् अपना आप विषयी (ज्ञाता-द्रष्टा-प्रकाशक-भोक्ता कर्ता) होनेका अभाव है. क्योंकि विषय-विषयीके स्वरूप भिन्न भिन्न होते हैं. ॥

२७९ लोक प्रसिद्ध (मान्य) **जीवमात्र** सर्वथा **अज्ञ वा** सर्वथा **सर्वज्ञ नहीं** हैं. ॥

२८० सामान्य भानसे इतर **विशेष ज्ञान** अन्यकी **अपेक्षासे** होता है-विशेष ज्ञान होनेमें अन्यकी अपेक्षा है. ॥

२८१ हरकोई वस्तु **उसके योग्यको उपयोगी** होती है. जैसे कि विशेष ज्ञान होने योग्य मनुष्यको विशेष ज्ञान उपयोगी होता है.

२८२ **प्रकाश द्विधा** (**चित् और जड** हैं-सिद्ध होते है. ॥

२८३ उनमेंसे **चित् ज्ञान** प्र-

काशरूप होने. ज्ञानका ज्ञान न होसकने, अन्य अपेक्षाविना सबको प्रकाशने. किसी कर ज्ञेय न होने ओर परको अपेक्षाविना स्वयं प्रतीतरूप होनेसे स्वयं (वा स्व) प्रकाश कहा जाता है. ॥

२८४ चित् प्रकाशकोभी व्यवहार दृष्टिसे तो सीमावाला कहना वा मानना अयोग्य नहीं है.॥

२८५ अन्यथा (वस्तुतः) प्रकाश्य-गम्य न होने ओर स्वप्रकाश होनेसे "जैसाका तैसा," इतनाही कहसकते हैं.-विशेष नहीं.

२८६ इस [चित्प्रकाश] का वोह [जडप्रकाश] प्रकाश्य है अर्थात् चित्प्रकाश, जडप्रकाशका प्रकाशक है न कि यह [चित्प्रकाश] उस [जडप्रकाश] का प्रकाश्य है अर्थात् जडप्रकाश, चित्प्रकाशका प्रकाशक नहीं है. ॥

२८७ चित् ओर जड-दोनों प्रकाश स्वसमानाधिकरणवर्त्ति के प्रकाशक होते हैं. अर्थात् एक देशवर्त्ति प्रकाशसे अन्य देशवर्त्ति प्रकाश्य प्रकाश नहीं पाता-प्रकाशित नहीं होता. ॥

२८८ अन्यथा [जो देशप्रति प्रकाशक नहीं मानें. किंतु एक देशोपाधिअवच्छिन्न करकेभी अन्य सर्व देश-वस्तु-का प्रकाशक माने तो] सर्वज्ञ प्रसंगवत् पूर्वमें जो सर्वज्ञ माननेमें दोष आये वो आते हैं. [वैसेही यहांभी] दोषापत्ति होगी. ॥

२८९ प्रकाशक वा प्रकाशका प्रकाश्यसे विरोध नहीं होता.

२९० वे उभय प्रकाश उपयोग दृष्टिसे सामान्य ओर विशेष अंश वा भेदवाले माने जाते हैं. ।

२९१ जड प्रकाश किसी जड पदार्थका प्रकाशक [जडके ज्ञान होनेमें सहकारी] नहींभी होता. जैसे कि तम, अभाव, शब्द, दुःखादि उसके प्रकाश्य वा वोह उन उनके ज्ञान करानेमें सहकारी नहीं [परंतु वे ज्ञानप्रकाशके प्रकाश्यतो हैं]

२९२ जड किरणे सीधी पडनेका नियम है.आडी टेढी नहीं

२९३ जिन द्रव्यादिको किरणें स्पर्श करती हैं, उन स्पर्शवित् रूप-रंग-आकारवाली प्रतीत हो पडती हैं, एसा नियम है. ॥

२९४ सृष्टिगत प्रत्येक किरणादि पदार्थोंकी परीक्षा करनेसे वि

चित्र दर्शन होता हे.—कार्योंमें विचित्रता प्रतीत होती हे. ॥

२९५ प्रतिबिंब होनेकी **सामग्री** होनेसे **सर्व** पदार्थोंका **प्रतिबिंब** होसकता हे. ॥

२९६ **निरूपमें** किसी साकार निराकारका प्रतिबिंब **नहीं** पडता* [यह पूर्व सूत्रका अपवाद हे]. ॥

२९७ **धर्म—धर्मी—संबंधका** दूसरे वा परस्परमें **अध्यास** होजाता हे. ॥

२९८ अज्ञानादि (सूत्र ३०५ देखो) **दोषसे अन्यथा** व्यवहार -संभव-**न कि** जेसा प्रतीत हुवा वेसाही पदार्थ हो ओर **गोचर** होता हो; किंतु जीववृत्तिका अन्यथा परिणाम हे यथा रज्जुसर्प, मृगजल वा लाल काच. ॥

२९९ **सो** अध्यास धर्मीके **एक धर्मविशिष्टही** होता हे, एक कालमें अनेकका नहीं होता. ॥

३०० अध्यासका विषय, **स्वाश्रयका आवरक** होजाता हे. यथा रज्जुका आवरक रज्जुमें सर्प हे.॥

३०१ अध्यास, **प्रमा** (यथार्थ ज्ञान) **का प्रतिबंधकभी** होजाता हे यथा सर्पज्ञान, रज्जुज्ञानका प्रतिबंधक हे. ॥

३०२ एक कालमें दो ज्ञान न होनेसे **सामग्रीभी अपने ज्ञान साथ** अन्यका प्रतिबंधक होती हे. जेसेकि शब्दज्ञान अन्य ज्ञान होनेका प्रतिबंधक होता हे, वेसे शब्दभी होजाता हे. ॥

३०३ **प्रमा, अप्रमा** (अयथार्थ ज्ञान) **परस्परके अनुत्पादक** होते हें. ॥

३०४ संसर्गविना अन्यकी अन्यमें अप्रतीति. जेसेकि लाल वस्त्र ओर श्वेत काचके संबंधसे 'लाल काच हे' एसा अध्यास होता हे अर्थात् उसकी लाली काचमें प्रतीत होती हे. संबंधविना एसा नहीं होता. ॥

३०५ **अज्ञानादि** (सजातीय वस्तुके संस्कार, सादृश्य-प्रमेय प्रमाता, प्रमाण दोष ओर अधिष्ठान‡ का सामान्य ज्ञान, विशेष अज्ञान

---

*निरूप-निराकारकाभी प्रतिबिंब नहीं होसकता. ॥

‡ जिसमें वा जिसके आधार भ्रम हो वा अन्यथा प्रतीति हो—सो. यथा रज्जु सर्प प्रसंगमें रज्जु अधिष्ठान हे.

–इतनी सामग्री वा दोष) **विना असंसर्गमें** अन्यथा प्रतीति नहीं होती. जैसे संसर्ग रहित रज्जुमें उक्त सामग्रीकेविना अध्यास नहीं होता.

३०६ **परोक्ष भ्रम सादृश्य** दोषविनाभी होता है.–परोक्षभ्रममें सादृश्य दोषकी अपेक्षा नहीं ॥

३०७ **प्रमासे भ्रम बाध्य** होने योग्य है न कि वोह[प्रमा ज्ञान] इस [भ्रांतिज्ञान] से बाध–निवृत्त होता है. ॥

३०८ **अधिष्ठानके ज्ञानाविना भ्रमसेभी पूर्व भ्रमकी निवृत्ति** होजाती है जैसे कि रज्जुके ज्ञान विना जलधाराका भ्रम होनेपर पूर्वका भ्रमरूप जो सर्प ओर उसका ज्ञान–निवृत्त होजाता है. ॥

३०९ परंतु अधिष्ठानके **अज्ञान** सहित भ्रमकी निवृत्ति **तो उसी** अधिष्ठानके **अपरोक्ष ज्ञानसे** होती है. यथा रज्जुके अज्ञान सहित सर्प ओर सर्पज्ञानकी निवृत्ति तो रज्जुके अपरोक्ष ज्ञान होनेसेही होती है. ॥

३१० सामान्य रूपसे ज्ञान अज्ञान परस्पर विरोधी नहीं होते; परंतु **समान विषयक** (दोनोका एकही विषय होवे वहां) **ज्ञान, अज्ञानका परस्पर विरोध** होता है अर्थात् विशेष ज्ञानसे अज्ञानका बाध होता है यथा रज्जुके विशेष ज्ञानसे रज्जुका अज्ञान बाध होता है रज्जुके सामान्य ज्ञानसे बाध नहीं होता. ॥

३११ यथार्थ निश्चय हो वा अयथार्थ हो, परंतु **निश्चयका संशयसे** विरोध होता है. ॥

३१२ जो **ज्ञानग्राहक** समग्री होती है **उससे उसके धर्म** (ज्ञानत्व[1])**काभी ग्रहण** होता है.

३१३ **संबंध, संबंधीके** ज्ञान होनेके **नियमवत्**. अर्थात् जैसे संबंध रहित संबंधीका ज्ञान नही होता, किंतु संबंध सहित होता है; वैसे ज्ञानत्व[1] धर्मसहित ज्ञान[2] का ग्रहण होता है. ॥

३१४ **प्रमात्व[3] ग्रहण** होनेपर **भ्रम** वा **संशय नहीं** होता. ॥

३१५ **अनुत्तर भ्रम असिद्ध** है. अर्थात् भ्रमकालमें भ्रम, भ्रमरूपसे ग्रहण नहीं होता; किंतु भ्रमके उत्तर–बाध हुये पीछे उसकी सिद्धि–मान्यत होती है. ॥

३१६ परीक्षा विना किसी

---

१ प्रतीतिपना. २ प्रतीति, ३ यथार्थत्व.

क **मंतव्यमात्रसे** किसीकी नास्ति वा **अस्तित्वका** स्वीकार करलिया ही जाय, एसा **नियम नहीं** हो-सकता. ॥

३१७ यदि **मुक्ति** (मोक्षावस्था वा वस्तु) हे तो, वर्त्तमान शरीर के **जीवते** हुये उसका **अनुभव** होने **योग्य** हे, तब मरनेके पीछे मुक्ति रहनेका निश्चय-विश्वास माना जासकता हे. ॥

३१८ अन्यथा (जीवते हुये अनुभव-मुक्तिका ज्ञान न होतो) मुक्ति मानना **विकल्प, विश्वास वा अज्ञान**मात्र कहसकते हें. ॥ क्योंकिः—*

३१९ योग्य व्याप्तिकी अनुपलब्धिसे. (अर्थात् "मुक्ति हे—मोक्ष होगी" इस वातको सिद्ध करने-होनेकी योग्य सामग्रीकी प्राप्ति अद्यापि नहीं हे. एतद्दृष्टि उक्त उभय सूत्रोंका विधान हे).॥

३२० **स्वाभाविक** किंवा **संसर्गज** मोक्ष माननेमें **अव्यवस्था** होती हे. ॥

३२१ मुक्तिको **अभावरूप**(जीवकी नास्तिरूप) **माननेमेंभी** अव्यवस्था होती हे. ॥

३२२ **अनावृत्तिरूप** मोक्ष माननेपर सृष्टि होनेके हेतु जो बद्ध जीव तिनका जब तब अंत आनेसे संसारका **उच्छेद** ओर प्रकृति—मेटरका निष्फलत्व‡ मानना पडता हे, जोकि असंभव हे. ॥

३२३ मोक्षसे शुद्ध मुक्तको जन्मादि दुःखस्थानमें पुनः **आवृत्ति** होनेमें **न** कोई प्रबल—निर्दोष **हेतु**—निमित्त—सिद्ध होता हे, ओर **न** सादि साधन वा सादि अवस्थाका अनंत फल वा अवस्था मानी जासकती हे. ॥

३२४ **कर्मजन्य** मुक्ति माननेमें मोक्षसे **आवृत्ति** संभव हे. ॥

३२५ हरकोई प्रकारकी आवृत्तिवाली मुक्तिमात्र **अवस्था** विशेष कही जायगी,**न** कि **मुक्ति**.—अर्थात् उसको सर्वथा मोक्ष नहीं कह सकते. ॥

३२६ **अमुक्त सिद्धांत** माननेसे

---

*सू. ३१८ से ३२५ तक वांचो.

‡अनंत जीवोपयोगी अनंत परमाणु हें. उनमेंसे १०० महासंख जिव मोक्षमें जाने पीछे उतने परमाणु वा उतनी सामग्री निष्फल रहेंगी. इ.

विशेषतः **सुख नीतिका भंग** होनाभी संभव हे. ॥

३२७ **धीपर** (अगम्यमें) परिमित **धी** (बुद्धि) की **गति ओर तर्क न हीं** होसकते—व्यर्थ हे, एसी शंका का अवसर आसकता हे. ॥

३२८ **सो** शंका सर्वांशमें **नहीं** बनती; क्योंकि वेसा स्वीकारनेसे **दोष, विकल्प, शंका, समाधान,** (सदोष शून्य, अभाव, स्वभाव वा कल्पित मतोंकी सिद्धि ओर व्याप्ति, किंवा सर्व प्रकारके—पक्ष मत ओर श्रवणादि साधनकी मान्यता, वादिके अगम्य ओर धीपरत्व की मान्यता तथा उक्त शंकाके अवसरके अभाव ओर समाधान) **की प्राप्ति** होने वा सर्व पक्ष दूषित ठेरनेसे पक्ष वा सिद्धांतमात्रका उच्छेद होजायगा.—इत्यादि अनेक दोष आते हें. ॥

३२९ सर्व पक्षका खंडन हो सकता हे अर्थात् **खंडन अखंड** हे, एसा नियम माननेसे **व्याघात** दोष आता हे; क्योंकि पक्षकारको पूर्वोक्त स्वपक्षकाभी खंडन मानना पडेगा. अर्थात् सर्वका खंडन होना नहीं माना जासकता. ॥

३३० **स्व** (अपने) को अ **अज्ञात** सो अन्य—सर्वको **अज्ञात** (हो, एसा) होनेका **निय** नहीं हे. ॥

३३१ **प्रमात्वके अनिश्चय** **अप्रमात्व** (अयथार्थत्व) के **निश्च** होनेसे विषयमें **अप्रवृत्ति** अर्था प्रवृत्ति नहीं होती. ॥

३३२ अनादि स्वरूप वा उन के गुणादि एसे (जेसेकि पाते हे **क्यों हे**? अन्यथा क्यों न हुये इस प्रश्नकी **अनुत्पत्ति** हे.— सा सवाल आति कहाता हे. ॥

३३३ **पदार्थ अनुद्भवादि**(ज्ञा देखो) **प्रकारके** होते हें. ॥

३३४ **समीपादि*** [कारण] त्यक्ष होनेके **प्रतिबंधक** हो जाते हें. ॥

३३५ **प्रमाणाभावसे प्रमे**

---

३३२ मूल तत्व क्यों हें? सृ वा कार्यरूप पदार्थ क्यों हें? इ दोनों प्रश्नोंका, मूल द्रव्य गुण का सफलत्व—उपयोग-जवाब हे अतः सूत्रोंकी इन प्रश्नोंपर दा नहीं हे.

*संज्ञा देखो.

३३५ इस नियम ओर ३३

का अभाव नहीं होता वा नहीं माना जासकता. अर्थात् " जिस प्रमाणसे प्रमेय विषय हुवा उस प्रमाणके अभाव हुये प्रमेयकाभी अभाव हुवा" किंवा " कोई वि- षय हो, परंतु उसके विषय करने योग्य कोई प्रमाण नहीं मिलता, अतः वोह विषय नहीं हे," ए- सा मानना अयुक्त हे. ॥

३३६ जो कारण **सिद्ध** हे ओ र **अदृष्ट** हे, एसे कारणके कार्यो त्पत्तिसे उस कार्योत्पत्तिमें उसके कारणके **व्यापारकी कल्पना** की जाती हे. यथा आकर्षण ओर अदृष्टकी अल्पना करनेमें आतीहे.

३३७ वर्त्तमानके ज्ञाततत्वोंसे इतर **अज्ञाततत्व** होनेकी **संभावना** हे.

३३८ "जो **सत्** हो सो **गोचर** हे ओर जिसे **अप्रत्यक्ष** कहते वा प्रतीत होना नहीं मानते हो उस का **अभाव** हे", एसा मानना चाहिये. परंतु एसा **नहींभी** अर्था त् निश्चयरूपसे उक्त नियम नहीं बांध सकते.—सिद्ध नहीं होता. ॥

३३९ हरकोई बाबत-विषय-

का तथा १०६ सूत्रोक्त नियम का विरोध भाव नहीं हे.

सपरीक्षा यथार्थ अनुभवका विषय न हो वहांतक अर्थात् **अनिश्चित** अवस्थामें उस विषय प्रति निश्चय रूपसे **संमति** देना **वा** वेसे प्र कारके किसी मत—पक्ष—विषयका **मंतव्य** वा वेसे मंतव्यको किसी दूसरेको मनाना—दृढाना **अयोग्य** हे (उचित नहीं हे); वेसेही उस विषयके सहभाव-वास्तेभी इस क- थनको लगा लेना चाहियें. ॥

३४० कोइभी विषय वा तत्व- हो परंतु उसकी **असिद्धि तक** जेसेकि उसका **न खंडन** करतेहें तद्वत् उसपर **आधार** नहीं र- खना चाहिये. वा आधार नहीं रख सकते. वा आधार योग्य न- हीं हे. ॥

३४१ **योग्य** संभव **कल्पना न अनादरणीय** हे ओर **न आधा- रयोग्य** हे. ॥

३४२ योग्य कल्पनाद्वारा **अ- न्य** विषयके निर्णयमें **प्रवेश** हो- जाना **संभव होनेसे** आदरणीय हे. ओर कल्पना होनेसे सर्वथा आधार योग्य हो, एसा भी नहीं हे. इष्ट गणितवत्.

३४३ **अयोग्य** (असंभव) क-

ल्पनाका **अनादर** अनुचित नहीं हे.

३४४ स्वरुपशून्य व्यवहारोपयोगी **कल्पितके नियम**भी लोक विषे **व्यवस्थापर** देखते हें (किंबा काल्पितके नियम व्यवस्था विना स्वीकार नहीं होसकते). यथा जाति, अभाव इत्यादि पदार्थोंकी मान्यता वा योजना. ॥

३४५ बुद्धिगत भेदबोधक (कल्पित) **अभाव** ओर उसके **प्रतियोगीका** परस्पर **विरोध** होता हे. जेसे कि जहां घटका अभाव हे, वहां घट नहीं होता. वा जहां घट हो, वहां घटाभाव नहीं होता.

३४६ **भावरूप** पदार्थ ओर **अभावरूप** पदार्थ**काभी** परस्पर विरोध होता हे. यथा घटका प्रागभाव घटरूप नहीं, भावरूप घट ओर घटगत पटाभाव-इन उभय का स्वरूप समानाधिकरण (रूप वा) बर्त्ति नहीं. ॥

३४७ पक्षमें **अभावका अभाव** अपने **प्रतियोगी**रूप कहाता—माना जाता हे. कोई पक्षकार भिन्न मानता हे. ॥

३४८ **अनवस्था आरोपका विषय तत्व नहीं**. यथा सामान्य—जाति—विशेष—संबंध—धर्म—अभावादि.

३४९ यह, वोह, तूं, में, सो, —यह सब **सजातीय** वा **विजातीय** (मूर्त्त अमूर्त्त वा अपरोक्ष परोक्ष वा सूक्ष्म स्थूल) वा किसी केभी सूचक हों परंतु इन **इदमादिके वाच्य** स्वरूप परस्परमें **भिन्न** भिन्न होते हें. ॥

३५० सूक्ष्मादि+ संज्ञोक्त सापेक्ष निरपेक्ष हरकोई प्रकारकाभी अस्तिवाच्य पदार्थ के स्वरूप भावमें अन्य पदार्थके **स्वरूपका अप्रवेश** हे.-अर्थात् एक स्वरूपमें अन्यका भाव नहीं. क्योंकि स्वरूपोंके स्वरूपाधिकरण भिन्न भिन्न हें. इसलिये व्यवहारमें एसे पदोंसे प्रयोग होता हे कि, हरकोई प्रकारके दो पदार्थका एक देशकालमें अभाव हे. यथा यदि ब्रह्म, देश, काल, जाति, संबंध, असर, शक्ति, गुण, कर्म, मन, जीव-इनका* विचार वा अभाव स्वरूपसे

\+ पूर्वोक्त संज्ञा देखो.

* जीव, वा मन ओर उनके परिणाम—विचारकोभी देशकी अपेक्षा हे. ॥

कुछ वस्तु होंतो, वे भिन्न भिन्न हैं—परस्परका स्वरूपाधिकरण भिन्न होनेसे परस्परके स्वरूपका परस्पर विषे अप्रवेश हे. इसी नियमसे व्यापक व्याप्य भावका उच्छेद होजाता हे. गुण गुण्यादिके तादात्म्यत्वकी असिद्धि होजाती हे. ÷ ॥

३९१ लोक प्रसिद्ध **प्रकाश** ओर तम इन दोसे **भिन्न अधिकरणभी** सिद्ध होता हे यथा नभ—देश, काल, शब्दादी पदार्थोके स्वरूपाधिकरण प्रसिद्ध हैं. ॥

३९२ **स्वरूपाधिकरणसे भिन्न** देशमें **नहीं**. अर्थात् स्वरूपमें स्वरूप नामा देशसे भिन्न, अन्य देश(आकाश वा स्वरूप)नहीं होता. किंवा एक स्वरूप एक काल विषे भिन्न भिन्न देशमें नहीं होता. स्वरूप देशमेंही रहता हे. ॥

३९३ स्वरुपोंका परस्पर **विलक्षणत्वही** गम्य होता हे, **न** कि **भेद** (स्वरुपोंका परस्परमें भेद कल्पनामात्र जान पडता हे; क्योंकि भेदका कोई परिमाण स्वरूप—पदार्थत्व सिद्ध नहीं होता.) ॥

३९४ स्वरुपोंकी **सत्ता** यत्तामें **विलक्षणत्व** देख पडता हे. यथा-स्वप्नसृष्टि ओर उसके दृष्टाकी सत्तामें अंतर हे. ॥

३९५ सत्ता यत्ताके अंतर समान **उस** सत्ता यत्ताके **नियमोंमें** भी विलक्षणत्व हे. ॥

३९६ वस्तुतः स्वरुपका अन्य स्वरुपमें अप्रवेश हे, परंतु **भ्रम** स्थल वा भ्रमकालमें **स्वरूप प्रवेश** (एक स्वरुप अधिकरणमें अनेक स्वरुपोंकी तादात्म्य समान प्रतीति) **वत्** सत्ताके नियमोंमें विलक्षणता हे. ॥

३९७ **सत्ता यत्ताही** (हे ओर जो हे सोही) **विषय** अर्थात् 'हे' कीही प्रतीति होती हे. ॥

३९८ **न अन हुई** ओर **न अन्यथा** प्रतीति होती हे. ॥

३९९ जितना ओर जेसा हो, उतना ओर वेसाही प्रतीत होनेका नियम नहीं हे; किंतु **किंचित् न्यूनभी** प्रतीत हुवा करता हे. यथा-रज्जु सर्पकी प्रतीतिमें हे. ॥

३६० परंतु ज्ञेयविना ज्ञान न होनेसे **ज्ञेयाधीन ज्ञान** कहा वा

÷सू. ३६४, ३६५, ओर ३४९ वगेरेके विरोध निवारणार्थ मूल ग्रंथ वांचो.

माना जाता हे, ज्ञेय अन्य ओर ज्ञान अन्य एसा नहीं होता. ॥

३६१ **गुण गुण्यादि** (गुण-गुणी, कर्म क्रियावान, स्वभाव स्वभाववान, शक्ति शक्तिमान, धर्म धर्मी, असर, असरकारक, ओर अवस्था अवस्थावान,) **की** परस्पर* **समसत्ता** होती हे. ॥

३६२ **समसत्ता**वाले पदार्थ परस्परमें **साधक बाधक** होते हैं.॥

३६३ परंतु **विषम** सत्तावाले साधक बाधक हों ओर **नहींभी** होते. ॥

३६४ यदि कोई **स्वरूप**-विभु होतो, वोह **ब्रह्म** (व्यापक) वस्तु **एकही** होने योग्य हे; क्योंकि एक **स्वरूपमें** अन्य व्याप्य वा व्यापक स्वरूपका प्रवेश नहीं हो-सकता (सू. ३९० याद करो.)॥

३६५ यदि विभु कोई पदार्थ हो, ओर **तद्भिन्न** अन्य परिच्छिन्न पदार्थभी हों तो, यह (परिच्छिन्न) उस व्यापकसे **विलक्षण** सत्तावाले होने योग्य हैं. अन्यथा व्यापक व्याप्य भाव असंभव हे (सू. ३९० याद करो). ॥

३६६ **अन्य कल्पना×मेंभी** विलक्षणत्व मानना पडेगा. ॥

३६७ **सत्य** वा **असत्य दृष्ट श्रुतकेही संस्कार** होते हैं. अदृष्ट अश्रुतके नहीं. ॥

३६८ **सो** (संस्कार) **ज्ञानके आश्रयमेंही** होते हैं. अर्थात् जि

---

*गुण गुणीकी, गति गतिवानकी समसत्ता. इत्यादिरुपमें अन्वय हे.

×पूर्वोक्त विभु परिच्छिन्न कल्पनावत् केवल विभुवादमें अक्रियत्व अपरिणामत्व आनेसे नाना विचित्र परिच्छिन्न दृष्टको विभूसे विलक्षण मानना पडेगा. १. केवल परिच्छिन्नवादमें द्रव्य-गुण ओर उनके तादात्म्य-समवाय वगेरे संबंधकी दृष्टिसे एकको विलक्षण मानना पडेगा. २. गतिवान परिच्छिन्नकी सिद्धि विभु आधार को बताती हे, अतः नं. १ वत् मानना होगा. ३. क्षणिकवादमें ज्ञाता, ज्ञेय ओर ज्ञानकी दृष्टिसे किसी एकको विलक्षण मानना पडेगा.—नं. ३ वाला मत स्वीकार होजायगा४.निदान जो कोई निर्दोष पक्ष ठेरेगा उस पक्षमें उनकी सत्ताकी विलक्षणता माने विना छुटकारा नहीं होगा. ३६६.

सको ज्ञान होता हे-उसीको उस ज्ञेयके संस्कार होते हें. अन्यको नहीं. ॥

३६९ ज्ञात वा अज्ञातरूप संस्कार, ज्ञात वा अज्ञातरूपसे परोक्ष वा अपरोक्ष विषयमें प्रवृत्ति वा निवृत्तिरूप **इच्छाके हेतु** होते हें.

३७० **प्रबल संस्कारोंका** उसके फल हुयेविना वा **निर्बल** संस्कारोंसे **नाश नहीं** होता. ॥

३७१ जिसको जिस विषयके जिस प्रकारके प्रबल संस्कार होजाते हें, उसको उसी **प्रबलानुकूल** प्रबल **निश्चय** होजाता हे. (यहां यथार्थ अयथार्थ निश्चयका प्रसंग नहीं हे.) ॥

३७२ **सम्यक्** (यथार्थ ओर पूर्ण) **प्राचीन इतिहासकी अप्राप्ति** हे (नहीं मिलसकता).॥

३७३ यथार्थ ओर संपूर्ण **सृष्टिक्रम** ओर उसके नैःसर्गिक **नियमकीभी** अप्राप्ति जाननी चाहिये. (मनुष्य तमाम नियम नहीं जान सकता). ॥

३७४ जबतक **निर्णय** न होजाय वहांतक हरकोई विषय वा तत्व जोकि **अज्ञात** वा **अदृष्ट** वा **श्रुत** हे-सो श्रुत (सुनने) मात्रसे **अमंतव्य** अर्थात् मानने वा स्वीकारने योग्य नहीं हे-नहीं माननां चाहिये. ॥

३७५ किंतु **परधर्म** धारणवत् **दुःखद होनेसे** त्याज्य हे. ॥

३७६ **ज्ञानादि** (ज्ञान-ध्यान-केवल-इन तीनों) **कृतिका फल प्रसिद्ध** (सर्व मत पक्षकारोंको मानना पडता हे-सर्वको संमतहे)

३७७ **भावना** (वासना-संस्कार-प्रकृति-स्वभाव) **ओर** म

---

३७२ यहांसे आगे विशेषतः व्यवहार प्रसंगी वा प्रचूर्ण सूत्र हें.॥

३७५ सूत्रका यह रहस्य हेः- निर्णय किये वा योग्यता-कियाकत पेदा कियेविना स्वाधिकार छोडके पर अधिकार ग्रहण करनेसे जेसे ग्रहण करनेवालेको दुःख होता हे, किंवा निर्णय कियेविना किसीके विश्वाससे वा अधैर्य वा लोभादि निमित्तसे. जो कोई स्वधर्म छोडके परधर्मका धारण करताहे, उसको मरण पर्यंत प्रसिद्ध वा अप्रसिद्ध, अज्ञात वा ज्ञात दुखः रहता हे, वेसेही अज्ञात ओर अदृष्टको सुननेमात्रसे मान लेनेमें बाह्य वा आंतर दुःख होभी जाता हे.

नुष्यकी **बुद्धि** (बल) **का** बहुत करके **विवादभी** होता रह ता हे. ओर कभी नहींभी होता. (किंवा **भावना**† **ओर बुद्धिका विवादभी** होता रहता हे, यह बातभी **सर्वको** प्रसिद्ध हे). ॥

३७८ **योग्य** इष्टमें **तद्योग्य की सिद्धि, न** कि केवल **वि- श्वास** (वगेरे) **मात्रसे** सिद्धि प्राप्ति होती हे. यथा स्पर्श होने पर अपने अनुयायी पारसियोंको उनकी पूज्य-इष्ट—अग्नि दाह किये विना नहीं छोडती. ॥

३७९ आशाको जीवनका हेतु भी माना जाता हे, तथापि **आ- शा वास्तवमें** जीवको **बंधन** हे.

३८० उत्तमानुत्तम—भला बुरा— इष्टानिष्ट—**अनुकूलता, प्रतिकू लता स्वबुद्धि भेदहे.**—पदार्थ वा नेचर—प्रकृति—में नहीं हे. ॥

३८१ किरोडों मनुष्योंमेंसे कोई एक (विरल) सीखके उसका अनुष्ठान साधके चमत्कार देखाने योग्य होनेसे लोक दृष्टिमें अद्‌भुत् रूपसे माने हुये जो **योगादि** (योग-तंत्र—मेस्मेरिझम) **के च मत्कार** सो **परीक्षासे** मानने यो ग्य हें, अन्यथा माननेसे महा हा- नी हे. किंवा **योगादिके चम- त्कार परीक्षासे** सिद्ध हें; प्रच- लित चमत्कारी बातें सर्वथा गप्पा ष्टकरुप हों, एसाभी नहीं हे; तथा पि जो सत्यबातें हें ओर चमत्कार रुप मानी जाती हें, सोभी परीक्षा कियेविना नहीं माननी चाहियें.

३८२ केवल **विशेष्य** वा **विशे षणका व्यवहार विशिष्टमेंभी** होता हे. (यथा कुंडलवाला पुरु ष विद्वान हे वा सोता हे. इ.) ॥

३८३ **प्रेम-दया—न्याय भिन्न** भिन्न हें ओर **अविरोधि** होते हें; एक दूसरेके विरोधि नहीं. ॥

३८४ **यथार्थ** बातमें **लोकभय** करना **अयथार्थ**—अयोग्य हे. ॥

३८५ **लोकनीति रहित मन मुखी वा परलोक विमुख** मनु- ष्योंमेंसे **पतीतभी** होजाता हे. ॥

३८६ **न के लोक अवश,— नीति अविरुद्ध—विवेकी** जन पतित होते हें(—पतित नहीं होते)

३८७ पुरुषार्थही प्रारब्ध बन्ने ओर पुरुषार्थ (उद्यम—कर्म) वि- ना न रहसकनेसे **केवल प्रारब्ध**

---

†कॉन्शन्स(conscience) मनका विवाद.

ग्रादि (मनुष्य) **अज्ञानी वा हठी**—इन पदोंका वाच्य ठेरता हे.

३८८ **नाकि** प्रारब्धके **स्वरूपका ज्ञाता** ओर कर्मोंके भेदका **विभाग कर** (पृथक्करण कर्त्ता) विवेकी पुरुष अज्ञानी वा हठी कहा जासकता हे. ॥

३८९ **शरीरधारी मात्रको** शुभ वा अशुभ वा शुभाशुभ **रागादि*** (राग, द्वेष, इच्छा, प्रयत्न, दुःख, सुख, ज्ञान, संस्कारादि) स्वभावतः होते हें, परंतु विवेकी योगी ओर अविवेकी असंयमीके रागादिमें अंतर होता हे. ॥

३९० गतिवान **मनकी** अभ्यासवक ओर किसी आलंबन विशेषमें कुछ काल **स्थिरताभी** हो सकती हे. ॥

३९१ **जीवको** अपनेमेंही प्रियता हे ओर **परमें** जो **प्रियता** हे सोभी **स्व प्रियतासे** हे, अर्थात् सोभी स्व प्रियताही हे. (क्योंकि संसारमात्रमें जो जीवोंको प्रेम हे सो अपनी प्रियताकोही लेके हे, इसी वास्ते बुद्धिमान—विवेकी—परोपकारी—निष्कामी अपने दुःख सुख समान परके दुःख सुखको जानके उपकार (प्रत्युपकार) किया करते हें)॥

३९२ **योग्य परोपकार** (परहित) निष्काम, बुद्धिमान, **आप्त विद्वानोंका कर्तव्य** हे. क्योंकि वोह उपकार अपनाही उपकार हे (३९१ विचारो). ॥

३९३ कोई उत्तम हितकारक, जीवलाभक नवीन विषय जिसनें श्रमपूर्वक प्रथम उत्पन्न करके वा शोधके परहित—शिक्षा वा कृति द्वारा प्रचार किया, उस **आद्य प्रचारकको धन्यवाद** देना वा उसका उपकार मानना चाहिये.

३९४ **व्यवहार**—प्रचलित विजय—ओर **यथार्थ**—(परमार्थ) में **अंतरभी** हे. ॥

३९५ जेसे **यथार्थ**, सत्य **नीयतमें** अंतर हे. वेसे व्यवहार परमार्थमें अंतर हे. यथा " मेरी आंख ओर चक्षु फूटनेपर में काना " यह व्यवहार यथार्थसे भिन्न हे. ॥

३९६ विचारादिक किये बिना

*शुभेष्टमें जो राग सो शुभ राग. अशुभमें द्वेष शुभ. अशुभमें राग अशुभ. शुभाशुभमें उपराग सामान्य हे.

अथवा व्यावहारिक (संस्कार-अभ्यास-रुढी का) दृष्टिमात्रसे मूलका यथावत् न सन्निर्णय अर्थात् सत्य निर्णय नहीं होता. किंतु मध्यस्थ, परीक्षाविना सत् (यथार्थ)का निर्णय होना कठिन है.

३९७ भिन्नत्व अज्ञान(भेद और अज्ञान वा भेदका अज्ञान-अभाव) व्यवहार उन्नति (व्यवहार और उन्नति वा व्यावहारिक उन्नति) का निर्वाहक है. ॥

३९८ अध्यस्तकी निवृत्ति (-कहींसे खिसजाना वा अभाव होना वा स्व उपादानमें लय होना-इत्यादि निवृत्ति) का शेष नहीं होता है, क्योंकि उस अध्यस्तका अधिकरण वा अधिष्ठान है. यथा-परमाणुके अन्य स्थलमें जानेसे शेष आकाश-देश-रहता है. ॥

३९९ सो अधिकरण वा अधिष्ठान भावरूप होनेसे अध्यस्त वा कल्पितकी न निवृत्तिरूप (अभावरूप) ही होता है. किंतु इससे भिन्न भावरूप है.॥

४०० संशय होनेका हेतु न एक किंतु ज्ञानाज्ञानसे भिन्न प्रकार और अनेक पक्ष दर्शन श्रवणादिरूप अनेक हेतु हैं. ॥

४०१ उस (संशय) में अनुमान भाग नियमसे (अवश्य) होता है. ॥

४०२ संदिग्ध (संशयात्मक) अवस्थामेंही उत्तर प्रत्युत्तर और परीक्षा होते हैं; अन्यथा शंका समाधान करना व्यर्थ काल गुमाने समान है. ॥

४०३ शंका और उसके समाधान लक्षण संबंधी और स्वरूप संबंधी-भेदसे दो प्रकारके होते हैं. तहां लक्षण अनेक प्रकारके होनेसे लक्षण प्राति समाधान होता है, और स्वरूपकी यथावत् सिद्धि (ज्ञान प्राप्ति) तो परीक्षासे हुवा करती है. शब्द वा लक्षण कथनमात्रसे नहीं होती-इस प्रकार उभय भेदसे व्यवस्था कर्तव्य है. ॥

---

४०४ नियमादि सूत्रोंमें पुनरुक्ति, व्याघात, असंभव, विरोधादि दोषोंका आरोप होसके, इसलिये इस सूत्र विवेचनमें शंका समाधान सहित दोषोंका निवारण जनाया है. मूल ग्रंथ बांचो.

४०४ चेतन,जड [जीव, अजीव]-जीव, ईश्वर, प्रकृति आदि पदार्थोंके मानने-कल्पने-वा खंडन करने का निर्णय करने विनाभी जीवन व्यवहार होसकता हे; परंतु जीवोंकी जीव **स्वभाव**, संस्कार, **सृष्टि नियम** ओर **योग्यता** होनेसे स्वाभाविकही **अगम्य** जानने-पाने वा निर्णय करनेमें **प्रवृत्ति** देखते हैं. जडवादकी रीतिसेभी जीवोंकी आद्य प्रवृत्ति संस्कारमात्रपर नहीं ठेरती हे, किंतु स्वभावतः होती हे. ओर इस स्वभाव वा योग्यताके उपयोग होनेमें कितनेक कारण हैं, एसा उभय पक्ष (जड, चेतन पक्ष) को मानना पडता हे; अतः सर्वथा उपेक्षा होजाना कठिन हे. ॥

४०५ अगम्य का व्यावहारिक-हरकोई विषयमें आद्य प्रवृत्ति मात्र (प्रवृत्ति वा निवृत्तिमात्र)**सकंप** होती हे, दूसरी वार (परीक्षा वा अनुभव पीछे) **निष्कंप** होती हे; इन दोनों प्रसंगोंमें **बुद्धि**, वा **विश्वास** वा बुद्धि ओर विश्वास दोनोंसे काम लिया जाता हे, अर्थात् उक्त प्रसंगमें विश्वास वा बुद्धि कारण होता हे. (यथा बालककी आद्य प्रवृत्ति विश्वासपर वा सकंप ज्ञानतंतुपर हे. अज्ञात पदार्थ प्रति युवाकीभी आद्य प्रवृत्ति सकंप होती हे वा बुद्धिद्वारा विश्वाससे होती हे. पश्चात् निष्कंप होती हे.) ॥

४०६ **स्वादि** (अपनी, शिक्षककी, पूर्व संस्कारकी ओर विद्या बुद्धिकी-अर्थात् इन चारकी अनुकुलता-) **कृपा श्रेयप्राप्ति की हेतु** हैं, एसा नियम हे. ॥

४०७ **ममत्वादि** संज्ञोक्त* श्रेय प्राप्तिके **प्रतिबंधक** होते हैं. ॥

४०८ सर्व ओरसे 'मतमान' ‡ में तुला हुवा **यथार्थ ज्ञानका** जो **विषय** हो सोही **मान्य** अर्थात् मानना-स्वीकारना चाहिये. खंडित नहीं. ॥

४०९ नाना मत-कल्पना ओर भिन्न भिन्न परीक्षा करके संशयादि होके चित्तमें भ्रांति, विक्षेप वा अशांतिका गुप्त, गंभीर बल रहता हे. उनसे महान दुःख

*पूर्वोक्त संज्ञा सूत्र अंक ४ वांचो. ‡अद्वैतादर्शका दर्शन २५ वांचो.

होता है, उन असह्य दुःखके निमित्तोंकी निवृत्ति पूर्वक **सत्याकर बिन न शांति**, अर्थात् उन निमित्तोंकी निवृत्ति पूर्वक शांति मिले, सो बात सत्याकरके विना नहीं होसकती, एसा नियम संस्कारोंकी माहिमाको लेके देखते हैं.

४१० **सब ओर सत्यका संग सत्याकर**: अर्थात् सर्व प्रकारकी विद्याका संग्रह, बहुश्रुत होना, अनेक प्रकारके वा मतोंके ग्रंथोंका मनन पूर्वक पठन, यंत्र द्वारा पदार्थोंके विभागका दर्शन, वा पृथक्करण, विद्वान, बुद्धिमान सत्पुरुषोंका संग, परीक्षा वा निर्णयविना अन्य पक्ष-मतका अग्रहण ओर योगयुक्त हुये स्व विचार-इत्यादि-यह सर्व सत्य प्राप्तिकीखान (सत्याकर) कहाती है. ॥

४११ सो (उक्त सत्याकर) **विवेकादि[१] सहित निरंकुश** चाहिये-अर्थात् सेवन करे, तो शांतिप्रद होती है. **न कि विश्वा** समात्र मान लेनेसे शांतिदा होसकती है. ॥

४१२ **अन्यथा** (-विवेकादि-उक्त प्रकारको छोडके) जो नाना प्रकारी परस्परके विरोधी हैं उनके संबंध वा संयोगोंमें प्रवृत्त होता वा संबंध पाता है, उसे **विष वत् फल** (संशय, विपरीत भावनारूप फल) प्राप्त होता है. ॥

[१] संज्ञा याद करो.

४१३ सत् शोधकको चाहिये कि कर्त्ता, वक्ता ओर सत् संगादिके **उद्देश** ओर उनकी **अपेक्षापर** ध्यान देके योग्यतानुसार त्याग ग्रहण करके **सार** उपर **दृष्टि** रखे. **न** कि केवल **विवाद** करना वा दोषोंपरही दृष्टि डालना.

४१४ उक्त प्रकार **मथन** करनेसे **सत्य स्वयं तिर आता है** -भिन्न प्रकाशमान होजाता है.

४१५ **दोषाभावमें** [पुनरुक्ति, असंभवादि दोषकी प्राप्ति न होवे तो] पूर्वोक्त नियम संज्ञावाले अर्थात् जिनको नियम कह सकते हैं उन **नियमोंकी अर्थापत्ति** [तथा **प्रकरणप्राप्ति**] **से उतने अन्य नियम**-उन संबंधी उनसे भिन्न अर्थात् दूसरे नियमों [तथा परिणाम निकाल सकने] की संभावना है.-बना सकते वा प्रकरण द्वारा अन्य* निकाल सकते हैं. इति. ॥

*यथा सू. ८९ का अर्थापत्ति

[सूचना.]

४१६ उक्त नियमोंसे भिन्नभी विषय **निर्णयके नियम** (रीति ओर यंत्रादि सामग्री) **अनेक** हें;– प्रस्तुत नियमादि परही निर्भर–आधार नहीं हे. ॥

४१७ परंतु अद्यापि जितने दृष्टश्रुत मत-पक्ष हें उन मतोंका यथावत् **निर्णय उक्त** नियमादि सेभी होजाता हे. (इस नियमाध्यायका विशेषत: कारणवाद ओर उसके अंतिम परिणाममें उपयोग हे. प्रचलित कार्यरूप मतपंथोंमें प्रयोजन नहीं हे).

४१८ मूल सत् तत्व प्राप्ति तक योग्य **निष्काम कर्म** करने **योग्य** हें. (यह कर्त्ताकी तरफसे उद्देश सूचन हे ओर स्वाभाविक रीतिसेभी यह कथन अयोग्य नहीं.) ॥

४१९ **तदभावमें** (-निष्काम कर्मके रहस्य न जान सकने वा निष्काम कर्म न कर सकने पर) **उत्तम सकाम** कर्म **कर्तव्य** हें, **अर्थात्** मरणपर्यंत शुभगुण प्राप्ति ओर उत्तम कर्मोंमें लगे रहना चाहिये.॥

४२० **अन्यथा** [जो यह सृष्टि क्या ओर क्यों ? तथा में कोन ओर क्यों ? इत्यादि जाननेका जो कुछ मुख्य फल हे, उसकी प्राप्ति वा उसकी प्राप्तिके साधन वा पूर्वोक्त उत्तम निष्काम **कर्म** वा उत्तम *सकाम कर्मभी न हो सकें तो] **कर्म स्वभाव होनेसे** यथेष्ट निषिद्ध गुणकर्मकी प्राप्ति होनेपर **पंचक्लेश** ओर **तीन तापयुक्त प्रवाह** [जन्म मरण वा सृष्टि-प्रकृतिके वेग] में रहना पडता हे. अब जो इच्छा हो सो करो. ॥

से '**सादि, सांतही**' '**अनादि, अनंतही**' '**अनंत, सांत नहीं**'। सूत्र ३७–३८–१३६ की अर्थापत्तिसे "**सृष्टि प्रवाहका उच्छेद नहीं**।" सू. ३७ से '**निष्फलत्वका अभाव**'। सू. २४ से "**न विषयमें न विषय सुख**"। सू. ३७ से ४३ तक ७ सूत्र ओर १०७-१०८-१३९ से '**तोभी क्या**'-इत्यादि अर्थ ओर प्रकरण आपत्तिसे अन्य नियम ओर परिणाम निकलते हें.

४१८ से ४२० तकके सूत्र कर्त्ताकी तरफसे उपदेशमें हें.

*सृष्टि नियम ओर स्वअंत:करणके अविरुद्ध इ.

४२१ विश्वासके दो परिणाम होते हैं. योग्य-यथार्थका उत्तम ओर अयोग्य अयथार्थ [कुविश्वास] का निकृष्ट फल निकलता है. अब इच्छा हो सो कीजिये. ॥

४२२ जो निषिद्ध सकाम कर्म ओर अयोग्य विश्वास रहित-एकाग्र चित्तवाले-स्वतंत्र-पूर्वोक्त अधिकार प्राप्त जिज्ञासु पुरुष हैं, उनको पूर्ववत् (उद्देशादि सूत्रोक्त समान) तत्व निर्णय कर्तव्य है. ॥

४२३ निर्णित विषयके स्वरूपकी परीक्षाकी शैली (योग, मध्यमादि) अनेक हैं. ॥

४२४ निर्दोष सर्व शैलीका सिद्धांत फल एकही होना चाहिये; क्योंकि सत्य एकही होता है.

४२५ सत्यमेवजयते न अनृतं (सर्वदा-जबतब-सत्यकी जय होती है, असत्यकी नहीं.) ॥

४२६ पूर्वोक्त प्रकारद्वारा सत् निर्णयसे सर्व संशय भ्रांतिका नाश ओर सत् दर्शन (साक्षात-प्राप्ति) फल होता है. ॥

४२७ पर कर परापर-न पर [सर्व जिसके प्रकाशसे प्रकाशित एसा अलुप्त-स्वप्रकाश परसे विशिष्ट जो परापर सो पर नहीं है].॥

इति समाप्ति सूचक पद है. अर्थात् 'तत्वदर्शन' ग्रंथगत तत्व निर्णयकी सामग्रीका प्रतिपादक

दूसरा नियमाध्याय समाप्त हुवा.

:(०):

भाषामें दुपडती—अपभ्रंश प्रचलित शब्द.

शुद्ध—ह्रस्व दीर्घ इ ई उ ऊ ऋ व ब त त्त घोष ङ ञ ण.

अन्यथा-दीर्घ ह्रस्व ई इ ऊ उ र ब व त्त त अघोष न

श ष ष क्ष

र स स ख छ } उदाहरणः—

शुद्ध—अर्थात् अद्वैत अधिष्ठान अनुचित अनुकूल अवधि

अन्यथा-अर्थात अद्वैत अधिष्टान अनुचित् अनुकुल अवधी

अतिथि असंभव अहंत्व असत् असत्य अधीन अधिन

अतिथी नसंभव अहमत्व असत आधीन

आर्य आपात्ति इथर ईश्वर इसु ईसा उपाधि उपनिषद्

आर्या आपति ईथर इश्वर यसु उपाधी उपनिखद्

उचित उपर उष्ण उस उपमान ऋ ऋक् एतद्दृष्टि ओर

उचित् ऊपर ऊषण ऊस उपमा रि ऋग एतदृष्टि अरु

कृ कि किंचित् क्रोड कणाद कर्त्ता कदाचित् कदाच

क्र के किंचित किरोड कनाद कर्ता कदाचित

खण्डनखण्डखाद्यम् गत गर्धव चार्वाक चिट्ठी चित्त चित्

खंडनखाद्य गत् गर्धभ चारवाक चिठि चित चित

चिह्न झूठ जगत् जनः जघे जहाति जहत् तू तदन्य तदन्न

चिन्ह झुट जगत जन जगे जहत जहत तुं तदन

तत्त्वमसि त्त दुःख दूसरा दीपक धर्त्ता ध्यानचोहा

तत्वमसी त दुख दुसरा दीप धर्ता ध्यानचोहान

नवीन नहीं नीच नैसर्गिक पद्वी प्राचीन पाश फांस

नविन नहि निच नैःसर्गिक पद्वी प्राचिन पास

पृष्ठ पृथक् प्रथम पर्य्यवसान पूज्य प्रत्युत् प्रतिकूल

प्रष्ठ प्रथक पृथम परिअवसान पुज्य प्रत्युत प्रतिकुल

फिलॉसॉफी वाद बौद्ध बाध बाध्य बाइबल भुवः भूख
फिलोसफी वाद बोध वाध वाध्य बायबल भुवर भूक
मूर्ख मूर्ति महः मुनि यहूदी याहूदी यूरोप रूप वादि
मूरख मूरती महर मुनी याहुदी युरप रुप बादी
बांचना वन वात विवाद वृत्तांत वस्तु वृक्ष वशात् वश
बांचना बन बात बिवाद वृतांत बस्तु बृक्ष वशात बस
वल्लभ वान् वान वेदांति वेद वास्ते वत् वृत्ति विना
बल्लभ वान बान वेदांती बेद बासते वत बृति बिना
विरोधि वृत्ति वर्त्तमान शिक्षा शब्दप्रमाण सांत शांत
विरोधी वृति वर्तमान सिक्षा शाब्दप्रमाण शांत सांत
सदसद् सत्ता शकता समष्टि स्वभावतः सविस्तृत सविस्तर
सदासद सकता समिष्टि स्वाभावतः सविस्तृ सविसतर
से स्वः हठ हि हूं हर्त्ता क्षत्रीय क्षत्री क्षत्रिय हें हे.
सें स्वर हट ही हुं हरता क्षत्री छत्री खत्री. हे हें.

शुद्धिपत्र.

☞ पूर्वोक्त पदोंको ओर प्रसंग अपने अनुस्यूत अशुद्ध अक्षर चिह्नके बदले शुद्ध अक्षर चिह्न आपही बतादेवें, एसे टूटे हुये टाइपजन्य वर्ण मात्रा ओर चिन्होंको छोडके लेखक-प्रेस दोष, असाधनताके नमूनेमें निम्न लिखित शुद्धिपत्र रज्जु करके क्षमाकी आशा रखता हुं.

जिस पद पाष ▪ एसा चिह्न हो उसे अवश्य "त्रस" अनुसार ग्रंथमें सुधारके वांचना चाहिये.

प्रस्तावना-कोश.

पृष्ठ	पं.	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पं.	अशुद्ध	शुद्ध
३	१	गमागम्य	गम्यागम्य	८	१२	सदासत्	सदसत्
	९	ज्ञान	ज्ञान	११	९	नजाने	नजानने
	१३	अनभव	अनुभव		१०	प्रमाणसिद्धि	प्रमाण, सिद्धि
	७	पुराणीं	पुराणी*				
६	३	खंडन	खंडन ओर संशय		१८	अनमोदन	अनुमोदन
				१४	३	वस्त्र	वस्त्र
८	७	स्वत	स्वतः		२६	अंतकरण	अंतःकरण
	१८	निश्चिया	निश्चया	१९	१९	प्रत्य	प्रत्यय
	२३	दुख	दुःख	१८	२	य-था	यथा
८	९	अद्वत	अद्वैत				

ग्रंथारंभ.

पृष्ठ	पं.	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पं.	अशुद्ध	शुद्ध
२	१७	पुरुषको	पुरुषकोभी	१२	६-२४	,,	,,
	२६	सत्तना	सत्तन्ना	१४	९	श्रुतिः	श्रुते
५	२०	भगद्	भगवद्		२०	श्रुति	इस श्रुति
६	१९	एतदृष्टि	एतद्दृष्टि	१५	१३	के	०
७	५	करें.	करें."		१६	सावन	साधन
	१८	भ्युति	भिद्यते	१७	९	उपनिषध	उपनिषद्
	२४	सन्नकर्ष	सन्निकर्ष		१२	सुशृम	शुश्रुम
१०	७	।।	!!		१६	जो एक	कहचुके कहीं हे दूस. री कहताहुं.
	१०	अलोक्ता	अभोक्ता				
११	१६	) सो,	) तो				
	२५	वृहदारण्य	बृहदारण्यक	१८	९	निदमें	निषद्में
					१९	संहता	संहिता

१८	२३	दादि	दधि
	२६	हो	ही
१९	२३	ईशों	ईशो
२०	१३	स	से
	२४	निषद	निषद्
	१८	वृहदारण्य	बृहदारण्यक
२४	१३	के	को
२७	१५	को	की
२८	११	गण	गुण
३२	१२	वल	बल
	१३	???	!!!
	१५	येत	येत्
३४	९	द्धांत	ध्वांत
	१४	न्तों	न्तो
	२६	गृह	गृह्य
३५	२१	मेद	मेघ
३६	१७	थथार्थ	यथार्थ
३८	१६	ईश्वरोतार	ईश्वरावतार
	१७	,,	,,
३९	११	प्रतिकल	प्रतिकूल
४०	१९	हे.	हे कि
	२४	वेदका	वेदका,—
४१	३-४	वैप्राणो	हवैप्राणो" रयिरेव"
	४	मांडुक्य	प्रश्न उ.
	६	पुरुषमें	पुरुष में

४१	१०	नहीं	नहीं)
	१४	पानेषि-दादि	पनिषदां
	१९	आर्या	आर्य
	२२	पूर्वोक्त	वक्ष्यमाण (पृ. १८०
४३	२४	इट	इट्
४४	१	गर्गादि	गर्गादि्
४८	२६	हाह	हीहै
४९	४	अभद	अभेद
	९	तइर	इतर
५०	१४	ब्रह्मकार	ब्रह्माकार
५१	९	रहित	रहती
५२	७	का	को
५३	७	ज्ञाता	ज्ञाता
	१७	मन न	मनन
५४	२	वक्कृत्व	वक्तृत्व
५५	४	वोहे	वोह
	७	घे	वे
	१९	चक्ष्य	चक्षु
५६	४	श्रोत्कृत्व	श्रोतृत्व
	,,	वक्कृत्व	वक्तृत्व
५९	१४	कहेतो	कहता
६१	२४	मान	माना जाय जाय?
६७	३	क	का

६७	६	शरीररत्व	शरीरत्व
	१५	उदारण	उदाहरण
६८	६	अवेछेदक	अवच्छेदित
७२	२	वसही	वैसेही
	२२	गा;	०
७३	८	संबंधा	संबंधी
७५	४	है;	है; *
	५	बोध्यक	बोधक
	२६	है.	है. शक्य लक्ष्यका जो संबंध, ऐसा मानें तोभी वही दोष आता है.
७६	क १६	ध्वजा	"ध्वजा
७८	१	नहा	नहीं.
	९	तहांतो	तहां,
	२१	तादाम्य	तादात्म्य
७९	६	वाली	वाली)
	११	उपयागार्थ	उपयोगार्थ
८०	१६	उसको	उसकी
८२	१२	तर्कप्रातिष्ठात्	तर्काप्रतिष्ठानात्
	१५	मूत्रों	सूत्र
	१८	त्रिवशिष्ट	वशिष्ठ
	,,	देये	देयं
८३	५	स्वतः	स्वयं
	१५	बंधन	बंध न

८४	१	अन्यथा?	अन्यथा:
	८	प्रतिबिंत्व	प्रतिबिंबत्व
८५	१६	वक्कुत्व	वक्तृत्व
	२०	न न	न बनिये
८७	३-१२		०
	१०	१	०
८८	६	दाष्टांत	दार्ष्टांत
८९	१३	होन	होने
९०	१७	वाचक	वाच्य
९२	८	ओर फळव्याप्ति	०
९३	४	विपय	विषय
९६	१६	अंशभा	अंशभी
९९	२३	व्याक	व्यापक
१०१	२	प्रकाश	प्रकार
१०२	७	शांत	सांत
१०३	१६	अंहत्व	अहंत्व
१०९	१६	मानाहे	मानाहैं
११०	४	दते	देते
१११	१५	[में	में [
	२६	होगा.(यह	होगा; जो मोतवगेरे, कर्माधीनईश्वरनियत हैं तो, स्वपर घात, पाप नहीं ठेरेगा; क्योंकि ईश्वरीनियम-प्रेरणा-से किया गया है. जो घात वगेरे कर्म, जीव

ने स्वतंत्र किये हें, एसा
मानें, तो ईश्वर अशक्त
ठेरेगा. परिणाममें 'ईश्व
र नहीं हे वा हे तो व्य
र्थ हे' एसा मानना पडे
गा' [उक्त दोनों

११२ २२ पर पास,
११३ ९ यसुखास्ति ईसुख्रिस्ति
११३ ११ उपरांत 'इसु'को
दूरस्थ सफल अफल
खिजुरकाभी ज्ञान न
हुवा था इ. उपरांत
२९ चोहा चोहा—
१२० २१ जाय! जाय?
१२१ ९ मंतव्यम मंतव्य
१९ गहीं नहीं
१२२ १९ की कीहि
१२३ ८ हासकता होसकता
१० [इसरा [शायद
ईल] इब्राहीम]
१७ एसेही एसेही ई
इ । ई साइ
१२४ १२ दोषदायी —सदोष
१२९ २ प्रषणा प्रश्न
१२९ ११ जंगली जंगली वा
१३० ७ ज्ञानान्नोति ज्ञानोन्नति

१३१ २४ २९ १२९
१३३ १९ अओगे जाओगे
१३४ १४ भग भाग
२९ केंद्र केंद्र
१४० ४ परमाण परमाणु
१४१ १० पोटो फोटो.
१४३ ६ योक्तिक यौक्तिक
१० ठेरानमें ठेरानेमें
१६ संशय, संशय-
१४३ क ६ हाना हानी
२० अकृतव्य अकर्तव्य
२९ उत्तर पूर्व
१४३ ङ ४ देना बताना
" च ९ एसा एसाही
१३ गुणे गु गुणागु-
णान णेषु
१९ निरोधो निरोधो
१४३छ ४ छुडाओ छुडाओ.
(वा भेद और दर्श
न ४ विचारो.)
१२ सविक सविकल्प
ल्प
१४३ज १४ योक्तिक यौक्तिक
१४४ ६ असंभाव- असंभाव
ना. ना—
२० उपमा उपमान

१४१	८	एतद्दष्टि	एतद्दृष्टि
	९	बह्म	ब्रह्म
१४६	२२	मननादि	मननादि तथा
१४७	१७	एतद्दष्टि	एतद्दृष्टि
१५०	13	अतःएव	अतएव
१५२	२६	अवच्छेद	उच्छेद
१५६	3	अवच्छेद	उच्छेद
१५८	६	दृष्टा	दृष्ट
१६०	२५	दपिक	दीपक
१६५	७	प्रतित	प्रतीत
	,,	अकार	आकार
१६६	९	आच्छा- दित	आच्छा- दन
	२३	मान्न	मान्ने
१६८	२५	जडमें	जड]में
१७२	६	आर	ओर
	२५	जाग्रत	(जाग्रत
१७४	२०	विशिष्ट	विशिष्टको
१७७	२	जैन	०
१८०	२४	कामान	को माने,
१८३	६	हागा,	होगा,
१८५	२	परिणामी	परिणाम
१८६	१५	हेनं	होने
१९३	२३	आवृत्त	आवरक
१९४	५	संबंध	असंबंध
	१०	ज्ञाता	(ज्ञाता
१९८	७	परिणाम	परिमाण
२०१	१६	ओर	वा
२०३	१	(समूहा- त्मकको)	(संघातको)
२०४	२	करसकता	करसकते
	४	सकता	सकते
	६	कहो के	कहो के जीवादि,
	७	करता है;	करते हैं;
	१७	होगा.	होंगे.
२०८	२२	आरोपक	"आरोपक,"
२१५	२०	स्वात्मा	[स्वात्मा
२२०	२१	अपनेको	परको
२२३	१४	(प्रतीति	प्रतीति
		२६)	) दर्शन २ देखो
२२५	२	किरणो	किरणें
२२७	१९	प्राक	प्राक्
२२८	१९	अयथाथ	अयथार्थ
२३४	११	सप	सर्प
२३५	२६	अहमत्व	अहमृत्व
२३७	3	(मेटर	(मॅटर)
	१४	स्त्रुवप	स्वरूप
२३८	१५	अभिश्रित	अमिश्रित

२३९	८	स्वरुपका	का स्वरूप
			कोंकी
२४७	१	जायगे	जायंगे
	२०	ज्ञानेसे	ज्ञानसे
२५०	१२	कार्य	कार्य
			वा तादात्म्य
२५२	१६	निर्दोष	निर्दोष
			कारण कार्य वा तादा त्म्य संबंध रूप-
२५५	४	भावाभाव	भावाभाव,
	,,	सदासद्वि	सद्सद्वि
२५९	१७	शरिर	शरीर
२६०	२०	वा दृष्टि	दृष्टि वा
	२५	तो; नहीं होती	तो नहीं होती;
२६३	२०	संवध	संबंध
२६४	४	तो,	तो
	१८	कपूटका	कपूरकी
२६५	१	मासना	भासना
	६	रहे?	रहे!
२६७	१	तद्	तत्
	१०	मक्ष	मल्ल
२६८	४	सो,	एसा,
२६९	१	उत्क्रमण	उत्क्रमण न
	१९	जीव,	जीव],
	२०	प्रवृत्ति	प्रकृति
२७३	५	करे?	करे!
	१२	बालकोंकि	बाल-
२७४	४	हे. किसी	हे, एसा सिद्ध होगा. किसी
	१७	दरोहमः	दर हमेः ओ
	१८	[सर्व उ- समें हे]	(सर्वमें वो ह हे)
	२१	जगत	सोपादान जगत् ओर जीव
२७५	१	संबंद्ध	संबद्ध
	९	नहीं;	नहीं८
	११	–	[अंक १] अद्वैत.
२७६	२	चोहानों	चोहा-
		दिक्षित	दीक्षित
२८०	१७	ऋतंभ्रा	ऋतंभरा
	२१	संकृत	संस्कृत
२८५	१	बाई	पंडिता
२८६	११	मजकूर	(ग्रं. क.) मजकूर
	१४	जिसेको	जिनको
	२२	स्वकार	स्वीकार
२८७	१	भुवनम	भुवनमें
		मुझका	मुझको
२९२	९-१४	समिष्ट	समष्टि

२९४	१२	प्र	प्रसंग
	१५	मसल- मानी	मुसलमा- नी
२९५	२	[उक्त मु झ मित्र	[उक्त मेरे मरहूम मित्र
	१८	समिष्टि	समष्टि
२९६	१८	आत्मा,	आत्मा, [तीनों]
	१९	ज्ञानगुप्त संहिता]	(गुप्तज्ञान संहिता ग्रंथ).
२९७	८	संबद्ध	संबद्ध
	८	मायुपहित	मायोपहित
	९	समिष्टि	समष्टि
	२२	उसनें	उसमें
	२५	पक्रति	प्रकृति
	,,	उन्नत्तिके	उन्नतिके
२९८	१	को	मुझको
	,,	हे	है.-[
	१४	िलता	मिलता
	,,	आकपाने	आकर्षाने
	२०	क्रो ादि	क्रोधादि
	२०	जावके	जीवके
२९९	२६	त्रिकादि	तिर्यकादि
३००	१०	है;	हैं;
	२१	आत्मा	आत्मा
	२२	भी]	भी

	२४	यथाकम	यथाक्रम
	२६	कामादि	[कामादि
३०१	१५	पृथम	प्रथम
	१६	त्रियक	तिर्यक
३०३	२४	सविस्त	सविस्तर
३०४	९	पेगबर	पेगंबर
३०६	२४	(स)	(समी.)
३०९	१७	अंकोमें	अंकोंमें
	,,	लिख	लिखा
३१०	२९	ब्रह्म	ब्रह्म.
३१२	६	त्रियकों	तिर्यकों
३१४	९	१८३६	१९३६
३१५	९	को	के
३१९	७	सर्व	सर्व
३२०	३	उपादय	उपादेय.
	९	(हुइहे)	(हुईहै. देखो राज्यसे उतारना और वहंगी केस.)
	१०	मानस केंगे	मानसको गे.
३२२	१७	लायबल केस]	लायबल तथा वहंगी केस
३२४	३	हे.	हैं.
	१२	माध्यमक	माध्यमिक

3229

३२४	१६	विज्ञान प्रकाश-रूप	विज्ञान
	२०	प्रत्य	प्रत्यय
	,,	प्रकृति	प्रवृत्ति
३२५	२०	सिविक-ल्प	सविक-ल्प
३२६	४	अद्वेत	अद्वैत
	११	सदोप	सदोष
	१३	अपवेश	अप्रवेश
३२७	१९	वाला	वाली
	२४	महारता	सहारता
	२५	बिना माने	माने बिना
३२८	९	भदसे	भेदसे
३२९	२३	होंगी.	होंगी. जो देश वस्तु नहीं हो तो गतिका अभाव होगा जोकि असंभव है.
३३०	४	लोष्ठके	लोष्ठको
	१०	पाजीटिव	पॉझीटीव
३३१	२६	स्वत	स्वतः
३३३	२	तिर्थकर	तीर्थंकर
	१२	क,	कि,
३३४	२५	अहम्म-दिया	अहमदि-येः"
३३५	२६	१ २	१. २.

		१८	१८.
३३६	३	आर्या	आर्य
	६	८	८, यथाक्रम-
३३७	१५	बोध	बौद्ध
	२१	दर्शन-	दर्शन-)
३३८	७	न्यामक	नियामक
	९	आर्या	आर्य
३३८	१४	परमाण-ओं	परमाणु-ओं
३३९	८	अव्यस्था	अव्यवस्था
	९	ब्राह्मांड	ब्रह्मांड
	१६	होनेसे.	होनेसे].
	१९	[व्यापक	(व्यापक
३४२	१	मान्न	मान्ने
	४	सिद्ध	सिद्धि
	३	संख्य	संख्या
	४	संमव;	संभव;
३४५	२०	पडेगाहो	पडेगा. हो
३४८	१	स्वप्रकाश	स्वप्रका
	१८	हरवर्ट	हरवर्टस्पेन्सर
	२३	गातकी	गतिको.
३५३	१५	मोक्ष	मोक्ष]
३५४	११	होसकते	होसकते
३५८	१६	पूर्वोक्त	पूर्वोक्त

		(पृ. १४३ ग)	भी कम]
३६४	१३	बाद्ध	बौद्ध
	१५	किरोड]	किरोडसे
३६८	१४	पोगल	पाट

सूत्र.

४	३	पंक्ति १	अतो नियमादीनामुद्देशः
,,	९	दोष	दोष–
,,		भावना	भावना–
१०	१४	ममतादि	ममत्वादि
१२	११	इष्ट	इष्ट
१३	७	तद्वत्	ओर
	८	अधार	आधार
	१२	भी	०
	२५	गुण गुण्या	यथा गुदिवत् ण गुण्यादि
१६	१७	का	को
१७	१०	व्याप्य विना	व्याप्य दर्शन विना
१८	१७	११७	०
	१९	तद्वत् ११७	तद्वत्
१९	२	दो	दो
२१	१४	अवयव	अतः अवयव
,,	१९	अवच्छेदक	पद अवच्छेदित
२४	२२	कोभी	कामी
२५	७	हुयेभी	हुयेभी)
२९	२	समवेश करतं	समावेश करते
३०	२	प्रत्यक्षादि	प्रत्यक्षादिमें
	५	प्रत्यक्षके	ओर अंतर
३४	१६	कि	कि
३५	५	होसकता हे.	होनेकी संभावना हे.
३६	२	अन्यथा	अन्यथा
	४	विषेश	विशेष
	१०	समग्री	सामग्री
	२५	मान्यत	मान्यता
३७	१	क	के
	७	सातवीं पंक्तिके पीछे १२, १३, १५ वीं पंक्ति पढनी चाहिये	
३९	१४	नहीं	भी नहीं
	१५	अदृष्टकी	अदृष्टके व्यापारकी
४०	१२	पदार्थके	पदार्थहो तिसके

४१	२५	, वगेरे	,३५०	४९	१०	ानयमा	निय
४३	२५	दुखः	दुःख	५०	८	ओर	हुये

जाहेर खबर

१	**भ्रमनाशक.** धर्म पंथ शोधक जिज्ञासुओं वास्ते.	रोयल फारम	३५॥	की. ०—१२—
२	**व्यवहारदर्शन.** जन्मसे मरणतक हरेक गृहस्थको उपयोगी.	रो.	५६	२—८—
३	**मानासिकयोग.** मेस्मेरिझम शिक्षक. रोगनाशक.	रो.	२३	२—०—
४	**भिक्षुकनिबंध.** देशहितैषियों ओर गृहस्थोंको अत्युपयोगी.	रो.	१६	०—८—
५	**अद्वैतादर्श.** अद्वैत द्वैत शोधकों वास्ते.	रो.	४५	२—०—
६	**तत्वनिर्णायक नियम.**	रो.	४॥	०—४—
७	**स्त्री शिक्षा.**	रो.	४	०—२—
८	**नेकसलाहकार.**	रो.	१०	०—८—
९	**अनार्य आर्य.**	रो.	३॥	०—२—
१०	**व्यवहार शिक्षक.**	फु.	४	०—१—०

११ **तत्वदर्शन.** छपनेवाला हे.

हरेक देशीविदेशीय भूत वर्त्तमान धर्म पंथ निर्णयपूर्वक तत्वनां

१२ **पर्यटनमीमांसा,** परखंड गमनविचार. छपनेवाला हे.

नं. १, २, ७, ८, ९. १०, गु. शेष हिं. पोस्ट खर्च जु

ठी. रा. रा. नारायणभारती यशवंतभारती **मु. पाटण.** गुजरात.

,, शंभुशंकरजी मेनेजर शंभु प्रेस. **पालीताणा.** काठिया

,, माधवजी गिरजाशंकर मेनेजर स. सू. प्रेस. **जूनागढ.**

इन तमाम ग्रंथ सीरीझके ग्राहकको [illegible] खर्च माफ.